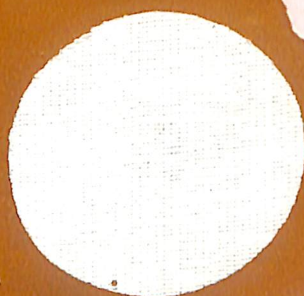
चिन्तन के उन्मेष





डॉ. गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

चिन्तन के उन्मेष



डॉ. गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

चिन्तन के उन्मेष

(लेखक द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखे गए
खोजपूर्ण लेखों और संस्मरणों का संग्रह)

डॉ० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'
एम० ए०, (संस्कृत तथा हिन्दी)
पीएच० डी०, वेदाचार्य

गंगा पुस्तक प्रकाशन,
23, मोहल्ला पहाड़ियां, केसरी कुटीर
जम्मू तवी

प्रकाशक

गंगा पुस्तक प्रकाशन

23, मोहल्ला पहाड़ियां, केसरी कुटीर, जम्मू तवी

प्रथम संस्करण : जून 1994

कीमत : 250 रुपये

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज, कोट किशन चंद, जालन्धर

प्राप्ति स्थान

वैदिक कुटीर, अखाड़ा बाजार, कुल्लू

तथा

23, मोहल्ला पहाड़ियां, केसरी कुटीर, जम्मू तवी

प्राक्कथन

मेरे खोजपूर्ण निबन्धों का एक संग्रह "मतिमन्थन" के नाम से सीमान्त प्रकाशन कूचा रोहेल्ला खान दरियागंज नई दिल्ली से लगभग 20 वर्ष पूर्व छपा था, जिस की पर्याप्त ख्याति हुई और शीघ्र ही इस की सब प्रतियां बिक गईं अब यह पुस्तक पुन: प्रकाशन के अभाव में अनुपलब्ध है। पुस्तकालयों में ही उपलब्ध हो सकती है। चूंकि इस का पुनर्मुद्रण का अधिकार (Copy right) प्रकाशक ने अपने पास रखा हुआ है अत: अब इस पुस्तक का पुनर्मुद्रण प्रकाशक की इच्छा पर ही निर्भर करता है।

उस समय मैं अपनी यह निबन्ध सामग्री एक ही पुस्तक में नहीं समेट पाया था कुछ कारण थे, जिनके अन्तर्गत मुझे इस सामग्री का शेष भाग दूसरी रचना के रूप में प्रकाशित करने के लिये सुरक्षित रखना पड़ा। मैं किसी अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा में था कि दैव योग से इन दिनों मन में एक विचार उठा कि यही सामग्री पड़ी-पड़ी अस्त-व्यस्त या लुप्त होकर मुझे एक गम्भीर मानसिक आघात दे सकती है इसी के साथ मेरे जीवन की चिर साधना भी समाप्त हो सकती है। इसी कारण मैंने शेष बची इस सामग्री को पुस्तक रूप में निबद्ध करते हुए मुद्रित करने का निश्चय कर लिया।

इस बार मैंने प्रकाशकों के पास न जाकर यह कार्य स्वयं अपने हाथ में लिया है। प्रकाशक लोग अपने कार्यक्रम के अनुसार ही रचना का प्रकाशन करेंगे। इधर मेरे मन में उठा हुआ प्रकाशन सम्बन्धी विचार जल्दी पूर्ण होना चाहिये इसी कारण इस बार मैंने अपने ही व्यय से यह कार्य अपने हाथ में लिया है।

अभी इस प्रकाशन से भी कुछ लेख सामग्री बच गई है। उसे तीसरी किश्त में प्रकाशित करने का विचार है।

इस रचना में भिन्न-भिन्न विषयों पर शोध और संस्मरणात्मक लेख प्रस्तुत किए गए हैं।

पुस्तक के छ: अध्याय हैं। प्रथम में हिमाचल सम्बन्धी, द्वितीय में महाकवि कालिदास सम्बन्धी, तृतीय में महापुरुषों के संस्मरणों के सम्बन्ध में, चतुर्थ

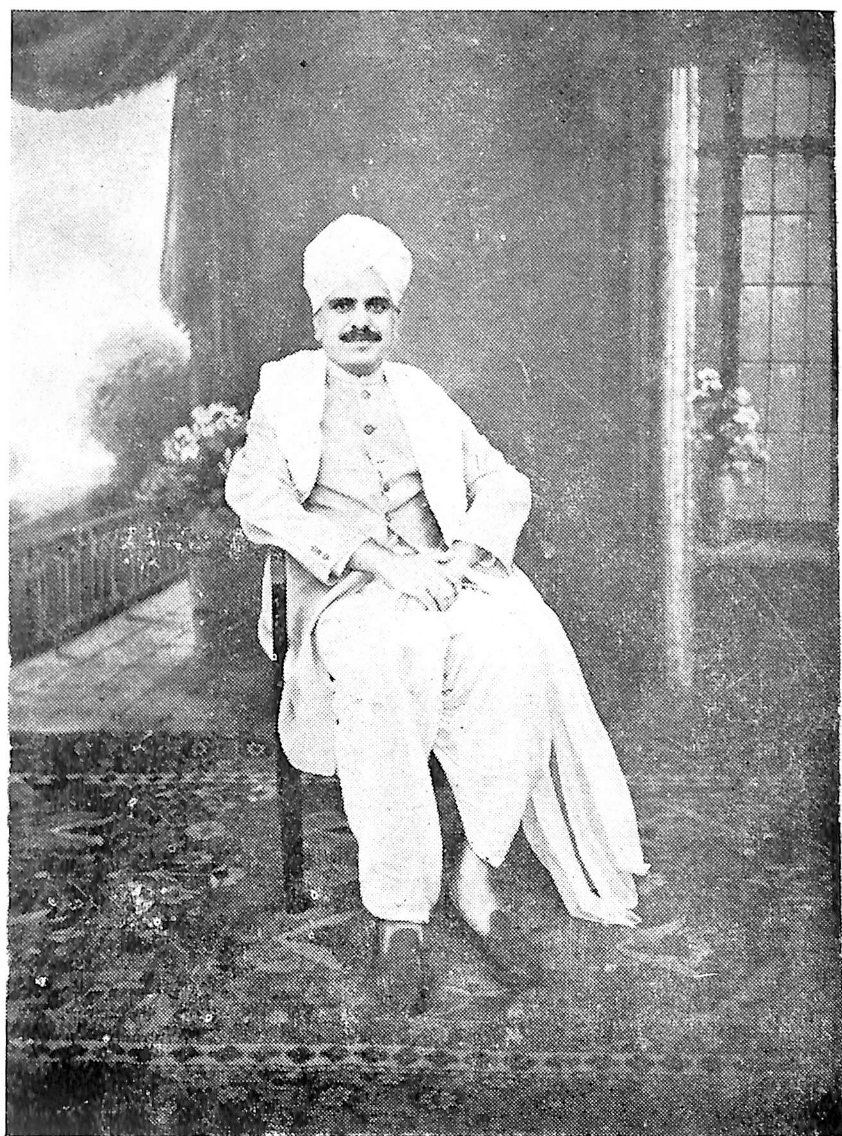
में वेद के सम्बन्ध में, पञ्चम में फुटकल निबन्ध तथा षष्ठ में कश्मीर के प्राचीन संस्कृत लेखकों और लेखों के बारे में शोध पूर्ण लेख रखे गए हैं।

इन अध्यायों में ऊपर प्रदर्शित विषयों के अतिरिक्त भी अनेक लेख रखे गए हैं। लेखों की संख्या 50 तक चली गई है। संक्षेप में वैदिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक, विवरणात्मक, विचारात्मक, संस्मरणात्मक तथा संस्कृत आलोचना सम्बन्धी हिन्दी भाषा में निबन्ध निबद्ध किये गए हैं। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि आज के युग में ऐसे बौद्धिक और शास्त्रीय लेखों के पढ़ने में पाठकों की रुचि कम होती है। अतः शिक्षा, पर्यावरण, जनसंख्या वृद्धि, आतंकवाद आदि पर लिखना चाहिये था। किन्तु मेरा विचार है कि समाज को सामयिक विषयों के अतिरिक्त मानसिक खुराक के लिये ज्ञान की विविधाओं की भी आवश्यकता होती है। यही कारण है कि सर्वत्र विभिन्न विषयों पर साहित्य लिखा जाता है। उस की पर्याप्त मात्रा में खपत भी होती है।

पाठकों में भी पर्याप्त रुचि भेद होता है। यह आवश्यक नहीं कि वे केवल सामयिक विषयों को ही पढ़ें। उनके पढ़ने के लिये विभिन्न ज्ञान राशि पुस्तकों में निहित है। साहित्य हो, दर्शन हो, आलोचना हो अथवा कविता कहानी निबन्ध हो सब प्रकार का साहित्य एक समान चलता आया और चलेगा। अतः जिन सज्जनों ने मुझे उपर्युक्त बातें कही थीं उनसे मैं सहमत नहीं हुआ और प्रस्तुत रचना प्रकाशित करने चल पड़ा। अब इस की सफलता, असफलता रोचकता या अरोचकता सब कुछ विज्ञ पाठकों के हाथों में है। मेरी इस रचना के निर्णायक पाठक ही होंगे। यदि प्रमादवश त्रुटियां रह गई हों उनके लिये भी पाठकों से ही अनुरोध है कि इन त्रुटियों द्वारा मुझे अवश्य अवगत कराएं ताकि मुझे अपनी कमियों का आभास होकर दूसरा संस्करण ठीक प्रकाशित हो पाए। इस पुस्तक के प्रकाशन में जम्मू के सफल साहित्यकार श्री ओम् गोस्वामी ने जो मुझे प्रकाशन कार्य में सहयोग दिया, उसके लिए मैं उनका बड़ा आभारी हूं।

इस सम्बन्ध में मैं रोहिणी प्रिंटर्ज जालन्धर के संचालक श्री कुलदीप शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने बड़ी लग्न के साथ यह प्रकाशन कार्य थोड़े समय में ही सुन्दर और सुसज्जित रूप में सम्पन्न किया। ०००

विषय सूची



लेखक के शास्त्री कक्षा तक के गुरु स्वर्गीय श्री श्रीचन्द्र जी तर्कतीर्थ

प्रथम अध्याय

(हिमाचल प्रदेश सम्बन्धित)

कुल्लू का विजयदशमी महोत्सव (दशहरा)

यों तो कुल्लू के दशहरे का नाम बहुत वर्षों से सुनता चला आ रहा था। जब भी कुल्लू की यात्रा का प्रसंग चलता "आप वहां का दशहरा अवश्य देखिए" की आवाज़ कानों में गूंजने लगती। सोचा कि यह उत्सव भारत के अन्य प्रान्तों में मनाए जाने वाले उत्सवों से कुछ विचित्र व विशिष्ट होगा, तभी कुल्लू के नाम से यह इतना अधिक जुड़ा हुआ है। दशहरा तो अन्यत्र भी मनाया जाता है, किन्तु उन स्थानों के स्मरण के साथ इसका योग नहीं देखा गया है। बनारस के रामनगर की रामलीला भारत भर में प्रसिद्ध है। किन्तु बनारस जाने वाले को यह नहीं कहा जाता कि बनारस की रामलीला भी देख आइए। अभी कुछ ही दिन पहले किसी मित्र ने कहा था अगर वहां का दशहरा नहीं देखा तो कुल्लू जाने का क्या प्रयोजन ? गर्मी का सीजन तो कश्मीर, शिमला, नैनीताल. मंसूरी आदि कई स्थानों में काटा जा सकता है। सुनकर मैंने सोचा कि इतने में ही कुल्लू की विशेषताएं यों समाप्त की जाती हों, सो ठीक नहीं इसकी और भी विशेषताएं हैं। हां दशहरा भी उस में एक प्रधान विशेषता हो सकती है।

इन चर्चाओं और सुझावों के कारण अन्त में मैंने कुल्लू जाने का निश्चय कर ही लिया। कुल्लू का दशहरा आश्विन की दस तारीख से प्रारम्भ होकर आश्विन पूर्णिमा को समाप्त होता है। यानि सितम्बर के अन्त से सात अक्तूबर तक एक सप्ताह पर्यन्त यह उत्सव धूमधाम के साथ निरन्तर दिन दौगुना रात चौगुना चलता रहता है।

कुल्लू जाने का विचार तय कर लेने के पश्चात् परिस्थिति ऐसी बन गई, जिससे यह सिद्ध हो गया कि मैं कुल्लू नहीं जा रहा हूं अपितु कुल्लू ही मुझे अपने पास बुला रहा है। यह भी दैव योग ही था कि इस यात्रा का विचार करने के बाद पन्द्रह दिनों के मध्य में ही सेठ श्री मदनमोहन मेहरा का पत्र मिला। विषय था कि मैं शीघ्र कुल्लू आकर उनके चलाए हुए संस्कृत कालिज का कार्य सम्भालूं। पत्र मिलते ही मैंने जाने का निश्चय कर लिया और सितम्बर 1987 के प्रथम सप्ताह में जाकर

मैंने उस संस्था का कार्यकलाप सम्भाल लिया। एक महीने की प्रतीक्षा के अनन्तर दो अक्तूबर का दशहरा भी आ पहुंचा। जिसके प्रारम्भिक दिन को देखकर ही मुझे ऐसा लगा कि मैं दशहरा पहली बार देख रहा हूं। जम्मू के दशहरे को बचपन से देखता आ रहा था, पर कुल्लू का यह उत्सव अपने आप में सब से अनोखा और न्यारा है।

उत्सव का प्रारम्भ :

दो अक्तूबर के दिन कुल्लू के एक भाग ढालपुर का विशाल मैदान चारों ओर से दुकानों, प्रदर्शनियों, कला-भवनों, सरकसों, इम्पोरियमों, क्रीड़ा क्षेत्रों आदि से ठसाठस भर गया। बीच में अगाध भीड़ के लहराते जन समुद्र के चारों ओर लाऊडस्पीकर द्वारा भक्ति रसपूर्ण मधुर संगीत स्वर लहरी गूंजती हुई इस मेले की सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान का परिचय दे रही थी। आज इस मेले का उद्घाटन हिमाचल के मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह के करकमलों से होना था। वह तो प्रातः ही हो गया। किन्तु बाद में मेले का रूप क्षण-क्षण में कितना संकुल और विशाल होता गया, इसका आभास इसी से होने लगा कि सड़कें दर्शकों से भर गईं, चलने में धक्कम-धक्की होने लगी। सैंकड़ों देवताओं के रथ-गाजे-बाजे के साथ भीड़ को चीरते हुए मेलों की ओर अग्रसर होने लगे। किशोर युवक तो मेला देखने की उत्सुकता में भाग रहे थे, किन्तु प्रौढ़, वृद्ध, लड़कियां, महिलाएं हज़ारों की संख्या में ढालपुर की ओर बढ़ रही थीं। इस तूफान के एक ओर सम्भल जाने के बाद मेले का स्थान ढालपुर के प्रारम्भिक मैदान से श्री रामचन्द्र जी का रथ श्रृंगारित होकर चला। जिसके पीछे सैंकड़ों देवताओं की झांकियां अनेक वाद्यों के साथ चल रही थीं। तुरही, डफले, ढोल, मंजीर, बैण्ड बाजे आदि कई वाद्य यन्त्र बजाये जा रहे थे। जिनकी गगन-भेदी विभिन्न ध्वनियों में भक्ति रस की संगीत लहरी भी डूब गई। लगभग दो लाख व्यक्ति होंगे आज के इस प्रथमोत्सव में।

व्यापारिक गतिविधियां :

जैसा कि ऊपर कहा ही जा चुका है कि मेले का विशाल स्थान चारों ओर दुकानों, इण्डस्ट्रियों की प्रदर्शनियों तथा सरकारी, विभागों की प्रदर्शनियों आदि से भर चुका था। इसके अतिरिक्त एक भाग में सरकस, झूले तथा अनेक प्रकार के मनोरंजक प्रदर्शन लगे थे। कुल्लू के गृह उद्योग सम्बन्धी सैंकड़ों दुकानों की कतारें चारों ओर छाई हुई थीं, जिनमें अधिकतर कुल्लू के शाल पशमीना कढ़ाई, सिलाई के सुन्दर डिज़ाइनों वाले रंगबिरंगे कपड़े थे। कुल्लू के शालों की लगभग पचास इण्डस्ट्रियां यहां पर लगी हुई थीं, जिनमें अनेक भांति के सुन्दर से सुन्दर शाल ठीक

कीमत पर मिल रहे थे। इसी के साथ पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यभारत तथा दक्षिण भारत के कुछ स्थानों के व्यापारियों ने भी यहां आकर अपनी-अपनी मण्डियां लगा रखी थीं। जिनमें अधिकतर कपड़ों के सैंकड़ों प्रकार दिखाई दे रहे थे। एक ओर तो कपड़े का ऐसा विशाल बाजार तो दूसरी ओर भिन्न-भिन्न नस्लों वाली गऊओं की विशाल गो-प्रदर्शनी लगी हुई थी। दुधारू सुन्दर गाएं और फुदकते कलोल करते हुए बछड़े और गोपालों द्वारा सब के सामने गायों का दुहना आदि दृश्य बड़े लुभावने लग रहे थे।

इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश की भाषा संस्कृति एवं कला अकादमी ने अपनी पुस्तक प्रदर्शनी लगाई हुई थी। इसमें प्रदेश की मासिक, त्रैमासिक तथा साप्ताहिक पत्रिकाएं तथा अकादमी की ओर से स्थानीय लेखकों की प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्यिक रचनाएं रखी गई थीं। इसके अतिरिक्त लोक सम्पर्क विभाग की ओर से एक प्रदर्शनी के, जिसका मुख्य आकर्षण विन्दु 1945 में हुई शिमला कांफ्रैंस के लगभग सब चित्र प्रस्तुत किये थे, जो स्वतन्त्रता आंदोलन के युग की महत्वशाली, ऐतिहासिक धरोहर थी, वहां रखी गई थी। उस समय के एक चित्र में भूतपूर्व स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद एक मनुष्य चालित रिक्शा पर सवार होकर शिमला की सड़क में दिखाये गये हैं, दूसरे चित्र में श्री राजगोपालाचार्य उस समय के वायसराय लार्ड वेवल से हाथ मिलाते हुए दिखाये गये हैं। इसी प्रकार उस युग के लगभग सभी कांग्रेस नेताओं जैसे नेहरू, पटेल आदि भिन्न-भिन्न कार्यों में व्यस्त हुए दिखाए गए हैं। यह पुराने चित्र इस समय हिमाचल प्रदेश की विशेष सम्पत्ति हैं। दूसरी ओर हिमाचल राज्य के बन विभाग की प्रदर्शनी भी अपनी कई विशेषताएं लिये हुए थीं। इसमें सेब की पच्चीसों प्रकार की किस्में लाकर रखी गई थीं, जो यहां पैदा होती हैं। स्थानीय फलों के अनेक रूप यहां लाकर रखे गये थे। जिन्हें देखकर हिमाचल की फल समृद्धि का पता चलता था।

दशहरे की समाप्ति के दिन भी श्री रामचन्द्र का रथ सुसज्जित होकर गाजे-बाजे के साथ निकलता है, जिसके साथ बैण्ड-बाजा, डफले, ढोल, तुरही, शंख, मंजीर आदि अनेक प्रकार के वाद्य बजते हुए तुमुल ध्वनियों से आकाश को गुञ्जायमान कर देते हैं। साथ में अपार भीड़ इस प्रकार से उमड़ पड़ती है कि इतने बड़े विशाल मैदान में भी चलना कठिन हो जाता है। यह अपूर्व झांकी चारों ओर घूम कर एक स्थान पर टिक जाती है। वहीं पर लगभग 350 स्थानीय देवताओं की झांकियां, जो साथ चल रही थीं, ठहर जाती हैं। श्री रामचन्द्र जी का रथ प्रधान झांकी उसके साथ संयुक्त साढ़े तीन सौ देवताओं की अन्य झांकियां मिलकर एक विशाल समारोह को जन्म देती हैं। प्रत्येक झांकी सुवर्ण मण्डित जैसी दीखती है। इन सब के सामान पालकी चवर, छत्र, आभूषण, दण्ड आदि सब सुवर्ण रजत से मण्डित रहते हैं।

ऊपर ताने गये कपड़े, चद्दरें आदि सुवर्ण तिल्ले से जड़ित रहती हैं। वास्तव में देवता की प्रत्येक झांकी में सोने-चांदी का प्रयोग बहुत अधिक रहता है।

इसके अतिरिक्त एक बड़ा आकर्षण इस का यह भी है कि हिमाचल भाषा, कला एवं संस्कृति केन्द्र की ओर से सातों दिन रंगारंग कार्यक्रम देर रात तक प्रस्तुत किए जाते हैं। जिनमें भारत के सब प्रान्तों के कलाकार नृत्य गायन आदि में भाग लेते हैं। यहां सब प्रान्तों के कला रूपों के दर्शन होते हैं।

अन्तिम दिन के इस समारोह की समाप्ति पर एक अन्य दृश्य उपस्थित होता है। वह यह कि यहीं पर भैंस, मुर्गे और मछली की बली दी जाती है। इस भयंकर दृश्य को मैं नहीं देखना चाहता था, इसीलिये वहां नहीं गया। यह बलि हो जाने के अनन्तर आस-पास की झाड़ियों को आग लगा दी जाती है। इससे सब विघ्न बाधाएं दूर हो जाती हैं यह धारणा इसके मूल में है अथवा लंका दहन की भावना भी इस प्रवृत्ति के लोगों में देखी गई है।

इतिहास :

प्रश्न उठता है कि ऐसे अपूर्व दशहरे का प्रचलन यहां कब और कैसे हुआ ? यह अपने प्रकार का एक विचित्र ही समारोह है, जिसमें दशहरे के नाम पर रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाथ की त्रिमूर्ति का दाह नहीं किया जाता जैसा कि अन्यत्र होता है। किन्तु अन्य अनेक मेलों के रूप ही यहां सप्ताह भर निखरते हैं। रामायण की कथा के साथ स्थानीय परम्पराएं जोड़ कर यह दशहरा यहां मनाया जाता है। इस सम्बन्ध में यद्यपि कुछ लोक-कथाएं प्रचलित हैं तथापि एक सर्वमान्य लोकवार्ता इस सम्बन्ध में इस प्रकार यहां प्रचलित है।

राजा जगतसिंह के शासन में यहां एक ऐसी घटना घटी जिससे इस उत्सव का जन्म हुआ। एक ब्राह्मण पास ही किसी गांव में रहता था, उसका नाम था दुर्गादत्त। किसी दरबारी ने राजा जगतसिंह से कह दिया कि दुर्गादत्त के पास एक अनमोल हीरा है। सुनकर राजा ने आज्ञा दे डाली कि यह हीरा ब्राह्मण से ले लिया जाए। बस फिर क्या था ब्राह्मण के पास शाही फर्मान पहुंच गया कि वह जल्दी से जल्दी दरबार में आकर वह हीरा राजा को भेंट कर दे। अन्यथा दण्ड का भागी बने, वास्तव में ब्राह्मण के पास कोई हीरा नहीं था, केवल उसे परेशान करने के लिये किसी ने उस के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा था। किन्तु दरबार की ओर से बुलाकर उसे धमकाया गया कि शीघ्र ही राजा के आगे भेंट चढ़ा दें। अब लाचार होकर ब्राह्मण ने अपना मांस काट कर दरबार में फैंक दिया, ब्राह्मण तो दिवंगत हो गया किन्तु राजा को ब्रह्महत्या का

दोष लग गया। जिसके परिणामस्वरूप राजा को कुष्ट रोग हो गया। इस रोग को निवारित करने के लिये बहुत प्रयत्न किए—अन्त में महात्मा कृष्णदास जी ने कहा—अगर राजा अयोध्या जाकर वहां से श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति लाकर कुल्लू के साथ लगे सुल्तानपुर, जहां राज-प्रासाद था, में स्थापित करे तब यह रोग दूर हो सकता है। ऐसा ही किया गया जिससे राजा का रोग दूर हो गया। फिर उसी के नाम से दशहरा मनाया जाने लगा। इससे राजा का कुष्ट रोग दूर हो गया यह घटना सोलहवीं शताब्दी के मध्य घटित हुई थी। तभी से यह प्रसिद्ध कुल्लू दशहरा मनाया जा रहा है। इससे पूर्व यहां पर शैव-सम्प्रदाय अधिक प्रचलित था। अब यहां वैष्णव-सम्प्रदाय चल पड़ा। कहा जाता है कि इस क्षेत्र के 360 देवताओं में से 100 देवता दशहरे के अवसर पर यहां आते हैं। यानि इस समय जो देवताओं की पृथक्-पृथक् झांकियां आकर सम्मिलित होती हैं, वे 100 देवताओं के रूप में है। उसमें इस संख्या की झांकियां रहती हैं। राजा जगतसिंह ने श्री रघुनाथ के नाम पर ही शासन चलाया। मूर्ति की स्थापना भी विजयदशमी के दिन ही की। एक और जनश्रुति इसी प्रसंग के साथ सुनाई देती है :—

कुल्लू के प्रथम राजा भगवन्तीपाल को हिड़िम्बा देवी ने स्वप्न में आकर कन्धे पर उठा लिया और राजा से अपने मन्दिर के लिये स्थान की याचना की। राजा ने जाकर यह स्वप्न सब को सुनाया और हिड़िम्बा को मन्दिर के लिये स्थान दे दिया। पुनः हिड़िम्बा ने राजा को सपने में दर्शन देकर उसके राज्य की दृढ़ता का वरदान दिया। तभी से हिड़िम्बा इनकी कुल देवी बनी। दशहरा में अन्य देवताओं के साथ हिड़िम्बा देवी का रथ भी साथ चलता है। मनाली में हिड़िम्बा का एक अन्य मन्दिर भी है।

ढालपुर :

उपर्युक्त दशहरा का उत्सव कुल्लू के एक भाग ढालपुर के मैदान में मनाया जाता है। पुराने युग में कुल्लू घाटी यारकन्द, लद्दाख, तिब्बत आदि देशों के व्यापार का एक केन्द्र थी। पंजाब तथा शेष भारत के सब प्रान्तों के व्यापारी विजयदशमी के उत्सव पर यहां आकर अपनी-अपनी व्यापारिक मण्डियां लगाते थे। आज भी प्रथा चल रही है किन्तु अब पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली इन प्रदेशों के व्यापारी ही इस अवसर पर यहां आकर अपने-अपने व्यापारिक केन्द्र सप्ताह भर के लिये खोलते हैं। कुछ अन्य प्रदेशों से भी आते हैं। रोहतांग दर्रा भी इस समय खोल दिया जाता है। कुल्लू व्यास नदी के तट पर बसा है। चारों ओर गगनचुम्बी और हरीभरी पर्वत मालाएं स्थित हैं। जिस पर चीड़ व देवदार के घने जंगल लहरा रहे हैं। इसके

कई स्थानों पर अन्य देव मन्दिर भी हैं। कुल्लू से मनाली लगभग 38 किलोमीटर की दूरी पर है।

ऐतिहासिक महत्त्व :

कुल्लू को प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में कुलूत नाम से पुकारा गया है। पुराने ग्रन्थों के अनुसार कुल्लू में जमदग्नि ऋषि का कहीं आश्रम था। वे कुल्लू में आते-जाते थे। कहा जाता है कि कुल्लू घाटी के मलाना स्थान पर इन का आश्रम था। एक बार जमदग्नि जी कैलाश की यात्रा के बाद यहां की चन्द्रखानी नामक पर्वत चोटी पर आ बैठे। वहीं की आस-पास की भूमि इनका प्रचार क्षेत्र बन गई। इधर एक भारी तूफान उमड़ा जिससे आठ देवता उड़कर कण्डू नामक स्थान पर आ बैठे, ये इसी स्थान के देवता कहलाये; ये देवता बीच-बीच में कुल्लू के ढालपुर में आकर सभा करने लगे। कहते हैं कि दशहरे के दिन ये आठ देवता यहां आकर सभा करते हैं। इस कारण यह उत्सव इनके उपलक्ष्य में भी मनाया जाता है।

ढालपुर :

ढालपुर राजा बहादुर सिंह ने सन् 1562 ई. में बसाया था। इनके भाई ढालसिंह के नाम से ही इसका नामकरण किया गया। यह समय सन् 1372 ई. का था। व्यास नदी के दाहिने तट के भू-भाग पर दो भाई जगचन्द और सुल्तानचंद राज्य करते थे। सुल्तान सिंह ने कुल्लू के साथ लगे उच्च स्थान पर सुल्तानपुर नगर बसाया और वहीं रह कर शासनतंत्र चलाने लगा। दूसरी ओर जगसिंह एक दृढ़ दुर्ग में रहकर राज्य कर रहा था। जगसिंह ने सुल्तानपुर पर आक्रमण कर दिया इधर जगतसिंह ने जगसिन्ह पर आक्रमण कर उसे परास्त किया और सुल्तानपुर पर भी आक्रमण कर दिया। ढालपुर में दोनों का भयंकर युद्ध हुआ। दोनों पर विजय पाकर जगतसिंह ने अपनी राजधानी नगर से उठा कर कुल्लू में स्थापित की। इसी वीर राजा ने कुल्लू के दशहरे का प्रचलन किया था। दशहरे के दिन जैसा कि पीछे लिख दिया गया है कि श्री रघुनाथ जी की झांकी रथ में सजाकर गाजे-बाजे के साथ विजयदशमी स्थल ढालपुर के मैदान के चारों ओर घुमाई जाती है। जिसके साथ अपार भीड़ और सौ अन्य देवताओं तथा माता हिड़िम्बा के रथ साथ-साथ चलते हैं। यह आयोजन दशहरे के आरम्भ व अन्त दोनों अवसरों पर होते हैं। इस उत्सव का उद्घाटन हिमाचल प्रदेश के मुख्यमन्त्री द्वारा किया जाता है।

सन् 1937 से इस समारोह को राजकीय घोषित किया गया था। अब इसका आयोजन राष्ट्रीय स्तर पर होता है। अब इसमें स्थानीय नृत्य तथा अन्य विविध प्रान्तों से सांस्कृतिक प्रदर्शक दल यहां आकर अपना-अपना कला कौशल दिखाते हैं। हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी की ओर से सातों दिन कला केन्द्र ढालपुर में रंगारंग कार्यक्रम चलता है, जिसमें भारत के अनेक प्रान्तों से कला मण्डलियां आकर अपने-अपने प्रान्तों के संगीत तथा नृत्य का प्रदर्शन करती हैं। उस समय भारत का "अनेकता में एकता का स्वरूप" साकार हो उठता है और दर्शक अनुभव करने लगते हैं कि पूर्व-पश्चिम व उत्तर दक्षिण का सम्पूर्ण भारत एक है। हम एक भारतीयता की माला के रंग-बिरंगे पुष्प हैं। इससे जन-जन में राष्ट्रीयता की प्रसुप्त भावना जाग उठती है। यह भी एक प्रस्तुत उत्सव का मुख्य लाभ है।

उक्त अकादमी के द्वारा यहां पुस्तक प्रदर्शनी भी आयोजित की जाती है। जिसमें हिमालयीय साहित्य, हिन्दी अंग्रेजी और संस्कृत में लिखा गया सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध होता है, जिससे पाठकों को हिमाचल की स्थानीय सांस्कृतिक धरोहर रहन-सहन, प्राचीन गौरव, इतिहास प्रसिद्ध दर्शनीय देव स्थान तथा पर्यटन स्थान आदि विषयों का ज्ञान मिलता है। इनके अतिरिक्त अन्य भारतीय साहित्य भी यहां उपलब्ध रहता है।

वास्तव में कूल्लू प्रसिद्ध देव-भूमि है, यहां व्यास, विश्वामित्र, जमदग्नि, परशुराम, मनु आदि देवों के प्राचीन आश्रमों के अब भी दर्शन होते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य की सम्पदा तो विचित्र सौन्दर्य से परिपूर्ण है ही। फिर इस प्रकार के दशहरा जैसे उत्सव इस में सोने में सुगन्धी का काम करते हैं और इसमें चार चांद लगा देते हैं।

000

मणिकर्ण महातीर्थ (कुल्लू)

कुल्लू न केवल धरती का स्वर्ग है, अपितु इसका कण-कण देवी देवताओं का निवास स्थान है। व्यास कुण्ड, सेरेशतीर्थ, भृगुसर, वशिष्ठ, जमदग्नि कपि अदि ऋषियों के आश्रम मन्वालय (मनाली) यानी मनु का घर इत्यादि इस भूमि पर प्राचीन भारतीय ऋषियों के आश्रमों की एक शृंखला सी चली गई है, जिस के गर्भ में वैदिक काल से लेकर पौराणिक काल तक की भारतीय संस्कृति का मूल रूप सुरक्षित है। आज के युग में तो कुल्लू जैसे स्थान को भौतिकवादी लोग केवल पर्यटन स्थान ही प्रधान रूप से मानते आए हैं किन्तु इसका वास्तविक महत्त्व इसी भारतीय संस्कृति और धर्म दोनों के प्रबल पक्ष के रूप में विख्यात है।

यद्यपि कुल्लू भारतीय प्राचीन ऋषियों की आवास स्थली होने के कारण इस के एक-एक तीर्थ का वर्णन करने में विस्तार अपेक्षित है, तथापि यहां हम केवल एक ही तीर्थ मणिकर्ण का वर्णन प्रस्तुत करेंगे।

इस प्रसंग में यह लिख देना भी अप्रासंगिक न होगा कि इन उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त कुल्लू भू-भाग में हेमकूट, इन्द्रकील अर्जुन गुफा, शवरी, भूतेश्वर (बिजली महादेव) आदि स्थान भी यहां हैं, जिन के साथ दैवी घटनाएं जुड़ी हुई हैं। इन स्थानों के पुराणों में भी वर्णन आए हैं।

सन् 1971 ई० के अन्त में मि० ए० एफ पी हारकोर्ट ने भारत से इंग्लैंड में जाकर "दि हिमालयन डिस्ट्रिक्टस कुल्लू एण्ड लाहुल स्पीति नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिस में सम्पूर्ण कुल्लू भू भाग की खोज पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया। इसी प्रसंग में उन्होंने मणिकर्ण का भी यथा संभव ब्योरा दिया। उनके अनुसार मणिकर्ण में पुजारियों के पास एक अति प्राचीन संस्कृत पाण्डुलिपि सुरक्षित है, जिस में इस पीठ का विशद् वर्णन किया गया है। तथा इसे (मणिकर्ण) कुलान्त पीठ कहा गया है, इस स्थान के सम्बन्ध में जो पीठ शब्द का प्रयोग किया गया है, वह भी विचारणीय है। वैसे तो पीठ का अर्थ पीढ़ा या गद्दी, आसन आदि में प्रयुक्त होता है। प्रकृत में पीठ

शब्द में एक पौराणिक कथा का संकेत प्रतीत होता है। इस कथा के अनुसार सती (पार्वती) का कोई अंग यहां गिरा था। भगवान विष्णु के चक्र से कट कर यह अंग या भूषण यहां गिरा था, उसी का नाम अन्य देवी पीठों की भांति कुलान्त पीठ पड़ गया। पश्चात् इसी को "मणिकर्ण" कहा जाने लगा। पार्वती के णि जड़ित कर्ण भूषण के यहां गिरने के कारण इसे मणिकर्ण कहा जाने लगा। इसी प्रकार भारत में शक्ति पीठ अनेक हैं, जिन के आधार पर इसे कुलान्त पीठ कहा जाने लगा।

कुल्लू के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री चन्द्रशेखर पुरोहित जी के पास तक्ष शास्त्र नामक प्राचीन संस्कृत पाण्डुलिपि है, उस में भी इस स्थान को कुलान्त पीठ ही कहा गया है।

प्राचीन भूगोल :

कुलान्त माहात्म्य में इस पीठ के भूगोल का थोड़ा सा संकेत इस प्रकार मिलता है--जालन्धर के ऐशान्य कोण में तथा हेमकूट के दक्षिण में दश योजन (एक योजन चार कोस की होती है) विस्तीर्ण तथा तीन योजन विशाल यह पीठ है। यही भूगोल आज के मानचित्र से भी समता रखता है। कुल्लू जालंधर के ठीक ईशान कोण में स्थित है। साथ ही चौहार क्षेत्र मण्डी जिले का योगिन्द्र नगर तहसील का कुल्लू से मिला हुआ भू-भाग है। इसे स्वतन्त्र पीठ माना गया है।

श्रुति परम्परा से भी यह तथ्य इस प्रकार प्रचलित है कि व्यास नदी के पूर्व कुलान्त पीठ और दाहिने कटराई नामक स्थान, कुल्लू मण्डी आदि स्थान जालंधर पीठ में पड़ते हैं।

धार्मिक महत्व :

इस पीठ के धार्मिक महत्त्व के सम्बन्ध में यद्यपि कई पुराणों में ऐतिहासिक आख्यान मिलते हैं, जो इतिहास और धर्म के सम्बन्ध में विवरण देने के मुख्य साधन का कार्य करते हैं। तथापि प्रस्तुत प्रसंग में इस पीठ के संदर्भ में ब्रह्माण्ड पुराण की एक मुख्य कथा है, जो इस का इतिहास और धार्मिक महत्व दोनों सिद्ध करती है।

सारांश में कथा इस प्रकार है--एक बार भगवान् शिव पार्वती के साथ भ्रमण करते हुए इस स्थान पर पहुंचे। यहां की प्राकृतिक सुषमा से मुग्ध होकर दोनों ने सुरम्य स्थान पर ग्यारह हज़ार वर्षों तक तपस्या की। यहीं पर पानी में स्नान करते

समय माता पार्वती के कर्ण भूषण की एक मणि पानी में गिर गई। मणि को खोजने के लिए भगवान् शिव ने अपने गणों को आदेश दिया। पर्याप्त अन्वेषण द्वारा भी जब मणि नहीं मिली तो उन्होंने क्रोध में आकर अपना तीसरा नेत्र खोल दिया। सारी सृष्टि कम्पायमान होने लगी। पाताल में शेष नाग को इस घटना का पता चला। उस ने एक ही फुंकार छोड़ कर पृथ्वी के गर्भ से पानी के चश्मे यहां बहा कर मणियों के ढेर कर लिये, जिनमें माता पार्वती के कर्ण भूषण की मणि भी ऊपर आ गई। इस प्रकार उक्त स्थान का नाम मणिकर्ण पड़ा और अब भी यहां गर्म चश्मे बह रहे हैं, जिनमें आज यहां के निवासी (तीर्थ के आश्रमी लोग) भोजन भी बना लेते हैं। उन्हें तो प्रकृति ने ही ऐसा वरदान दिया है कि इन्धन के बिना जितना चाहो भोजन बना लो।

एक पुराण की यह भी कथा है कि अर्जुन के साथ किरात वेषधारी भगवान् शिव ने पहले युद्ध किया पश्चात् प्रसन्न होकर पाशुपत अस्त्र दे दिया। यह घटना भी इसी स्थान पर घटी बतलाते हैं। पाशुपत शस्त्र देने के पश्चात् भगवान् शिव ने अर्जुन से कहा "इसी मणिकर्ण के गर्म जल में स्नान करके अपने पापों से मुक्ति प्राप्त करो। अर्जुन ने ऐसा ही किया।

यह तीर्थ भक्तों और श्रद्धालुओं की दृष्टि से सब सिद्धियों और मनोकामनाओं के देने वाला है। यह भी कहा जाता है कि मनाली (मन्वालय) में भगवान् राम के गुरु वशिष्ठ रहते थे, इस बात के प्रमाण स्वरूप अब भी वहां का प्रसिद्ध वशिष्ठाश्रम देखा जा सकता है।

ऋषि वशिष्ठ को मिलने आए भगवान् राम भी एक बार मणिकर्ण तीर्थ पर गए थे। कई लोगों का यह भी कहना है कि इस आश्रम में राम अपने गुरु वशिष्ठ से कई बार मिलने आए और इस प्रसंग में वे इस तीर्थ (मणि कर्ण) में अनेक बार आए होंगे और आज के गर्म चश्मे में उन्होंने कई बार स्नान भी किया होगा।

दर्शनीय स्थान :

मणि कर्ण का सर्वप्रथम दर्शनीय स्थान है अति प्राचीन राम मन्दिर, जिसके विशाल भवन में राम, सीता और लक्ष्मण की मूर्तियां स्थापित हैं। यह स्थापना कब हुई, इस की पृष्ठभूमि किस काल के इतिहास से सम्बन्ध रखती है, इस बारे में आवश्यक तथ्य लिख देना आवश्यक है।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक सत्यमय कहानी प्रचलित है, जो सोलहवीं शताब्दी से सम्बन्ध रखती है। उस समय राजा जगत सिंह इस प्रदेश का शासक था। किसी

व्यक्ति ने राजा के पास एक असत्य सूचना देकर कहा कि टिपरी गांव (मणिकर्ण से 25 किलोमीटर की दूरी पर) के एक ब्राह्मण के पास अधिक मात्रा में अनविद्ध शुद्ध मोती हैं। यह सुनकर राजा लोभ के वशीभूत होकर उन मोतियों को प्राप्त करने का यत्न करने लगा। परिणामस्वरूप उसने मोती राजा को अर्पित कर देने हेतु ब्राह्मण को बुलाकर खूब डराया धमकाया। परन्तु ब्राह्मण मोती होते तो उन्हें देता ? ब्राह्मण के लाख कहने पर भी राजा को विश्वास नहीं हुआ। उसने ब्राह्मण को तीन दिन के अन्दर मोती भेज देने का आदेश दिया। तीन दिनों बाद जब मोती दरबार में नहीं पहुंचे तो राजा स्वयं ब्राह्मण के घर गया। ब्राह्मण ने तंग आकर परिवार सहित घर को आग लगा दी। इस प्रकार परिवार सहित ब्राह्मण उस अग्नि की भेंट हो गया और राजा को ब्रह्महत्या का दोष लगा, जिस के कारण उसके अन्तःपुर में अनेक प्रकार की विपत्तियों का आना शुरू हो गया। राजा भय से कांप उठा। अन्त में उसने नग्गर नामक स्थान पर जाकर महात्मा केशव दास की शरण ली और इस विपत्ति से बचने का उपाय पूछा। महात्मा ने कहा—अयोध्या से भगवान् राम की मूर्ति लाकर मणि कर्ण में स्थापित करो। तदनन्तर अपना सारा राजकाज भगवान् राम के आगे समर्पित करके, उनकी आज्ञा की भावना मन में रख कर राज करो। इसी से आप का दुःख दूर हो सकता है।

महात्मा के कथनानुसार राजा ने अयोध्या से भगवान् राम की मूर्ति लाकर मणिकर्ण में स्थापित की और उन्हीं की आज्ञा मान कर राज-काज संचालित करना प्रारम्भ कर दिया। देखते ही देखते कुछ समय तक राजा को कुष्ट रोग से मुक्ति मिल गई। तभी से यहां का रघुनाथ मन्दिर प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध है। वर्तमान काल में यह मन्दिर न केवल भव्य है अपितु हज़ारों लाखों दर्शनार्थियों के परम श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। यहां प्रति दिन हज़ारों दर्शनार्थी आते हैं। भोजन और निवास दोनों की सुचारू व्यवस्था है।

इस के अतिरिक्त मणिकर्ण में सिक्खों का विशाल गुरुद्वारा भी है, जिस की पर्याप्त मान्यता है। प्रतिदिन यहां भी हज़ारों दर्शनार्थी जाते हैं। यहां का बड़ा विशाल लंगर प्रतिदिन चलता है। यात्रियों के लिए निवास की व्यवस्था भी है। यहां गुरू नानक देव जी आकर कुछ समय तक रहे थे। इसी कारण इस स्थान की ऐतिहासिक पवित्रता और महत्त्व है। यहां दोनों समय यात्रियों के लिये भोजन की सुन्दर व्यवस्था भी है। इसी प्रकार यहां के भव्य गुरुद्वारे में भी यात्रियों के लिये भोजन का रमणीय प्रबन्ध है।

हज़ारों वर्षों से यह तीर्थ स्थल प्रकृति की रमणीय गोदी में अपनी अपूर्व विचित्रताओं तथा विशेषताओं को आंचल में संजोए देश-विदेशों के आकर्षण का केन्द्र बनता

चला आ रहा है। कुल्लू-मनाली यों भी पार्वत्य प्रदेश के प्रसिद्ध पर्यटन स्थल हैं। उनमें यह पौराणिक पवित्र तीर्थ गर्मी के दिनों में हज़ारों भक्तों और पर्यटकों की भीड़ से परिपूर्ण रहता है। गर्मी में भी यहां का मौसम शीत प्रधान और वर्षा-काल जैसा दृश्य प्रस्तुत करता है। गर्म चश्मों के जो दो रूप हैं, जिस में लोग गर्म पानी में घण्टों सुख भज्जन का आनन्द उठाते हैं, दूसरा रूप ऐसा भी है जो तप्त अंगार के सम्मान दहन शक्ति से परिपूर्ण है। इसमें उपर्युक्त दोनों अन्नक्षेत्रों का भोजन बनाया जाता है। ये दोनों अन्न क्षेत्र यात्रियों के लिए दिन भर चलते रहते हैं। रात को भी कुछ समय तक चलते हैं।

पीठ की भूमि के चारों ओर ऊंची पर्वत माला हिममण्डित होकर आकाश को छू रही हैं। मौसम शीतल और वर्षा प्रधान है। पर्वतों के हरे भरे बन चारों ओर शीतल और वेगवती वायु से लहराते रहते हैं। अपूर्व प्राकृतिक छटा अपने यौवन में आकर मानों स्वर्गीय रंगस्थली पर अपनी चौसठ कलाओं का प्रदर्शन करती रहती है। देव-स्थली और प्राकृतिक सुषमा स्थली का समन्वय यहीं देखा जा सकता है।

धार्मिक महत्व :

इस तीर्थ को संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में कुलान्त पीठ कहा गया है। इस सम्बन्ध में श्री चन्द्रशेखर पुरोहित जी की भी यही राय है। इस की तीर्थ-वत्ता के सम्बन्ध में कुलान्त माहत्म्य नामक पुस्तक में भी विस्तृत वर्णन है। उसमें लिखा है— हिमाचल के पाद में हरिद्रा नामक पर्वत है। वहां आवास नामक सरोवर विराज-मान है। उस में शीत और गर्म पानी है। यह स्थान पार्वती का क्रीड़ा क्षेत्र है। यहीं पर पार्वती के कर्ण भूषण की मणि गिरी थी और यही स्थान भगवान् शिव द्वारा अधिष्ठित है।

स्थानीय धारणाएं :

इस तीर्थ की उत्पत्ति अथवा प्रसिद्धि प्राप्ति के सम्बन्ध में अनेक स्थानीय लोक-गाथाएं प्रचलित हैं। जिनका आधार पौराणिक अथवा जन-भावनाएं हैं। एक कथा इस प्रकार भी प्रचलित है कि यहां स्नान करते हुए पार्वती की मणि गिर कर पाताल लोक चली गई, जिसे शेष नाग ने प्राप्त कर लिया। शिव के गणों द्वारा मांगने पर जब उसने नहीं दी तो भगवान् शिव ने शेष नाग के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच शेष नाग ने प्रचण्ड ज्वालापूर्ण उच्छास छोड़े, जिन से पाताल तल के गर्म पानी

के चश्मे उछल बाहर धरती पर बहने लगे। अन्त में शेष नाग को वह मणि भगवान् शिव को अर्पित करनी ही पड़ी। इस लोक-कथा की सत्यता के प्रमाण आज से 40-50 वर्ष पूर्व इस स्थान से उपलब्ध मणियां प्रस्तुत करती हैं। जिन लोगों ने उस समय इन गर्म चश्मों से ये मणियां समय-2 पर प्राप्त की थीं, उन्होंने इन का उपयोग धारण करके रोग शोकादि के शमन के रूप में किया। ऐसा उनका विश्वास था कि इनके धारण करने से उपर्युक्त फल प्राप्त होते हैं और घर में इन की उपस्थिति सर्वतोमुखी सुख-शान्ति का कारण बन जाती है। गर्भिणी स्त्रियों को इसे धारण करने से गर्भ की पीड़ा से मुक्ति मिल सकती है और प्रसूति आसानी से हो सकती है। इन मणियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनेक धारणाएं यहां प्रचलित हैं। यहां तक कि इस मणि के धारण करने से पुत्र प्राप्ति होती है। ऐसा भी यहां के लोगों का विश्वास ही नहीं अपितु इस सम्बन्ध का एक श्लोक ब्रह्माण्ड पुराण में भी मिलता है जो इस प्रकार है—

अपुत्राणां पुत्रदं प्रोक्तं निर्धनानां धनावहम्।
उर्ध्व धारे नरः स्थित्वा पार्वत्याश्च संगमे॥

अर्थात् पार्वती नदी और व्यास नदी के संगम की उर्ध्व धारा में स्नान करके यह मणि धारण करने पर मनुष्य पुत्रवान् और धनवान् होता है। यहां यह भी लिख देना आवश्यक होगा कि मणिकर्ण से बहती हुई पार्वती नामक नदी आकर व्यास नदी में मिल जाती है। भुन्तर स्थान पर इन दोनों का संगम प्रत्यक्ष दिखाई देता है जो प्रयाग की त्रिवेणी का स्मरण दिलाता है।

इस पवित्र स्थान पर सब जातियों के लोग तीर्थ यात्रा की भावना से आकर गर्म पानी में सुख स्नान तथा देव-दर्शनों के पश्चात् अन्न क्षेत्र में नैवेद्य रूप में खाना खाकर चारों ओर की प्राकृतिक शोभा के आंगन में विचरण करते हुए आध्यात्मिक और लौकिक दोनों सुखों का लाभ उठाते हैं।

राम मन्दिर, शिव मन्दिर, भगवती मन्दिर और गुरुद्वारा इन सब के दर्शन हृदय में धार्मिक और आध्यात्मिक स्फूर्ति को जगाते हैं। इस वातावरण में आकर तीर्थ यात्री थोड़ी देर के लिए संसार की सब चिन्ताएं भूल जाते हैं।

गर्म जल कुण्डों की विशेषताएं :

यहां गर्म पानी के कुण्ड दो प्रकार के हैं। जो तप्त अंगार की भान्ति गर्म हैं। उनमें केवल भोजन पकाया जाता है। सन् 1905 तक राम मन्दिर के पास गर्म जल का एक ऊंचा स्रोत जो 11 से 14 फुट ऊंचा था, निकलता था। इस की गति बड़ी तीव्र थी। इस वेग के कारण कभी-कभी रंगीन पत्थर भी ऊपर आ जाते थे। लोग इन्हें

मणियां कहते थे। इसी प्रकार के कुछ अन्य चश्में भी यहां थे जिन का तापमान 94 सी० से 887 सी० तक था और अब भी है। इस गर्म पानी के मूल में क्या कारण है, धार्मिक दृष्टि को छोड़ कर वैज्ञानिक लोग अब तक इस रहस्य का पता नहीं लगा सके। इन गर्म चश्मों में गन्धक तो है नहीं, इसी कारण इस सम्बन्ध में धार्मिक और पौराणिक दृष्टि ही अपनाई जा रही है। लौकिक लाभ यह भी है कि इन तप्त कुण्डों में स्नान करने के बाद चर्म रोग दूर हो जाते है। गठिया, जोड़ों में दर्दें, लकवा आदि रोग इन कुण्डों के कुछ स्नानों से ही कम होने लगते हैं एवं महीना-दो महीनों के लगातार स्नानों से इन के पूर्णरूप से दूर होने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं।

इस तीर्थ स्थान की ऊंचाई समुद्र धरातल से 1650 मीटर (5,500 फुट) है। पार्वत्य प्रदेश होने के कारण वातावरण शीत प्रधान है।

मणिकर्ण जाने के लिए कुल्लू से 10 कि०मी० भुन्तर स्थान पर जाना पड़ता है। यह स्थान अति रमणीक है। यहीं पर व्यास और पार्वती नदी के संगम की शोभा दर्शनीय है, जहां दोनों महानदियां एक साथ मिलती हैं, चारों ओर हरीभरी पर्वत माला शोभायमान है। वहीं से पार्वती नदी के किनारे-किनारे पहाड़ों की उपत्यकाओं को लांघती हुई बस डेढ घण्टे के अन्दर हमें मणिकर्ण पहुंचा देती है।

इस तीर्थ के अतिरिक्त कुल्लू के आसपास ऋषि मुनियों के प्राचीन आश्रम और देव मन्दिर इस स्थान की विशेषता है। बिजली महादेव मन्दिर में हर वर्ष शिव लिंग पर बिजली गिरती है, शिव लिंग टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। जब उसे मक्खन के साथ जोड़ा जाता है तो वह पूर्ववत् वैसे का वैसा परिपूर्ण दीखने लगता है। यह भी एक चमत्कार ही है। इस के अतिरिक्त मनाली मन्वालय अर्थात् मनु का स्थान, वहीं पर हिड़िम्बा देवी का मन्दिर जहां पर हिड़िम्बा और भीमसेन की घटना घटित हुई थी तथा व्यासाश्रम जहां व्यास जी ने तपस्या की थी, ऐसे अनेक स्थान कुल्लू घाटी में दर्शनीय है। यहां का जलवायु शीतल और आरोग्य वर्धक है। ०००

रोहड़ू क्षेत्र का देव उत्सव प्रतिष्ठा

यद्यपि हिमाचल में देवी-देवताओं से सम्बन्धित अनेक उत्सव मनाये जाते हैं जिनके मूल में देवभूमि की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा की धरोहर का बीज रहता है तथापि कुछ ऐसे उत्सव भी हैं जिनमें इस धरोहर के अतिरिक्त लोकाचार और लोकरंजन की दृष्टि से एक विशेष आकर्षण दिखाई देता है। रोहड़ू तहसील का एक ऐसा ही उत्सव है "प्रतिष्ठा" जिसे हजारों लोग एकत्रित होकर तीन दिनों तक आनन्द विभोरता में मनाते रहते हैं। प्रतिष्ठा का अर्थ है शुद्धिकरण, मन्दिर के जीर्णोद्धार के बाद उसकी शुद्धि के लिए हवन आदि किया जाता है। शुद्धिकरण की इस प्रक्रिया में परशुराम जी का विशेष योगदान होता है अतः इस अवसर पर भगवान परशुराम को आमन्त्रित किया जाता है। निमन्त्रण पाकर परशुराम के प्रतीक कलश की विशाल और वैभवपूर्ण साज सज्जा के साथ झांकी निकाली जाती है। जिसके पीछे लोक वाद्य यन्त्र, शहनाई, रणसिंगा तथा नगारे आदि अनेक वाद्यों के साथ हजारों की भीड़ चलती है। कुछ युवक युवतियां देवता सम्बन्धी नृत्य करते, गीत गाते चलते हैं। झांकी मेजबान गांव की ओर प्रस्थान करती हैं, उधर गांव की ओर से भी हजारों लोग एकत्रित होकर भगवान परशुराम के स्वागत के लिए पुष्पमालाएं और नैवेद्य पात्र लेकर धूप दीप के साथ अत्यन्त श्रद्धा विभोर होकर खड़े रहते हैं। आस-पास के बीसियों गांव इस उत्सव की धारा में अपने को जैसे आत्मसात ही कर लेते हैं। भगवान परशुराम की झांकी गांव में पहुंचते ही भगवान परशुराम की जय-जय के नारों से आसपास गूंज उठता है।

अपने शिष्यों के साथ परशुराम जी इस प्रकार का स्वागत पूर्ण आतिथ्य पाकर उनके लिए बनाए गए विशेष मन्दिर जैसे मण्डप में आकर विराजमान हो जाते हैं। श्रद्धालुओं की अनियन्त्रित भीड़ सारे गांव को एक धार्मिक उत्सवीय परिवार में समेट लेता है। तत्पश्चात् एक विशाल भोज का आयोजन होता है जो निरन्तर तीन दिनों तक चलता है, जिसमें सबके लिए समान रूप से भोजन करने का निमन्त्रण रहता है पूरी कचौरी, शाक, दाल, भात तथा मांस का इस रसोई में खुला प्रयोग रहता है।

मांस के लिए तो काफी बकरे काटे जाते हैं। बीच-बीच में सुरापान भी बहुतों द्वारा किया जाता है। दिन रात युवक-युवतियां, बूढ़े प्रौढ़ आदि सब अवस्थाओं के लोग हाथ से हाथ मिलाकर नाटी करते हैं तो दूसरी ओर देव पूजा के घण्टे, डफले आदि कर्ण भेदी ध्वनियों से वातावरण को गुंजायमान करते रहते हैं। एक अद्भुत और चमत्कार पूर्ण दृश्य तथा उल्लासमय वातावरण बना रहता है, तीन दिनों तक चलने वाले उत्सव में प्रधान अतिथि परशुराम और कुछ अन्य देवता भी पूज्य अतिथियों के रूप में बुलाए जाते हैं। इस प्रकार उत्सव स्थल पर देवताओं की रंग-बिरंगी झांकियां और पीछे अथाह जनप्रवाह, जय-जय ध्वनियों से अद्भुत दृश्य पैदा करता है। प्रत्येक देव झांकी के साथ उसकी मण्डली जिन्हें खूंद कहा जाता है, भी आती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों से आई हुई ये अतिथि मण्डलियां आपस में एक परिवार जैसी घुल मिल जाती है।

परशुराम इस उत्सव के गुरु माने जाते हैं शेष उनके शिष्य। इसी कारण झांकी आने पर भीड़ उमड़ कर उन्हें गुरु दक्षिणा प्रदान करती है। गुरु शिष्यों का सम्वेदना भरा मेल होता है। गुरु को एक विशाल मण्डल में बिठाया जाता है। शेष देवताओं की झांकियों को लोगों द्वारा नचाया जाता है। जिन्हें देख कर दर्शकों को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। रात को सब देवता मन्दिर के अन्दर चले जाते हैं तथा उनके भोजनार्थ लंगर तैयार होने लगता है। लंगर बड़ा विशाल होता है, जिसमें पच्चीसों क्विंटल अनाज पकता है। भोजन के उपरान्त युवक-युवतियों के नाच गाने प्रारम्भ होकर रात भर चलते रहते हैं।

दूसरे दिन पुजारी तथा विशेष लोग मन्दिर की छत्त पर चढ़ कर उसकी देव पूजा करते हैं जिसे स्थानीय बोली में शीख पूजना कहते हैं और देवता के नाम तथा काली पूजन के नाम पर बकरों की बलि भी दी जाती है। उधर देवताओं को नचा-नचा कर जनता का मनोरंजन किया जाता है।

विसर्जन :

तीसरे दिन उत्सव का विसर्जन किया जाता है। सर्वप्रथम परशुराम जी के लिए नया मण्डल तैयार किया जाता है। हजारों लोगों की भीड़ में परशुराम की झांकी वहां आकर ठहरती है अन्य देवताओं की झांकियां भी साथ होती हैं। वाद्य यन्त्रों के तुमुल नाद से दिशाएं गुंजायमान होने लगती हैं। पुष्पवर्षा जय जयकार नाच-गान खुशी में मस्ती से झूमना आदि क्रियाएं वहां सर्वसाधारण हो जाती हैं। अपार श्रद्धा और

आनन्द का सागर उमड़ता है। भगवान परशुराम की झांकी उठ जाने पर मण्डप खण्डित कर दिया जाता है। यही है विसर्जन। उत्सव की समाप्ति का सूचक।

भगवान परशुराम की इस प्रकार की असाधारण मान्यता और पूजा से इस तहसील की पौराणिक परम्परा और परशुराम से सम्बन्धित इस प्रदेश के ऐतिहासिक घटना चक्र के रहस्य का पता चलता है कि विशेष कर परशुराम जी इस प्रदेश पर कैसे छा गए थे। इस पर खोज करने की प्रेरणा भी मिलती है। ०००

हिमाचल का सुन्दर कोना जयसिंहपुर

हिमाचल एक द्वितीय कश्मीर है। इसका प्रत्येक कोना प्रकृति की सुषमा का अपूर्व वरदान लेकर संसार के आकर्षण का केन्द्र बनता चला आ रहा है। इसी के साथ यह देवभूमि, देव स्थानों तथा भारतीय संस्कृति का मुख्य केन्द्र है। आज के विकृत व घुटनपूर्ण समस्याओं के वातावरण में यही एक ऐसा प्रान्त है, जिसमें जातिवाद, रंगभेद, क्षेत्रीयता, अपराध, आतंक, आक्रोश, दलगत जोड़-तोड़ तथा अनेक प्रकार की उथल-पुथल व अशान्ति का वातावरण नहीं है। लोगों का जीवन स्वच्छ, सादा व अपराध शून्य है। ऐसा लगता है कि विधाता ने इस प्रान्त को जैसा सौन्दर्य शान्ति, संस्कृति व वैभव दिया है, उसी के अनुरूप ही मानवता की भी सृष्टि हुई है।

यद्यपि इस प्रदेश को अनेक विशेषताएं हैं तथापि उनमें से पर्यटन के सम्बन्ध में एक विशेष स्थान का विवरण प्रस्तुत करना ही इस लेख का उद्देश्य है।

बात 20 अप्रैल 1990 की है। मुझे अकस्मात् एक वैवाहिक निमन्त्रण मिला। एक नवयुवक श्री कान्तकुमार शास्त्री ज्योतिषाचार्य एम० ए०, जो मेरा शिष्यवत् व परम श्रद्धालु है, का शुभ विवाह 27 अप्रैल 1990 को होने जा रहा था। उसी से सम्बन्धित यह सादर निमन्त्रण था। इसके लिये मुझे पालमपुर के रास्ते से होकर जयसिंहपुर में पहुंचना था। उसी के साथ लगा एक मक्कड़ नामक ग्राम है। वहीं पर यह शुभ विवाह महोत्सव मनाया जा रहा था यहीं पर था उस युवक का घर।

प्रेमातिरेक के वशीभूत होकर मैं 26 अप्रैल को कुल्लू से चल पड़ा। मार्ग में हिमाचल की सुन्दर स्थलियां एक से एक बढ़कर मानों मेरे मार्ग में खड़ी-खड़ी सौन्दर्य, सौरभ, शीतलता, हरियाली और शस्यश्यामलता का बाना पहने मुस्कुरा रही थीं। मीठे व सुगन्धित देवदार वनों से आते पवन के झोंकों द्वारा मेरे अन्दर नये जीवन का सञ्चार हो रहा था। बस लगातार चलती चली जा रही थी। कई स्टेशन लांघ कर अन्त में पालमपुर आया। बस स्टैंड पर अपार भीड़ थी। समग्र

स्थान बसों से खचाखच भरा था। मुझे यहीं से जयसिंहपुर की बस पकड़नी थी। इसी बीच पालमपुर का सौन्दर्य देखकर मैं इतना मुग्ध हो उठा कि सोचने लगा काश ! यहीं पर मेरा संस्कृत कालिज होता। चारों ओर देवदारों से घिरी पर्वतमाला रजतमुकुट पहने खड़ी थी इस अप्रैल के अन्तिम समय में भी यहां नवम्बर जैसा शीतल वातावरण था। नगर का वैभव नवीन-प्राचीन तथा पाश्चात्य-पौर्वात्य दोनों परिवेश व परिप्रेक्ष्य लेकर पर्यटकों को अपनी ओर खींच रहा था। सोचते-सोचते मैंने जयसिंहपुर जाने वाली बस पकड़ी। तत्काल वह हवा में उड़ने लगी। पास बैठे हुए यात्री से मैंने पूछा जी ! कितनी दूर है जयसिंहपुर ? अभी दो घण्टों की यात्रा शेष है उनका उत्तर था। मैं खिड़की से झांक कर राजमार्ग के चमकीले व विशाल मार्ग पर दौड़ती बस से ठण्डी-ठण्डी पवन के सुगन्धित झोंकों का आनन्द लेता हुआ, हरियाली व पर्वतमाला को देख रहा था। एक से एक बढ़कर सुन्दर भूखण्ड ! याद आ गया महाकवि कालिदास के हिमालय का चित्रण ! व हिमाचल की देवभूमि सम्बन्धी उन की उक्ति—"पितु: प्रदेशास्तव देवभूमय:" (हे पार्वती ! तेरे पिता हिमालय के प्रदेश देवभूमियां हैं) ऐसे आनन्द के वातावरण में दो घण्टे कब बीते पता ही नहीं चला। मैं अपनी इस सौंदर्यानुभूति के सपनों में ही खोया था तो एक यात्री ने कहा--"आ गया जी जयसिंहपुर"। मेरा सपना टूटा। मैं बस से नीचे उतरा और सर्वप्रथम देखा एक अत्यन्त लम्बा व विशाल हरा-भरा मैदान चारों ओर से वृक्षों व पुष्पित लताओं से घिरा हुआ। किनारों पर छोटी बड़ी दुकानें तथा आस-पास लोगों की चहल-पहल। कोई ट्रैफिक नहीं, कोई विषैला धुआं नहीं, कोई—धूल की उड़ान नहीं। चारों ओर शांति का वातावरण।

जयसिंहपुर :

जयसिंहपुर एक अच्छा कस्बा है, जिसकी आबादी लगभग 1600 है। एक हायर सैकेण्डरी स्कूल, हाई स्कूल, मिडिल तथा प्राईमरी स्कूल भली प्रकार से चल रहे हैं। लोगों में शिक्षा प्राप्ति की धुन अच्छी है। इस कारण यहां के अधिक लोग शिक्षित हैं। खेती व नौकरी दोनों व्यवसाय यहां प्रधान हैं। विशेषकर सेना व नेवी में अधिक लोग जाते हैं। तीसरे स्थान पर व्यापार भी है। किन्तु इतना बड़ा नहीं। केवल मध्यम दर्जे की दुकानों तक ही सीमित है। यहां के एक प्रतिष्ठित निवासी श्री मोतीसिंह कटोच से मेरी भेंट हुई। वे नेवी में केप्टन थे। अब अवकाश प्राप्त हैं। बड़े सौम्य तथा सज्जन दिखे। आस-पास का वातावरण सौन्दर्यपूर्ण तथा प्राकृतिक है। बहुत-सी गलियां पत्थरों से पटी हुई, पुराने जमाने की याद दिलाती हैं। पत्थर भी अधिक घिस कर ऐसे मुलायम हो गए हैं कि प्रति पग पैर फिसलने का भय रहता है। पुराने कुएं व बावलियां अधिक हैं। जिनमें चांदी जैसा निर्मल पानी चमकता रहता

है। लोगों की जलीय आवश्यकता अधिकतर यहीं से पूरी होती है। इसके अतिरिक्त नल भी स्थान-स्थान पर लगे हैं, किन्तु उनसे भी पानी कुछ समय तक ही मिलता है। हरे-हरे खेत दूर तक लहराते चले गए हैं। खेत अधिक विशाल हैं। उनमें फैले फसल दूर क्षितिज तक लहराते हुए शोभा पाते हैं। इस विशाल समतल मैदान में बसे नगर के दूर-दूर चारों ओर हरी-भरी पर्वतमाला इसे घेरे हुए हैं। वसन्त के दिनों में इसकी वन्य सम्पदा में फूलों-भरा यौवन ऐसा लहराने लगता है कि देखकर मन-मुग्ध हो जाता है। यह धरती छोड़कर दूसरे कोने में जाने की इच्छा ही नहीं होती, जंगली गुलाब (सफेद व लाल) परम सुगन्धित जंगली मोतिया आम की हृष्ट-पुष्ट सुगन्धित मञ्जरियां आदि सब सर्वत्र सुगन्धित छोड़ रहे होते हैं। इसी समय सौभाग्य से मुझे यहां विवाह के उपलक्ष्य में चार-दिन बिताने पड़े। यद्यपि मैंने कश्मीर, रोहड़ू व कुल्लू में कई वर्ष बिताए हैं, किन्तु जो प्राकृतिक व वासन्तिक सौरभ भरा सौन्दर्य यहां पर देखा है वह मेरे जीवन में एक सुरभित समय रहेगा।

धार्मिक स्थल :

हिमाचल धार्मिक स्थानों का केन्द्र है। यहां हजारों प्राचीन व नवीन मन्दिर स्थित हैं। प्राचीन मन्दिरों का आकार-प्रकार व कलाकृतियां गुप्त तथा बौद्धकालीन हैं। जो भारत के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास की प्रतीक हैं। जयसिंहपुर में भी मुझे कुछ ऐसे ही प्राचीन मन्दिर देखने को मिले। जिनके साथ प्राचीन कला व चमत्कार दोनों जुड़े हुए हैं। इनमें कुछ के विवरण यहां देना आवश्यक समझता हूं।

1. सीताराम मन्दिर :

यह मन्दिर अति प्राचीन है व इसकी कलाकृति भी बड़ी सुन्दर है, जो प्राचीन भारत की उच्च कला का संकेत देती है। मन्दिर लगभग दो हज़ार वर्ष पुराना लगता है। इसके चमत्कारों के सम्बन्ध में यहां की जनता में पुरानी किम्वदन्तियां प्रचलित हैं। उनमें से एक इस प्रकार से कही जाती है कि—यह तो प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है कि महमूद गजनवी ने पंजाब तथा कांगड़ा को जीत लिया था। कांगड़ा में उनके सैनिक जब जयसिंहपुर पहुंच कर सीताराम मन्दिर तोड़ने गये तो प्रथम प्रहार उनका श्री रामचन्द्र के सेवक श्री हनुमान जी की मूर्ति, जो मन्दिर के आंगन में लगी थी, पर हुआ। तत्काल मूर्ति के मुख व नासिका से बड़े-बड़े ज़हरीले सांप निकलने लगे। देखते ही देखते वहां चारों ओर भयंकर विषैले कोबरे सांप फैल गये व सैनिकों को काटने लगे। सैंकड़ों

सैनिक मारे गए और शेष बचे भाग निकले। इस प्रकार मन्दिर की रक्षा हुई। हनुमान् जी की जो भुजा तोड़ दी गई थी, वह वैसी की वैसी टूटन लेकर 1970-72 तक रही। बाद में डा० कर्णसिंह जी की माता जो कांगड़ा की ही थीं ने आकर उसे कारीगर लगा कर जुड़वाया किन्तु कुछ लोगों का विचार ऐसा भी सुना गया कि इस बाहु को नई तरह जुड़ाने से उस की पूर्वदशा को भंग नहीं करना चाहिए था। यह विचार कहां तक सत्य है, कहना कठिन है। मन्दिर नगर से दो-तीन कि मी० गहन जंगल में स्थित है। वातावरण अत्यन्त रमणीक है।

दूसरा धार्मिक स्थान है मनिराम मन्दिर।

2. मनिराम मन्दिर :

यह भी बौद्धकालीन मन्दिरों की आकृति का अति प्राचीन देवालय है। सुना जाता है कि इसके एक अधिष्ठाता महात्मा बड़े चमत्कारी थे। उन्होंने चिमटा मार कर धरती से पानी की धारा वहा दी थी; जोकि छोटी नहर के रूप में अब भी बह रही है। यह भी कहा जाता है कि बाबा जी के पीछे-पीछे पत्थर चला करते थे। एक बार एक गाय कुएं में गिर कर मर गई, बाबा जी ने उसे निकाल कर जीवित कर दिया। ये सब किम्बदन्तियां मैंने स्थानीय लोगों से सुनीं।

3. लक्ष्मी-नारायण मन्दिर :

यह भी एक पुराना मन्दिर है, इसके साथ एक विशाल प्राचीन सीढ़ियों वाला कूप है। जिसे देखकर प्राचीन इतिहास के कुछ तत्त्वों की उपलब्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त जानकी-नाथ मन्दिर, शीतला मन्दिर आदि कई प्राचीन व चमत्कारिक स्थान हैं। एक फकीर बाबा सामसली का पवित्र स्थान है। जहां हिन्दू व मुसलमान आदि सब जातियां दर्शन करने जाती हैं। उनकी मनौतियां भी पूरी होती हैं।

पुराणों में प्रसिद्ध विनवा नदी के किनारे पर मनसादेवी का भव्य मन्दिर चमत्कारिक व दर्शनीय है। यहां का एक चमत्कार मैंने स्थानीय लोगों से सुना कि मन्दिर के समक्ष पड़े पत्थर गेन्द की तरह फुदकते हैं। यह घटना प्रत्यक्ष देखी जा रही है। इस पर अविश्वास का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इसके अतिरिक्त भग्न गुग्गा मन्दिर की पुरानी चित्रकारी भी दर्शनीय है।

जयसिंहपुर की अपनी ही विशेषताएं मैंने देखी हैं। शिक्षा का क्षेत्र भी अधिक सम्पन्न है किन्तु यह सब देखकर भी मुझे एक बात की कमी अवश्य दिखाई दी कि यहां कोई संस्कृत पाठशाला नहीं है। मुझे कहा गया कि एक थी उसे प्राईमरी स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया। मैंने श्री मोतीसिंह कटोच तथा श्री किशोर लाल सैनी (इन्हीं से मेरा नया परिचय हुआ था) को राय दी कि वे यहां की जनता से इस सम्बन्ध में अवश्य बातचीत करें। वैसे इन दोनों महानुभावों ने यहां संस्कृत पाठशाला की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में आशावाद का ही समर्थन किया। आवश्यकता केवल किसी सबल कार्यकर्त्ता की है जो प्रेरक शक्ति बन कर जनता का रुख इस ओर मोड़ने में सक्षम हो। वैसे भी यहां की जनता आर्थिक दृष्टि से सुखी व समृद्ध है ही। अतः यह पवित्र कार्य उसके लिए कोई असम्भव नहीं है। ०००

हिमाचल का स्वर्ग जांगला

पर्वतराज हिमालय की महिमा न केवल आधुनिक अपितु प्राचीन कवियों ने भी मुक्त कण्ठ से गाई है। महाकवि कलिदास तो इस पर अत्यन्त मुग्ध दिखाई देते हैं। उन्होंने जिस प्रकार अपने मेघदूत नामक संस्कृत के गीति काव्य में उज्जयिनी का ललित व मादक चित्रण किया है, उससे कहीं अधिक उन्होंने हिमालय का मनोरम व साकार रूप प्रकट करते हुए पाठकों की रुचि को इस ओर आकृष्ट करने में कोई बात शेष नहीं रखी। वास्तव में ही यह पर्वतराज भारत का गौरव है। इसी को लेकर आज के राष्ट्रीय कवियों ने इसे भारत माता का रजत मुकुट शोभित मस्तक कहा है। लगभग ढाई हज़ार मीलों तक फैले इसे गिरिराज के आंचल में प्रकृति की स्वर्गीय छटायुक्त अनेक सुरम्य स्थलियों के अतिरिक्त न मालूम कितनी अलौकिक चमत्कारी जड़ी-बूटियां, वनस्पतियां, हीरे-जवाहरातों, तथा सोने-चांदी आदि द्रव्यों की खानें धरा के गर्भ में छिपी हैं। फूल, पहाड़, जंगल, जलप्रपात, शस्य-श्यामल खेत, नदी-नाले आदि इसकी महान् सम्पत्ति की निधियां हैं। कहा नहीं जा सकता कि तुलना के प्रसंग में कौन स्थान सर्वोत्तम या मध्यम है। जहां-जहां इसके आंचल की गहराई में उतरें, एक से एक बढ़कर स्थान मिलेंगे।

कश्मीर, हिमाचल, मंसूरी, नैनीताल, आसाम कहीं भी इस पार्वत्य प्रदेश में घूमिए सुन्दर से सुन्दर स्थान मिलेंगे। इसी सन्दर्भ में शिमला जिले व रोहड़ू तहसील के भीतर जांगला नामक स्थान का विवरण भी आ सकता है। जांगला को यदि हिमाचल का स्विटजरलैण्ड कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। रोहड़ू नगर से लगभग 12 किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह स्थान सघन पर्वतमाला और वनों के भीतर बसा हुआ है। जिसके किनारे पर दैत्याकार ऊंची-ऊंची चट्टानों से टकराकर घोर शोर करती हुई मधरेड़ नदी बर्फीले व रजत के घोल जैसे-चमकीले पानी के तुमुल प्रवाह के साथ अपने पूर्ण यौवन में अटखेलियां कर रही है। इसके पानी के दो चुल्लू मात्र पीने पर भी एड़ी से चोटी तक शीतल लहर दौड़ जाती है। चाहे भयंकर गर्मी भी क्यों न हो, अधिक ठण्ड होने के कारण इसमें स्नान नहीं किया जा सकता और न तृप्ति पूर्वक पीने की भी क्षमता ही हो सकती है, क्योंकि दांत किटकिटाने लगते हैं तथा शरीर में ठण्डा रोमाञ्च पैदा हो जाता है। इसलिए यहां के निवासी बारह महीनों घर में गर्म पानी से स्नान करते हैं।

वनों तथा गगनचुम्बी हिमशिखरों की अत्यन्त ढलान में बसा यह छोटा-सा नगर आस-पास के विशाल हरे-भरे जंगलों व खेतों से अत्यन्त सुन्दर लगता है। जहां भी दृष्टि फैंकिए, हरे-भरे खेत प्रबल पवन के झोंकों से नाचते मिलेंगे। पहाड़ों के ऊपर भी स्थान-स्थान पर गांव बसे नजर आते हैं। जहां पहुंचने के लिए चढ़ाई चढ़ने का काफी अभ्यास अपेक्षित है। ये बस्तियां दुर्गम स्थान होते हुए भी यहां के लोगों के लिए दिन भर कई बार उतार-चढ़ावों द्वारा एक मनोविनोदक परिचर्या बन गई हुई है। नीचे की ढलान में नदी के घन गर्जन के साथ ठण्डी व तेज़ हवा बारह महीने चलती रहती है, जोकि, जून-जुलाई की भीषण गर्मी में भी गर्म कपड़े पहनने व रात में, रजाई ओढ़कर सोने के लिए बाध्य कर देती है। वास्तव में यहां, गर्मी होती ही नहीं। हां वर्षा व बर्फबारी का अपने समय पर यहां विशेष आतंक रहता है। चारों ओर की उच्चपर्वतमाला पर बादलों के धुएं टकराते ही रहते हैं। खेतों को सींचने के लिए किसानों ने छोटी-छोटी नहरें निकाल रखी हैं जिनके किनारों पर अनेक वनस्पतियों व दुर्लभ औषधियों की झालरें हरी-हरी ऐसी उभरी हुई रहती हैं जैसे विधाता ने अपने हाथों से इन्हें संवारा हो। इनकी घनी पंक्तियों व टहनियों के अन्दर शीतल व मधुर पानी की धाराएं कलकल करती हुई बहतीं हैं; आसपास की घनी झाड़ियों पर रंग-बिरंगे सुगन्धित फूल हजारों की संख्या में नाचते मुस्कराते हुए दिखाई पड़ेंगे। सहसा मन में फूलों की घाटी की याद आ जाती है। क्या यह फूलों की घाटी नहीं ? यदि नहीं तो इसे छोड़कर दूसरी भी नहीं हो सकती, इसे देखकर दर्शक यों सोचे बिना नहीं रहता। पहाड़ों व ढलानों के खेतों में सेब, नाशपाती, आड़ू आदि के घने पेड़-सर्वत्र ही झूमते हुए मिलेंगे। चैत्र मास में इन पर सफेद, गुलाबी फूल आ जाते हैं और नित्य बहने वाली शीतल पवन के झोंकों से पत्तियां जब उड़ने लगती हैं तो ऐसा लगता है कि मानो आकाश मोतियों की वर्षा कर रहा है। घास से ढके मैदानों में घूमते हुए ये सब दृश्य दिखने लगते हैं, तो हृदयहीन व्यक्ति भी स्वर्ग के स्वप्नों में खो जाता है। नीचे व ऊपर स्थान-स्थान पर पत्थर व देवदार काष्ठ के समन्वय से बनाए गए महलों जैसे मकान व उनके साथ लगे हुए सेबों के उपवन देखकर सहसा यहां के प्रकृति प्रदत्त वैभव के दर्शन होने लगते हैं। कैसे सुखी व ऐश्वर्यशाली हैं यहां के लोग जिन पर प्रकृति की इस प्रकार से कृपा है।

जांगला समुद्र के धरातल से 6 हजार फीट की ऊंचाई पर बसा है। इस छोटे से शहर की आबादी 2000 की है। इसमें एक संस्कृत महाविद्यालय[1], प्राईमरी, मिडिल व हाई स्कूल चारों हैं। एक छोटी सी डिस्पेंसरी व सब पोस्ट ऑफिस भी हैं। छोटे-छोटे दो बाज़ार तथा आसपास दो-तीन चाय की कैण्टीन भी है। इनके साथ भोजनालय भी

1. अब यह संस्कृत कॉलिज केन्द्रीय आदर्श महाविद्यालय बन गया है।

जुड़े हुए हैं। शिमला से रोहड़ू की बस पकड़कर 115 कि० मी० का पहाड़ी मार्ग तय करके रोहड़ू पहुंचा जा सकता है। इतना मार्ग तय करने में आठ घण्टे लग जाते हैं। क्योंकि रास्ता ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों के गर्भ से होकर गया है, जोकि कच्चा व संकरा भी है। प्रात: साढ़े आठ बजे यह बस शिमला से चलकर सायं चार बजे रोहड़ू पहुंचा देती है। यह शहर भी बड़ा सुन्दर है, जो चारों ओर से पर्वतों तथा घने जंगलों से ढका है, एवं बर्फीले पानी की पब्बर नामक नदी इसे घेर कर बह रही है। इस शहर में जीवन की आवश्यकता की सभी वस्तुएं मिल जाती हैं। दो बड़े बाजार, पोस्ट ऑफिस, पुलिस चौकी, हास्पीटल, बी० डी० ओ०, कचहरी तथा तीन-चार बड़े होटल भी हैं[1] इसके अतिरिक्त प्राईमरी मिडिल तथा हाई स्कूल भी हैं। यहां के बस स्टैण्ड पर शिमला तथा आसपास के स्थानों पर जाने के लिए यात्रियों की भीड़ लगी रहती है। यहां पर भी दुकानें सजी हुई रहती हैं। इस कारण यह नगर पर्यटक स्थल जैसा बन गया है। रोहड़ू की आबादी छ: हजार के लगभग है तथा रात को बिजली की चकाचौंध तथा लोगों की चहल-पहल देर तक बनी रहती है। ऊंचे-ऊंचे पक्के भवन इसके वैभव के परिचायक बने हुए हैं। नागरिकता तथा शिक्षा की दृष्टि से भी यह नगर इस तहसील में विशेष स्थान रखता है। रोहड़ू की पूर्व दिशा में जांगला नगर बसा है। सायंकाल चार बजे रोहड़ू पहुंचकर यदि बस मिल जाए तो उसी दिन यहां पहुंचा जा सकता है। अन्यथा रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन नौ बजे प्रात:काल बस पर बैठकर आधे घण्टे में जांगला पहुंचा जा सकता है। किन्तु यह बस जांगला से तीन कि० मी० पहले बडियारा स्टेशन पर ही उतार देती है। वहीं से पहाड़ी सड़क द्वारा पैदल जांगला जाना पड़ता है। जब बडियारे से ऊंची सड़क पकड़ी जाती है तो उसी समय एक फर्लांग मार्ग तय करने के बाद दूर से विशाल हरे-भरे खेतों से घिरे तथा ऊंचे सिर उठाए यहां के भवन दीखने लगते हैं, जिन्हें देखकर मन में अनेक कल्पनाएं उठने लगती हैं, कि कैसे रहते होंगे यहां के लोग ? क्या खाते होंगे ? तथा आवश्यकता की वस्तुएं कैसे उत्तुंग शिखरों पर पहुंचाते होंगे ? इत्यादि, किन्तु यहां कुछ सप्ताह रहने के अनन्तर स्थानीय जीवन का परिचय मिलने पर इन प्रश्नों का उत्तर स्वयंमेव मिल जाता है।

वास्तव में ये लोग घुटन भरी शहरी जीवन की समस्याओं से स्वतन्त्र रहकर बड़े आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। प्रकृति इन्हें ऐसा कुछ दे रही है, कि जो अन्य नागरिकों के भाग्य में नहीं होता।

---

1. अब इस शहर का काफी बड़ा विस्तार हो गया है बड़े-बड़े ऊंचे होटल तथा भवन अधिक हो गए हैं। जांगला का भी विस्तार हो गया है।

रहन-सहन :

यहां के लोग सरल व सादा जीवन व्यतीत करते हैं। पहिरावे की ओर अधिक ध्यान नहीं देते। भेड़ों की ऊन के कपड़े स्वयं बनाकर ही पहने जाते हैं[1]। उनमें पायजामा, कोट तथा ओवरकोट ये तीन वस्त्र यहां के प्रधान हैं। कुर्ता-कमीज या तो बाजारू कपड़े के बनाए जाते हैं अथवा घर की बनी गर्म पट्टी के ही।

किशोरों तथा युवकों में शहरी पहिरावा अपनाने का प्रचार भी धीरे-धीरे बढ़ रहा है। बहुत से लड़के पेण्ट, कोट तथा हिप्पीनुमा केश-कलाप रखने लगे हैं। स्त्रियां व लड़कियां पायजमा, ओवरकोट तथा सिर में स्कार्फ (डाटू) धारण करती हैं। उनके जूते भी मर्दों के जूते जैसे ही होते हैं। यहां स्त्रियों में पर्दे की प्रथा नहीं है। अधिकतर स्त्रियां व लड़कियां खेतों में ही काम करती हैं। वे खेतों में घास व फसल काटती हैं, बुवाई करती हैं तथा जंगल से लकड़ियां काटकर पीठ पर लाद कर घर लाती हैं। तदुपरान्त खाना-पकाना आदि घर का सभी काम-काज करती हैं। इस दृष्टि से यहां की स्त्रियों की विशेष उपयोगिता स्थापित है। कोई भी घर बिना स्त्री के नहीं चल पाता तथा प्रत्येक घराना लड़की प्राप्त करने के लिए लड़के की सगाई के उपलक्ष्य में स्वयं लड़की वालों से ही प्रार्थना करता है। कोई दहेज या लेन देन का बन्धन नहीं है, बस लड़की मिलनी चाहिए; जिससे घर-गृहस्थी तथा खेती-बाड़ी का काम चल पाए। इसी कारण यहां लड़की की विवाह योग्यता शिक्षा नहीं अपितु खेत तथा गृहस्थी सम्बन्धी कार्य-कुशलता ही देखी जाती है। इसी प्रकार लड़के के सम्बन्ध में भी अधिक शिक्षा या नौकरी नहीं देखी जाती उसे खेती-बाड़ी तथा घर संभालने की क्षमता ही पर्याप्त होती है। यहां घर के कामकाज ही इतने होते हैं कि जिनसे छुटकारा पाकर शिक्षा प्राप्त करना या नौकरी करना संभव ही नहीं हो सकता। इस दृष्टि से इस प्रदेश में बेकारी की कुण्ठा अनुभूत नहीं होती और न ही अधिक शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता ही।[2]

लड़के मिडिल या हाईस्कूल पास करके पढ़ाई छोड़कर खेती-बाड़ी तथा सड़कों की मज़दूरी में ही लग जाते हैं। इससे घर में रहकर ही उनके दोनों कार्य एक साथ चलने से अच्छा निर्वाह होने लगता है। जांगला में संस्कृत कॉलेज चल रहा है, उसमें

1. अब यह पहिरावा समाप्त हो गया है। लोग शहरी पोशाक ही पहनते हैं, कोट-पतलून इत्यादि।
2. अब यहां उच्च शिक्षा का प्रचार होने लगा है। आसपास दो कॉलिज भी बन गए हैं।

प्राक्-शास्त्री से शास्त्री, बी० ए० तथा आचार्य परीक्षा तक पढ़ाई होती है। शास्त्री-परीक्षा को हिमाचल विश्वविद्यालय ने माडर्न कोर्स को साथ जोड़कर बी० ए० के समकक्ष बना दिया है। तथापि यहां के मैट्रिक पास छात्र संस्कृत पढ़ने के लिए इस कॉलेज में बहुत ही कम संख्या में प्रवेश लेते हैं। अब यह कॉलिज केन्द्रीय आदर्श महाविद्यालय बन गया है; जिसे भारत सरकार चला रही है। इसमें प्रवेश पाने की योग्यता संस्कृत विषय के साथ मैट्रिक पास होना आवश्यक है।

सामाजिक परम्पराएं :

यहां के निवासियों की सामाजिक परम्पराएं कुछ क्षेत्रीय विश्वासों पर आधारित हैं। यहां पौराणिक धर्म के साथ-साथ क्षेत्रीय देवताओं की मान्यता व पूजा भी कुछ कम नहीं है। स्पष्ट रूप से यह भी कहा जा सकता है कि यहां के लोग पौराणिक देवताओं की अपेक्षा क्षेत्रीय देवताओं पर ही अधिक आस्था रखते हैं। कोई भी ऐसा गांव नहीं मिलेगा जहां दो-चार देवताओं के आस्थान न होंगे। कभी तो एक ही देवता जनसमुदाय द्वारा पूजा जाता है, उसमें अलौकिक चमत्कारों की भावना रहती है। लोगों में भय भी छाया रहता है कि अपराध होने पर देवता उन्हें दण्ड देगा।

यह दण्ड पारिवारिक विघ्न-बाधाओं के रूप में देखा जाता है। जब कभी कोई विशेष उत्सव होता है तो देवता की मूर्ति को साथ लेकर लोग वहाँ भाग लेते हैं और सर्वप्रथम देवता की पूजा तथा मनौतियाँ की जाती है। कई उत्सव तो देवता के सम्बन्ध में ही होते हैं। वहाँ कई लोगों में आत्मा आकर उन्हें नचाती भी है। उस समय ढोलक, मजीरे तथा देहाती वाद्य गाने के साथ-साथ बजाए जाते हैं। यहाँ के लोगों से देव चमत्कारों की कई मौखिक कहानियाँ भी सुनी जाती है, जोकि आश्चर्य में डाल देती हैं। जब भुक्त-भोगी इसका वर्णन करते हैं तो विश्वास करने में कोई सन्देह नहीं रहता। ये ग्राम्य देवता कई हैं। जिनमें मुख्य इस प्रकार से हैं—

रोहड़ू तहसील के डोडरा क्वार में क्वाद जोखा नामक देवता है। क्वाद के पुजारली नामक गाँव में उसका सुन्दर मन्दिर बना हुआ है। आसपास के तथा दूर-दूर के लोग उसे इतना मानते हैं कि प्रत्येक पारिवारिक कार्यों में पहले मन्दिर में जाकर उसकी आज्ञा लेते हैं। कहते हैं कि प्राचीन युग में राजा बुशहर ने भी उसकी महानता को स्वीकार किया था। इसी प्रकार जाखा में भी धाराजाक नामक देवता है जोकि तहसील भर में पूजा जाता है। उसके भी भारी चमत्कार सुने जाते हैं।

यहाँ व्यक्तिगत विपत्तियों से बचने के लिए लोग इन ग्राम्य देवताओं की शरण में ही जाते हैं। जैसे किसी के बीमार पड़ने पर घर वाले देवता के आस्थान पर जाकर उससे रोग का उपचार पूछते हैं। पूछने का तरीका इस प्रकार से है कि पूछने वाला

चावल के दाने देवता के आगे भेंट करेगा। देवता का पुजारी उन्हीं में से कुछ दाने लेकर प्रष्टा के हाथ में देगा। दानों की संख्या 5 या 7 होने पर देवता का उत्तर अनुकूल समझा जाएगा तथा 4, 6, 8, 9 हो तो प्रश्न विचारणीय समझा जाता है। देवता के पुजारी को यहाँ माली कहा जाता है। उसे देवता प्रदर्शित शौच तथा आचारपूर्वक रहना पड़ता है। अर्थी या याचक तथा कई प्रकार से पीड़ित लोग देवता के आस्थान पर जाते हैं। देवता के प्रतिनिधि या कार्यवाहक स्वरूप पुजारी की वन्दना व अनुनय-विनय करते हैं। वह ध्यानस्थ होकर शरीर में कम्पन पैदा कर देता है तथा देवता की आत्मा के रूप में प्रश्नों का उत्तर देने लगता है। इस देवता परम्परा का इस प्रदेश में अत्यधिक प्रचार है। इसी से यहाँ और सम्प्रदाय तथा मान्यताएँ पनप नहीं सकीं।

जीविका :

यहाँ के लोगों की जीविका अधिकतर कृषि, भेड़-पालना, शिकार करना सड़कों पर मजदूरी करना एवं नौकरी है। किन्तु नौकरी कार्य यहाँ पर एक प्रकार से गौण ही है। लोग अपने घरों में रहकर खेती तथा गृहस्थी सम्बन्धी काम-काज को ही अधिक महत्त्व देते हैं। पहाड़ों के नीचे विशाल भूमि बड़ी उपजाऊ होने के कारण यहाँ अनाज उचित मात्रा में उत्पन्न होता है। अतएव प्रत्येक किसान यहाँ सुखी है। गाँव के कुछ लोग किरयाने की दुकानें डालकर भी अच्छा कमा लेते हैं। युवक तथा किशोर भी अपने इन्हीं परम्परागत कारोबारों में रमे रहते हैं। इसलिए पढ़ाई करने व नौकरी लेने की इनकी अधिक इच्छा नहीं होती। इसी कारण यहाँ शिक्षा अभी तक अधिक विकास नहीं पा सकी। वास्तव में यहाँ की ऐसी ही कुछ परम्परा है कि जिसके कारण उच्च या मध्यम शिक्षा तथा छोटा बड़ा पद पाने की युवकों में कोई अधिक लालसा नहीं रहती। इससे यह स्पष्ट ही है कि नागरिक युवकों की तरह यहाँ के युवकों व किशोरों में महान् बनने की महत्त्वाकांक्षा की अभी तक कमी ही है, और न ही उन्नति की दौड़ में एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा की ही भावना है। जैसा कि मैदानी महानगरों तथा देहातों में होता है। किन्तु अब यहाँ भी शहरी प्रभाव युवकों को उच्च शिक्षा नौकरी तथा उन्नति की ओर प्रेरित करने लगा है।

यहाँ प्रति-व्यक्ति अपने घर के कामकाज में ही अपने को सुखी अनुभव करता है।

खेती उपजाऊ है, सरकार की ओर से चल रहे निर्माण कार्यों में भी काम मिल जाता है, छोटा-मोटा व्यापार भी चलता है, ये सब कार्य घर में रहकर यदि हो सकते हैं एवं उनसे सुन्दर निर्वाह चल जाता है, तो व्यर्थ में नौकरी के लिए घर छोड़कर

बाहर क्यों जाया जाए ? यही भावना यहाँ अधिकतर व्यापक है। इनके सुखी जीवन में कुछ और भी कारण हैं, जोकि वैवाहिक जीवन के साथ सम्बन्ध रखते हैं ।

वैवाहिक जीवन :

विवाह के सम्बन्ध में यहाँ भारत के अन्य प्रदेशों के समान अधिक समस्याएँ तथा कठिनाईयाँ नहीं हैं। यहाँ की परम्पराएँ इस सम्बन्ध में इतनी सरल हैं कि किसी भी गृहस्थी को लड़के या लड़की की शादी करने का बोझ प्रतीत नहीं होता। विशेषकर लड़की के विवाह के सम्बन्ध में जो भारी समस्याओं तथा आर्थिक कठिनाईयों का अन्य स्थानों में सामना करना पड़ता है, वह यहाँ नहीं है। विवाह अति सरल तथा स्वल्प खर्च साध्य है। यहाँ न ही दहेज की समस्या है तथा न ही योग्य वर मिलने का प्रश्न न ही लड़के की कीमत पड़ती है। लड़की वालों को आसानी से अपने अनुसार वर मिल जाता है। यहाँ तक कि लड़के वाले स्वयं जाकर लड़की के माता-पिता से प्रार्थना करके लड़की लाते हैं।

विवाह भारतीय वैदिक विवाह पद्धति के अनुसार ही उपाध्याय द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। किन्तु अधिक खर्च की रस्में यहाँ नहीं हैं। मध्यम दर्जे का घराना लड़की के विवाह पर अधिक से अधिक पांच-दस हजार रुपये ही खर्च करता है।[1] किन्तु इतना होने पर भी यहाँ पैसे की कमी बनी ही रहती है। कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप से फल तथा फसल की उपज भी मारी जाती है। जिससे यहाँ की जीविका को उस सीजन में धक्का पहुँच जाता है। खेती-बाड़ी, फलों की उपज, भेड़-बकरी पालन तथा मजदूरी इन साधनों से यद्यपि जीविका का प्रश्न अधिक मात्रा में हल हो जाता है तथापि समय-समय पर कुछ आर्थिक कठिनाई भी देखनी पड़ती हैं।

यहाँ यज्ञोपवीत संस्कार को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। उसमें दस हजार के लगभग खर्च अवश्य बैठ जाता है। शेष किसी खर्च की आवश्यकता नहीं। इसी कारण यहाँ का जीवन अधिक कुण्ठा ग्रस्त नहीं है। अधिक खर्च साध्य विवाह, वर का न मिलना तथा लड़की पक्ष वालों को योग्य वर प्राप्त करने में भारी-भारी रकम देनी, विवाहोपरान्त भी वर पक्ष वालों का लड़की के प्रति दुर्व्यवहार या कठोरता आदि कुछ बातें हैं, जिनके कारण भारत के अन्य प्रान्तों में परिवारों का जीवन पीड़ित रहता है। यहाँ इनमें से कोई एक समस्या नहीं है। इसलिए यहाँ के परिवार इस दिशा में

1. लेकिन अब नए युग की हवा लगने के कारण यहाँ भी विवाह खर्चीले हो रहे हैं व दहेज की प्रथा भी बढ़ रही है।

सुख की नींद लेते हैं। यहाँ यदि विवाह के बाद लड़का या उसके घर वाले लड़की को सताते हैं अथवा लड़का अयोग्य साबित होता है या स्त्री के प्रतिकूल है तो लड़की झट सामाजिक परम्परा के अन्तर्गत उससे विवाह सम्बन्ध का उच्छेद कर सकती है। इसी प्रकार समाज की ओर से उसे इन परिस्थितियों में दूसरा विवाह करने की छूट है। इस प्रकार यहाँ विवाह समस्या नहीं है। एक लड़की किसी भी समय विधवा होने पर दूसरा विवाह कर सकती है। यह विवाह यहाँ की परम्परानुसार समाज से अनुमोदित रहता है। दूसरे स्थानों पर इस समस्या के कारण परम्परा से हज़ारों लड़कियों के जीवन तबाह होते आ रहे हैं। यह प्रथा हिन्दू समाज के लिए अत्यन्त दुःखदायी है किन्तु इस प्रदेश में यह कष्ट भी नहीं है। हमारे समाज के पीड़क अनेक अन्धविश्वास हैं जिनमें दहेज समस्या तथा विधवा समस्या मुख्य हैं। यहाँ ये रोग नहीं है।[1]

बाल-विवाह :

इस प्रदेश में बाल-विवाह की प्रथा भी अधिक है किन्तु अब नई दुनियाँ की नयी प्रगति की आँधी के कुछ झोंके यहाँ भी पहुँच चुके हैं, जिनके कारण यहाँ की ये प्राचीन परम्पराएँ कुछ-कुछ बिखर भी रही हैं। अब बाल-विवाह तो है किन्तु पहले की अपेक्षा कुछ घट गया है। मैंने यहाँ सोलह सालों से अट्ठारह सालों तक की आयु के लड़कों के विवाह होते देखे हैं। जब मैंने इस सम्बन्ध में आश्चर्य प्रकट किया तो मुझे कहा गया कि "अभी आठ-दस वर्षों के बालकों की शादियाँ तो आपने देखी ही नहीं वे भी बहुत होती हैं।" सुनकर मुझे और आश्चर्य हुआ। यहाँ के स्कूलों में अधिकतर किशोर विवाहित देखे गए हैं। लेकिन अब नई परिस्थितियों के कारण यह प्रथा भी यहाँ समाप्त हो रही है।

उत्सव :

इस प्रदेश में क्षेत्रीय उत्सव भी विचित्र रूप में मनाए जाते हैं। इनका समय मार्च से मई के प्रथम सप्ताह तक चलता है। इन्हें यहाँ मेला नाम से ही अधिक पुकारा जाता है। ये मेले देहातों तथा शहरों में बड़ी सजधज तथा उत्साह के साथ मनाए जाते हैं। मेले के दो-तीन दिन पूर्व ही शिक्षा संस्थाएँ छात्रों से खाली हो जाती हैं और

---

1. लेकिन अब यह पुरानी प्रथा नई हवा द्वारा यहाँ समाप्त हो रही है। तथा अन्य प्रदेशों के लोगों के आने जाने से उन प्रदेशों का प्रभाव पड़ने लगा है।

दुकानदार व मजदूर अपने-अपने काम छोड़कर दो दिन पहले ही मेले के लिए चले जाते हैं। मेला कोई अधिक उच्चस्तर का नहीं होता। उसमें देहाती लोग ही अधिक संख्या में इकट्ठे होकर प्रादेशिक नृत्य करते हैं, जिनमें स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों युगल हाथ में हाथ डालकर नृत्य में खो जाते हैं। उस समय पुरुषों ने सुरापान किया होता है किन्तु इन सब कार्यों में कभी कोई अनुचित घटना न देखी व न सुनी गई है। लोग इन कार्यों द्वारा अपनी परम्परागत प्रथाएँ सम्पन्न करते हैं किन्तु इनमें भी उनके सिद्धान्त कायम रहते हैं तथा दिल भी साफ रहता है। कुछ नाच तो केवल पुरुषों के ही होते हैं जिनमें वे हाथ में कटारें लेकर मस्ती में गा-गाकर झूमते हैं। उनके चारों ओर दर्शक छा जाते हैं।

प्रादेशिक भाषा में ग्रथित किए गए ये गाने स्वर की दृष्टि से अधिक आकर्षक नहीं होते। ये लोग गा-गाकर लोगों से पुरस्कार भी इकट्ठा करते हैं। किन्हीं ग्रामों में इन दिनों नाटक भी संजोए जाते हैं। उनके कथानक अधिकतर पौराणिक रहते हैं। इसी प्रकार की एक नाटक मण्डली ने मुझे आमन्त्रित किया। जब मैं रङ्गमञ्च पर पहुँचा तो कार्यकर्त्ताओं ने मेरे गले में नोटों का हार डाल कर मेरा स्वागत करते हुए मेरे द्वारा ही रङ्गमञ्च का उद्‌घाटन करवाया। मैंने जो उद्‌घाटन भाषण दिया, उससे सब दर्शकगण भाँप गए कि यहाँ सुरापान करके आने को मैं ठीक नहीं समझता हूँ। इसलिए कोई भी शराबी व्यक्ति वहाँ नहीं आया और नाटक आधी रात तक शान्तिपूर्वक चलता रहा। यह एक विशेषगुण लोगों में देखा गया है कि जिस अतिथि को बुलाएंगे उसकी इच्छाओं के विरुद्ध कार्य नहीं करेंगे।

भाषा :

यहाँ की भाषा का कोई विशेष नाम नहीं है। इसे अधिकतर पहाड़ी भाषा ही कहा जाता है, जो डोगरी, संस्कृत तथा ब्रज के अधिक समीप है। इसमें द्वित्व शब्दों का अभाव तथा स्वर व व्यञ्जनों का विपर्यय, लोप व आगम अधिक है। इसी प्रकार से मात्रा भेद (Difference of Length), समीकरण (Assimilation) विषमीकरण (Dissimilation), सघोषीकरण, अल्पप्राणी करण आदि विकार भी इस भाषा में अधिक पाए जाते हैं। कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम शब्द ही व्यावहारिक शब्दावली में मिल-जुल गए हैं तथा संस्कृत के तद्‌भव शब्दों की तो इसमें भरमार ही है। "है" के स्थान पर "अस्ति" का प्रयोग होता है। इसी प्रकार नास्ति का भी। तद्‌भव शब्दों के उदाहरण स्वरूप कुछ शब्द इस प्रकार हैं—

ऋक्ष—रीख, अपि—पि, सः—स, विडाल—विराल, कुक्कुरः—कुकूर, कुक्कुट—कुखर, मूषक—मूष, काकः—काग, अहम्—अंहऊ, द्वारं—दार, फलकः—

फड़क, खनति—खन, दुष्टः—दूषणः, पुरुषः—पुरष, होमः—हुम, आगमः—आगम, ईर्ष्या—रिषीया, सुप्तः—सुतो।

डोगरी शब्दावलि के भी कुछ तत्सम व तद्भव शब्दों की अधिकता इस भाषा में पाई जाती है। जैसे—स्थाली—थाली, घटः—घड़ा, कः—कुण, क्षीर—खीर, ज्योति—जोत। किन्तु जहाँ डोगरी में "न" का प्रयोग होता है वहाँ उसके स्थान पर यहाँ "ण" बोला जाता है जैसे—कुन—कुण, जीना—जीणा, उठना—उठणा, इसी प्रकार डोगरी के "त" को यहाँ "थ" बुलाया जाता है जैसे ज्योति-जोथ, जोत (डोगरी में)। कुछ शुद्ध संस्कृत के अर्थ को छोड़कर प्रादेशिक अर्थ लेकर प्रचलित हैं। जैसे "भाट" का संस्कृत में "राजकवि" अर्थ है, किन्तु यहाँ "भाट" से "कर्मकाण्डी पण्डित" जाना जाता है। "बनजारा" डोगरी में उसे कहते हैं जो स्त्रियों के अलंकार का सामान बेचता है। यह शुद्ध संस्कृत के वनिज शब्द से निकला है परन्तु इस पहाड़ी भाषा में "बनजारा" "बनिए" को ही कहते हैं। यहाँ "क्त" प्रत्यय के स्थान पर "आई" कर दिया जाता है जैसे—घर से सम्बन्धित—घरारे सम्बन्धाई, षष्ठी के का, की, को, यहाँ रा, रे, करके बोला जाता है। जैसे उनके—तिउरे, नाचने का-नाचने री। "क्त्वा" प्रत्यय का इसमें लगभग लोप ही हो गया है। जैसे—समझकर-समझी। प्रायः इस भाषा में "आ" को "ओ" करके कहा जाता है। यह ब्रज व अवधि भाषा का प्रभाव दिखाई देता है जैसे—अच्छा-आच्छो, राजा-राजो, दूसरे जन्म का पूरा विश्वास था—दूजी वारे जन्मा दी पूरो विश्वास था। यहाँ पहनने को "विड़ा" कहा जाता है। जैसे—बौद्ध धर्म के आदमी गेरूए कपड़े पहनते थे—बौद्ध धर्म रे आदमी गेरूए रंगारे कपड़ो विज़ थे। "उन" सर्वनाम का तो यहाँ आमूल-चूल परिवर्तन देखा जाता है। "उन" के स्थान पर "तेवे" शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार देखो-देखीयो, करो-करीयो तथा "जाकर" के स्थान पर "जाई" का प्रयोग होता है। इससे इस भाषा पर ब्रज का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। फिर भी इसमें अपनी मूलस्थिति भी सुदृढ़ है। यहाँ विभक्तियों का तोड़-मरोड़ अधिक हुआ है। प्रथमा "ने" के स्थान पर "वे" हो जाता है। जैसे बेटे ने—बेटेवे, षष्ठी के "का" के स्थान पर भी "वे" ही होता है। जिसका—जैवे; किन्तु डोगरी के परिवर्तन भी इसके शब्दों में यत्र-तत्र मिलते ही हैं, जैसे—मैं-आऊँ, करते-करदे, आप-आपुँ, जन्म की-जन्मा दी, डोगरी की भूतकाल की क्रिया को "सा" कर दिया जाता है। किन्तु इसमें "था" ही रहता है, जैसे ओ पडदा सा—ओ पड़ा था।

जड़ी-बूटियां :

जांगला जिस हिमालय के शिखर पर बसा है, उसके आस-पास की उत्तुङ्ग चोटियाँ घने जंगलों व नदी-नालों से समलंकृत हैं। दक्षिण की ओर सबसे ऊँचे शिखर

बारह महीनों बर्फ से ढके रहते हैं ; जो रजत मुकुट जड़ित भारत के उत्तुङ्ग भाल के रूप में विराजमान हो रहे हैं। जाँगला के शिखर पर खड़े-खड़े यह चारों ओर का दृश्य स्वर्गीय स्वप्न पैदा कर देता है । वडियारा से जाँगला व उसके आगे दमरेंडा तथा उसके भी आगे हिममण्डित चोटियों का प्रदेश मुराल ड़ण्डा कहलाता है। यही देवीधार घाटी भी कही जाती है। यह सारा क्षेत्र "रनसार" के नाम से पुकारा जाता है। इसका पौराणिक नाम "रत्नसार" था, जिसका वर्णन स्कन्दपुराण में भी आया है। इस विशाल रनसार प्रदेश में अनेक जड़ी-बूटियाँ हैं जिनकी अभी तक पहचान नहीं की गई । यहाँ के ग्रामीणों ने कुछ बूटियों की पहचान की है, वे उन्हें अपनी घरेलू बीमारियों में प्रयुक्त करते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार से हैं—फोड़े-फुन्सीयों के लिए "चौरन्टी" नामक बूटी बड़ी चामत्कारिक देखी गई है। पेट की दर्द के लिए "पतीश" घास पीस-कूट कर पीने से तत्काल आराम मिलता है । "मोरा" नामक जड़ी को तमाखू में डालकर पीने से भयंकर बुखार भी दूर हो जाता है। बनक्शे तथा बच दोनों औषधियाँ यहाँ सर्वत्र घास के समान अधिक मात्रा में दिखाई देती हैं। पत्थरी के उपचार के लिए यहाँ एक बूटी "पाषाणमेद" सर्वत्र पैदा हुई मिलती है। उसे यहाँ की भाषा में "डकेड़ू" कहते हैं। सर्वसाधारण बीमारियों में यहाँ जलधनिया खेतों में तथा नालों के किनारे पैदा हुआ मिलता है। तथा खून साफ करने के लिए "नीलकण्ठी" नामक बूटी भी यहाँ अधिक मिलती है । एक ओर बूटी "चौंखरी" नामक है जिसे उबालकर पीने से पेट एकदम साफ हो जाता है। ये सब बूटियाँ ऐसी हैं, जिन्हें पहचान लिया गया है और यहाँ की जनता विभिन्न बीमारियों में औषधियों के रूप में इन्हीं का प्रयोग करती है।

अन्यथा इस प्रदेश में अंग्रेजी दवाइयों की कम उपलब्धि रहने पर बीमारियों का सन्तोषजनक उपचार कैसे हो जाता है।

वन सम्पदा :

वन-सम्पदा के सम्बन्ध में यहां अनेक जड़ी बूटियों की और भी अनेक बातें सुनी जाती हैं, वहां इसके अतिरिक्त चमत्कारिक वस्तुओं के बारे में भी बहुत कुछ सुना जाता है। दमरेड़ा के आस-पास रहने वाले किसी व्यक्ति ने मुझे एक बात सुनाई कि एक बार कोई किसान जंगल के रास्ते जा रहा था, उसके जूतों के तलों पर लोहे के नाल जड़े थे। जब घर पहुंचा तो वे सब सोने के हो चुके थे। आश्चर्य में आकर वह पुनः किसी पारसमणि जैसी चीज़ को ढूंढने उसी रास्ते की ओर भागा किन्तु बहुत भटकने पर भी उसे ऐसी किसी वस्तु का पता नहीं चला। इसी प्रकार किसी दूसरे व्यक्ति ने मुझे सुनाया कि एक बार एक किसान खेत में फसल काट रहा था। अचानक उसके हाथ पर भारी चोट आई, जिससे खून की धारा बह निकली। उसने घबराकर आसपास की झाड़ियों से विभिन्न प्रकार के पत्ते तोड़कर एक बड़ा-सा गुच्छा जैसा

खून बहने के स्थान पर बांध दिया तथा घर आने लगा। रास्ते में उसने ऐसा अनुभव किया कि जैसे चोट लगी ही नहीं है। पत्तों को हटाकर हाथ देखा तो वैसे का वैसा साफ जैसे कि न कोई चोट लगी हो तथा न ही कोई खून बहा हो। वह आश्चर्य-चकित होकर लगा उस औषधि को ढूंढने परन्तु बहुत झाड़ियां टटोलने पर भी वह नहीं मिल पाई। इसी प्रकार यहां अनेक जड़ी-बूटियां तथा धातुएं अज्ञातावस्था में पार्वत्य बसुन्धरा के गर्भ में छिपे हैं। पहाड़ों की तलहटियों में चलने पर स्थान-स्थान पर चमकीली चट्टानें तथा पाषाण शकल बिखरे हुए मिलते हैं, जो सूर्य-किरणों का स्पर्श पाकर दूर से हीरे जैसी चमक देने लगते हैं।

पाण्डवों का प्रभाव :

इस क्षेत्र में अब भी पाण्डवों का काफी प्रभाव है। यहां के लोगों का दृढ़ विश्वास है कि अन्तिम दिनों में पांचों पाण्डव हिमालय वास के लिए यहीं आकर रहने लगे थे। वे पाण्डवों के अवशेष भी बतलाते हैं। जैसे मुझे किसी ने कहा कि जांगला के उस पार बसे "मसली" नामक गांव में पांचों पाण्डवों की बड़ी-बड़ी अति-प्राचीन पाषाण प्रतिमाएं हैं। मैं वहां देखने गया। देहात के कुछ लोग मेरे साथ हो लिए थे। उन्होंने मन्दिर का द्वार खोल कर वे प्रतिमाएं दिखलाईं। पांचों पाण्डव तथा एक द्रोपदी की ये छः प्रस्तर प्रतिमाएं वहां एक ही पंक्ति में लगाई गई देखी हैं। प्रत्येक प्रतिमा लगभग पांच क्विंटल से कम न थी। पूछने पर पता चला कि ये हज़ारों वर्षों से इसी प्रकार यहां स्थापित हैं। उनमें मध्य में स्थित युधिष्ठिर का आकार स्थूल तथा प्रशासकीय चेहरा गम्भीर मुद्रा में है। अर्जुन का शरीर नखशिख का सौन्दर्य लेकर एक गठित शरीर के वीर साहसी मानव जैसा है। उनके मुख की बनावट तीखी और विशेष प्रकार में सधी हुई है। जब लोगों ने कहा कि हज़ारों वर्षों से इन प्रतिमाओं की स्थिति इसी प्रकार से चलती आ रही है तो मैंने उनके बारे में लोकवार्ताएं सुननी चाहीं। वे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं बतला सके। मेरे मन में विचार उठने लगे कि हज़ारों वर्षों का अर्थ है कि पाण्डवों के युग के अनन्तर का कोई युग, जब इन्हें संघटित किया गया होगा तब पाण्डवों की वास्तविक आकृतियां भी इनमें अवश्य प्रतिबिम्बित हुई होंगी। इन प्रतिमाओं में अर्जुन के हाथ धनुषबाण, युधिष्ठिर के हाथ कटोरी (शायद दूध भरी), सहदेव के हाथ पुस्तक, भीमसेन के हाथ गदा और नकुल के हाथ बीणा पकड़ाई गई है। साथ में बैठी हुई नारी द्रोपदी है या कुन्ती इस पर कोई अन्तिम निश्चय अभी स्थिर नहीं हो पाया है। यहां आम कहावत है कि प्रातः चार बजे पाण्डव लोग अब भी स्नान करने पास बहती हुई नदी पर जाते हैं। जांगला से दो कि०मी० की दूरी पर "थाना" गांव में दुर्योधन द्वारा पाण्डवों की हत्या के लिए

बनाया गया लाख का घर (जतुगृह) माना जाता है। जिस सुरंग से होकर पाण्डव भागे थे, उसके अवशेष भी यहां दिखाए जाते हैं जो अब छोटी सुरंग के रूप में प्रत्यक्ष दिखाई देती है। यहां के लोगों का दृढ़ विश्वास है कि इसी थाना नामक गांव में लाख का घर बनाया गया था। जांगला में एक विशाल खेत है। लोग कहते हैं कि इसी में द्रोपदी व गांधारी दोनों साग चुनने आती थीं। यहीं पर उन दोनों का झगड़ा भी हुआ था। जब मैंने प्रश्न किया कि पाण्डवों के हिमालय प्रवास में गांधारी साथ में कहां थी, तो झट उत्तर मिला कि यह घटना महाभारत युद्ध के पहले की है तब भी कौरव-पाण्डव यहां गर्मियां बिताने आते थे। एक व्यक्ति ने मुझे यह भी कहा कि जांगला से कुछ दूर गगनचुम्बी चोटियों से घिरे "डमराड़ा" गांव के लोगों ने कई बार अब भी पाण्डवों को पहाड़ पर चढ़ते देखा है। उनके बुलन्द कलेवर मात्र या ऊंचे लम्बे धड़ जैसे ही दूर से दिखाई पड़ते हैं। यहां पाण्डवों के प्रभाव का एक मुख्य लक्षण वहुपति प्रथा के रूप में भी दिखाई देता है एवं यहां के लोग पाण्डवपूजक भी हैं।

हिमाचल शिखर का यह पार्वत्य प्रदेश रहन-सहन, जलवायु, भाषा, संस्कृति आदि के सन्दर्भ में विचित्र भी है व मनोरम भी। यहां की वसुन्धरा में अनेक आनुसन्धानिक विषय प्रसुप्त हैं। जिन्हें जागृत करने के लिए किसी की भी दृष्टि इधर नहीं गई है अथवा विद्वानों ने इस सम्बन्ध के शोध की अभी तक कोई आवश्यकता नहीं समझी हो। कुछ भी हो किन्तु इतना अवश्य कहना होगा कि यहां के सब तत्त्व अभी बौद्धिक जगत् से अछूते ही पड़े हुए हैं। यहां की आस्तिकता, अतिथि सत्कार, सरलता तथा भारतीयता अभी तक अपने प्राचीन रूप में जीवित है। संस्कृत व हिन्दी के प्रति यहां की जनता की विशेष निष्ठा व श्रद्धा है। यहां का प्रत्येक व्यक्ति अधिक नहीं तो हिन्दी पढ़ा-लिखा तो अवश्य ही होगा। एक प्रकार से हिन्दी यहां की सार्वजनिक भाषा है। जो दैनिक कार्यकलाप का माध्यम बनी हुई है। बातचीत का माध्यम भी हिन्दी है। पहाड़ी भाषा केवल परिवारों तक ही सीमित है।

जांगला शहर से चिड़गांव तक पहुंच कर आगे उत्तुंग शिखरों के दर्शन होने लगते हैं। ये सब हिममण्डित हैं। इन की चढ़ाई सीधी सपाट व कठिन है। चढ़ाई के अनन्तर डोडा क्वार घाटी प्रारम्भ हो जाती है इस का दूसरा नाम रत्नसार भी था। राजा बुशहर इस पर राज्य करते थे। जिनके राज्य की सीमा तिब्बत तक जा मिलती थी। वर्तमान काल में इस राजवंश के राजा वीरभद्र सिंह अब तक राजनेता के रूप में प्रसिद्ध हैं। जो केन्द्रीय राज्य मन्त्री रहे थे और अब हिमाचल के मुख्यमन्त्री हैं, संस्कृत के इतने प्रबल भक्त हैं कि रामपुर के महलों में अपने खर्चे पर एक संस्कृत कॉलेज चला रहे हैं।

ooo

हिमाचल का एक महिमामण्डित देवी स्थान

पर्वतराज हिमाचल के गर्भ में अनेक प्रामाणिक देव स्थान प्रतिष्ठित हैं। वैदिक ऋषियों से लेकर पौराणिक, औपनिषत् काव्य नाटकीय तथा समग्र अन्य संस्कृत वाङ्मय में प्रख्यात ऋषि, मुनि, मनीषि, राजर्षि आदि अपने-अपने समय में यहीं आकर तप करते थे। इसी कारण हिमाचल में अणगिनत देवस्थान देवाश्रय आदि तत्काल से चलते चले आ रहे हैं। भारतीय संस्कृति की मुख्य स्थली इस हिमालय में अब भी प्राचीन तथा अति-प्राचीन भारतीय धर्म संस्कृति तथा आचार, भाषा और साहित्य के उन्मेष प्रस्फुटित हो रहे हैं।

यद्यपि पूरा हिमालय ही देवस्थली रहा है तथापि इसका एक खण्ड प्रकृति की सुरम्य छाया में प्रधान देवों और ऋषि-मुनियों के प्राचीन आवासों को अपने में संजोए हुए विराजमान है और भारतीय जनता के लिए आकर्षक स्थान बना हुआ है। इसकी सुरम्य प्राकृतिक छटा उत्तुंग गिरिशिखर हरे-भरे मैदान शस्य श्यामला भूमि, धार्मिक वातावरण तथा सत्ययुगीन आचार-विचार सब कुछ आज भी संसार को, इस भौतिकवादी, वैज्ञानिक युग को भारत की प्राचीन धरोहर के साथ, वही चित्र दिखा रहा है जो वैदिककाल में था। यह स्थान है, "कुल्लू", परम पुनीत, परम सौभाग्यशाली, अति रमणीय तथा प्रकृति नटी का नर्तन स्थान जिसके प्रति स्थान पर देवी-देवताओं के मन्दिर चमक रहे हैं, हिमाचल प्रदेश भर में कुल्लू को देवस्थान, देवधाम, देवभूमि व देवालय आदि नामों से पुकारा जाता है। ये नाम इसके परम यथार्थ को प्रकट करते हैं, क्योंकि यहां मणिकर्ण, भृगुतुंग, पराशरसर, वशिष्ठ तीर्थ, क्षीरगंगा, हिडिम्बा माता, मनु का मन्वालय (मनाली), पराशर, ऋषि, शृंगी, परशुराम, जमदग्नि, वशिष्ठ, व्यास आदि सब ऋषियों के आदि आश्रम है, जिनमें वह अपने युग में रह कर तपलीन रहते थे।

इसी देवभूमि, कुल्लू के पश्चिम में खड़े गगनचुम्बी पर्वत की चोटी पर एक प्रसिद्ध देवी पीठ विराजमान है, जो चमत्कार, सौन्दर्य, प्रकृति रमणीयता, संस्कृति, इतिहास इन सब क्षेत्रों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। भेखली गांव में प्रतिष्ठित

होने के कारण इसे भेखली माता कहा जाता है, किन्तु इसका वास्तविक नाम भुवनेश्वरी माता है ।

भेखली देवी के दर्शनों का बहुत बड़ा महत्त्व यहां की जनता के मानस-पटल पर छाया हुआ है । उनकी धारणा है कि यह माता प्रत्येक मनोरथ पूर्ण करने वाली है । इसी कारण अत्युच्च चोटी की कठिन साध्य चढ़ाई चढ़ कर भी दर्शनार्थी अधिक संख्या में यहां पहुंचते हैं ।

दुर्गम मार्ग :

कुल्लू से सीधा मार्ग पर्वत की चढ़ाई की ओर अग्रसर होता है; ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाएं, पहाड़ की उत्तुङ्गता साथ ही बढ़ती चली जाती है । बीच-बीच में विश्रामार्थ वृक्षों की छाया में पत्थरों के बनाए गये, उपवेशन स्थान भी है ।

चढ़ते-चढ़ते सांस फूलने लगती है, चढ़ाई में कोई मोड़ नहीं है, सीधी डण्डे के आकार की चढ़ाई यात्रियों को और भी थका देती है । परन्तु प्राकृतिक छटा जलवायु की उत्तरोत्तर शीतलता यात्रियों को एक दैवी आनन्द भी प्रदान करती है । मार्ग में अनेक प्रकार की वनस्पतियों औषधियों तथा अन्य उपयोगी पेड़ों का जमघट अन्त तक साथ देता चला गया है, उनसे छन कर आती हुई सुगन्धित पवन अनेक रोगों को दूर करने में सक्षम है । पानी के निर्झर भी बीच-बीच में अठखेलियां करते मिलेंगे । चारों ओर नीचे की ढलानों पर शस्य-श्यामला भूमियों का मनोहर दृश्य स्वर्गीय इन्द्रधनुषी चित्र प्रस्तुत करता है । ऐसी छटा में पड़ कर यात्री कुछ देर के लिए आज के घुटन आक्रोश तनाव तथा समस्याओं से भरे जीवन को भूल कर ऐसा अनुभव करने लगता है, जैसा कि वह किसी शांत पवित्र व दैवी भूमि पर चला आया हो । जहां न कोई चिन्ता है, न समस्या, न गरीबी, न बेकारी, न सांसारिक पीड़ाएं ।

एक विचित्र प्रकार के आनन्द की मस्ती उसे प्रकृति के साहचर्य में मिलने लगती है । यह प्रकृति कितनी सुन्दर व भोली-भाली है, इसमें दैवी रम्यता व बचपन का अल्हड़पन है । इसकी मुस्कान भी खिले पुष्पों के रूप में बालक की भोली व निष्कपट मुस्कान के समान है । आज मानव इस खिली कली की सुगन्धि की उपेक्षा करके इसे ही नोच लेना चाह रहा है । किन्तु यहां की यात्रा में ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अभी वैज्ञानिक भौतिकवाद के जड़ पंजे इस पर नहीं पड़े हैं । किन्तु भय है कि कहीं ऐसा न हो कि इस स्वर्ग सुन्दरी की सुन्दरता पर भौतिक मानव की लालची दृष्टि पड़ जाए । अभी इसने अपने अल्हड़ और दैवी सौन्दर्य को एकान्त में अपने आंचल में छिपा रखा

है। मैं इसी यात्रा में अपने दो शिष्यों श्री अमर कश्यप तथा श्री तेजस्वीदत्त के साथ चला जा रहा था। मुझे भी उपर्युक्त प्राकृतिक आनन्द का पूर्ण अनुभव हुआ।

देवो का आगमन :

यह भगवती कहां से आई और यहां प्रतिष्ठित हुई इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता। केवल वार्ताएं ही इस प्रसंग में काम आ सकती हैं। उनके अनुसार यह उड़ीसा के भुवनेश्वर नामक स्थान से यहां आई और प्रथम बार हस्तिनापुर में प्रकट हुई फिर यहीं से इसने उत्तङ्ग शिखरों वाले हिमाचल की ओर पदार्पण किया। हिमाचल के सुन्दर नगर व मण्डी नगर में कुछ समय रह कर इसने हिमाचल के रमणीय ग्राम देखने का विचार किया। इसी प्रसंग में लताडीह, गढ़गाजन, खलाड़ा, सोजा, लोहड़ी आछरी, आदि गांवों में निवास करती हुई आगे की ओर अग्रसर हुई। इन शिखरों पर बैठ कर भगवती ने कुछ विशेष कार्य किए, जिनमें एक यह कि लोहड़ी आछरी शिखिर पर योगनियों द्वारा उस शिखर की शस्य सम्पदा तथा हरियाली का वरदान दिया तथा योगनियों को वहां प्रतिष्ठित किया। योगनियों ने इस भगवती की सादर से पूजा की।

इस प्रकार कई शिखरों पर होते हुए आखिर भुवनेश्वरी जी ने कुल्लू के सन्मुख पश्चिम में खड़े उच्च शिखर पर बसे ग्राम भेखली में पदार्पण किया। यहां नारायण नामक देव विराजमान थे। उन्होंने देवी को अपनी धर्म बहिन बना कर उसके लिए अपना स्थान छोड़ कर उसी के सन्मुख एक कुटिया को अपना निवास बनाया। देवी जी उसी स्थान पर स्थापित होकर विराजमान हो गई। नारायण जी देवी के छोटे धर्मभाई बन कर उनकी सेवा में लग गए। यहीं से इस स्थान की प्रसिद्धि होना शुरू हुई।

देवी के कर्म व चमत्कार :

उस गांव के आस-पास जहां देवी प्रतिष्ठित हुई थी, कुछ नास्तिक व असुर विचार के लोग भी थे, जो धर्म को नहीं मानते थे। देवी ने उनका संहार किया। उनसे भयंकर युद्ध करके उस पूरी धरती का वातावरण दैवी बना दिया। यह देखकर इस भुवनेश्वरी की मान्यता मानकर सब लोग इसे श्रद्धापूर्वक पूजने लगे तथा एक विशाल भवन (मन्दिर) खड़ा कर दिया। साथ में बड़ा भूमि खण्ड भी जोड़ दिया उसी पर आज का मन्दिर खड़ा है, इसके साथ अन्य भवन भी समयानुसार बनते चले

गए। देवी के चमत्कार के बारे में यहां अनेक लोक-कथाएं प्रचलित हैं, जिन्हें सुनकर दैवी चमत्कार की अपूर्व घटनाओं का संकेत मिलता है।

अब के समय में भी ऐसी घटनाएं घटित हुई हैं यह सुनाने वाले उन्हें आंखों देखी कहते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार से हैं। विक्रमी सम्वत् 2035 वैशाख शुक्ल प्रतिपदा से पञ्चमी तक यहां शतचण्डी महायज्ञ की योजना बन कर तैयार हुई जो कार्यरूप में परिणत हुई। इसके अतिरिक्त भी यहां वर्ष भर में यज्ञ भण्डारा पूजा पाठ आदि सब कुछ चलता रहता है। यात्री दर्शनार्थी तथा भक्त लोगों का तांता लगा ही रहता है। चमत्कारों के बारे में भी बहुत कुछ सुना जाता है। एक चमत्कार जो कुछ वर्ष पूर्व घटित हुआ था; वह इस प्रकार है। शतचण्डी यज्ञ प्रारम्भ हुआ था। भक्त लोग भगवती के आस्थान पर जो कुछ फल, अनाज, दक्षिणा लगातार चढ़ा रहे थे; वह सब कुछ गायब होता जा रहा था। इस प्रकार पन्द्रह दिनों तक जो कुछ भगवती की भेंट हुआ सब कुछ गायब। यह अनोखा चमत्कार देखकर लोगों को भगवती भुवनेश्वरी के सम्बन्ध में पर्याप्त श्रद्धा उमड़ी। जो इन बातों में विश्वास नहीं करते थे वे भी इस पर आश्चर्य चकित हो गये। बहुतों ने कहा—"दैवी चमत्कार भी अनोखा होता है।"

इसी प्रकार एक बार स्थानीय राजा ने भगवती भुवनेश्वरी की प्रतिमा, झांकी द्वारा कुल्लू दशहरे में ले जानी चाही; जब झांकी बाहर निकली तो राजा के महल में भी सांप ही सांप निकलने लगे तथा अन्य आपदाएं भी पैदा होने लगीं। तत्काल भगवती को अपने ही स्थान पर रखा गया। उसी के साथ सब आपदाएं भी गायब हो गईं।

भवन की रूप-सज्जा :

भगवती का भवन भी बड़ा-विशाल है, चारों ओर सुन्दर-प्रकोष्ठों की पंक्तियां बीच में दैवी का विशाल मन्दिर है, मन्दिर के गर्भगृह में श्री भुवनेश्वरी की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। आसपास की रूप-सज्जा व श्रृंगार महार्घ तथा आकर्षक है। चारों ओर शान्ति का साम्राज्य स्थापित है। संसार की तपन को शीतल वातावरण में रहकर बुझाने और भूल जाने के प्रसंग में इस स्थान की विशेष महत्ता है।

दरबार के चारों ओर का वातावरण दैवी है। भवन के बीच दीवारों पर चित्र-कारी की अद्भुत कला का प्रदर्शन हुआ है। भगवती के लगभग सभी रूपों के सुन्दर और आकर्षक चित्र खिंचे गए हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत व रामायण की अनेक कथाओं के दृश्य भी दीवारों पर अंकित किये गये हैं।

शुम्भ व निशुम्भ के वध का चित्र, भुवनेश्वरी गद्दी पर विराजमान दुर्गा का तीन कालीन रूप, कमला, लक्ष्मी, सीता स्तुति, त्रिपुरा भैरवी, महाकाली, महागौरी, शेषशायी भगवान् विष्णु, श्री सरस्वती, श्री अष्टभुजी माता, विराट् रूप, भगवान् शिव, धूमावती, बगुलामुखी आदि कई विशाल चित्र दीवारों पर अंकित हैं। जिन्हें देखकर दैवी रंगशाला जैसा वातावरण आंखों पर घूम जाता है। बड़ा ही आनन्द का अनुभव होने लगता है।

इसी प्रकार राम-रावण युद्ध, पञ्चवटी, गंगावतरण, भगवान् नृसिंह, ये चित्र भी बड़े आकर्षक देखे गए हैं। मन्दिर के बाहर सिंह की विशाल मूर्ति (संगमरमर की) लगाई गई है। मन्दिर में दर्शन करने के पश्चात् मुझे एक विशाल कमरे में धूनी जलती हुई दिखाई दी। वहां एक युवक महात्मा बैठे थे। मैं पहुंचा ही था तो चाय तथा कुछ नैवेद्य मेरे पास उपस्थित हो गया। महात्मा जी सज्जन प्रवृत्ति के देखे गए। कुछ देर उनके पास बैठा। उन्होंने मन्दिर के प्रबन्ध के सम्बन्ध की ही बातें मेरे साथ कीं। कहने लगे माता की कृपा से पर्याप्त अन्न, फल व द्रव्य आता है। जिससे अतिथि सेवा के साथ मन्दिर का खर्चा भी चलता रहता है। नवरात्रों में लंगर चलता है, बीच-बीच में भण्डारे भी होते हैं। भक्तों की भीड़ भी जुटती है।

मैंने पूछा यात्रियों के रहने की क्या व्यवस्था है, सामने विशाल भवन पंक्ति की ओर संकेत करके बोले ये सब यात्रियों के लिए ही हैं। वे चार-पांच दिनों तक या इससे भी अधिक खुशी से यहां, रह सकते हैं। भोजन अपना बना लेते हैं। सब सुविधाएं हैं।

वैसे तो कुल्लू से मनाली तक का पार्वत्य प्रदेश ही देवधाम है। अनेक प्राचीन ऋषियों के आश्रम व देवालय हैं। तथापि यह भेखली माता (भुवनेश्वरी) का आस्थान मुझे अत्युत्तम पीठ दिखाई दिया। जहां जाकर मन कुछ और हो जाता है। हृदय में दैवी भावनाओं की तरंगें जैसी उठने लगती हैं। अत्युत्तम पर्वत का वह प्रदेश चारों ओर से हरियाली तथा सेब के बगीचों से भरपूर है। प्रकृति यौवनपूर्ण अठखेलियों के साथ दिव्य सम्पत् से जगमगाती; मुस्कुराती और अंगड़ाईयां लेती दिखाई देती हैं। ०००

द्वितीय अध्याय

(महाकवि कालिदास सम्बन्धित)

कालिदास का विरह वर्णन

कालिदास संस्कृत साहित्य के गगन में सूर्य के समान जाज्वल्यमान हो रहे हैं। भारतीय कवि होकर भी इन्हें विश्व कवि होने का गौरव प्राप्त है। कारण संसार इनकी रचनाओं की सरसता पर मुग्ध है। अतः इनकी कविता देववाणी संस्कृत का शृंगार है। माधुर्य व प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरसता, अर्थ का सौष्ठव, अलंकारों का सुन्दर प्रयोग, कमनीय कान्त पदावली, वर्णन में कोमलता और ललित भावना आदि ऐसे अनेक गुण इनकी कविता में ऊंची कोटि तक पहुंचे हुए हैं। जिन्हें पढ़कर पाठक का हृदय उछलने लगता है।

कालिदास नौ रसों के ही आचार्य हैं। जिस-जिस रस ने उन की लेखनी का स्पर्श पा लिया, वही ऊंची चोटी तक जा पहुंचा। क्या जादू था इनकी लेखनी में, लाखों पद्यों में कालिदास का पद्य अपने दैवी सौरभ के कारण पहचान लिया जाता है। उन्होंने शुष्क विषयों को भी अपनी लेखनी की सरसता देकर सरस बना दिया। इसका उदाहरण उनकी रचनाओं के ही कुछ अंश हैं। सब रसों के वर्णन में कालिदास की प्रतिभा समान रूप से प्रस्फुटित हुई है। शृंगार, हास्य, वीर, भयानक, रौद्र, वीभत्स तथा शान्त सब रस कालिदास की लेखनी में आकर अत्यन्त कोमल और मार्मिक बन गए हैं, क्योंकि ये कोमल शृंगार व प्रेम के कवि हैं, किन्तु इसी विशेषता के साथ ये सब कुछ भी हैं। जो प्रत्येक वर्ण्य विषय को सजीव व सरस बना डालते हैं। इतनी सर्वातिशयी प्रतिभा वाले कवि कालिदास को मुख्य रूप में शृंगार और प्रेम का कवि कहा जाता है। यह बात भी यथार्थ है, क्योंकि शृंगार सब रसों का राजा है, उसे जब कालिदास की लेखनी का सम्पर्क मिला तो वह रसाधिराज हो उठा।

मानव हृदय शृंगार के विप्रलम्भ भेद में अधिक रुचि लेता है। उसमें मिलन की आशा और वियोग की जलन दोनों में करुणा रस भी आता है। इस रस समन्वय में मानव का हृदय अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगता है। कवि कालिदास का यह विप्रलम्भ अर्थात् विरह वर्णन तो रस तथा काव्य कला की चरम कोटि तक

जा पहुंचा है। कवि की रचनाओं में जो-जो स्थल विरह वर्णन के हैं, उन्हें पढ़कर मानव हृदय शत्-शत् धाराओं की आनन्द तरंगों पर झूमने लगता है। सर्वप्रथम इनकी प्रसिद्ध रचना रघुवंश को इस सन्दर्भ में लिया जा सकता है। इस महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में 'रति विलाप' विरह की दृष्टि से कालिदास की अपूर्व रचना है। महादेव के तृतीय नेत्र द्वारा कामदेव के भस्म हो जाने पर विधवा बनी रति का विलाप अत्यन्त ही विरह युक्त कारूणिक बन पड़ा है, उसका एक उदाहरण इस प्रकार से है :—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तड़ित् प्रलीयते।
प्रमदा: पतिमर्त्यगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि॥

अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा के साथ कौमुदी, बादल के साथ बिजली चली जाती है, उसी प्रकार पत्नी पति के साथ ही जाती है अर्थात् मैं भी तुम्हारे ही साथ जाऊंगी।

इसी प्रकार कुमारसंभव काव्य में कुछ ऐसे विरह वर्णन सम्बन्धी श्लोक हैं, जिनमें विप्रलम्भ श्रृंगार मूर्तिमान होकर हमारे सामने नाच उठता है। जैसे तपस्या करती हुए पार्वती की एक सखी ब्रह्मचारी वेष धारण किए हुए भगवान् शिव से कहती है :—

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिन: सवाष्पकण्ठ स्खलितै: पदैरियम्।
अनेकश: किन्नर राज कन्यका: वनान्त संगीत सखी ररोदयत्॥

अर्थात् भगवान शिव की लीला को याद करती हुई यह पार्वती अनेक बार सहगान करने वाली किन्नर कन्याओं को सवाष्प गद्गद् कण्ठ द्वारा रुलाती थी। इस पद्य में वियोग दशा का चित्रण कितनी मनोवैज्ञानिकता के साथ किया गया है। पार्वती शिव के गुणगान करती हुई भरे कण्ठ से खुद भी रोती थी और सखियों को भी रूलाती थी। वियोगावस्था में ऐसा होना स्वाभाविक है। वियोगी हृदय का भार हल्का करने के लिए रो लेता है। उसके रोने के साथ ही पास बैठा व्यक्ति भी यदि रो उठता है तो इसमें आश्चर्य क्या?

पार्वती शिवजी के वियोग में इतनी आतुर हो गई कि सपने में भी उन्हें बाहुपाश में कस लेती थी।

नींद खुलने पर कह देती हा! शिव मुझे छोड़कर कहां जा रहे हो, इस सम्बन्ध का कालिदासीय पद्य इस प्रकार का है—

त्रिभाग शेषासु निशासु चक्षणं
निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत
क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्य सीत्य लक्ष्य वाग—
सत्य कण्ठार्पित बाहुबन्धना ।

प्रस्तुत पद्य में कवि ने मानव के वियोग की प्रतिक्रिया में उठने वाले आंतरिक मनोभावों का कितना सुन्दर और सजीव चित्र उतारा है, विप्रलम्भ या विरह का यह वर्णन कालिदास की उच्च कला का निदर्शन है। इसी प्रसंग में आगे इस पद्य को देखिए :—

यदा वुधैः-सर्वगतस्त्वमुच्यसे ।
न वेत्सि भावस्थमिमं कथं नरम् ॥
इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया।
रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः ॥

वियोगावस्था में पार्वती शिवजी को उपालम्भ देती है कि—जबकि आपको मनीषी लोग सर्वव्यापक मानते हैं, तो वियोग में विह्वल आप मुझे क्यों नहीं देखते। इस प्रकार शिव का चित्र बना पार्वती उसे एकान्त में उपालम्भ देती है। इस प्रकार कालिदास के विरह वर्णन सम्बन्धी अन्य कई पद प्रस्तुत काव्य में मिलेंगे। वास्तव में इस रचना में आकर कवि का यह वियोग शृंगार कला की चरम कोटि तक जा पहुंचा है। कालिदास के दूसरे महाकाव्य रघुवंश के अष्टम सर्ग में 'अज विलाप' का प्रकरण विरह वर्णन के साथ करुण रस भी ले आया है। किन्तु यहां भी कवि का वियोग वर्णन अत्यन्त ही मार्मिक और कठिन हृदय को भी पिघला देने वाला है। कालिदास का यह 'अज विलाप' साहित्य की एक गिनीचुनी चीज मानी जाती है। इन्दुमती मृत्यु-शय्या या पति की गोद में मृत पड़ी है, राजा अज उसकी मृत्यु पर अत्यन्त दुःखी होकर जो रूदन करता है, उसी के वर्णन में कालिदास की कला शत-शत धाराओं में फूट निकली है, देखिए कुछ उदाहरण :—

कुसुमं कृत दोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।
अलकाभरणं कथन्तु तत् तव नेष्यामि निवाप माल्यताम् ॥

अज रोते हुए इन्दुमती के शव से कहते हैं—हे इन्दुमति! अशोक वृक्ष से तूने दोहद के रूप में जिस फूल की आशा की थी, अब उसके मिलने पर उसे तेरे केशपाश में स्थान मिलना था किन्तु उसे तेरी पिण्डक्रिया में कैसे प्रयुक्त करूंगा। इन्दुमती

राजा की कितनी प्रिया थी, अब दिवंगत होने पर राजा को कितना आघात पहुंचा है, इसका एक उदाहरण इस प्रकार है :—

गृहिणी सचिव: सखी मिथः प्रिय शिष्या ललिते कलानिधौ ।
करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां बद किं न मे हृतम् ॥

हे इन्दुमति ! तू मेरी गृहिणी, मन्त्री, मित्र, तथा गीत-वाद्य में प्रिय शिष्या थी, निर्दय काल ने तुझे हरते हुए मेरा क्या-क्या नहीं हर लिया ?

इस पद्य में जहां करुणा रस उमड़ आया है, वहां विरह वेदना की जलन भा कम नहीं है । इसी प्रकार कालिदास के विरह वर्णन के इसी रचना के तेरहवें सर्ग में अद्भुत उदाहरण मिलते हैं । रावण वधानन्तर राम सीता के साथ पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या आते हुए मार्ग के मुख्य स्थान सीता को बतला रहे हैं, जिनके साथ उनके बनवास का इतिहास जुड़ा हुआ था । वे कहने लगते हैं :—

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नुपूरमेकमुर्व्याम् ।
अदृशत त्वच्चरणारविन्द विश्लेष दु:खादिव बद्ध मौनम् ॥

अर्थात् हे सीते यह वही स्थान है जो सामने दीख रहा है, जहां रावण द्वारा तुम्हारे हरण के अवसर पर एक नूपुर गिर पड़ा था, जो तुम्हारे चरणों का वियोग पाकर मानो दुःख से मौन था । हिरणिया भी तेरे अपहरण से दु:खी होकर दक्षिण दिशा की ओर आंखें लगाकर मानो मेरे से कह रही थीं कि सीता रावण द्वारा उस दिशा की ओर ले जाई गई हैं । इस प्रसंग में कालिदास द्वारा वर्णित किया गया विरह अत्यन्त गम्भीर व सरस हो उठा है । राम सीता हरण के पश्चात् वन में अपनी विरह प्रयुक्त दयनीय दशा का वर्णन कर रहे हैं, जहां वन्य प्रकृति भी उस दु:ख की भागी बनी थी । आगे कहते हैं :—

यह सामने वाला पर्वत है, इसने वर्षा का नया पानी और मैंने आंसू धारण किए थे । तेरे बिना मेरे लिए उस वन में मयूर नर्तन, सुगन्धित हवा, खिले हुए कदम्ब के पेड़ आदि सब कुछ असह्य हो रहे थे । तेरे आलिंगन का स्मरण करते हुए मैंने घन गर्जन की रातें गुफाओं में अति कष्ट से बिताई थीं । तेरे वियोग में पागल होकर जब मैंने फूलों से लदी लता को देखा तो तेरे उर: स्थल की भ्रान्ति से उसी का आलिंगन करने दौड़ पड़ा था । किन्तु लक्ष्मण ने रोक लिया इस सम्बन्ध का पद्य इस प्रकार है :—

इमां तटाशोक लतां च तन्वीं स्तनाभिरामं स्तवकामिनम्राम् ।
त्वत्प्राप्ति बुद्ध्या परिरब्धुकाम: सौमित्रिणा साश्रुरहंनिषिद्ध: ॥

रघुवंश महाकाव्य के पश्चात् कवि का तीसरा खण्ड काव्य मेघदूत है जो पूरे का पूरा विरह पर ही लिखा गया है। राजकोप का शिकार यक्ष रामगिरि का प्रवासी बनकर नवविवाहित प्रिया के वियोग में इतना पागल बन गया कि उसने आकाश में उमड़ते हुए बादल को देखकर सन्देशवाहक के रूप में प्रिया को सन्देश भेजना प्रारम्भ कर दिया। यह सम्पूर्ण रचना इसी विरही सन्देश से भरपूर है। इसमें यक्ष ने अपने विरही हृदय के जो विस्तृत उद्गार बहाये हैं, कालिदास की काव्य कला ने उनमें अलौकिक रस धारा का झरना बहा दिया है। विरह वर्णन के प्रसंग में यह रचना संस्कृत साहित्य में अपना सर्वोत्तम स्थान रखती है। मेघदूत में वर्णित यक्ष की प्रिया का विरह भी अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है—जैसे वह विरह पीड़ित होकर बर्फ से मुरझाई हुई कमलिनी के समान पड़ी थी, न बहुत बोलती थी, न संसार की वस्तुओं में रुचि लेती थी। आभूषणहीन व मैली साड़ी पहने साथी से बिछुड़ी चकवी की भांति अकेली और मूर्तिमती हूक जैसी बनी बैठी थी, वह कभी गोद में वीणा लेकर प्रिय का संगीत अलापने लगती थी, किन्तु उसी समय हृदय में प्रिय वियोग की विषम ज्वाला आंसू बनकर आंखों से बह निकलती है और कण्ठ भर जाने के कारण मूक रह जाती है। उसका हृदय टूट गया है, जिसे अवधि समाप्ति पर पति के आगमन की आशा ही सम्भाले हुए है।

अब यक्ष के विरह की भी एक झलक देखिए :—

वह यक्ष प्रकृति सौन्दर्य और विरह को साथ लेकर प्रिया के वियोग में विह्वल जिस किसी प्रकार हृदय को ढाढ़स देकर दिन व्यतीत कर रहा है। शिला पर गेरू से प्रियतमा का चित्र खींच कर जब उसकी प्रणय कुपित आकृति को देखना चाहता है, उसी समय आंखों में आंसुओं का प्रवाह भी भर जाने के कारण प्रियतमा के चरणों में सिर झुकाकर भी उसके दर्शन नहीं कर पाता। उसकी अवस्था का यह चित्र मेघदूत के इस श्लोक में प्रस्फुटित हुआ है :—

त्वामालिख्य प्रणय कुपितां धातुरागैः शिलायाम्।
आत्मानं ते चरण पतितं यावदिच्छामि कर्तुम्॥
अस्त्रैस्ता तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे।
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥

अर्थात् हे प्यारी तेरा कुपित चित्र धातु राग से शिला पर उतारकर जब तेरे चरणों में गिरता हूं तो आंसुओं से दृष्टि भर जाने के कारण तेरा दर्शन नहीं कर पाता हूं, क्रूर काल इस अवस्था में भी हमें मिलने नहीं देता।

इसी प्रकार इस रचना के अन्य कुछ प्रसंग विशेष मार्मिक हैं। जैसे दक्षिण हवा का यक्ष आलिंगन इसलिए करना चाहता है कि वह उसकी पत्नी के शरीर का सम्पर्क करके आई थी। प्रियतमा की आंखों का दर्शन वह हिरणियों के नेत्रों में कर रहा था। नदी की तरंगों में उसके भ्रूविलासों को देखता था। सपने में उसे देखता था और निद्रा भंग होने पर बाहू पसार कर रह जाता था। विरह व्यथित हृदय की ऐसी कठोर वेदना का मार्मिक चित्र अन्यत्र देखना दुर्लभ है। यक्ष का इस प्रकार का हार्दिक प्रेम दाम्पत्य जीवन के आदर्श का सुन्दर उदाहरण है और यक्ष की स्त्री आदर्श भारतीय नारी है। कालिदास की यही विशेषता है कि वे वासनात्मक प्रेम या विरह का वर्णन भारतीय दाम्पत्य की मर्यादा के अन्तर्गत ही करते हैं।

यक्ष को सर्वत्र प्रियतमा ही दीखने लगती है। यहां तक कि अन्त में सारा विश्व उसे प्रियतमामय के एकत्ववाद में परिणत हुआ दिखाई देने लगता है। कालिदास की कविता की यही एक और विशेषता है, जिसमें धरती व स्वर्ग तथा सीमित व असीमित का दोनों का अन्त में समन्वय होने लगता है।

मेघदूत के अनन्तर, कालिदास की विश्व प्रसिद्ध और विश्व साहित्य की बेजोड़ रचना आती है, अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक, इस रचना का चौथा अंक सब से अधिक मार्मिक है। जिसमें पतिगृह में जाती हुई शकुन्तला के विरह में पिता महर्षि कण्व तक सारी तपोवन की प्रकृति आंसू बहाने लगती है। गद्गद् कण्ठ से कण्व कह उठते हैं:—

यास्यत्यद्य शकुन्नलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठ्या ।
कण्ठ स्तम्भित वाष्पवृत्ति कलुषश्चियन्ता जडं दर्शनम् ॥
वैक्लव्यं मम तावदीदृशंमिदं स्नेहादरण्यौकसः ।
पीडयन्ते गृहिणः कथं न तनया विश्लेष दुखैर्नवैः ॥

अर्थात् आज शकुन्तला जाएगी यह सोच कर मेरा हृदय उत्कण्ठा से छू गया है, रुंधे कण्ठ के कारण आवाज़ रुक गई है, चिन्ता से इन्द्रिय ज्ञान भंग हो चुका है, स्नेह के कारण बेटी के बिछोह के ताजे दु:ख से जब मुझ बनवासी को ऐसी विकलता हो रही है तो गृहस्थी लोग भला क्यों नहीं इस अवस्था से पीड़ित होंगे। शकुन्तला के जाने पर पेड़ पत्तों के आंसू बहने लगते हैं, मृग छोना उसका वस्त्र खींचने लगता है, और हिरणियों ने उसके वियोग जनित दु:ख के कारण खाना छोड़ दिया है। इस वर्णन में विरह व करुणा दोनों साकार हो उठे हैं। इसी रचना का षष्ठ अंक भी

शकुन्तला के सम्बन्ध में दुष्यन्त की विरह पीड़ा का साकार रूप उपस्थित करता है। वहां भी कवि की कला का चमत्कार अलौकिक बन जाता है।

कालिदास के शेष दो नाटकों विक्रमोर्बशी तथा मालविकाग्निमित्रम् में भी ऐसा ही सरस विरह वर्णन है। ऋतुसंहार नामक इनके खण्ड काव्य में भी ऐसे ही कुछ सजीव विरह के छींटे मिलेंगे।

विरह वर्णन में कालिदास जैसा अभूतपूर्व कलाकार संसार भर में अपना विशेष स्थान रखता है। ०००

श्रृंगार और प्रेम का कवि कालिदास

संस्कृत साहित्य के सबसे अधिक कलाकार कवि कालिदास का यश न केवल भारत भूमि पर व्याप्त है, अपितु संसार के सब देशों में इनका नाम आदर से लिया जाता है। इनकी रचनाओं में यद्यपि अनेक रस अपनी चरम सीमा तक पहुंचे हुए हैं, तथापि जिन क्षेत्रों में ये सर्वोत्तम कवि माने जाते हैं वे हैं श्रृंगार (Romance) और प्रेम (Love) इन दोनों की विषय वस्तु का सजीव और मनोमुग्धकारी जैसा वर्णन कलिदास की रचनाओं में पाया जाता है ऐसा ओर कहीं नहीं।

तीसरी बात इनको उपमा की अद्वितीयता है। इसी उपमा के माध्यम द्वारा जब कवि इनमें से किसी एक विषय पर कल्पना प्रस्तुत करने लगता है, तो विषय आह्लदकारी होकर हृदय को गुदगुदाने लगता है। इनकी उक्तियां व वर्णन पाठक के हृदय में द्रवण द्वारा ऐसी हलचल उत्पन्न कर देते हैं कि वह कुछ काल के लिए अपनी सब सांसारिकता को भूल बैठता है। उसे आनन्द लोक के दर्शन और रस समुद्र का सुख स्नान मिलने लगता है। किसी ने इनकी कविता पर मुग्ध होकर लिखा था—

"कालिदास की कविता, नई जवानी तथा दही-भात का भोजन ये तीनों चीजें मुझे जन्म-जन्म तक मिलती रहें।" कवि को हृदय की बात करने का जितना कलापूर्ण ढंग आता है, उतना ही उसमें रस-धारा भी टपक आती है। इस रस में ही ऐसी शक्ति होती है, जो पाठक के हृदय को झकझोरती है किन्तु कविता में रसोत्पन्न करना कोई आसान बात नहीं है। साहित्य के इतिहास में हजारों कवि हो चुके हैं, उन्हें जो ख्याति मिली उसका परिमाण उनके रस उत्पादन के अनुकूल आंका जा सकता है। कलिदास को सबसे अधिक यश इसीलिए मिला कि वे माने हुए रस-सिद्ध कवि थे। उनकी रचना का कोई अंश नहीं, जिसमें रस ओत-प्रोत न हो, और रस भी वह रस, जो उनकी विलक्षण लेखनी से उद्भूत होकर और कवियों के रसों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। कालिदास के इस रस ने रचनागत जिस-जिस वर्ण्य विषय का स्पर्श किया, वही दैवी रसधारा का अजस्र स्रोत बन गया।

श्रृंगार रस के दो भेद हैं संयोग व वियोग। इनमें वियोग वर्णन का विशेष स्थान

है। रस-सिद्ध कवि कालिदास ने वियोग वर्णन में सौन्दर्यानुभूति तथा कारूणिक भावनाओं के साथ वियोग का जैसा सजीव चित्र खींचा है, उसकी किसी अन्य कवि के वियोग वर्णन के साथ समता नहीं बैठाई जा सकती। रस वर्णन के साथ प्रकृति व मानव का रागात्मक सम्बन्ध तथा वेदना जन्य हृदय के मर्मस्पर्शी भावों की सूक्ष्मता और उसके साथ वियोगी हृदय की धड़कनों का ऐसा करूणापूर्ण साकार चित्र कवि खड़ा कर देता है कि जो पाठक के हृदय पर गहरा प्रभाव छोड़ जाता है।

मनुष्य की अन्तर्वेदनाएं और कुण्ठाएं जड़-चेतन तथा पशु-पक्षियों के साथ सहानुभूति का लगाव, हृदय का तार-तम्य, समान अनुभूति आदि भावों के चित्रण में तो कालिदास अपूर्व प्रतिभाशाली कवि हैं। उनके कुमारसम्भव महाकाव्य में वियोग शृंगार वर्णन के कुछ सुन्दर उदाहरण हैं। जिनमें पार्वती का शिवजी के प्रति वियोग जन्य उद्गार शत्-शत् धाराओं में बह निकलता है। वन में तपस्या करती हुई पार्वती शिव को अपने वर के रूप में पाना चाहती थी किन्तु शिव उसे अभी तक नहीं मिले। उनके वियोग में विह्ल-मानसा वह स्वप्न में भी उन्हें ही देखती थी—एक बार स्वप्न में शिव को उसने भुजपाश में जकड़ लिया, तभी नींद टूट गई "हा ? शिव कहां चले गए" यों कहकर उसका भुजपाश बंधा-बंधाया ही रह गया। कालिदास ने इस स्थल पर वियोग का मार्मिक चित्र खींचकर आगे इसी सम्बन्ध में लिखा है—कि जंगल में उसे सूने प्रान्त में वियोगतप्ता पार्वती ने अपनी सहेलियों किन्नर बालाओं के आगे रूंधे कण्ठ से शिव का गुणगान किया, सुनकर उसकी संगीत सहचरी सब सहेलियां कई बार रोई। पार्वती उलाहने के भाव में बोल उठी—हे शिव तुझे तो संसार सर्वज्ञ कहता है, किन्तु आश्चर्य है कि इस भावानुरक्त मानव को तू अभी तक नहीं देख पाया ? रात को भीषण तपस्या करती हुई पार्वती विरहातुर होने के नाते सामने नियुक्त चकवा की जोड़ी पर भी दया दर्शाती थी, जो एक दूसरे के लिए क्रन्दन कर रहे थे। जब पार्वती को प्रिय नियुक्ति की यह विरह वेदना अत्यधिक व्यथित करने लगी तो उसने शिवजी का चित्र खींचकर उसे एकान्त में उलाहने देना शुरू कर दिया।

कलिदास के वियोग वर्णन के दो पहलू हैं, एक में वह वियुक्त प्रिया के सम्बन्ध में नायक के मार्मिक उद्गारों का चित्रण करता है तो दूसरे में दिवंगत प्रिय से सम्बन्धित करूणापूर्ण वियोग की ज्वाला का। दोनों पहलू अपूर्व रस निष्पत्ति को जन्म देते हैं। पार्वती का वियोग वर्णन प्रथम पहलू में आ सकता है। दूसरे में अज का दिवंगत प्रियतमा इन्दुमती के प्रति मार्मिक उद्गार बहाए हैं। यह प्रसंग रघुवंश महाकाव्य के अष्टम सर्ग में चित्रित है। इसी प्रकार प्रथम पहलू का वियोग वर्णन कवि के मेघदूत काव्य में और अधिक मार्मिक बन पड़ा है। नवविवाहित यक्ष अपने स्वामी से निर्वासन का दण्ड पाकर अकेला रामगिरि आश्रम पर ज्यों ही पहुंचा त्यों

ही उसे अपनी प्रिया का असह्य वियोग जलाने लगा। इस प्रेमोन्माद में वह इतना उन्मादी बन गया कि आकाश पर उड़ने वाले बादलों को प्रिया के लिए संदेश देने लग पड़ा। इस सन्देश गाथा में कवि ने यज्ञ के वियोग तप्त हृदय के गीले भावों को ही केवल मूर्त रूप नहीं दिया अपितु उसके साथ प्रकृति का रागात्मक एवं सौन्दर्यपूर्ण सम्बन्ध जोड़कर रचना में एक अद्‌भुत आनन्द की सृष्टि कर दी है।

इसमें प्रेमातुर भावों के विविध रूपों के साथ प्रकृति के विविध रंगीन दृश्य भी कलात्मक ढंग से जोड़े गए हैं, जैसे—यक्ष रूंधे अश्रु प्रवाह को रोककर उत्सुकतापूर्वक घनपटल की ओर एकटक देखता रहा और सोचता रहा। क्योंकि बादलों के दर्शन से सुखी व्यक्ति का हृदय भी आन्दोलित हो उठता है; फिर गले लगने वाले प्रेमी के दूर रहने की तो बात ही क्या? हे बादल मेरे आने के दिन गिनती हुई अपनी भाभी को तुम जाकर देखोगे। फूल के समान कोमल हृदयवाली का आशा रूपी धागा कभी न टूटने पाए इसीलिए मेरा सन्देश उसे जाकर दो। तुम्हारे मार्ग में चातक रट लगाएगा और गर्भाधान के समय क्षण परिचय द्वारा तुम्हारे से परिचित बगुलियों की पक्तियां भी तुम्हारे मार्ग में उड़ेगी।

मार्ग में गर्जना करते हुए जब चलोगे तो मृणाल का भोजन साथ लिए हुए हंस भी कैलाश तक तुम्हारा साथ देंगे। इस वर्णन प्रसंग में मेघों के स्वभाव, शीतल वातावरण के साथ घटाटोप का सुन्दर, वर्णन उपस्थित करते हुए कवि शृंगार करुणा व मानव प्रकृति का सम्बन्ध इन सब का रमणीक गठजोड़ किया है। बादलों के घटाटोप वर्षण में हंस व बलाकाएं श्वेत पंखों के साथ उड़-उड़ कर मेघ मण्डित गगन में एक अनूठा चित्र उपस्थित करती हैं।

हंस मृणालों की खुराक साथ लेकर बादलों के संग उड़ने लगते हैं। ये दृश्य विधान देखकर कवि ने वियोग शृंगार की पोषक सामग्री का कितना सुन्दर चुनाव किया है—आगे देखिए—शृंगार लीला के प्रसंग भी बीच में किस प्रकार उभार दिए गए हैं—हे बादल तुहारी गर्जना सुनकर सिद्धों की रमणियां डर से अपने स्वामी सिद्धों से चिपक कर उन्हें आलिंगन देंगी इस पर सिद्ध तुम्हारा धन्यवाद करेंगे। आगे चलकर एक पर्वत में बैठकर विश्राम कर लेगा, वहां तुम्हारे सम्पर्क से कदम्ब के पेड़ रोमांचित हो रहे होंगे तथा वहां की गिरि-कन्दराओं में होने वाली रति क्रीडाएं नगर के उद्दाम यौवन की छटा बहा रही होंगी। आगे जंगल, नदी व पहाड़ों के उद्यानों में जूही की कलियों को जलकणों से सिञ्चित करते चलोगे, वहीं पर पुष्पलावी (फूल बीनने वाली) युवतियों के गालों से वहते हुए स्वेद बिन्दुओं द्वारा मुरझाने वाले कर्ण-भूषण के फूलों को छायादान देकर उन युवतियों का परिचय भी प्राप्त करोगे। उत्तर दिशा की ओर मुड़ते हुए यद्यपि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा पड़ेगा, किन्तु उज्जयिनी के ऊंचे

महलों के दर्शन किए बिना नहीं रहना, वहां ऊंचे महलों पर खड़ी एवं बिजली की चमक से डरी हुई कामिनियों की आंखों से आंख नहीं मिलाओगे तो जीवन के सुख से ही वंचित रह जाओगे। तुम्हारे उज्जयिनी पहुंचने पर ऊंचे महलों पर बैठी युवतियों के केशपाश की सुगन्धी उड़कर आएगी, पालतू मोर नाचेंगे तथा युवतियों के पांवों की मेंहदी से रंगे फर्श वाले भवनों की शोभा देखते हुए तुम्हारी सब थकावट जाती रहेगी।

इधर वेश्याएं नुपूरों की झनझनाहट लेकर भौंरे जैसी आंखों द्वारा तुम्हें प्रेम से देखेंगी। और वहीं रात के घने अन्धेरे में प्रेमियों के पास जाती हुई प्रेमिकाओं को कसौटी पर कसी हुई सुवर्ण रेखा की भान्ति बिजली की चमक देकर रास्ता दिखाना।

उज्जयिनी का राजसी मादक चित्र उपस्थित करने के पश्चात् कवि इसी प्रकार आगे श्रृंगारिक वर्णन के साथ-साथ भौगोलिक वर्णन भी देता चला गया है। अपनी प्रिया के प्रति यक्ष के अत्यन्त प्रेम का सुन्दर चित्र उपस्थित करते हुए कालिदास ने इस रचना में अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि की है। अन्त में यक्ष से यों कहलवाया है—"हे बादल मेरी प्रिया से कह देना कि जब मैं चट्टान पर गैरी की लालिमा से उसका चित्र खींचकर आत्मविभोर होकर उसके पांवों पर गिरता हूं, तभी आंखों में आंसू उमड़ कर मुझे उसके दर्शन ही नहीं करने देते। देखो निर्दय भाग्य इस अवस्था में भी हमारा मेल नहीं होने देता।

श्रृंगार व प्रेम के इस प्रसंग में कवि की दूसरी रचना रघुवंश महाकाव्य के एकाध स्थल पर भी ध्यान आवश्यक देना होगा। वहां केवल वसन्त वर्णन की मादक छटा का एक दृश्य यहां उपस्थित किया जाता है। इस वर्णन में कवि द्वारा अगाध सौन्दर्यानुभूति रमणीय वर्णन, कला श्रृंगार की छाया एवं सूक्ष्म निरीक्षण तथा दृश्य विधान इतने गहराई तक जा पहुंचे हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। भारत की बसन्त बहार का यह भड़कीला वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिल पाएगा। इस वर्णन प्रसंग में कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—बसन्त ऋतु में उत्पन्न अशोक फूल ही केवल कामोद्दीपक नहीं बना अपितु कमियों के मानस में उद्वेग भरने वाला युवतियों का कर्णभूषण भी रसोत्तेजना बन गया। इधर बसन्त बहार ने कामिनियों के गालों पर श्रृंगार के साधन फूल और पराग पैदा कर दिए। उधर भौंरे गुनगुनाते हुए बहार का धन्यवाद करने लगे। स्त्री की मुख मदिरा से पोषित एवं भौंरों से आकुल बकुल पेड़ प्रफुल्लित होने लगा। बसन्त आने पर किंशुक पेड़ पर लाल-लाल फूल जड़े हुए यों दिखाई देते थे जैसे प्रियतमा द्वारा रतिक्रीड़ा में दिए हुए नायिका के शरीर पर रक्तवर्ण के घाव हों। दांतों के घाव लिये हुए कामिनियों के अधर शीत से दुखते थे तथा जघनों से

करधनी नीचे खींची जाती थी। सूर्य भी ऐसे शीत को पूर्णरूप से दूर तो नहीं कर पाया किन्तु उसे कम कर पाया था। आम की मञ्जरी विकसित होकर लोगों को मानो नर्तन सिखा रही थी। जब मलय की हवा से आंदोलित होने लगती तो ऋषि-मुनियों के मन भी काम वश में आ जाते थे। वन की वृक्षावलियों को सर्वप्रथम कोकिल ने अपने कलनाद् से सम्बोधित किया मानो उनसे रमणियों की प्रेम कथा की वार्ताएं सुनाई पड़ रही थीं। भौंरों के संगीत को साथ लेकर फूलों के दांतों की शोभा मुक्त एवं हवा से कम्पित वन पंक्तियां चमकने लगीं। अपनी सुगन्धि से केसर के फूल को भी मात कर देने वाली सुरा पी कर कामिनियां लगातार अपने पतियों के साथ सुरत-क्रीड़ा में जुट गईं।

झनझनाती व ढलकती हुई करधनियों वाली युवतियों के समान बावड़ियों में कमल खिले थे उनमें हंस क्रीड़ा कर रहे थे तथा वे अपनी इस शोभा से मुस्कुरा रही थीं। आग की लपट के समान रक्त तथा सोने के भूषण के प्रतिनिधि कार्णिकार के फूलों को लेकर युवतियों ने अपने जूडों में गूँथ लिया। मधुगन्ध युक्त नए पत्र दल रूपी अधरों वाली एवं फूलों की हंसी-हंसती हुई अब मल्लिका नामक लता सुन्दर नायिका की भान्ति कामुकों के मन को मोहित करने लगी। तिलक वृक्ष की मंजरी भ्रमर समूह द्वारा सुशोभित होकर तरूणी के केशपाश में गुंथे हुए मोतियों की लड़ियों का संग पाकर उन्हीं जैसी दीखने लगीं। धनुषधारी कामदेव के मुख का सुगन्धित चूर्ण जो उस का ध्वज पट जैसा दिखाई पड़ रहा था, वन के पुष्प पराग से मिलकर बहने लगा और उस पर भौंरों का झुण्ड टूट पड़ा। वसन्तोत्सव पर हिंडोले पर झूलती हुई कामिनियों के गिरने के डर से प्रियतम के गले में बाहू डाल दिए।

"हे प्रिय रूठना छोड़ दो, गई हुई जवानी फिर नहीं लौटेगी। आम पर बैठी कोयल की यह पुकार सुनकर युवती अपने प्रिय के गले जा मिली।

कविता में ललित व लावण्य की दैवी कल्पनाओं के संयोजक कालिदास ने जिस विषय पर लेखनी उठाई है उसी में मानसिक सरस तृप्ति का स्रोत बहा दिया।

वर्णन कला, पैनी दृष्टि, वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण, उस की साकार काल्पनिक चित्र-रचना, भाषा सौष्ठव, प्रसाद गुण आदि अनेक विशेषताएं हैं, कवि की लेखनी में। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण तथा मानव मानस के गूढ़तम भावों का प्रकटीकरण कालिदास की और अधिक विशेषता है। कोई भी वर्णन हो उसमें शृंगारिक भावना की अन्तर्भूति की छाया प्रदान करने में कालिदास सब से अग्रसर हैं। यहां तक कि करुणा के वर्णन में भी समयानुकूल यह रागात्मक भावना करूणा के सन्दर्भ को उसी रस में और अधिक उत्तेजित कर देती है। इस का उदाहरण रघुवंश महाकाव्य का

"अज विलाप" प्रकरण है। उसमें से करूणा-शृंगार मिश्रित कुछ उदाहरण ही यहां दे देने पर्याप्त होंगे—इन्दुमती का शव राजा की गोद में पड़ा है, वह आंसू बहाता हुआ कहने लगा—"सुरतक्रीड़ा जनित पसीने के कुछ अंश अब भी तुम्हारी गालों पर दीख रहे हैं, किन्तु तू तो परलोक सिधार गई है। धिक्कार है इस सांसारिक सारहीन जीवन पर। तुम्हारे जूड़े में गुंथे गए फूल जो भौंरे जैसे काले तथा कुण्डालित बालों से शोभायमान है, अब भी हवा के झोंके से जब जूड़ा हिलने लगता है तो तुम्हारे फिर से जी जाने की आशा बंधती है।" "तुम्हारी पहनी हुई करघनी सुख के समय उछलती थी, अब तुम्हारे मरने का शोक लेकर यह भी निश्चेष्ट सी पड़ी है।"

तुम्हारे मरने पर मैं विरहातुर न रहूँ, इसीलिए तुमने अपनी मधुर आवाज़ कोयलों में, हंसिनियों में अपनी मदमस्त चाल, हरिणियों में, अपनी सुन्दर आंखें तथा हवा से कम्पित लताओं में अपनी मदभरी चेष्टाएं रख दी हैं। तुमने एक बार इस आम के पेड़ तथा प्रियंगु लता दोनों को प्रेमी-प्रेमिका कह कर पुकारा था, अब इनके विवाह-मंगल रचाए बिना ही चल दीं।"

इस अशोक पेड़ पर जब फूल आएंगे, तो मैं उन्हें अपने केशपाश में गूंथूंगी, यह थी तुम्हारी अभिलाषा, अब इन्हें तुम्हारी मरण क्रिया में कैसे लगाऊंगा ? फूलों की कोमल शय्या पर भी तुम्हारा मृदु अंग दुखता था, अब यह चिता पर कैसे चढ़ेगा।

तुम्हारे पायल मुखरित चरणों की कृपा प्राप्त किए हुए यह अशोक पेड़ अब तुम्हारी मृत्यु पर फूल रूपी आंसू गिरा रहा है। समान सुख-दुःख वाली सखियां, प्रतिपदा के चन्द्र के समान यह सुन्दर बालक, अद्वितीय प्रेम में इन सबके रहते हुए भी तुम्हारा यह कर्त्तव्य (मरना) निष्ठुर दिखाई पड़ता है। अब तो मेरा धैर्य नहीं रहा, शृंगार (Romance) मिट गया है। गाना बजाना तथा मौसम-बहार के उत्सव भी मेरे लिये समाप्त हो गये हैं। मेरी शय्या भी तुम्हारे बिना सूनी हो गई है। मेरी घर वाली, मन्त्री तथा संगीत-वाद्य-नृत्य आदि ललित कलाओं में मेरी प्रिया शिष्या तूं ही थी। निर्दयी मृत्यु ने तुझे लेते हुए बता क्या कुछ मेरा नहीं ले लिया। ऐश्वर्य रहते हुए भी मेरे सब भोग तुम्हारे पर ही आश्रित थे, तुम्हारे न रहने पर अब ये सब निष्फल हैं।

उपर्युक्त "अज विलाप" के प्रकरण के उदाहरणों द्वारा यह स्पष्ट है कि कालिदास प्रेम व शृंगार का कवि होने के सम्बन्ध से अपनी अपूर्व कवि-कल्पना द्वारा करुणा में भी ललित शृंगार बहा देने में अत्यन्त कुशल है। इसी प्रकार भक्ति या अध्यात्म भावना के वर्णन में भी इतना प्रेम तथा शृंगार रस की सृष्टि कर देता है

कि जिससे नीरस विषय भी अत्यधिक सरस हो उठता है। पार्वती की तपस्या का वर्णन जो अध्यात्म तत्त्व पर आश्रित था, करते हुए भी कवि ने उसमें अपूर्व शृंगार मिश्रित सौन्दर्य की सृष्टि की है। पार्वती के अंग-प्रत्यंग की रमणीयता का वर्णन करते हुए कवि एक स्थान पर कल्पना की उडान भरते हुए इस प्रकार कहता है कि—"जिस पर खिचे हुए चित्र के ढांचे में रंग भरे जाते हैं, तथा जैसे सूर्य की किरणों से कमल खिल उठता है, उसी प्रकार पार्वती के अंग-अंग में यौवन ने प्रवेश किया। "भीषण बर्फीली एवं बादलों के घटाटोप से अन्धकारपूर्ण रातों में सूखे हुए कमलों वाले सरोवर में वैठ कर, पार्वती अपने मुखरूपी कमल की शोभा बिखेर रही थी। उसकी उस समय की कठोर तपस्या को केवल वही काली रात बिजली रूपी आंखों से देखकर साक्षी का काम कर रही थी।

लंका विजय के बाद पुष्पक विमान पर बैठे राम-सीता दोनों अयोध्या को आ रहे थे। चिर विरह सन्तप्त राम ने अब सीता को गत घटनाएं सुनाना शुरू कीं—"जब तुम्हारा हरण हो चुका था, मैं तुम्हें ढूंढता बन में घूम रहा था तो इन सामने दीखती हुई लताओं ने अपनी कम्पित टहनियों से तुहारा मार्ग प्रदर्शित किया था, यहीं आगे तुम्हारी एक पायल गिरी हुई थी, तुम्हारे विरह से मानो वह भी चुपचाप ही पड़ी थी। इस शोक में हिरणियों ने घास खाना छोड़कर आंसू भरी आंखों से दक्षिण दिशा की ओर देखना शुरू किया। (जिस मार्ग से रावण तुम्हें लेकर गया था)। यह माल्यवात् पर्वत है चोटियों पर नाचते बादल के आंसू बहाकर इसने भी मेरे रोने का साथ दिया था। इस सामने वाली अशोक लता पर उस समय फूलों के गुच्छे भरे थे, मैंने तुम्हारे ही उभरे हुए स्तनों जैसी इसे देखकर आलिंगन करना चाहा, किन्तु लक्ष्मण ने लता कह कर मुझे रोका था। यह सामने गंगा बह रही है, जो पृथ्वी के स्तन रूपी पहाड़ों से रत्नमाला के समान नीचे लटकती सी दिखाई पड़ रही है।"

हे प्रिये इसी जंगल में बर्फीले तूफानों, वर्षा तथा बिजलियों की कड़क वाली भयंकर रातें मैंने तुम्हारे बिना बिताई थीं। करुणापूर्ण इस चित्रण में भी कालिदास ने प्रेम व शृंगार की अपूर्व सृष्टि कर डाली है। प्रेम व शृंगार के चित्रण में कवि कालिदास संस्कृत साहित्य के एक जगमगाते हुए सूर्य हैं। उनकी उपमाएं प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण, प्रेमी तथा वियोग सन्तप्त हृदयों की धड़कनें तथा वास्तविक चित्र विधान बेजोड़ व अनूठे हैं। इन की दृष्टि बड़ी पैनी थी, जिस वर्णन का लेखनी से स्पर्श करते, उसमें प्राण फूंक देते। शृंगार व प्रेम वर्णन में इन्हें सफलता मिली, किन्तु करुणा वर्णन में भी उतने ही सफल रहे। इसके अतिरिक्त सामान्य तौर से जिस किसी का भी इन्होंने वर्णन किया है, उसे कला की ऊंची चोटी तक पहुंचा दिया। आज के वैज्ञानिक खोज द्वारा जिस तथ्य तक पहुंच रहे हैं। दो हज़ार वर्ष पहले कालिदास ने

उसी सम्बन्ध में एक वैज्ञानिक तथ्य उद्घोषित किया था। यह तथ्य बादलों के बारे में है—"धूमज्योतिः सलिलमरूतां सन्निपातः क्व मेघः" अर्थात् धुआं, प्रकाश, जल व हवा का मिला-जुला रूप ही बादल है।" कालिदास की यह उक्ति उस युग की वैज्ञानिक खोज की ओर संकेत करती है। दार्शनिक वर्णन में भी कालिदास ने अपूर्व आध्यात्मिक ज्ञान प्रकट किया है। वास्तव में कवि की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी किन्तु उसने अधिकतर प्रेम व शृंगार का जो वर्णन प्रवाह अपनी रचनाओं में बहाया है, उसी के कारण यह विषय कवि का विशेष वर्ण्य माना गया है।

कालिदास जैसा वास्तविक प्रतिभावान् कवि दूसरा आज तक संस्कृत साहित्य में अवतीर्ण नहीं हुआ। ०००

कालिदास की उपमा

कालिदास की उपमा जगत् प्रसिद्ध है। संस्कृत साहित्य में इसकी भी बड़ी भारी गूंज है। उपमा विनियोजन में कालिदास बड़ा सिद्धहस्त कलाकार है। इसकी उपमाऐं उपमेय के इतनी अनुरूप हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक सचमुच झूम उठता है। पिछले कवियों ने इसके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रशंसात्मक उक्तियां कहीं है। जैसे "उपमा कालिदासस्य" उपमा विनियोजन में कालिदास "कवि कुल गुरु" हैं। इन के समग्र ग्रन्थों में उपमा छाई हुई है। उपमा की मनोहरता के अनेकों उदाहरण आलोचकों द्वारा प्रस्तुत किए जाते है। उनका मत है कि कालिदास की उपमा में उपमान, उपमेय की आश्चर्यकारी अनुरूपता के साथ-साथ उसमें जो मार्दव और आकर्षण है वह एक विशेष उपलब्धि है। शकुन्तला नाटक में शकुन्तला के सौन्दर्य चित्रण के प्रसङ्ग में एक सुन्दर उपमा का उदाहरण इस प्रकार है—

अधर: किसलय राग: कोमलं विटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥

प्रस्तुत उदाहरण में अधर को किसलय, भुजाओं को विटप की और यौवन को फूल की उपमा देकर कवि ने मानव और प्रकृति का अपूर्व तादात्म्य जोड़ा है। एवञ्च प्रकृति के कोमल रूप को शकुन्तला के सौन्दर्य का उपमान बनाया है।

शकुन्तला के कठिन वल्कल भी उसे कान्त बना रहे थे। इस भाव को व्यक्त करते हुए कवि ने अनुरूप उपमा का कैसा सुन्दर प्रयोग किया हुआ है कि जैसे कमलिनी का वृन्तजाल कठिन होकर भी उसे सुन्दरता देता है। उसी प्रकार शकुन्तला के शरीर पर वल्कल भी शोभा दे रहा है। यहां भी प्रकृति का कोमल उपमान ही ग्रहण किया गया है। कवि की उपमा में एक विशेष बात यह है कि उसमें निहित मनोवैज्ञानिकता भा है। शकुन्तला से दूर होने पर तो शरीर आगे चल रहा है, किन्तु शकुन्तला की ओर ऐसे भाग रहा है जैसे हवा में उड़ाया गया ध्वज-पट वापिस पीछे की ओर आता है। चेतन और अचेतन का सम्बन्ध जोड़ने में कवि जहां भी उपमा का प्रयोग करता है वहीं न केवल मनोवैज्ञानिकता अपितु अपूर्व रस की सृष्टि होने

लगती है। मन का पीछे दौड़ना और ध्वज-पट का हवा के रुख के अनुसार आगे की अपेक्षा पीछे जाना, दोनों अर्थों की तुलना में गहरी मनोवैज्ञानिकता है।

काव्यप्रकाशकार ने उपमा का लक्षण "साधर्म्यमुपमा भेदे" किया है। यहां उपमान और उपमेय का भेद होते हुए भी दोनों की समानता स्थापित की जाए वहाँ उपमा होती है। कालिदास ने जो उपमा का रूप उपस्थित किया है, विश्वसाहित्य में उसका अपना ही स्थान है। इस उपमा को देखकर कवि की परिपक्व और अनुभूत (बुद्धि का परिचय मिलता है। शकुन्तला की विरहवेदना से मुरझाई गई अङ्गयष्टि की तुलना सूखे पत्तों वाली एवञ्च हवा से चलायमान माधवी लता के साथ की गई है। माधवी लता की म्लानता शकुन्तला की कोमलता से सन्तुलित होकर उसकी विरह वेदना जन्य म्लानता शुष्क पत्रा माधवी के साथ साङ्गोपाङ्ग उपमा बन पड़ी है। जिसमें काव्य सौन्दर्य निखर आया है। इसी प्रकार विरही दुष्यन्त के लिए कामदेव भी इस प्रकार शान्तिप्रदायक बन जाता है जैसे गर्मी का दिन पहले ताप प्रदान करके बादलों द्वारा तापशान्त कर देता है। इन उपमाओं में कितना बल है, कितनी सहजता है और कितना आकर्षण है। प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत की सर्वाङ्गपूर्ण तुलना बिठाने में कालिदास ने उपमा के माध्यम से अपने चिर अनुभव की परिपक्वता काव्य द्वारा प्रकट की है। वैसे तो कालिदास जैसा कवि आज तक विश्व में पैदा नहीं हुआ, यद्यपि उसे शेक्सपीयर कहा गया है वास्तव में कालिदास इससे भी महान् है। इस तथ्य को सब का हृदय मानता है। फिर भी काम चलाने के लिए किसी कम वस्तु के साथ भी तुलना की जा सकती है। जब उसकी समता का कोई पदार्थ न मिले तो ऐसा करना पड़ता है। कालिदास की रचनाओं में सब रसों, गुणों, अलङ्कारों, ध्वनियों तथा भावों का ऊँची चोटी का परिपाक् हुआ है। उपमा तो उनकी कविता का एक अङ्ग है, जिसे साहित्य में सर्वोपरि स्थान मिला है जैसे अन्य अङ्गो को। शकुन्तला नाटक में जितनी भी उपमाऐं आई हैं उनमें लगभग सभी ऐसी है जिनका प्रकृति के साथ सामञ्जस्य जोड़ा गया है, एवञ्च जिन में अपूर्व माधुर्य, सौन्दर्य और रस का आविर्भाव हुआ है। कालिदास ने शकुन्तला के सौन्दर्य-चित्रण में प्रकृति का पूर्ण सहारा लिया है। कवि नायिका का रूप लावण्य प्रकृति की कोमलता के आञ्चल में ही देख रहा है। इसी कारण प्रस्तुत रचना की अधिकतर उपमाऐं प्रकृति मानव का सामञ्जस्य रूप लेकर चली है। इसी क्रम के अन्तर्गत आगे देखिए कुछ उपमाओं के उदाहरण—दुष्यन्त शकुन्तला से कहता है :—

त्वं दूरमपि गच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।
दिवसावसानेच्छायेव पुरो मूलं वनस्पतेः ॥

यहाँ शकुन्तला का हृदय में बसना, वृक्ष की छाया का सदा उसके मूल में रहने

के साथ तुलना की गई है। शकुन्तला को छाया का रूप और दुष्यन्त को पेड़ के मूल का रूप देना यथार्थ उपमा है, जिसके साथ प्रकृति का समन्वय है।

"मणिबन्धात् गलितमपीदं संक्रान्तो शरीर परिमलं तस्या।
हृदयस्य निगड़मिव मे मृणाल वलयं स्थितं पुरतः ॥

इस पद्य में शकुन्तला का सुगन्धित मणिबन्ध उसके दुर्बल होने के कारण नीचे गिरा देखकर दुष्यन्त कहता है कि यह उसके लिए हृदय के कांटे के समान है। यहां भी मनुष्य हृदय के साथ प्रकृति के उपकरण की उपमा द्वारा सामञ्जस्य जोड़ा गया है। उपमा में यथार्थता और आकर्षण है। इससे दुष्यन्त के हृदय की स्थिति का भी साकार आभास मिलने लगता है तथा शकुन्तला के प्रति उसके गहरे आकर्षण का भी स्पष्ट संङ्केत है। इसमें विरही की मनोदशा का सुन्दर साकार रूप प्रकट किया गया है। शकुन्तला नाटक में एक अन्य उपमा बड़ी मार्मिक और रहस्यपूर्ण है।

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतयेभुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्नि गर्भाशमीमिव ॥

जैसे शमी के पेड़ में अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार दुष्यन्त का तेज शकुन्तला के गर्भ में है। यह उपमा कितनी साङ्गोपाङ्ग और गम्भीर है। शकुन्तला की पावनता प्रकट करने के लिए उसे सत्क्रिया की मूर्ति की उपमा दी गई है, दुष्यन्त शकुन्तला को त्यागकर पछताता हुआ कहता है, उसे धर्मपत्नी पद देकर भी उसका इस प्रकार त्याग किया है जैसे बीज बोई हुई धरती जिसने कालान्तर में फल देना है, किसान त्याग देता है।

वास्तव में इन उपमाओं को पढ़ कर पाठक का कठिन हृदय भी द्रवित हो उठता है वैसे तो प्रस्तुत नाटक की महानता संसार में प्रसिद्ध है, उसमें भी जो उपमायें दी गई हैं वह सब इसके अनुसार महत्वशाली है। जिन्होंने प्रस्तुत रचना को चार चांद लगा दिए हैं। कालिदास का यह उपमा विधान उनकी अन्य रचनाओं में भी विशिष्ट स्थान रखता है।

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में राजा दलीप के बीच में कपिला गौ तथा उस के आगे खड़ी सुदक्षिणा रानी थी। उस समय गऊ इस प्रकार लगने लगी जैसे दिन और रात के बीच सन्ध्या शोभायमान होती है।

उपमान उपमेय की वैज्ञानिक समता के सन्दर्भ में राजा प्रकाशमान था, उसे दिन की उपमा दी। रानी चांदनी रात के समान सौन्दर्य से जगमगा रही थी, इसलिए उसे रात की उपमा तथा कपिला गौ को लाल सन्ध्या की उपमा देकर कवि ने गुणसाम्य

प्रदर्शन में अद्भुत कला का प्रदर्शन किया है, इसी प्रकार षष्ठ सर्ग के 67 वें श्लोक में स्वयम्वर में वर-वरण के लिए चलती हुई इन्दुमती के सम्बन्ध में भी एक मार्मिक उपमा का रूप देखिए। पति का वरण करने वाली इन्दुमती रात में चलती हुई दीपशिखा की भांति, जिस-जिस राजा के पास से गुज़रती है, वही राजा विवरणभाव को प्राप्त हो जाता था। स्वाभाविक है कि आगे चलती हुई दीपशिखा पीछे अन्धेरा कर देती है, दीपशिखा रूपी इन्दुमती भी आगे जाती हुई पीछे छूटे हुए राजाओं के मुखों पर निराशारूपी अन्धेरा पोत रही थी।

कालिदास की उपमाओं में मार्दवता, कोमलता, स्वाभाविकता आदि के साथ जो विशेष गुण हैं, वह है मनुष्य हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र उतारना, तथा मानव की वास्तविक मनोदशा को अभिव्यक्त कर देना। कहीं-कहीं इनकी उपमायें दूसरे ढंग का चमत्कार लेकर चलती है। जैसे "कुमारसम्भव" में पार्वती की वाणी की मिठास के चित्रण में क्या मार्मिक बात कही है कि उस की वाणी के आगे कोयल की काकली भी टूटे तारों वाली वीणा के फीके स्वर जैसी बन जाती थी।

कालिदास की कुछ अलङ्कारिक उक्तियां जिनके मूल में उपमा का पुट रहता है, बड़ी अनुभूत होकर हृदय को छू लेती हैं। जैसे—

"अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव यथा शरीरिणाम्" अर्थात् तपा हुआ लोहा भी जब कोमल हो जाता है तो मानव के ठेस पहुंचे हुए हृदय की बात ही क्या है। पदं ही सर्वत्र गुणैर्निधीयते। सब स्थानों में गुणों द्वारा ही प्रवेश मिलता है।

"आदानं ही विसर्गाय सतां वारिमुचामिव"

सज्जनों का दान लेना बादलों की तरह प्रतिदान के लिए होता है।

याञ्चा मोघा वर माधे गुणे नाधमे लब्धकामा

गुणवान् व्यक्ति के आगे की गई याचना असफल होकर भी दुष्ट व्यक्ति से सफल हुई याचना से कहीं अच्छी है। "शरीर माघं खलु धर्म साधनम्" धर्म का मुख्य साधन शरीर है। "शशिना सह यानि कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते" चन्द्रमा के साथ चाँदनी और बादल के साथ बिजली जाती है। इत्यादि।

उपमा के प्रसंग में पुनः यह कह देना आवश्यक है कि कालिदास की कीर्ति कौमुदी को दिग दिगन्त में फैलाने का एक बड़ा साधन उसकी मार्मिक उपमा है। कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग में ही कुछ और ऐसी सुन्दर उपमाएँ हमें उपलब्ध होती हैं जैसे—

उन्मीलित तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याचतुरस्रशोभी वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥

जैसे तूलिका से चित्र में रंग भरा जाता है, और जैसे सूर्य की किरणों से कमल खिलता है उसी प्रकार पार्वती के शरीर में यौवन फूट निकला। यहाँ पर चित्र में रंग भरना और सूर्य-किरणों से कमल खिलना ये दो उपमान पार्वती के यौवन के साथ ललित साम्य रखते हैं। इस से पार्वती के अद्‌भुत सौन्दर्यपूर्ण यौवन का ध्वनन होता है। किन्तु इन दो उपमानों में जो माधुर्य और ललित भावना तथा शृंगार की झलक है, उस की रचना में कालिदास की कला की विशेषता भी स्पष्ट हो रही है। कालिदास की लेखनी में जो माधुर्य प्रेम और ललितभावना स्वाभाविक रूप में है, वह उनकी कविता के प्रति पद में प्रस्फुटित होती चली गई है। यौवन और वारुणी की मादकता में जो आकर्षण है, वही कालिदास की लेखनी में भी है। तभी तो किसी ने कहा था— "यदि मुझे जीवन में कालिदास की कविता, नई जवानी और दही भात खाने को मिल जाए तो मुझे और कुछ नहीं चाहिये, कुमार संभव की दूसरी उपमा देखिए—

तया दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुटप्रभामण्डलया चकासे।
विदूर्यभूमि नव मेघ शब्दादुद्भिन्नया रत्न शलाकयेव ॥

उस पार्वती लड़की की जननी उसे पैदा कर यों शोभित होने लगी जिस प्रकार वैडूर्यमणि की भूमि से मेघ गर्जना द्वारा रत्न पैदा हो जाता है। यहाँ उपमान उपमेय की समता में जो मादकता शृंगार और सौन्दर्य है, उसी के साथ कवि का वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी स्पष्ट हो गया है। बादल की गर्जना से शैल शिला विदीर्ण होकर रत्न बिखेरती है, यह तथ्य गम्भीर है।

०००

महाकवि कालिदास की कवित्व शैली

प्रकृति के साथ मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ते हुए कालिदास ने अनेकता में एकता का मार्मिक आदर्श उपस्थित किया है।

प्रकृति के कान्त कोमल व मनोहारी रूप द्वारा ही कालिदास ने कविता का श्रृंगार किया। मेघदूत काव्य तो इस प्रकृति रूप का अमर कोष है ही। बादल को मार्ग दिखलाते हुए यक्ष के मुख से कदम्ब पेड़ के पुष्पों का सुन्दर वर्णन हुआ है।

नीपं दृष्ट्वा हरित कपिशं केशरैरर्द्धरूढै :—
राविर्भूत प्रथम मुकुला: कन्दलीश्चानुकच्छम्।
जग्ध्वारण्येष्वधिक सुरभिं गन्धमाध्राय चोर्व्या:।
सारंगास्ते जललवमुच: सूचयिष्यन्ति मार्गम्॥

हे बादल आधे निकलते हुए केशरों से हरे-भरे व धूमिल रंग वाले कदम्ब पुष्पों को देखकर तथा नई पैदा हुई कलियों वाली कन्दलियों को खाकर एवञ्च जंगल की धरती की सुगन्ध सूंघ कर हिरण जलबूंद बरसाने वाले तुम्हारा मार्ग दर्शन करेंगे।

प्रस्तुत पद्य में वर्षाकाल की वनशोभा का चित्र कितना सुन्दर व भीना होकर उभरा है। इसी प्रकार दशार्ण प्रदेश की प्राकृतिक शोभा का सजीव व अति रमणीय चित्र उभारा गया है। वनों में खिले हुए केतकी के पेड़, वन की नीली-पीली पुष्प पंक्तियां तथा पके हुए जामुन वाले पेड़ आदि वन सम्पदा का भव्य वर्णन कवि ने किया है। यक्ष की प्रिया के आंगन में चम्पक (चम्बा) पुष्प का पेड़ तथा उज्जयिनी की पुष्प लाबियों का सरस चित्र कालिदास के प्राकृतिक सहयोग का प्रमाण देते हैं। प्रकृति ने कवि की कला को कितना निखारा है, यह तथ्य कालिदास की ख्याति ही सिद्ध कर रही हैं। रघुवंश के नवम सर्ग में षड्ऋतु वर्णन के माध्यम से कालिदास ने प्रकृति का जो सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है, उसकी तुलना में सब ऐसे वर्णन नीरस पड़ जाते हैं। वसन्त शोभा की मादकता ऐसी प्रकट की गई है कि जिसे पढ़कर पाठक संसार की सब समस्याओं से दूर रह कर एक आनन्दलोक में पहुंच जाता है। कालिदास पर प्रकृति की ऐसी ही कृपा रही है कि उसके प्रत्येक वर्णन को इसने हीरे-मोती व

जवाहरात जड़ दिए हैं। प्रकृति को उपमान बनाकर बसन्त वर्णन के प्रथम श्लोक में ही कवि ने अलौकिक चमत्कार की सृष्टि कर डाली है।

कुसुम जन्म ततो नवपल्लवास्तदनुषट्पद कोकिलकूजितम्।
इति यथाक्रममाविर्भून्मधुर्द्रुभवती मवतीर्य वनस्थलीम् ॥

अर्थात् फूलों की उत्पत्ति, फिर नए-नए पत्ते, उसके बाद भौरों का गुनगुनाना, कोयलों का कुहकना, इस प्रकार वनस्थली में बसन्त ने अपना पदार्पण किया। यहां पर कुसुम पल्लव, भ्रमर झंकार, कोयल काकली इन प्राकृतिक उपकरणों का क्रम कैसी सुन्दर कला द्वारा प्रस्तुत किया गया है। रमणियों के मुख से निकले (कुल्ला करने से) शराब जैसे उन्मादकारी बकुल फूल जब खिले तो भौंरे उस पर टूट पड़े। प्रकृति के इस उपकरण द्वारा कवि का वर्णन बड़ा उन्मादकारी बन पड़ा है। सहकार वृक्ष की शाखा जब हवा से कांपती थी तो लोगों को नृत्य की शिक्षा देती थी। खिली हुई वन पंक्तियों में मुख्य वधु के आलाप की तरह कोयल की प्रथम धीमी आवाज गूंज उठी। इसी प्रकार खिले हुए कमलों से हंसी बिखेरती हुई तथा मदमस्त हंसों की कतारों से सुशोभित बावली (सीढ़ी वाला कुआं) नवयुवती के समान शोभा पा रही थीं।

प्रज्जवलित अग्नि के समान लाल फूल वन शोभा का प्रतिनिधि युवतियों के केशपाश (जूड़ा) का भूषण बन गया। मधुगन्धि से युक्त, लाल पत्र रूपी लाल होठों वाली, फूलों वाली, प्रेमी वृक्ष से आमोद-प्रमोद करने वाली तथा मुस्कुराती हुई (खिले हुए फूल रूपी मुस्कुराहट वाली) नवमल्लिका लता सबके मन को मस्त बना रही थी।

प्रकृति के इस सहयोग द्वारा कवि कालिदास ने अपनी दैवी काव्य कला सर्वत्र प्रकट की है। मानव के साथ प्रकृति का रागात्मक सम्बन्ध जोड़ने में जितनी सफलता कालिदास को मिली इतनी किसी भी कवि को नहीं मिली। संस्कृत साहित्य में कालिदास को दो गौरवमय विशेषताओं से याद किया जाता है—1. प्रकृति का सुकुमार कवि, 2. प्रकृति, शृंगार तथा प्रेम का कवि। कालिदास की कविता में ये सब गुण प्रकृति के सहयोग से ही प्रस्फुटित हुए हैं। कुमार सम्भव में हिमालय का वर्णन भी प्रकृति वर्णन का अनूठा उदाहरण है।

वहां कवि कालिदास की कला प्रकृति वर्णन के माध्यम से अत्यन्त चमक उठी है। कवि प्रारम्भिक श्लोक में ही क्या कमाल करता है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयों नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी बगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

उत्तर दिशा में देवतात्मा पर्वतराज हिमालय पूर्व पश्चिम समुद्र को घेर कर खड़ा है। जैसे धरती का मानदण्ड (गज) हो। इस सब वर्णन द्वारा यह तथ्य भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि कवि कालिदास की सब से बड़ी कविता सहचरी प्रकृति ही है तथा उसका रागात्मक सुकुमार रूप ही कवि ने सर्वत्र अपनाया है।

छन्द प्रयोग :

महाकवि कालिदास ने जिस प्रकार कविता कामिनी का शृंगार किया उसी प्रकार से छन्द प्रयोग द्वारा कविता की शोभा और भी बढ़ा दी है। इन्होंने छन्दों के सम्बन्ध में अपनी शास्त्रीय योग्यता प्रदर्शन करने के स्थान पर उनका नपा तुला तथा कलात्मक प्रयोग किया है। जिससे कविता छन्दों के बोझ से बोझिल नहीं हुई है। एक विशेषता है कि कवि ने रस व भाव के अनुसार ही कविता में छन्दों का प्रयोग किया है। मेघदूत काव्य वियोगात्मक है तथा वियोग वर्णन में उपयुक्त छन्द हैं मन्दाक्रांता। इसीलिए कवि ने पूरे काव्य में इसी छन्द का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए देखिए मेघदूत का एक पद्य—

"वक्र: पन्थ: यदपि भवत: प्रस्थितास्योत्तराशां,
सौधोत्संग प्रणय विमुखों मास्म भूरूज्जीयन्या:।"

इत्यादि। शृंगार व ललित वर्णन में अधिकतर इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग किया जाता है। कवि ने ऐसे प्रसंगों में इसी छन्द का उपयोग किया है जैसे रघुवंश के षड्-ऋतु वर्णन में यही छन्द मिलेगा।

इसी प्रकार करुण व स्वाभाविक वर्णन प्रसंग में कवि ने द्रुत-विलम्बित छन्द रखा है। रघुवंश के नवम सर्ग से ग्यारहवें सर्ग तक इसी प्रकार की घटनाओं के वर्णन में यह छन्द प्रयुक्त किया गया है। रस व भाव की मनोवैज्ञानिक झंकार मुखरित करने में अलग-अलग उपयुक्त छन्द होते हैं। जो तदनुकूल भावनाओं को स्पष्ट करने की शक्ति रखते हैं कालिदास ने इसी सूझबूझ द्वारा अपने काव्यों में छन्द विधान किया है। कवि की छन्द योजना की कला सर्वत्र स्पष्ट होती है।

कवि ने अधिकतर अपनी रचनाओं में बसन्ततिलका, मन्दाक्रांता, स्रग्धरा, द्रुत-विलम्बित तथा अनुष्टुप छन्द का ही प्रयोग किया है।

अलङ्कार विधान :

अलंकारों के नियोजन में भी कालिदास की बेजोड़ कला देखी गई है। इन्होंने

पांडित्य प्रदर्शन के लिए अलंकारों का अन्धाधुन्ध प्रयोग नहीं किया, जिस से कविता कामिनी उस बोझ से ही दब जाए। इन्होंने अलंकारों का भी सुन्दर व नपातुला प्रयोग किया है।

क्षणात् प्रबोधमायाति लंघ्यते तमसावृता।
निर्वास्यत: प्रदीपस्य शिखेव जरतो मति: ।।

इस पद्य में बूढ़े की बुद्धि को बुझते हुए दीपक की लपट की उपमा दी गई है जैसे बुझता हुआ दीपक बत्ती के हिलाने से क्षण में रोशनी की अधिक झलक देकर पुन: धीमा पड़ जाता है। उसी प्रकार बूढ़े को कोई बात याद दिलाने से उसमें क्षण भर के लिए स्मृति की झलक आ जाती है तथा दूसरे ही क्षण में उसे बात फिर भूल जाती है। कालिदास का उपमा विधान तो जगत् प्रसिद्ध है। कहा भी है, "उपमा कालिदासस्य"। जहां तक शब्दालंकारों का प्रश्न है कालिदास ने अपनी रचनाओं में इन्हें स्थान नहीं दिया है। क्योंकि शब्दालंकार केवल शब्दों की क्रीड़ा होती है। कालिदास तो रस सिद्ध कवि थे। उनकी सम्पूर्ण कविता वैदर्भी रीति पर चलकर कोमल सुकुमार व मधुर बनी है। इसलिए यहां शब्दालंकार नहीं आ पाए। अर्थालंकारों में विनोक्ति, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, अपन्हुति जैसे प्रधान अलंकारों को इनकी रचनाओं में अधिक स्थान मिला है। विनोक्ति अलंकार का एक उदाहरण इस प्रकार से है—

अनाकृष्टस्य विषयै र्विद्यानां पारदृश्वन:।
तस्य धर्मरते रासीद् वृद्धत्वं जरसा विना ।।

यहां वृद्धावस्था के बिना भी राजा दिलीप विद्वान् तथा धार्मिक होने के कारण वृद्ध था। यह भाव अलंकारिक तरीके से दिखाया गया है। उत्प्रेक्षा उस स्थल पर अधिक चमक उठी है। जहां रात के बर्फीले तूफान व वर्षा की कड़ी सर्दी में सरोवर के पानी में बैठी पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन है। वहां उसकी तपस्या की दर्शक रात बिजली की आंखों से यह दृश्य देख रही थी।

राजा दिलीप की दिग्विजय को गर्जता हुआ समुद्र बतला रहा था इत्यादि स्थलों में उत्प्रेक्षा बहुत सुन्दर रही है। कालिदास का आलंकारिक विधान कलात्मक, आकर्षक व चमत्कारपूर्ण होकर ही सर्वत्र उभरा है। इसलिए कहना होगा कि अलंकार विधान में कालिदास की तुलना के आगे कोई कवि नहीं ठहर सकता है। ०००

कालिदास का काव्य-सौन्दर्य

महाकवि श्री कालिदास ऐसे भारतीय कवि हैं, जो विश्व भर में प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता में अनूठी कला है, जिसका स्थान आज तक किसी भी कवि की काव्य कला नहीं ले पाई है। इनकी कविता में अद्‌भुत सौन्दर्य है। जिस प्रकार एक स्वर्गीय अप्सरा अनूठे श्रृंगार द्वारा अपने सौन्दर्य में सोने में सुगन्धि जैसा आकर्षण भरकर देवों को भी मोहित कर लेती है। कालिदास की कविता रूपी रूपसी उस अप्सरा से कम नहीं है। संसार सौन्दर्य पर मोहित होता है, इसीलिए कालिदास की कविता कामिनी अपने दैवी सौन्दर्य से जग को मोहित कर रही है।

इतने महान् प्रेम, प्रकृति व सौन्दर्य के सुकुमार कवि कालिदास के व्यक्तिगत परिचय के सम्बन्ध में कोई भी प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं केवल अनुमान द्वारा ही आज हम इस सम्बन्ध में कुछ जान पाए हैं। उज्जयिनी के प्रति उनका अधिक मोह था। मेघदूत में वे अति सुन्दर भावना इस प्रकार प्रकट करते हैं कि—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां ।
सौधोत्सङ्ग प्रणय विमुखो मास्य भूरूज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दाम स्फुरित चकितैस्तत्र पौराङ्गनानाम् ।
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्यितोऽसि ॥

यहाँ पर कवि ने बादलों को पुकार कर कहा है कि वह अलका को जाते समय उज्जयिनी के ऊँचे राजभवनों के प्रेम से वञ्चित न रहे। वहाँ जाकर बिजली की चमक से डरी हुई सुन्दर रमणियों से आँखें चार न करे तो वह वञ्चित ही रहेगा।

इस वर्णन से कालिदास के उज्जयिनी निवासी होने का अनुमान है। उनके जीवन के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मण बालक थे। बाल्यकाल में ही माता-पिता से विहीन होकर गुरुकुल में आ गए थे। वहाँ वेद, शास्त्र, व्याकरण आदि विषयों का गम्भीर अध्ययन किया था।

शकुन्तला नाटक तथा रघुवंश अपनी इन दो रचनाओं में इन्होंने गुरुकुल के वातावरण का जैसा साकार चित्र उपस्थित किया है, उसी से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है। उनकी रचनाओं से इनकी सर्वशास्त्रज्ञता व सब कलाओं की पारङ्गतता

प्रकट होती है। विशेष बात तो यह है कि इनके काव्यों व नाटकों में जो सौन्दर्य छलक रहा है उसे यदि स्वर्गीय सौन्दर्य सागर की उपमा दी जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसी कारण कवि कालिदास की रचनाओं के इस पहलू पर लिखना एक बड़ा कठिन कार्य है। लेखनी में इतनी सबलता रहनी चाहिए जिससे सौन्दर्य की कोई बात छूट न पाए किन्तु ऐसा होगा कहाँ। कवि कालिदास जी भी कहते हैं।

क्व सूर्यप्रभवो वंश: क्व चाल्प विषया मति:।
तितीर्षुदुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

अर्थात् रघुओं के वंश वर्णन में मैं ऐसा ही कर रहा हूँ जैसे कोई छोटी किश्ती से समुद्र पार करना चाहता हो। यही बात कालिदास के रचना सौन्दर्य के सम्बन्ध में भी कही जाएगी। कालिदास की उक्तियों में कितना सौन्दर्य है—एक उदाहरण दिया जाता है—

आकार सदृशप्रज्ञ: प्रज्ञया सदृशागम:।
आगमै: सदृशारम्भ: आरम्भ सदृशोदय: ॥

उस दिलीप की आकृति के समान उसकी बुद्धि थी, बुद्धि के समान ही उसका शास्त्रज्ञान था, शास्त्र ज्ञान के समान ही उसके राजकीय कार्यों का आरम्भ होता था और आरम्भ के समान ही उसकी उन्नति होती थी। अर्थात् आरम्भ भी सुन्दर व उसका फल भी सुन्दर। इनका रघुवंश महाकाव्य सौन्दर्य की दृष्टि से कितना महान् है, उसका एक उदाहरण और दिया जा रहा है। स्वयंवर में इन्दुमती का वर्णन करते हुए कालिदास जी लिखते हैं—

सञ्चारिणी दीप शिखेव रात्रौ यं यं प्रतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स सभूमिपाल: ॥

अर्थात् किसी राजा को पतिरूप में स्वीकार करने के लिए इन्दुमती राजाओं की कतार के आगे चल रही थी, जिस-जिस राजा को पीछे छोड़ जाती उसी का मुख निराशा से निस्तेज हो जाता जैसे दीप शिखा आगे-आगे चले व पीछे-पीछे अन्धेरा होता चला जाता है। यह इन्दुमती की दीपशिखा के साथ उपमा अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण बन पड़ी है।

वैसे तो कालिदास का रघुवंश महाकाव्य सौन्दर्य की दृष्टि से पूर्णतया एक जैसा है तथापि अज विलाप व रति विलाप इसके ये दो प्रसंग काव्य के क्षेत्र में अपनी समता नहीं रखते हैं। अज विलाप का एक उदाहरण इस प्रकार है—

विललाप स गदगदं वच: सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिणाम् ॥

मृत पत्नी के शव को गोद में लेकर राजा अज जब स्वाभाविक धीरता को छोड़कर रोने लगे तो उस दशा का चित्रण ही इस श्लोक में है। वह अज गद्‌गद् कण्ठ से स्वाभाविक धीरता को छोड़कर विलाप करने लगे क्योंकि तपा हुआ लोहा भी पिघल जाता है तो मनुष्यों की तो बात ही क्या है। यहाँ पर तपे हुए लोहे वाली कल्पना में अत्यन्त सौन्दर्य टपक पड़ा है। कवि ने दु:खी हृदय की अनुभूतियाँ किस स्वाभाविक दृष्टान्त द्वारा अभिव्यक्त की हैं यह सोचने की बात है। ऐसा ही एक प्रसंग उस समय का है जब अङ्गिरा ऋषि गिरिराज हिमालय से शंकर के लिए पार्वती की मंगनी की प्रार्थना कर रहे थे तथा पार्वती पास बैठकर सुन रही थी किन्तु लज्जावश मुख नीचा किए हुए लीला कमल के पत्तों को खेल-खेल में गिन रही थी। जैसे—

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।
लीलाकमल पत्राणि गणयामास पार्वती ॥

इस वर्णन में अविवाहित कन्याओं की मंगनी की बात पर क्या स्थिति हो जाती है, कवि ने उसका स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार कालिदास की दूसरी रचना मेघदूत सन्देश काव्य है, जो रस परिपाक व सौन्दर्य की दृष्टि से बेजोड़ है। यक्ष अपनी प्रिया का सन्देश ले जाने के लिए, बादल के आगे प्रार्थना करने के बाद उसे मार्ग सम्बन्धी दिशा निर्देशन देता हुआ कहता है—हे बादल! हंस भी कमल की नालों का भोजन साथ लेकर कैलाश पर्वत तक तेरा साथ देंगे। और गर्भाधान के क्षण परिचय के कारण तुम सुन्दर को देख आकाश में बगुलियाँ भी उड़ने लगेंगी। वर्षाकाल की स्वाभाविक छटा का कितना सुन्दर यह वर्णन है, यह सन्देश काव्य प्रकृति की लीला भूमि है। कैलाश पर अवस्थित अलकापुरी के बारे में कवि ने यक्ष के मुख से बादल को यों कहलवाया है—

हे कामचारी बादल उस कैलाश पर्वत की गोद में गंगा जी के ठीक तट पर अलका नाम की नगरी है। वह मेरी निवास भूमि है, तू उसे देखते ही पहचान लेगा। यह नगरी उस रमणी के समान प्रतीत होती है जो अपने प्रियतम की गोद में बैठी है और जिसकी सफेद साड़ी का आंचल हवा से उड़ रहा है। स्वच्छ जल की बड़ी-बड़ी बूंदें बरसाने वाले हे श्यामवर्ग मेघ तुझे वे अपने ऊंचे महलों के ऊपर इस प्रकार धारण कर लेगी जैसे बड़े-बड़े मोतियों से गुंथे हुए केश कलाप को कामिनी अपने मस्तक पर धारण कर लेती है। श्लोक निम्न प्रकार से है—

तस्योत्सङ्गे प्रर्णायन इब स्त्रस्त गंगा दुकूलाम्,
न त्वां दृष्ट्वा पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचरिन् ।

या वः काले वहति सलिलोद्गार मुच्चैर्विमाना,
मुक्ता जाल ग्रथितमलकां कामिनीवाभ्रवृन्दम् ।।

कवि कालिदास की रचनाओं में अभिज्ञान शाकुन्तल उनका नाटक न केवल भारतीय अपितु विश्व साहित्य का एक अनूठा रत्न है। जिसकी प्रशंसा जर्मन कवि गेटे तथा सर विलियम जोन्स ने मुक्त कण्ठ से की है। इसके एक-एक शब्द में अमृत बह रहा है। इसमें प्रकृति का सुन्दर रूप तथा मानव की अन्तरंग स्थितियों का साकार चित्रण हुआ है। तपोवन का स्वाभाविक चित्र इस श्लोक में कैसा सुन्दर रूप में निखरा है, जैसे—

नीवारा शुकगर्भ कोटर मुख भ्रष्टास्तरूपामधः
प्रस्निग्धा क्वयिदिङ्गुदफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः ।
विश्वसोपगमादभिन्नगतया शब्दं सहन्ते मृगाः,
तोयाधार पथाश्च वल्कल शिखा निष्यन्द रेखाङ्किताः ।।

अर्थात् कण्व के आश्रम में कहीं तोतों के घोंसलों से गिरे नीवार अनाज के दाने वृक्षों के नीचे बिखरे हैं। कहीं इधर-उधर पड़े चिकने पत्थर यह बता रहे हैं कि उन पर इङ्गुदी नामक जंगली फल कूटे जाते हैं। कहीं विश्वास के कारण निडर होकर हिरण चर रहे हैं। कहीं जलाशयों के आने जाने के मार्गों में मुनियों के गीले वल्कलों के कपड़ों से पानी की बूंदें टपक रही हैं। कण्व आश्रम का यह स्वाभाविक चित्र किस पैनी दृष्टि तथा उन्नत काव्य कला द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

महाकवि कालिदास का दूसरा महाकाव्य है। कुमार सम्भव जो रस व काव्य कला की दृष्टि से कवि की अत्यन्त परिपक्व रचना है। जब पार्वती तपस्या करने जाती है, उस समय का कवि का चित्रण बड़ा ही सरस है। शिवजी के वियोग में उसकी जो दशा थी उसके चित्रण का एक उदाहरण इस प्रकार से है—

त्रिभाग शेषासु निशासु चक्षणम्,
निमील्य नेत्रे सहसा व्यवुध्यत् ।
क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवाग,
सत्य कण्ठार्पित बाहु बन्धना ।।

शिवजी के वियोग में विह्वल पार्वती रात सपने में शिवजी के दर्शन करती है, उन्हें बाहु पसार कर पकड़ना चाहती है तभी उसकी नींद गई और दोनों हाथ पसारे के पसारे ही रह गए। वियोग शृंगार का दूसरा उदाहरण इससे भी बढ़ कर है।

उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सवाष्प कण्ठस्खलितैः पदैरियम् ।
अनेकशः किन्नर राजकन्यकाः बनान्त संगीत सखीररोदयत ।।

अर्थात् जब पार्वती बन में किन्नर कन्याओं के आगे भगवान् शिव के चरित्र का रूंधे हुए कण्ठ से गुणगान करने लगती थी तो उसकी वे संगीत सहचरी किन्नर कन्याएं भी रोने लग पड़ती थीं। इस प्रकार पार्वती ने उन्हें कई बार रूलाया। पार्वती किस मुद्रा में तपस्या करने बैठी थी। कवि ने एक ही श्लोक में इसका सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। जिसे पढ़ कर पार्वती की वह तपस्विनी मुद्रा एकदम सामने साकार हो उठती है।

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु तडिताधराः पयोधरोत्सेध निपात चूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिता प्रपेदिरे क्रमेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः॥

अर्थात् वर्षा की पहली बूंदें तपस्या में लग्न उस पार्वती की भौंहों पर पड़ी फिर होंठों पर गिर कर चूर-चूर होकर छाती पर आ पड़ीं वहां से उदर की रेखाओं में विभक्त हो गईं। इस प्रकार पार्वती की सुन्दरता तथा हिमालय इन दोनों का स्वाभाविक व सरस वर्णन इस रचना में अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। इस सम्बन्ध में सुन्दरता का एक उदाहरण इस प्रकार से है—

उन्मीलितं तूलिकमेव चित्रं सूर्यांशुर्भिभिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभी वपुर्विभक्तं नव यौवनेन॥

अर्थात् जिस प्रकार रेखाचित्र में रंग भर कर सुन्दर चित्र तैयार कर दिया जाता है तथा सूर्य की किरणों से कमल खिल उठता है, उसी प्रकार पार्वती का शरीर चारों ओर से नये यौवन की चमक से दमक उठा। सौन्दर्य चित्रण में कवि की ये दोनों उपमाएं अति सुन्दर हैं।

कवि की सुन्दरता वर्णन सम्बन्धी काव्य कला का उनकी रचना अभिज्ञान शाकुन्तल का एक उदाहरण देखिए। शकुन्तला के शारीरिक सौन्दर्य में प्रकृति के कोमल पक्ष को कितनी सुन्दरता के साथ समन्वित किया है। इस उदाहरण में जैसे—

अधरः किसलय रागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवन मङ्गेषु सन्नद्धम्॥

उस शकुन्तला के अधरों पर पत्ते जैसा लाल रङ्ग चमक रहा है। कोमल पौधे के समान भुजाएं और फूल के समान लुभावना यौवन अङ्गों में छलक रहा है। यहाँ पर सौन्दर्य वर्णन में व्यंजना वृत्ति का आश्रय लिया गया है। कुमार सम्भव के पाँचवें सर्ग में कवि कालिदास ने लिखा है कि सौन्दर्य की परिणति प्रेम में होती है। "प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारूता" यह प्रेम चाहे मानव का हो, चाहे प्रकृति का बिना कारण नहीं होता। उसके मूल में पूर्व जन्म का संस्कार भी रहता है, इसी कारण

निष्कारण मन अपनी इष्ट वस्तु के प्रति आकृष्ट हो जाता है। इसी स्थिति का सुन्दर चित्रण कवि की प्रधान रचना अभिज्ञान शाकुन्तल में किया गया है।

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोध पूर्वम्
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ।।

अर्थात् सुन्दर वस्तुओं को देख कर मधुर शब्दों को सुनकर जो सुखी मनुष्य भा उत्कण्ठित हो जाता है। इसका कारण यही है कि वह पूर्व जन्म की मैत्री का स्मरण करने लगता है।

विक्रोमोर्वशी कवि कालिदास का एक अद्भुत नाटक है। इसके गद्य तथा पद्य में अनुलित सौन्दर्य भरा है। इसकी कहानी प्रणय लीला की है। जिसके नायक पुरूरवा और नायिका उर्वशी है।

एषो मनो में प्रसभं शरीरात् पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती ।
सुराङ्गना कर्षति खण्डिताङ्ग सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ।।

उर्वशी स्वर्ग के लिए आकाश में उड़ती हुई पुरूरवा का मन भी अपने साथ ले जा रही है जैसे हंसिनी छूटे हुए कमल के नाल का धागा खींच कर ले जाती है। पुरूखा के मन को ले जाने की बात बड़ी ही विनोदपूर्ण है। ऐसी सुन्दर कल्पना करना कालिदास की कला का ही चमत्कार है। कालिदास का ऐसा सुन्दर हृदय है। जिसने प्रेमी हृदय की इतनी तीव्रता एवं सूक्ष्मता का अनुभव किया था। ०००

तृतीय अध्याय

(महापुरुषों के संस्मरणों से सम्बन्धित)

हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी की रजत जयन्ती और पं. जवाहर लाल नेहरू

बात सन् 1941 की है। राजनैतिक वातावरण देश के कोने-कोने में उबल रहा था। यह सत्ता की राजनीति न होकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की जन-जन में जो चिनगारी दहक रही थी, उसका एक परिणाम या प्रतिक्रिया थी। महात्मा गांधी की तुमुल हुंकार देश के कोने-कोने में गूंज उठी, जिससे शासकों की कुर्सी डगमगाने लगी। इसी लिए दमन चक्र के अन्तर्गत छोटे-बड़े, मध्यम तथा साधारण नेताओं की उनके घरों पर गिरफ्तारियों का चक्र वेग से घूमने लगा। ऐसे वातावरण में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती का आयोजन प्रारम्भ हुआ। उस समय यह विश्वविद्यालय राष्ट्रीय धारा का एक मुख्य स्त्रोत समझा जाता था। भारतीयता का वास्तविक रूप यहीं देखा जा सकता था। कोई भी भारत का ऐसा प्रान्त नहीं था जिसके कुछ छात्र यहां न पढ़ते हों। पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण तक समग्र देश के छात्र इस विशाल आदर्श व राष्ट्रीय महाविद्यालय में पढ़ना अपना गौरव मानते थे।

यह समारोह भारत का एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक आयोजन था; ऐसा कहने का मेरा अभिप्राय यह है कि इसमें उस समय की समग्र भारतीय प्रतिभा जैसे एक स्थान पर आ विराजी थी। इसमें महापुरुषों की एकत्रिता की ऐसी विचित्रता आ जुटी थी, जिसमें प्रत्येक क्षेत्र की अन्तर्देशीय ख्याति प्राप्त प्रतिभाएं थीं। यद्यपि उनकी महानता के क्षेत्र पृथक्-पृथक् थे। राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गांधी, पं० मदन मोहन मालवीय, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री राजेन्द्र बाबू, श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्री वल्लभ भाई पटेल, श्री लाल बहादुर शास्त्री आदि सभी भारतीय नेता रंगमंच पर उपस्थित थे। विज्ञान के क्षेत्र में मुख्य थे नोबल पुरस्कार विजेता डॉ० रमण, प्रशासन के क्षेत्र में लगभग तीन सौ राज्यों के महाराजा भी एक ओर पंक्तिबद्ध होकर बैठे थे। अब इस प्रकार भारतीय गौरव विविध रूपों में एक मञ्च पर एकत्रित हुआ तो ऐसा लगा जैसे भारतमाता का वास्तविक रूप साज-सज्जा के साथ एक स्थान पर आ बैठा हो। शिक्षा का क्षेत्र भी अपनी समग्रता के साथ मोतियों की माला में सुमेरू की तरह चमक रहा था। ऐसा कोई विश्वविद्यालय भारत का नहीं बचा था जिसके

अधिकारी, प्रवक्ता, प्राचार्य व आचार्य आदि न उपस्थित हुए हों। इस सभा को भारतीय प्रतिभा व गौरव के विभिन्न सुगन्धित सुमनों के गुलदस्ते के रूप में देखा जाए तो उचित होगा।

विशाल सभा का रूप इस प्रकार था कि एक अत्यन्त विशाल रंगमंच छायादान और बिछावन के साथ दूर तक फैला चला गया था। उसकी साज-सज्जा की चमक भी अत्यधिक राजसी ठाठ-बाठ की थी। एक पंक्ति में राजे-महाराजे, दूसरी पंक्ति में भारत के नेतागण, तीसरी पंक्ति में शिक्षा शास्त्री, जिनमें विश्वविद्यालयों के कुलपति, उपकुलपति, प्रोफैसर, विभागाध्यक्ष आदि सब आ जाते हैं। पण्डाल के मध्य भाग में एक ऊंची चौकी सजाई गई थी, जिस पर भारत के दो महापुरुष विराजे थे। महात्मा गान्धी जी व पं० मदन मोहन मालवीय जी। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न क्षेत्रों के जो उत्तम मध्यम श्रेणियों के महापुरुष आए थे उनकी गणना तो यहां स्थानाभाव से कभी हो ही नहीं सकती। इस अलौकिक अभूतपूर्व और भारतीय गरिमा के सागर स्वरूप समारोह को देखने और महापुरुषों के दर्शनार्थ स्वयं विश्वविद्यालय के 20-25 हजार छात्रों के साथ लाखों की जनता एकत्रित हुई थी। परतन्त्रता के युग में राजकीय साधन तो थे नहीं, फिर भी इस महान् समारोह पर हिन्दू-विश्वविद्यालय की ओर से पर्याप्त व्यय करके इसकी राजसी साज-सज्जा संवारी गई थी।

जन-समुद्र का उमड़ना :

ऐसी स्थिति में लाखों लोगों की संख्या में इस दैवी आयोजन का दर्शन करने आई थी। फिर प्रत्येक को ये दर्शन क्या आसानी से मिल सकते थे ? परिणाम यह हुआ कि जनता समुद्र सीमा को लांघने लगा और इस एकत्रित महानता सागर का तट भी जैसे टूटने लगा। मंच पर बैठी महानताएं भी आन्दोलित होने लगीं। महापुरुषों की लगी विभिन्न पंक्तियां तो सहम गईं, इसके साथ ऊंची चौकी पर बैठाए भारत के दोनों पितामह महात्मा गान्धी व पं० मदन मोहन मालवीय जी भी उद्विग्न जैसे लगने लगे। मामला गम्भीर था। यदि जनप्रवाह स्टेज तक और दो कदम बढ़ आता तो न केवल उथल-पुथल मचती अपितु उन महान् प्रतिभाओं की क्या स्थिति तथा उसका परिणाम भी कैसा भयंकर निकलता इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता था। परन्तु इस भयंकर परिस्थिति का निपटारा करने के लिए जन-नायक व जन-हृदय-सम्राट् आगे उछल कर आ पहुंचे। बड़ा साहस व बल दिखलाया जवाहर जी ने उस समय जिससे संभावित बड़ी दुर्घटना की आशंका ही दूर नहीं हुई अपितु रंगमंच के दस कदम पीछे जाकर जनप्रवाह रुक गया।

हुआ ऐसा कि जब जन-समुद्र लहरा कर उत्ताल तरंगों से रंगमंच को ही

निगलना चाह रहा था तो ठीक समय पर जवाहर जी क्रोध वक्षोभ से लाल-पीले होकर स्टेज से उछल कर जन-समूह पर आ पड़े। अपने नेता की इस उछल-कूद व क्रोध से तमतमाती आंखें देख कर जनता स्वयं पीछे हटने लगी। जवाहर जी ने किसी को धक्का किसी को मुक्का और किसी को पीछे धकेलना आदि काम जब शुरू किया तो लोगों ने रंगमंच पर विराजमान महानता के स्थान पर समीप की महानता के उनके करचरण स्पर्श पाकर अपने को धन्य ही नहीं माना अपितु अपने स्वप्न को साकार होते भी देखा जिस कारण वे आगे बढ़ रहे थे। मैं पास ही नीचे की कुर्सी पर बैठा था पं० नेहरू की प्रबल शारीरिक शक्ति को देख रहा था। कितनी उत्तेजना, कितना आवेग, कितनी चमक व कितना ओज था इस गणमान्य नेता में। रंगमंच पर बैठे राजाओं-महाराजाओं तथा अन्य महापुरुषों ने इस बचाव और संरक्षण करने के कारण नेहरू जी को हृदय से सराहा होगा। किन्तु उस समय मैंने देखा कि ऊंची चौकी पर विराजमान महात्मा गान्धी तथा मालवीय जी दोनों भारत पितामह आपस में हंस-हंस कर नेहरू जी को इंगित कर रहे थे। प्रतीत होता था कि वे दोनों नेहरू जी के आड़े समय पर पौरुष को दिखाने की प्रशंसा कर रहे थे। उस समय नेहरू जी उनके आगे एक लाडले, व चुस्त किशोर जैसे लग रहे थे। इस स्वतन्त्रता संग्राम के युग में नेहरू जी भारत के जन-मानस में ऐसे बसे हुए थे कि जैसे उनका अपना घर नहीं अपितु भारत ही उनका घर था, अपना परिवार नहीं भारत की जनता ही उनका परिवार थी। वह जो कुछ कहते वह कोटि-कोटि जन-समुदाय का स्वर था। वे जो कुछ करते वह सब भारतमाता का ही कार्य था। जिस तरफ पांव धरते लाखों उसी ओर मुड़ जाते, जहां पहुंचते लाखों की जनता दर्शनार्थ उन्हें घेर लेती। जिस पर क्रुद्ध होते वही प्रसन्न होता यह जान कर कि पण्डित जी उसे जान गए हैं। उनकी एक ही निगाह मनुष्य को निहाल कर देती थी। विचित्र दैवी आकर्षण था पण्डित जी में जिनके प्रबल विरोधी भी उनके सामने पानी-पानी होकर झुक जाते। उन दिनों स्वर्गीय श्री राजनारायण विश्वविद्यालय के छात्र थे। मैंने उन्हें पण्डित जी से डांट खाते स्वयं देखा कि पं० जी जोर-जोर से उन्हें फटकार रहे थे किन्तु राजनारायण जी निम्नमुख किए दीनावस्था में सब कुछ सुनते हुए मौन खड़े थे। वे छात्रावस्था में भी विश्वविद्यालय में छात्र नेता थे किन्तु पं० जी के आगे उन्हें प्रतिवाद तो दूर अपनी सफाई देने तक की हिम्मत नहीं हुई।

इस प्रकार जन-समुद्र को चार पांच गज पीछे हटाकर चकित जैसे नेहरू जी मेरे पीछे खड़े होकर निरीक्षण करने लगे कि कहीं भीड़ आगे तो नहीं बढ़ रही। जब तक पण्डित जी मेरी कुर्सी के पीछे खड़े होकर जनता को देखते हुए रंगमञ्च की सुरक्षा के प्रहरी बने रहे तब तक मैं भी कुर्सी से उठकर उनके पास खड़ा रहा। यहीं पर पण्डित जी से मेरा प्रथम परिचय हुआ, जिसके बल पर मैं कभी-कभी उनके दर्शन

करने आनन्द भवन इलाहाबाद भी चला जाता था। वहां एक दो-बार श्री फिरोज गांधी जी के पास बैठकर मुझे उनसे बातचीत करने का भी सुअवसर मिला।

अब रजत जयन्ती का कार्यक्रम चला। पण्डित जी भी मञ्च पर जाकर नेताओं की पंक्ति में बैठ गए। कार्यक्रम तो लम्बा चला था जिस का पूर्ण विवरण यहां स्थानाभाव के कारण नहीं दिया जा सकता किन्तु इस का एक-आध मुख्य आकर्षण यहां प्रस्तुत करना आवश्यक समझता हूं।

सर्वप्रथम विश्वविद्यालय का मंगल गायिका टोली ने बैच मञ्च पर आकर अपने कलकण्ठी सुरीली और मधुर ध्वनि से "वन्दे मातरम्" का ऐसा गायन किया, जिससे वहां स्थित लाखों की जनता का हृदय देशभक्ति रस से आत्मविभोर हो उठा। कईयों की आंखों में आनन्दाश्रु आ गए। सब के हृदय में देश की गुलामी की घुटन व घाव दोनों थे। इस मधुर कण्ठध्वनि से निस्सृत देश-प्रेम गीत ने जैसे उनके आहत हृदयों पर शीतल वर्षा की हो। इसके अनन्तर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० सर राधाकृष्णन ने संक्षिप्त भाषण दिया। इसके अनन्तर एक-एक करके राजाओं ने माईक पर आकर अपने-अपने संक्षिप्त भाषण दिए, जो सब अंग्रेज़ी में थे। इसके पूर्व उप-कुलपति जी भी अंग्रेज़ी में ही बोले थे। जिससे ऐसा लगने लगा कि कार्यवाही का माध्यम अंग्रेज़ी ही है। अंग्रेज़ी के इस बोलवाले को देखकर महात्मा गांधी जी व्यंग्यात्मक मुद्रा में मालवीय जी से कुछ कहते हुए दिखाई दिए ऐसा लगा जैसे उनके हृदय में क्षोभ की चिनगारी फूट रही थी। जिसे उनके भाषण में अपना प्रज्ज्वलित रूप दिखाना था।

इस कार्य शृंखला की समाप्ति के बाद महात्मा गांधी जी का भाषण प्रारम्भ हुआ। इस भाषण को सुनने के लिए ही लाखों लोग उत्तरप्रदेश के विभिन्न स्थानों से पहुंचे थे स्थानीय काशी की जनता तो उमड़ कर आई ही थी। पिछले भाषण जनता को इतने रुचिकर इसलिए नहीं लगे कि वे अंग्रेज़ी में थे। साधारण जनता उसे समझ नहीं सकती थी। गांधी जी ने अपना भाषण हिन्दी में शुरू करते हुए माईक पर जनता से कहा "अरे भाई सुनाई पड़ रहा है?"

जनता से आवाज़ आई "नहीं" फिर गांधी जी ने कहा—"तो आपने उत्तर कैसे दिया?" सुनकर जनता ने एक ठहाका मारा बात हंसी में समाप्त हुई। फिर उन्होंने जो कुछ मन के उत्तेजित भाव प्रकट करने थे उन्हें प्रकट करना शुरू किया। अंग्रेज़ी की निन्दा व हिन्दी का समर्थन तथा अंग्रेज़ी बोलने वालों पर तीखे फटकार भरे कटाक्ष, इसी पर उनका नब्बे मिनटों का भाषण होता रहा, बीच में कोई राजनैतिक स्थिति का संकेत तक नहीं दिया। हिन्दी के अगाध प्रेमपूर्ण इस समर्थन में वे हिन्दू विश्वविद्यालय की आलोचना तक कर गए, जिसके मुख्य द्वार पर प्रथम पंक्ति में मोटे अक्षरों में

अंग्रेजी में लिखा था। (Hindu University Banaras) और नीचे मोटे अक्षरों में लिखा था-- हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस। इसी विषय पर महात्मा गांधी आवश्यकता से अधिक बोल गए, सभा की समाप्ति पर लोगों को यों कहते सुना गया कि गांधी जी ने अंग्रेज़ी परस्तों को काफी फटकार दी, दूसरे ने कहा राजाओं को भी डांट मिली है। भाषण का शेष भाग स्थानाभाव के कारण यहां नहीं दे रहा हूँ। कुछ भाग स्मरण भी नहीं रहा है।

उस दिन की सभा समाप्ति पर मैंने पं० जवाहर लाल नेहरू को इधर-उधर दौड़ते-भागते खूब देखा। उनके पीछे दो-तीन हज़ार की भीड़ अवश्य रहती थी। उसी के दूसरे दिन मैंने देखा कि लगभग पांच हज़ार छात्रों ने उन्हें क्रीड़ा क्षेत्र में घेर लिया और कहते थे नेहरू जी कुछ समय आप हमारे बीच में बिताइए व कुछ बोलिए। वास्तव में नेहरू जी इनसे छुटकारा चाहते थे लेकिन विश्वविद्यालय के छात्र जो थे। कहां मानते उनका कहना। हठ करने लगे। अन्ततः नेहरू जी को बीच में खड़े होकर भाषण देना पड़ा। मैं खड़ा-खड़ा उन्हें सुन रहा था। आज भी उन की आकृति वैसी की वैसी मेरे हृदय पटल पर अंकित है। गोरा चेहरा, लम्बा कद, मोटी आंखें, दूधिया रंग का चूड़ीदार पायजामा व कुर्ता, पैरों में चप्पल, गुलाबी रंग की जैकेट और सिर पर गांधी टोपी थी। उनका चेहरा ऐसा चमक रहा था जैसे शुक्र तारा नील गगन में अपनी आभा बिखेरता है। विचित्र आकर्षण था नेहरू जी का। अभी भाषण दे ही रहे थे तो छात्रों को सुनने में तल्लीन देखकर अवसर का लाभ उठाकर बीच में ही भाग निकले, छात्र भी पीछे भागे किन्तु नेहरू जी में उस समय प्रौढ़ावस्था की विशेष शक्ति हिलोरे ले रही थी। छात्र दौड़ने में उनका मुकाबला नहीं कर पाए व थोड़े-थोड़े करके पीछे लौट चले। उनमें मैं भी था। मैं पीछे नहीं लौटा पं० जी के साथ दौड़ता ही चला गया। आगे विश्वविद्यालय की पुस्तकालय के सामने उनकी कार खड़ी थी, जिसमें इन्दिरा जी व विजयलक्ष्मी जी बैठी थीं। मैंने उनको नमस्कार किया। पं० जी कार मैं बैठ चुके थे। मुझे कहने लगे बेटा अब तू भी मेरा पीछा छोड़ कल मिलेंगे। कहां मिलेंगे ? मैंने पूछा। विश्वविद्यालय में ही उत्तर मिला। अभी कह ही रहे थे कि उन की कार हवा में बातें करने लगी। मैं वापिस लौटा दूसरे दिन उनके आवास पर पहुँच गया। दैववश अभी वहीं थे और भीड़ भी नहीं थी। मैं पाँच दस मिनट उनके पास बैठा और ऑटोग्राफ बुक पर उनके हस्ताक्षर भी लिये। यह थी मेरी दूसरी भेंट पं० नेहरू से जिनका विशाल व्यक्तित्व मुझ पर असीम प्रभाव डाल गया। इसी के छः वर्षों के बाद जब भारत को स्वतन्त्रता मिली तो उन्हें भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में भी मैंने देखा व भाषण सुना। ०००

सुख के वे अवस्मरणीय क्षण

सुख के वे अविस्मरणीय क्षण हैं जो मेरे जीवन में छात्रावस्था में रहे हैं। मेरा छात्र जीवन का अधिकतम भाग बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रावास में बीता। यह विश्वविद्यालय एक युग में देश भर का गौरव था और आज भी है। मेरे युग में इसके संस्थापक महामना पं० मदन मोहन मालवीय यहीं विराजमान थे और डॉ० राधाकृष्णन इसके उपकुलपति थे। प्रथम दर्शन में ही मैं आनन्द से विभोर हो उठा। किशोर जीवन में जिन नेताओं के नाम सुनता था उनके प्रत्यक्ष दर्शन यहीं होने लगे, भाषण सुनने के भी अनेक अवसर मिले। मैं जीवन का सब से अधिक सुखमय समय इसी को समझने लगा। सुन्दर रहन-सहन, सुन्दर अध्यापन, विश्वविख्यात प्राध्यापक प्राचार्य, आचार्य आदि। महलनुमा अध्यापन भवन, खुले श्यामल मैदान, सुन्दर पार्क और भिन्न-भिन्न प्रांतों के भिन्न-भिन्न वेशभूषाएं-भाषाएं लिए हुए छात्र, महापुरुषों के प्रतिदिन के रोचक भाषण, विभिन्न प्रकार की क्रीडाएं, साहित्यिक व सांस्कृतिक उत्सव आदि-आदि प्रतिदिन चहल-पहल, बौद्धिक विचार विमर्श, गंगा स्नान, श्री विश्वनाथ जी के दर्शनों के साथ काशी की सतरंगी छटाएं, संस्कृत के दिग्गज विद्वानों के दर्शन और उनसे विविध विषयों का अध्ययन आदि-आदि अनेक सुयोग उपलब्धियां और सुअवसर प्रतिदिन विविध रंगों में नृत्य करते जैसे दिखाई देने लगे। मैंने अनुभव किया कि मैं अमरावती नगरी में चला आया हूं। अभी मैंने विश्वविद्यालय में प्रवेश ही पाया था कि दूसरे दिन आर्ट्स कॉलेज में महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के गीता पर भाषण की सूचना पढ़ी। तत्काल वहां पहुंचा करीब तीन हज़ार छात्रों की उपस्थिति थी। प्रथम बार मैंने वहां मालवीय जी के दर्शन किए। रंग गोरा, सफेद कुर्ता व पायजामा, सिर पर गोल सफेद टोपी, कन्धे पर रेशमी दुपट्टा अत्यन्त वार्धक्य के कारण शरीर झुका हुआ किन्तु प्रकाश से तमतमाता मुखमण्डल। गायनाचार्य जी के हारमोनियम पर भक्ति रसपूर्ण संगीत के बाद मालवीय जी ने माईक पर पौन घण्टा गीता पर प्रवचन दिया। किशोरावस्था में किसी महापुरुष के प्रवचन सुनने का यह मेरा प्रथम अवसर था, वह भी इतने बड़े विशाल विश्वविद्यालय में।

इसके दूसरे रविवार में उसी स्थान पर गायनाचार्य जी के मधुर भक्तिरस पूर्ण संगीत के बाद डा० सर राधाकृष्णन जी का गीता प्रवचन भी सुना। आते ही दोनों महापुरुषों के भाषणों के माध्यम से कैसा सुन्दर और सुखमय सम्पर्क मिला। मन झूम गया इस नई सुखमय दुनियां में आकर। फिर आगे चलकर नई-नई शैक्षणिक व बौद्धिक उपलब्धियां दिनोंदिन अधिक देखने को मिलने लगीं। विश्वविद्यालय वैसे ही चार-पांच मीलों में फैला है, फिर कितना ऊंचा इसका स्तर था हर दिशा में पढ़ाई में, भवनों में, उत्सवों में, बौद्धिकी में, सांस्कृतिक गतिविधियों में, भाषणों में, स्वतन्त्रता आन्दोलनों में, कवि गोष्ठियों में, भाषण प्रतियोगिताओं में, खेलों में, नाटकों में, संगीत सभाओं में, धार्मिक व शैक्षणिक उत्सवों में आदि-आदि कहां तक कहूं, मैं देखकर हैरान रह गया सोचा कि किस पूर्वजन्म के किए पुण्यों के बल पर मुझे ऐसी उच्च स्तर की संस्था अध्ययनार्थ मिली है। जो सब ओर से पूर्ण है।

एक दिन सुना कि श्री सुभाषचन्द्र बोस विश्वविद्यालय में भाषण देने आ रहे हैं। मैं भाषण सुनने गया, लगभग पांच-हज़ार छात्रों की सभा में वे बोले। आज भी उनकी विशाल भव्याकृति मेरे मानस पटल पर अंकित है, क्या ही ओजपूर्ण भाषण व बोलने का रमणीक ढंग तथा उन्नत व्यक्तित्व। समय-समय पर मालवीय जी तथा डा० राधा कृष्णन जी के भाषण तो सुनता ही रहता था। अपार भीड़ होती थी इन भाषणों में सब प्रान्तों के छात्र एक साथ बैठ कर आनन्द लेते थे। अन्य भाषणों में छात्रों की नटखट टोका-टोकी तथा युवा सुलभ उथल-पुथल भी होती थी। यही तो जीवन के सुख के क्षण थे, जिसमें हंसी ही होती तथा प्रफुल्लता दोनों लहराती थीं।

जीवन भावुक निश्चित व आमोद-प्रमोद से ओत-प्रोत था। प्रातः स्नानादि के बाद मेस में खाना खाकर कॉलिज में जाना, दोपहर को आकर छात्रावास में अध्ययन, सायंकाल उद्यानों की सैर अथवा गंगा के किनारे अठखेलियों में विहार, अन्य छात्रो के साथ साहित्यिक चर्चा क्या आनन्दमय जीवन था वह भी। पं० जवाहरलाल जी कई बार विश्वविद्यालय में आए व भाषण दिए और उनसे हिलमिल गए। जलसे जलूसों में पंक्तिबद्ध होकर राष्ट्रीय गीत गाते चलते, आपस में हंसी अठखेलियां और मीठी नोंकझोंक। कभी कोई महान् नेता आया तो हज़ारों की संख्या में एक होकर भाषण सुनना युवक मन मचल उठे तो कुछ शोरगुल भी करना। मञ्च से आवाजें आना आप लोग शान्त होकर सुनिये आदि। अधिकतर कवि सम्मेलनों में युवा मन मचल जाते थे व मञ्च पर किसी को जमने नहीं देते थे, हंसी-खिल्ली, हूं, हा, हा, हा आदि ऐसा लगता था कि जीवन के सुनहरे बसन्त में कैसे हंसी प्रफुल्लता तथा खुशियों के रंग-बिरंगे फूल खिलते थे मानो नया यौवन अपनी मस्ती में उमंगें ले रहा था। फिर भी ये युवक बुद्धिमान, मेधावी, चरित्रवान व होनहार होते थे।

उस युग के वे छात्र आज प्रशासन के क्षेत्र में बड़े-बड़े ऊंचे पदों पर हैं। इसी प्रकार विज्ञान, शिक्षा, भौतिकी, यान्त्रिकी, न्याय, कृषि, आर्ट्स संस्कृत आदि क्षेत्रों में भी नाम कमा रहे हैं। आज उन्हें इस रूप में देखकर मुझे वह सुनहरा समय याद आ जाता है। उसी युग में स्वर्गीय राजनारायण को छात्रावास में नेतृत्व करते देखा था। श्री कमलापति त्रिपाठी जी उन दिनों काशी की प्रसिद्ध दैनिक पत्रिका "आज" के सम्पादक थे। अग्र लेख बड़ा सुन्दर लिखते थे। इन्हें एक सप्ताह में कई बार काशी के घाटों पर कभी विश्वविद्यालय के प्रांगण में भाषण करते हम देखते थे। बाबू सम्पूर्णानन्द जी से भी विश्वविद्यालय में भेंटें होती थीं। उनके भी भाषण यहां होते रहते थे। जब बसन्त ऋतु आती तो खेतों में धनिया महकता, नींबू के पेड़ों पर पुष्प भीनी-भीनी सुगन्धि छोड़ते। खेतों में हरियाली छा जाती, बागों में अनेक रंग के फूल मुस्कुराने लगते। कोयलें बोलतीं व विश्वविद्यालय में एक नई प्राकृतिक सौन्दर्य की लहर जाग उठती। बसन्त पञ्चमी के दिन विश्वविद्यालय के सब छात्र व छात्राएं, पीले वस्त्रों में "मधुर मनोहर अतीव सुन्दर यह सर्व विद्या की राजधानी" आदि गाना गाते हुए गंगा के किनारे तक पंक्तिबद्ध होकर जाते। वहां विश्वविद्यालय की आधार शिला पर उत्सव मनाया जाता और महामना मालवीय जी का ओजस्वी भाषण होता था। भाषण में हिन्दी कवि श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, बेढब, बेधड़क, श्याम-नारायण पाण्डेय आदि प्रसिद्ध कवि व लेखक भी होते थे। निराला भी आते व महा-देवी जी भी बीच-बीच में आकर भाषण दे जाती थीं। ये महापुरुष अपने साथ ही रंगीन उत्सव लाते और हमारे में आमोद-प्रमोद छा जाता। एक-दूसरे के साथ हंसी-ठिठौली और साहित्यिक लहर जैसी दौड़ जाती। यह विश्वविद्यालय उस समय के विश्वविश्रुत विद्वानों, नेताओं व कलाकारों की संचार भूमि थी। यहीं रह कर मुझे श्री ओंकारनाथ ठाकुर जी से संगीत सीखने का सौभाग्य मिला। पं० नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी श्री बलदेव उपाध्याय आदि महापुरुषों के साथ सम्पर्क मिला। बढ़िया भोजन, बढ़िया निवास और बढ़िया अध्ययन ये सब तो मिले तथा इसी के साथ मिला गंगा जी का स्नान भी।

विश्वविद्यालय की 1941 की रजत जयन्ती का समारोह तो मेरे जीवन का सबसे बड़ा सुखमय अध्याय था। इस अवसर पर मैंने महात्मा गांधी जी का भाषण सुना, उनसे आशीर्वाद के साथ दो बातें करने का सौभाग्य भी मिला। जयन्ती के विशाल पंडाल में श्री नेहरू, श्री पटेल, श्री मालवीय, श्री राजेन्द्र बाबू, श्री कृपलानी श्री डा० रमण आदि महान पुरुषों को बैठे देखा। यहीं पर म० गांधी जी का लम्बा भाषण भी सुना। यहीं पर भारत के लगभग तीन सौ राजे-महाराजे भी पंक्ति में बैठे हुए देखे, कुछ के भाषण भी सुने। अब सोचता हूं उन सुखमय क्षणों में कितना सौभाग्य, आनन्द था। वह जीवन का सुन्दर प्रभात था। जिसके साथ इसी प्रकार की

महान् व ऐतिहासिक घटनाएं जुड़ी हुई हैं, जो फिर कभी जीवन में साकार नहीं हो पाएंगी। यही वह जीवन है, जिसे सुख के अविस्मरणीय क्षण कहा जा सकता है। शेष सांसारिक जीवन चाहे कितना भी वैभवशाली, उन्नत व भौतिक सुखों से ओत-प्रोत हो किन्तु जो जीवन का सुनहरा प्रभात विद्यार्थी जीवन है, उसके आगे नहीं ठहर सकता। आज भी उन मादक क्षणों की स्मृति आते ही भावुकता के साथ सिहर उठता हूं। और एक मीठी टीस हृदय से उठकर आकाश की लहरों में समा जाती है।

काशी में प्रसिद्ध विद्वान् लेखक श्री सीताराम चतुर्वेदी जी भी कुछ न कुछ सांस्कृतिक एवञ्च कलात्मक आयोजन करते ही रहते थे। एक बार चित्रा टाकीज़ में उन्होंने शकुन्तला नाटक के संस्कृत अभिनय का आयोजन किया जिसे देखने सारी काशी उमड़ आई। उसमें मुझे अनुसूया का अभिनय करने का गौरव मिला। सारे शहर में मेरी भी चर्चा हो गई। कैसा था मैं भी किशोर छात्र जिसे ऐसे गौरवों के लिए चुना जाता था। इसी प्रकार विश्वविद्यालय में एक राष्ट्रीय महोत्सव के अवसर पर मुझे भारत माता का अभिनय करना पड़ा, जिसे हज़ारों छात्रों ने देखा और विश्वविद्यालय भर में मेरी चर्चा हो गई। कितने आनन्द के क्षण थे वे मेरे लिये जहां ऐसे अवसरों पर मेरी आवश्यकता समझी जाती थी। एक बार शायद सन् 1944 का समय था श्री सीताराम चतुर्वेदी जी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के आंगन में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें श्री ओंकारनाथ ठाकुर, फैयास खां, विलायत खां, कुमार गन्धर्व, पुलस्कर, हीराबाई बडोदकर इस प्रकार के सैंकड़ों संगीतकार, सितारवादक, तबलावादक, वेलावादक आदि-आदि अपनी कला का प्रदर्शन करते रहे। तीन दिन चौबीसों घण्टे सम्मेलन चलता रहा और मैं उस पूरे समय तक उपस्थित होकर संगीत माधुरी का रसपान करता रहा। भारतवर्ष भर के समग्र संगीतकारों की सुरीली कण्ठ ध्वनि का श्रवण करना भी मेरे जीवन में एक अद्‌भुत सुख के क्षण थे, जो आज भी याद आते हैं।

ऐसा अभूतपूर्व संगीत सम्मेलन फिर कहां मिलेगा जीवन में। यह भी छात्रावस्था की एक उपलब्धि थी। उन दिनों डा० शिवमंगल सिंह सुमन, विश्वविद्यालय में पी० एच० डी० के शोध छात्र थे, उनके साथ मेरी घनिष्ठता हो गई। एक बार उनके साथ इलाहाबाद प्रगतिशील लेखक संघ के कवि सम्मेलन में सम्मिलित हुआ जिसका सभापतित्व श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने किया। सुमन जी के सौजन्य से मुझे भी वहां कविता पाठ करने का सौभाग्य मिला।

हाय! कहां गए सुख के वे क्षण जो जीवन में अविस्मरणीय होकर कभी-कभी बिजली के स्फुरण की तरह भासित होकर मीठी पीड़ा दे जाते हैं। ०००

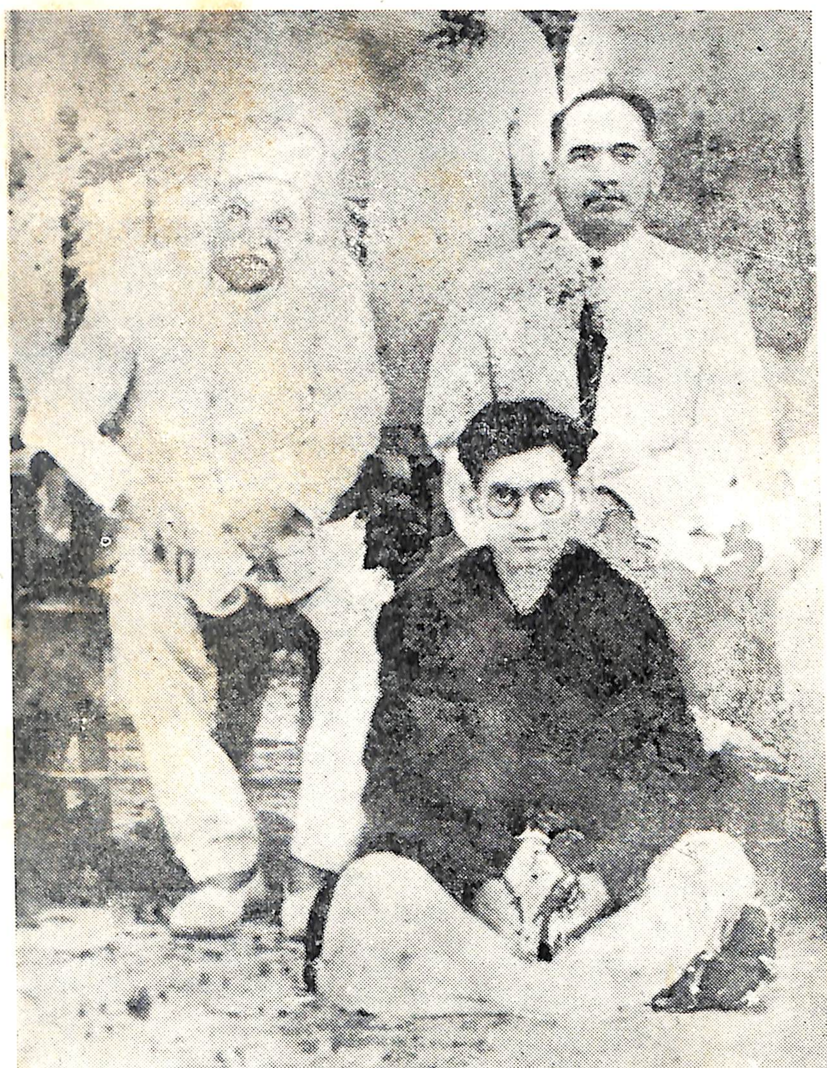
ऐसे थे महामना पं० मदन मोहन मालवीय

सर्वप्रथम मालवीय जी के दर्शन मैंने उस समय किए जब वे हिन्दू विश्वविद्यालय के आर्टस कालेज के भवन में रविवासरीय गीता प्रवचन कर रहे थे। मैंने उनका पूरा प्रवचन सुना, जो बहुत ही विचारोत्तेजक था। उस समय मालवीय जी अस्सी की उम्र पार कर गये थे। शरीर दुबला, पतला, जिस पर वार्धक्य का रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था।

उसके बाद वैसे तो हिन्दू विश्वविद्यालय छात्रावस्था में सैंकड़ों बार उनके दर्शन और भाषण सुन चुका था किन्तु उनके साथ मेरे हुए साक्षात्कारों में से कुछ का विवरण यहां दे देना जरूरी समझता हूं। विश्वविद्यालय की मुख्य सड़क पर उनका बंगला था सामने के गेट को पार करके आंगन पर एक ओर उनका कमरा था, जिसमें पलंग पर बैठे या लेटे उन्हें हम सड़क से गुजरते हुए समय-समय पर देखते थे और सोचते भी थे कि महापुरुष के खुले दर्शन प्रतिदिन होते हैं, कितना सौभाग्य है हमारा।

सब जानते हैं मालवीय जी के कर्मयोग और देश के प्रति अनुपम योगदानों को किन्तु अब बुढ़ापे ने उन्हें ऐसा दबोचा था कि वे पलंग पर बैठे-बैठे ही देश और समाज के पहलू सोचते रहते थे और यथाशक्ति उन्हें कार्य के रूप में परिणित भी करते थे इसके साथ आराम भी लेते थे। यथा समय सभाओं में भी जाते थे भाषण भी करते थे।

एक बार प्रातः लकुटी टेकते हुए मालवीय जी अपने गेट पर पहुंचे ही थे तो थक गये। साथ चलते नौकर के द्वारा रखी कुर्सी पर बैठ कर वे थोड़ा हांफ रहे थे तो मैं अचानक वहां पहुंच गया। लड़कपन की वजह से स्वभाव के वशीभूत होकर मैंने कह दिया मालवीय जी आपकी जीवनी पुस्तक मैंने खरीद ली है उस पर आपके आटोग्राफ चाहता हूं। फूलती हुई सांस लेते हुए उन्होंने धीरे से कहा लाओ। वहां से मेरा होस्टल डेढ़ फलांग तक ही था। भाग कर गया और पुस्तक लाया। मालवीय जी अभी वहीं अपने बंगले के गेट पर कुर्सी पर विराजमान थे। नौकर पास खड़ा था।



महामना पं० मदन मोहन मालवीय के चरणों में बैठा
लेखक (काली गौन पहने हुए)

मैंने सोचा ये तो घूमने निकले थे। थोड़ी सांस लेने यहां ठहरे परन्तु मेरे कारण इन्हें देर तक यहीं बैठना पड़ा, एक महापुरुष को मेरे जैसे लड़के के द्वारा इस स्थिति में डाल देने पर मुझे महसूस जरूर हुआ। किन्तु महापुरुष की महानता का उदाहरण भी साफ ही मिल गया। मैंने पुस्तक आगे की तो उन्होंने वार्धक्य से कांपते हुए हाथों से अपना पूरा नाम लिख डाला। कितना दुर्भाग्य था मेरा कि कुछ ही वर्षों बाद जम्मू में मेरे घर में उस पुस्तक को दीमक खा गयी। आज भी मैं उसे याद करके छटपटा जाता हूं, किन्तु यह सोचकर सान्त्वना भी मिलती है कि मेरी आटोग्राफ बुक में शिक्षा वाक्य के साथ उनके पूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिसे मैंने संभाल रखा है।

एक बार मैंने किसी छात्र से सुना कि मालवीय जी महाराज अधिकतर सामूहिक चित्रों में बैठने से दूर ही रहते हैं। सुनकर मेरे हृदय में एक नई तरंग जाग उठी कि क्यों नहीं अपनी श्रेणी आचार्य अन्तिम वर्ष के एक विदायगी चित्र का आयोजन किया जाए। क्योंकि इस वर्ष विश्वविद्यालय से विदाई लेनी थी जिसमें विश्वविद्यालय के कुछ विभागों के विभागाध्यक्ष उपकुलपति तथा पूज्य मालवीय जी सम्मिलित हों। उन दिनों उपकुलपति डा० राधाकृष्ण विदेश गए हुए थे अतः कार्यकारी उपकुलपति जी से चित्र में बैठने की स्वीकृति ले ली गई। विभागाध्यक्षों तथा प्राचार्यों को बैठने में हमें केवल सूचना ही देनी थी। इन्कार के बदले वे चित्र में बैठने की अधिक इच्छा रखते थे क्योंकि मालवीय जी जैसे महापुरुष को भी उस में बैठना था। अब मालवीय जी महाराज से प्रार्थना करने मुझे भेजा गया, क्योंकि चित्र का पूर्ण आयोजन मैंने ही किया था। यह कार्य सबसे बड़ा था जो कि मुझे सौंपा गया था। छात्रों में यह भय था कि शायद मालवीय जी चित्र में बैठने से इन्कार कर दें। सारा आयोजन उन्हीं के साथ चित्र लेने की भावना की धुरी पर घूम रहा था। एक प्रकार से वे इस आयोजन के प्रधान नायक थे। उनके न मानने पर आयोजन ही समाप्त था। अब मेरी परीक्षा का समय था। यदि मालवीय जी को मैंने सहमत कर लिया तो छात्रों और प्राध्यापकों तथा प्राचार्यों में मेरा विशेष चातुर्यपूर्ण प्रभाव स्थापित हो जाएगा नहीं तो नालायक माना जाऊंगा। मैं मालवीय जी के पास गया। वे पलंग पर लेटे आराम कर रहे थे। मैंने झुक कर चरण स्पर्श किया और प्रार्थना पूर्वक अपनी मांग रखी। सुनकर मालवीय जी सोच में पड़ गए। फिर बोले कौन सा समय रखा है? जी सायं पांच बजे आपके बंगले पर ही होगा। सुनकर वे मुस्करा दिए और बिना कुछ आनाकानी किए उन्होंने चित्र में बैठने की स्वीकृति दे दी। मेरी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। मैंने होस्टल में आकर छात्रों की सभा बुलाई और गर्व के साथ कहा कि मालवीय जी महाराज की स्वीकृति मिल गई। कईयों ने खुशी से झूमते हुए मुझे गले से लगा लिया। कईयों ने मेरी पीठ थपथपा कर कलाबाजी करते हुए कहा। अरे तुम उनके लाड़ले जो ठहरे क्यों नहीं तुम्हारी बात मानी जाती?

दूसरे दिन हम सब मालवीय जी के बंगले में ठीक पाँच बजे सायं पहुंच गए। उनके नौकर ने बाहर आंगन में कालीन और उस पर कुर्सियां लगा दीं। पांच बजे तक प्राध्यापक विभागाध्यक्ष तथा कार्यकारी कुलपति जी भी पहुंच गए थे। मालवीय जी महाराज पहले ही सुन्दर वेषभूषा में तैयार बैठे थे। शानदार चित्र हुआ। आज वही चित्र दैवीस्मृति के रूप में मेरे लेखन-कक्षा में टंगा हुआ है और याद दिलाता है छात्रावस्था के सुनहरे दिनों तथा मालवीय जी महाराज की महानता के साथ उनकी दिव्याकृति की।

एक बार विश्वविद्यालय में स्वतन्त्रता आन्दोलन भयंकर रूप धारण कर चला। ब्रिटिश सरकार ने विश्वविद्यालय अस्थायी रूप से बन्द कर दिया और विद्यार्थियों को तीन घण्टों के अन्दर विश्वविद्यालय से चले जाने का आदेश हुआ। मैं दौड़ा-दौड़ा मालवीय जी महाराज के पास पहुंचा और कहने लगा महाराज मैं इतनी दूर जम्मू चला जाऊं। विश्वविद्यालय कब खुलेगा पता नहीं। यह सुन कर उन्होंने मुझे दस रुपये दिए और साथ में कमरा भी दिया ताकि मैं काशी में ही रहूं। तीन महीनों बाद विश्वविद्यालय खुल गया। ऐसे थे मालवीय जी दयावान।

एक बार महात्मा गांधी जी भाषण देने हिन्दू विश्वविद्यालय में आए और खुले पण्डाल में मालवीय जी महात्मा गांधी जी एक ही आसन पट्ट पर विराजमान हो गए। हम विद्यार्थी लोग उन्हें घेर कर चारों ओर बैठ गए। महात्मा जी ने सर्वप्रथम मालवीय महाराज की प्रशंसा करनी शुरू की, जिसमें एक दो वाक्य अभी भी मुझे याद हैं। उन्होंने कहा कि मालवीय महाराज का देश के लिए बड़े कामों में एक काम है इस विश्वविद्यालय की स्थापना। इसके लिये उन्होंने भिक्षुक बन कर पैसा इकट्ठा किया। वे अपने दासों को अपने पास बुला लेते हैं तभी तो मैं यहां आया हूं। महात्मा गांधी ने जितनी बार मालवीय जी का स्मरण किया उतनी ही बार उनके नाम के साथ महाराज शब्द जोड़ा।

इसके पश्चात् महात्मा गांधी जी ने अपने नब्बे मिनट का शेष भाषण हिन्दी के प्रयोग की आवश्यकता पर ही दिया। ऐसे थे मालवीय जी। इन्हें भारत का पिता पितामहा कहा जाता रहा था। इनके बारे में दो बातें काफी प्रसिद्ध हैं।

एक अपने युग के सर्वोत्तम वक्ता थे।

—भारतीय संस्कृति का साकार रूप थे।

---

1. सन् 1942 के दस रुपए आज के रुपयों के अपेक्षा बहुत अधिक होते थे।

सन् 1885 में बाम्बे में कांग्रेस की स्थापना के समय इन्होंने पच्चीस वर्ष की आयु में ही ऐसा विचारोत्तेजक और जोशीला भाषण दिया कि सब उपस्थित लोग इस नए युवक की वीरता और भाषण कला पर मुग्ध हो गए। दूसरी बात यह कि भारतीय नेताओं में ये एक ऐसे नेता थे, जिन्होंने कांग्रेस की स्थापना में भाग लिया और कांग्रेस द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति की घोषणा (सन् 1946 में) भी सुन ली। इसी वर्ष इनका देहान्त भी हुआ।

मुझे याद है कि पं० जवाहर लाल नेहरू जब कभी भी विश्वविद्यालय में आते पूज्य मालवीय जी के ही यहां ठहरते थे। एक बार तो मैंने उन्हें मालवीय जी के साथ भारतीय रीति के अनुसार शुद्ध ऊनी आसन पर बैठ कर भोजन करते भी देखा।

मालवीय जी का व्यक्तित्व केवल महान् विशाल ही नहीं था अपितु वह भारतीय संस्कृति के सजीव प्रतीक भी थे। उनके सान्निध्य में आकर मनुष्य को दैवी प्रेरणा, संस्कृति, चरित्र और आदर्श का प्रभाव भी मिलता था। उनके संस्कृत श्लोक में एक अपनी ही शिक्षा थी।

सत्येन ब्रह्म चर्येण व्ययामेताथ विद्यया।
देश भक्त्यात्यत्यागेन सम्मानार्हः सदाभव॥

इसका अर्थ है "हे मानव तू, सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देश भक्ति और आत्म त्याग (देश के लिए) द्वारा सदा सन्मान योग्य बन। इस शिक्षा-वाक्य में मालवीय जी का अपना चरित्र भी साकार प्रतिबिम्बित है। ○○○

महादेवी वर्मा के सान्निध्य में

आनन्द भवन से चलकर मैं अपने स्थान पर आ गया। सायंकाल हो आया था सोचा कि अब कल महादेवी जी से मिलूंगा। सायंकाल इलाहाबाद की त्रिवेणी तक घूमता हुआ चला गया। रात को गहरी नींद आई, सवेरे उठकर पुनः त्रिवेणी संगम की ओर गया। सैर करने के बाद वहीं पर स्नान किया तथा सन्ध्यावन्दन और गायत्री जप से निवृत्त होकर अपने निवास पर पहुंचा। मध्यान्ह के पूर्व ही खाना खाकर कुछ आराम किया। घड़ी में देखा कि मध्यान्ह के तीन बजे थे। सोचा कि महादेवी जी के दर्शनार्थ यहां से चार बजे चलना चाहिये। ठीक उसी समय मैं कमरे से चल दिया। जब वर्मा के निवास पर पहुंचा तो पौने पांच का समय हो चला था। बाहर प्रतीक्षा प्रकोष्ट में सोफे पर बैठ कर किसी के आने की प्रतीक्षा में बैठ गया। इतने में महादेवी जी की दासी आई। मैंने उन्हें अपने नाम की स्लिप दी। स्लिप जब महादेवी जी के पास पहुंची तो उस समय किसी से बातें कर रही थीं इसलिए मुझे और कुछ समय के लिए बैठना पड़ा। इतने में एक खद्दर धारी वृद्ध पुरुष भी आकर मेरे साथ सोफे पर बैठ गए। उन का गेहुआं रंग सिर के बाल पूरे सफेद, सफेद ही कपड़े तथा सफेद ही शाल गले लटक रहा था। देखने में पूरे महात्मा गान्धी के अनुरूप थे। मैं इस व्यक्ति विशेष से अवश्य प्रभावित हुआ किन्तु जब तक परिचय न हो बात कैसे करूं। युवावस्था की पहली सीढ़ी पर था, इसलिए अनुभव भी परिपक्व न था साथ ही कुछ लज्जा युक्त स्वभाव भी था। अन्त में वृद्ध महानुभाव अपना मौन तोड़ कर स्वयं पूछ ही बैठे—आप कहां से आ रहे हैं? जी जम्मू से। यहां क्या करते हैं? जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ता हूं। इतने में दासी ने आकर उन का नाम पूछा तो उत्तर मिला महादेवी जी से कहो कि हरिभाऊ उपाध्याय आये हैं, सुनकर मैं चकित तथा श्रद्धातुर हो गया। उनका नाम मैंने बहुत सुन रखा था कि वे गान्धी वादी लेखक हैं और समाज सेवी, पुस्तक रचयिता तथा एक दो सभा के प्रधान आदि हैं। इस रूप में उनका नाम भारत के प्रतिष्ठित जनों की कोटि में सुना जाता था। आज सहज और सरल भाव में कैसे मेरे पास बैठ कर प्रेम पूर्वक बातें करते रहे, इस पर मैं गौरव का अनुभव भी करने लगा। इतने में महादेवी जी



सुश्री महादेवी वर्मा के साथ लेखक (बाईं ओर)

का दोनों के लिए बुलावा आ गया। हम उनके लेखन-कक्षा में पहुंचे तो देखा कैसा सुन्दर और कलात्मक ढंग से कमरा सजा था। विशाल प्रकोष्ट का फर्श दरी से ढका था। चारों ओर कुर्सियों तथा सोफे जमाए थे। बीच में लम्बा चौड़ा टेबुल तथा कुछ आगे की दिशा में स्वयं महादेवी जी की विशेष कुर्सी और उसके आगे टेबुल था। हम दोनों जब पहुंचे तो वर्मा जी अपने स्थान पर बैठ कर हमारी प्रतीक्षा में थी। हमने उन्हें अभिवादन किया और एक साथ सोफे पर बैठ गए। महादेवी जी ने मुझे लड़का जान कर बातचीत करने की प्रथमता उपाध्याय जी को दी, जो उचित भी था। एक बात मैंने उस समय विशेष रूप में देखी जब उपाध्याय जी कन्या महाविद्यालय की स्थापना के लिए उनसे दिशा निर्देशन ले रहे थे तो वर्मा जी हर बात का हंसी-हंसी में उत्तर देती थीं। वह हंसी भी हृदय की गदगदता तथा प्रफुल्लता की परिचायक हो रही थी, उस में खुली खिल-खिलाहट थी। जिस से उनका भावुक तथा कवि हृदय साकार हो रहा था। मैं इस हंसी में उनके कवि हृदय की थाह लेने में अवश्य कुछ सफल हो पाया। दूसरी ओर देखा तो भगवान् कृष्ण की आठ दस साल बालक की कदनुमा सफेद मूर्ति शुभ्र शृंगार में ताक पर सजाई गई थी, जिस पर रंग-बिरंगी मालाएं शोभित हो रही थीं। अभी मैं यही देख रहा था तो एक पली पोसी, नटखट तथा चुलबुली बिल्ली उछलती कूदती आकर मेरी गोद में आ बैठी। महादेवी जी यह आप की पोषित है? मैंने पूछा। सुन कर वे खिलखिला कर हंस दी, हां ऐसा ही है। ये शब्द भी हंसी में ही उनके मुख से निकल पड़े। श्री हरिभाऊ जी अपने गंभीर मूड में अपनी ही बातें करते चले जा रहे थे। उन्होंने इस मनोविनोदात्मक दृश्य की ओर ध्यान नहीं दिया। वर्मा जी एक साथ ही उनकी बातों का भी हास्य मुद्रा में उत्तर देती जा रही थीं। अन्त में जब उपाध्याय जी सब कुछ पूछ कर सन्तुष्ट हो मौन बैठ गए तो महादेवी जी की वार्ता का रुख पूरी तरह से मुझ पर आ टिका। मैंने कविता सम्बन्धी कुछ बातें कीं उनका उचित उत्तर भी वे हंसी-हंसी में ही देती जा रही थीं। अपनी एक कविता भी उन्हें सुनाई किन्तु उस पर उन्होंने कोई टिप्पणी नहीं की। उन दिनों महाकवि कालिदास की रचनाओं के नवीन टीकायुक्त प्रकाशनों पर काशी और इलाहाबाद में अभियान चल रहा था। काशी के श्री सीताराम चतुर्वेदी ने इस प्रकार की एक कालिदास ग्रन्थावली प्रकाशित भी करा दी थी। इधर महादेवी जी भी ऐसा करना चाहती थीं। मैंने सोचा यह प्रस्ताव मेरे सामने रखें और उन्हें मुझे कालीदास के सब ग्रन्थों पर हिन्दी टीका लिखने को कहें। जब उन्होंने मुझे ऐसा करने को कहा तो मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और वचन दिया कि आचार्य पास करने के उपरान्त मैं इसी कार्य में जुट जाऊंगा किन्तु खेद है कि वचन देने पर भी घर की उलझनों में ऐसा फंस गया कि यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर पाया। महादेवी जी इस पर क्या सोचती होंगी इसका भी कम ही ध्यान रहा। अब जब यह स्मृति कभी-कभी मस्तिष्क में खटकती है तो पश्चात्ताप ही होता है। उस अमर कवियत्‌ महामहिला की बात यदि

पूर्ण कर लेता तो कैसा चिर-साहित्यिक सम्बन्ध स्थापित होने का गौरव मिल जाता किन्तु अपरिपक्वास्था के चिन्तन का परिपुष्ट मानदण्ड नहीं था, जो आज है। उसी अवस्था में भी चतुरसेन शास्त्री के पास भी छः मास रह कर प्रतिदिन छः सात घण्टे उनके साथ लेखन-कार्य में रत रहने पर भी मन में खयाल नहीं आया कि इस महापुरुष के साथ चित्र ले लूं। आज यह स्मृति भी मेरे लिए दुःखदायी बन गई है।

महादेवी जी से विदा लेकर उपाध्याय जी चलने लगे तो मैं भी विदा के लिए उद्यत हो गया। वे तो कदम उठाने लगे किन्तु मैं अभी अपने स्थान पर ही खड़ा था। महादेवी जी ने कहा—"तुम अभी रहो" मैं प्रसन्न हुआ किन्तु दो कदम उपाध्याय जी के साथ चलने का लोभ भी संवरण नहीं कर पाया। "अच्छा मैं आता हूं वापिस" यों कह कर मैं उनके साथ चल दिया। भवन का द्वार लांघ कर हम लोग सड़क पर पहुंचे। खम्भों के बल्व तीक्ष्ण प्रकाश बरसा रहे थे जिन में उपाध्याय जी की शुभ्र वेश भूषा तमतमाता चेहरा और उस पर नाचती हुई सौम्यता की किरणें प्रत्यक्ष दिखाई दे रही थीं, अच्छा बेटा अब तुम वापिस जाओ" मेरी पीठ थपथपाते हुए उन्होंने मानों वात्सल्य रस का घट उंडेल कर मुझे कहा। मैंने क्षण भर ऐसा अनुभव किया जैसे मेरे पिता स्नेह भरी दृष्टि से मेरे से विदा ले रहे हों, चरण स्पर्श करके मैं वापिस मुड़ा, उपाध्याय जी आगे चले गए। मैंने महादेवी जी के कमरे में जब प्रवेश किया तो वे चाय का उपक्रम कर रही थीं। पीछे के किचन में दासी इस काम में लगी थी। आलू चाप की सोंधी सुगन्ध आ रही थी। महादेवी जी इस बीच मेरे साथ बातों में लग गईं। उन्होंने पहले विश्वविद्यालय के जीवन के बारे में मुझ से पूछा फिर कश्मीर की चर्चा शुरू कर दी। मैं अपने अनुसार उत्तर देता चला गया। एक बार बीच में पूछ बैठा महादेवी जी आप भी कश्मीर चलिए तो कहने लगी तुम्हारे निमन्त्रण देने से पहले ही मैं हो आई हूं। आप कब गई थीं वहां। आप के आने की न कोई चर्चा हुई न कोई साहित्यिक समारोह। हंस कर बोलीं मैं इस तरह नहीं जाती हूं कि सब को पता चले। मैं चुपचाप गई और चली आई। मैंने इस चर्चा के अनन्तर महादेवी जी से 'दीपशिखा' रचना जो उन्होंने उन दिनों अपने हाथों चित्र खींच कर कविता-संग्रह तैयार किया था, प्रदर्शित करने की प्रार्थना की। वे उठ कर अन्दर गईं और उसे लाईं। मैंने उस अपूर्ण रचना का एक-एक पृष्ठ बड़ी लगन और उत्सुकता के साथ देखा। साथ ही वर्मा जी प्रत्येक सचित्र कविता का भावात्मक विवेचन करती जा रही थीं। इस प्रकार करीब पौने घण्टे तक मैंने उस रचना को शान्ति से देखा। वे हंस दी क्या आप की अब भी तृप्ति नहीं हुई उन्होंने कहा, जी ऐसी अमर रचना जो फिर लेखिका द्वारा स्वयं सचित्र लिखी गई हो, उस के देखने में तृप्ति कहां मैंने कहा। सुन कर वे फिर हंस दी। चाय तो पी ही ली थी इधर संध्या का अंधेरा भी बढ़ रहा था मैंने जाने का उपक्रम बांधा और सोचा अब तो वर्मा जी ने मुझे पर्याप्त समय दे दिया है और अधिक

समय क्यों लूं। जाती बार मैंने महादेवी जी को नमस्कार की तथा कल फिर आने के लिए समय पूछा वे मुस्कुराकर कहने लगी बस सायं साढ़े चार पांच के भीतर आ जाईये। चाय भी यहीं होगी। यों कहकर वे मेरे ही साथ दरवाजे को पार कर आंगन तक आईं। वहां भी खड़े-खड़े कुछ देर तक बातें हुईं। बाद में पुन: नमस्कार करके मैं चल दिया। महादेवी के साथ मेरी यह पहली भेंट थी और यदि मैं भूल न रहा हूं तो शायद यह समय सन् 1946 का था।

निराला जी से भेंट :

दूसरे दिन मैं प्रात: काल त्रिवेणी स्नान के लिये चला गया। स्नानादि के अनन्तर भोजन तत्पश्चात् आराम किया और कुछ लिखा। घड़ी देखी तो चार बजने को थे। उस जून की चिलचिलाती धूप में महादेवी जी से मिलने निकल पड़ा इलाहाबाद की विशाल सड़कों पर रिक्शाएं और कार्टे धड़ाधड़ चल रही थी। गर्म लू के प्रबल झोंकें धूली पुंज के साथ दाएं बाएं चल रहे थे। मैंने रिक्शा कर लिया। उसकी तेज रफतार के साथ आंधी का वेग भी बढ़ रहा था। आकाश पर मिट्टी के पर्त जैसे छा गए और अंधेरा-सा महसूस होने लगा। कुछ समय बाद मैं महादेवी जी के भवन पर पहुंचा। प्रतीक्षा भवन में बैठ कर स्लिप भेजी और तत्काल बुलावा आ गया मैं अन्दर गया तो महादेवी जी कुछ लिख रहीं थीं। मैंने अभिवादन किया और उन्होंने मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया। अब लिखना छोड़ कर वे मेरे से बातें करने लगीं। कल की और आज की गोष्टी में वे मेरी व्यक्तिगत अवस्थाओं से भली भांति परिचित हो गई थीं और मुझे भी ऐसा अनुभव होने लगा जैसे वे मेरी जन्म जात बड़ी बहिन है, जो मुझे पूरी तरह जानती है। बातों के क्रम में उन्होंने पूछा आप को साहित्य की किस विधा में लिखने का शौक है? 'कविता और निबन्ध' मैंने कहा। 'अब तक क्या कुछ लिख गए' उन्होंने पूछा। अब तक तो पढ़ता ही रहा हूं हां तीन चार लेख और दो तीन कविताएं छप चुकी हैं। उन में से एक पण्डित अयोध्या सिंह उपाध्याय जी देख चुके हैं, दूसरी कल आप को सुनाई थी। वे हंस दीं। यदि आप का उद्देश्य लिखना ही है तो अभी से इस परिचर्या को बढ़ाईये, उन्होंने कहा। यह बात मेरे हृदय पर बैठ गई। मैंने मन ही मन सोचा-महापुरुषों का चिन्तन भी महान् होता है। कैसी प्रेरक बात कही है महादेवी जी ने तब से लेकर मैं लिखने की परिचर्या में जुट सा गया। अभी यह बातें हो रही थी कि निराला जी आ पहुंचे। उन्होंने पुस्तकों का एक बण्डल बगल में दबाया हुआ था। जब उन्होंने उस में से एक पुस्तक निकाली तो उसके मोटे अक्षरों में छपे शीर्षक को मैंने दूर से ही पढ़ लिया। लिखा था "नये पत्ते"। उन्होंने उस पुस्तक पर समर्पण नोट लिखना शुरू ही किया तो श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी भी वहां आकर सोफे पर बैठ गए। निराला जी ने महादेवी जी पर समर्पण नोट लिख

कर पुस्तक उनके हाथ पकड़ा दी। एक सज्जन और आकर बैठे हुए थे, जो प्रसिद्ध जर्नलिस्ट थे और इलाहाबाद में जाने माने थे, निराला जी को उन्हें भी एक प्रति देनी पड़ी। यह देख कर मैं बोल पड़ा निराला जी मुझे भी एक दीजिये। उन्होंने एक प्रति मेरी ओर भी कर दी परन्तु मेरा आग्रह था कि मेरे लिए भी समर्पण नोट लिख कर दें। वे झट बोले बेटा अभी पच्चीस साल और तपस्या करो (साहित्य साधना करो) तब मेरे से लिखवा सकते हो परन्तु मैं हठी छात्र कहां मानने लगा। मैंने अपना आग्रह कायम रखा। अन्त में उन्हें मेरे लिए भी समर्पण लेख लिखना पड़ा। बस इतना ही लिखा "श्री विनोद जी को निराला 1946"।

यह समर्पण लेख उन्हीं के हाथों लिखा अब तक मेरे पास सुरक्षित है। अब प्रश्न यह था कि मस्त मलंग निराला जी ने पास बैठे श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी को पुस्तक क्यों नहीं भेंट की। जब हम सब को मिल गई थी। द्विवेदी जी कुछ लज्जा का अनुभव भी करने लगे किन्तु कुछ कह भी नहीं सके। अन्त में निराला जी के भावुक हृदय ने अंगड़ाई ली—बोले—द्विवेदी जी आप भी लेंगे एक प्रति, सुन कर द्विवेदी जी के हृदय में संचित अन्तर्द्वंद्वों का तूफान भी वाणी में उमड़ आया, बोले—अजी मैं तो आप का सर्वप्रथम साथी हूं, मुझे तो पहले भेंट करनी चाहिए थी किन्तु आप ने ऐसा नहीं किया न मालूम मेरे सम्बन्ध में आप क्या सोच बैठे। अच्छा दे दीजिए मुझे भी यों कह कर द्विवेदी जी पुस्तक लेने के लिये अपनी जगह से कुछ हिले। तब तक निराला जी ने समर्पण लेख लिख कर द्विवेदी जी की ओर पुस्तक धकेल दी। पुस्तक पाकर उन्हें प्राप्ति की खुशी के स्थान पर अपनी सम्मान रक्षा पर अधिक हर्ष हुआ होगा। इसके अनन्तर महादेवी जी के साथ दोनों साहित्य महारथियों की बातचीत होती रही। इस अवधि में मैं चुप चाप बैठा रहा। बीच में ताम्बूल की तश्तरी भी आई। सब ने एक-एक ताम्बूल उठा लिया बातों का क्रम भी चलता रहा। पहले दिन की भांति आज भी महादेवी जी वार्तालाप में हास्य का पुट देती चली जा रही थीं। उनकी प्रसन्न मुख मुद्रा से उनके शान्त और स्वस्थ जीवन का आभास मिल रहा था किन्तु वह सांसारिक सुख जन्य न होकर लोकोत्तर आनन्दानुभूति का प्रतीक था।

तदनन्तर निराला जी चलने का उपक्रम करते हुए कहने लगे—"अच्छा महादेवी जी चलता हूं—चाय पिलाओगी" सुन कर महादेवी जी मौन रहीं। उन्होंने चाय के लिये निमन्त्रण नहीं दिया और निराला जी चुपचाप चले गए। यह दृश्य देख कर मुझे आश्चर्य के साथ हंसी भी न आई। फक्कड़ मौला निराला जी ने चाय स्वयं मांगी और महादेवी जी ने मौत रहने के रूप में इन्कार किया। मैं देर तक यह सोचता रहा। इतना बड़ा हिन्दी का कलाकार स्वयं चाय मांग रहा है, किन्तु उसकी मांग की उपेक्षा भी महान कलाकार ने ही की। इस सम्बन्ध का उत्तर यदि ढूंढने

लगें तो कलाकारों की दुनियां का रहस्य समझना कठिन होगा। निराला जी फिर रही सही पुस्तकें बगल में दबाकर चल दिये। मेरा मन उनके पीछे लपक पड़ा। इच्छा हुई कि बाहर के आंगन तक इनके साथ चलूं और चल भी दिया। आंगन गेट तक पहुंच कर मैंने उन्हें अभिवादन किया। वे गम्भीर दृष्टि से मुझे देख गए। ऊंचा कद, चेहरा गोरा और विशाल सुनैहरी बालों की लटें दोनों ओर लटकी हुई, शरीर पर लम्बा कुर्त्ता लुंगी तथा पैरों में फलीट बूट पहने हुए थे। अभिवादन का उत्तर उस रूप में देकर वे चले गए। मैं पुनः महादेवी जी के प्रकोष्ट में लौट आया अभी शान्ति प्रिय द्विवेदी वहीं बैठे हुए बातें कर रहे थे तो मेरी बातों का क्रम चल पड़ा। महादेवी जी इसी में व्यस्त हो गई। इस बीच द्विवेदी जी मौन होकर बैठे रहे। शायद अभी वे और कुछ कहना चाहते थे परन्तु बीच में ही मैं टपक पड़ा। यदि इस पर उन्होंने मन में कुछ बुरा भी मनाया होगा तो सम्भव हो सकता है। मेरे साथ बातों में काफी देर हो चली किन्तु द्विवेदी जी को भी अपनी शेष बात कहने के लिये चिर प्रतीक्षा रत रहना पड़ा। समय पाकर फिर उनकी बातों का क्रम चला किन्तु बीच में मुझे लक्ष्य रख कर यह भी कह बैठे—"लोग जब आप से बातों में जुटते हैं तो, उन्हें दूसरों का ध्यान नहीं रहता कि दूसरे भी कुछ कहता चाहते हैं।" द्विवेदी जी के सीधे मुझ पर किए गए इस कटाक्ष को समझने में मुझे देर नहीं लगी किन्तु मैं भी सुन कर मुस्करा दिया। आखिर वे वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध तथा साहित्य महारथी थे जबकि मैं अभी केवल बीस वर्षों का विद्यार्थी था।

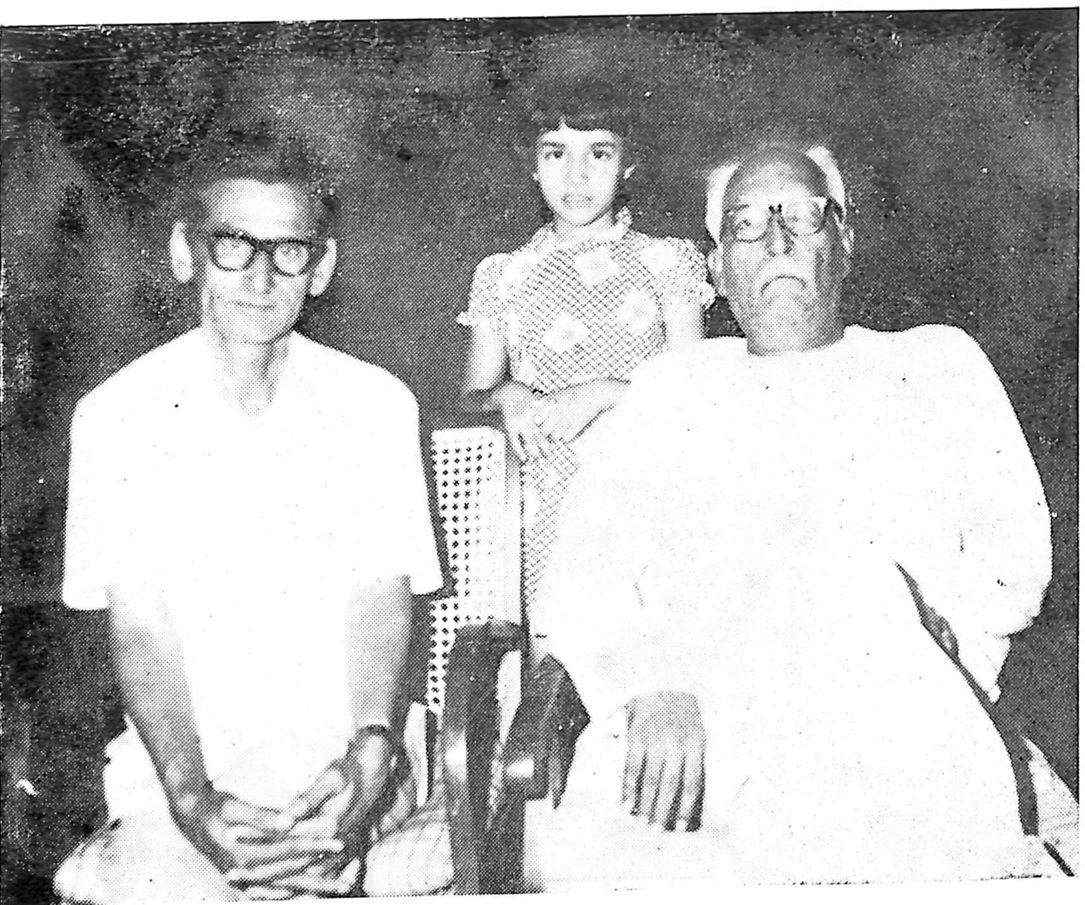
उस दिन महादेवी जी से विदा लेकर मैं इलाहाबाद की एक सड़क पर जा रहा था तो पीछे एक इक्के की आवाज सुनी, वैसे तो बड़ी सड़कों पर मोटरें, रिक्शे आदि सब कुछ सतत आते जाते रहते हैं। कौन ध्यान देता है किन्तु उस इक्के की धीमी ध्वनि ने मेरे मन में कुछ चेतना जगाई, जिससे मैं सहज भाव से पीछे की ओर मुड़ कर देखने लगा। इक्का जब पास पहुंचा तो उस पर निराला जी को अकेले बैठे हुए देखा। मेरी आंख उन से मिलीं मैंने अभिवादन किया तो बोले—"कहां जा रहे हो ?" 'अपने मार्ग में' मैंने जोर से उत्तर दिया तब तक इक्का मेरे पास से एक दो कदम आगे बढ़ चुका था किन्तु निराला जी ने मेरा उत्तर सुन लिया तभी यों कहा—"अच्छा भाई जाओ। आज निराला के मेरे लिये ये दूसरे दर्शन थे।" ०००

आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी से मेरा सम्पर्क

सन् 1940 में हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के समय तक अभी डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मैंने नाम तक नहीं सुना था । मेरी प्रारम्भिक युवा अवस्था थी तथा जम्मू शहर से दूर भी नहीं गया था इसलिये बाहर के गण्य मान्य साहित्यकारों के जो नाम जम्मू रह कर सुने थे अथवा जिनकी रचनाएं पढ़ी थीं, वे आचार्य चतुर सेन शास्त्री, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, डा० राम कुमार वर्मा, श्री शांति प्रिय द्विवेदी जैसे उस समय के हिन्दी साहित्य क्षेत्र के कुछ सर्व प्रसिद्ध साहित्यकार थे, जिन्हें मैं जानता भी था और उन पर श्रद्धा भी रखता था । अभी हजारी प्रसाद द्विवेदी जी न डा० बने थे न हिन्दी-क्षेत्र में ही पूरी तरह से उतरे थे। हां, वे शांति निकेतन में अध्यापक बन कर निरन्तर साधना में जुटे थे, जिस के द्वारा उन्होंने आगे चल कर हिन्दी साहित्य में अपना अमर स्थान बनाना था । इसके अतिरिक्त बाबू मैथिलीशरण गुप्त हरिऔध उपाध्याय तथा पण्डित राम चन्द्र शुक्ल के साहित्य से भी यथा कथाचित परिचित था। विश्वविद्यालय में आकर यह परिचय और भी बढ़ने लगा था। श्री शिव मंगलसिंह सुमन तो उस समय एम० ए० प्रथम वर्ष में पढ़ रहे थे और कुछ शब्दों में भी गुनगुनाते थे ।

सन् 1943 की बात है। छात्रावास में एक नोटिस घूमा, जिस में श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी के भाषण की सूचना थी । अभी तक मैं द्विवेदी जी के नाम से भी परिचित न था। पहली बार सुना कि वे काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विभाग के स्नातक होकर शान्ति निकेतन में हिन्दी के पद पर हैं और हिन्दी साहित्य के उदीयमान लेखक हैं । रात को रुईया छात्रावास के ऊपर संगीत हाल में उनका भाषण रखा गया, जिसके आयोजक थे मेरे सहपाठी स्वर्गीय पण्डित मदन मोहन शास्त्री वेदाचार्य ।

उस रात मैंने द्विवेदी जी का पहली बार आकर्षक भाषण सुना । वहीं से मैं धीरे-धीरे उनके व्यक्तित्व के परिचय की समीपता प्राप्त करता चला गया। इसके अनन्तर वे पुनः एक दो बार विश्वविद्यालय में आये पण्डित मदन मोहन जी शास्त्री



डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ लेखक (बाईं ओर)

उन से हिलमिल जाते परन्तु मैं दूर से ही उन्हें देखता। कभी समीप आकर परिचय नहीं किया। आगे-आगे द्विवेदी जी का नाम अधिक सुनने को मिलने लगा। जब विश्वविद्यालय की आचार्य परीक्षा पास कर विश्वविद्यालय छोड़ने का अवसर सन् 1946 में आया तब तक द्विवेदी जी का नाम व्यापक ही चला था और कुछ रचनाएं भी प्रकाशित होकर सामने आने लगी थीं। विश्वविद्यालय की छात्रावस्था के प्रथम दौर तक मैं द्विवेदी जी को इतना ही जान पाया।

इस समय के अनन्तर सात वर्षों की अवधि में जम्मू रह कर मैंने हिन्दी प्रभाकर तथा साहित्य रत्न के विद्यार्थियों को लगातार पढ़ाया। पाठ्यक्रम में यत्र तत्र द्विवेदी जी के ग्रन्थ भी निर्धारित रहते और उन्हें तैयारी करके पढ़ाना पड़ता 'कबीर' हिन्दी साहित्य की भूमिका आदि उनकी प्रौढ़ रचनाओं का मर्म समझने का प्रयत्न मुझे जब करना पड़ा तभी उनके साहित्यिक व्यक्तित्व और विद्वतापूर्ण लेखन से प्रभावित ही नहीं हुआ बल्कि उससे मेरे ज्ञान की वृद्धि भी हुई। इसी समय मैं उन्हें एक हिन्दी साहित्य के विशिष्ट महारथियों के रूप में पा सका। अब समझने लगा कि अब द्विवेदी जी वे द्विवेदी नहीं हैं जो सन् 1943 में थे। अब वे साहित्य में और दिगन्तव्यापी ख्याति में बहुत आगे बढ़ चुके थे, उनकी प्रौढ़ रचनाएं तथा उनका ऊंची कक्षाओं के पाठ्यक्रमों में निर्धारण भी यही सिद्ध कर रहा था।

सात वर्षों के अनन्तर सन् 1953 में एम० ए० (संस्कृत) के प्रथम वर्ष में पुनः काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के कालेज आफ इण्डालोजी में प्रविष्ट हुआ। तब तक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हो चुके थे और अखिल भारतीय कीर्तिमान व्यक्तित्व पा चुके थे। इस समय उनकी साहित्य-साधना कुछ इस रूप में विख्यात हो चुकी थी—इन की रचनाओं की संख्या लगभग 30 तक पहुंच गई थी—

इतिहास :

हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदि काल, आदि-आदि।

निबन्ध :

अशोक के फूल, कल्प लता, विचार और वितर्क इत्यादि।

अनुसन्धान और आलोचना :

सूर साहित्य, कबीर, नाथ सम्प्रदाय, साहित्य का मर्म आदि, धर्म और संस्कृति, साहित्य मीमांसा आदि।

उपन्यास :

वाणभट्ट की आतम कथा चारु चन्द्र लेखा।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इनके कई सम्पादित ग्रन्थ भी निकले। सन् 1953 के बाद मैंने उपर्युक्त साहित्य के अधिकतर ग्रन्थ देखे और पढ़े। अब मैं द्विवेदी जी की वास्तविक व्यक्तित्व पूर्ण रूप से पहचान सका। हिन्दू विश्वविद्यालय में एम० ए० करते समय विश्वविद्यालय के परिसर में इनके विभिन्न सभाओं और गोष्टियों में ओजस्वी भाषण भी सुनने का अवसर मिला। इनका एक विद्वत्तापूर्ण भाषण उस समय जो सरदारों के एक धार्मिक त्योहार की सम्पन्नता के अवसर पर मैंने सुना उसे कभी नहीं भूल सकता। भाषण करते हुए उनके हृदय का संचित ज्ञान भण्डार ओजस्वी वाणी के मार्ग से ऐसा शत-शत धाराओं में बह निकला, जिससे मुझे यह अनुभव होने लगा कि यह ज्ञान जलधि अब भी पूर्ण रूप से प्रवाहित होने में विस्तृत मार्ग नहीं पा रहा है। ऊंचा बलिष्ट शरीर, विशाल चेहरा और ललाट, धोती कुर्ता पहन कर कन्धे पर शाल धारण किये हुए द्विवेदी जी मंच पर बोल रहे थे। ऐसा भव्य व्यक्तित्व और तदनुरूप विद्वत्ता दोनों का मणी कंचन जैसा संयोग था।

उस दिन मैंने उनका भाषण सुन कर ऐसा अनुभव किया जैसे हिन्दी साहित्य के एक पहलू पर मैंने वृहद् ग्रन्थ सांगोपाग पढ़ कर समझ लिया हो। द्विवेदी जी से उन दिनों तक मेरा कब परिचय हुआ, यह स्मरण नहीं आ रहा है। परिचय होने के बाद एक दिन मैं उनसे मिलने उनके निवास स्थात पर गया तो देखा वे आंखों को पीड़ा से पीड़ित है। आंखों पर पट्टी बांधी थी और खाट पर बैठै थे। आगन्तुक को देख नहीं पाते थे तथापि मेरी आवाज़ सुन कर बोल उठे—"आओ विनोद बैठ जाओ।" मेरे आने के बाद हिन्दी विभाग के अनेक छात्र तथा प्राध्यापक भी आकर बैठ गए। घर में द्विवेदी जी की शुश्रूषा के लिए चहल-पहल हो रही थी। मैं कुछ देर बैठा और आंखों का हालचाल पूछ कर वापिस लौटा। कुछ दिनों बाद उनकी आंखें योग्य उपचारों से ठीक हो गई।

एक बार डा० शिवमंगल सिंह सुमन विश्वविद्यालय में मुझे अचानक मिले। उस समय वे उज्जैन कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक थे और किसी काम के लिए काशी आए थे। कुशल वृत्तान्त पूछने आदि की औपचारिकता के अनन्तर मैंने पूछा "आप कहां ठहरे हैं"? "डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के घर" उन्होंने कहा, थोड़ी सी बातचीत के बाद सुमन जी से विदा लेकर मैं अपने होस्टल पहुंचा। दूसरे दिन द्विवेदी जी के घर गया तो सुमन जी वहां नहीं मिले। द्विवेदी जी घर पर ही थे उनके आसपास विद्यार्थियों और साहित्यकारों की मण्डली जुटी थी। मैंने जाकर सीधे

द्विवेदी जी को अभिवादनपूर्वक सुमन जी के बारे में पूछा अभी आएंगे बैठिये द्विवेदी जी के यों कहने पर मैं उसी मण्डली में बैठ गया। कुछ समय तक मण्डली में इने-गिने व्यक्ति रह गए शेष एक-एक करके चल दिये। इतने में सुमन जी आ गए। द्विवेदी जी ने उन्हें मेरी ओर संकेत करके कहा आप को ढूंढ रहे हैं। इतने में मैं स्वयं उठ कर सुमन जी से मिला। हम तीनों दूसरे कमरे में गए। वहां चाय का सामान लगाया गया था। जो लोग वहां थे सब को बुला लिया गया चाय की चुस्कियों में साहित्यिक चर्चाएं चल पड़ीं। सुमन जी ने द्विवेदी जी को मेरा पूरा परिचय और मेरे साथ अपनी चिरघनिष्टता के बारे में भी कहा। इससे द्विवेदी जी की मुझ पर विश्वास-पूर्ण सन्निकटता की भावना भी जागी। इसी कारण आगे चल कर वे मुझ से एक समीपस्थ आत्मीय जैसा व्यवहार करने लगे। द्विवेदी जी के साथ मेरा इस प्रकार का नज़दीकी सम्बन्ध बनाने में सुमन जी ही मुख्य कारण बने। सुमन जी तो विश्वविद्यालय में कुछ दिन के अतिथि बन कर उज्जैन चले गए। मैं तो विश्वविद्यालय के परिसर का प्राणी था। द्विवेदी जी भी वहीं थे। बीच-बीच में कभी हिन्दी विभाग में और कभी घर पर उनसे मिल लेता। कभी लम्बी साहित्यिक चर्चा द्वारा उनसे कई नवीन सन्दर्भ भी मिल जाते जिससे हिन्दी साहित्य क्षेत्र में भी मेरी पैठ होने लगी। इन्हीं की प्रेरणा पाकर मैंने संस्कृत एम० ए० परीक्षा पास करने के पश्चात् दूसरा हिन्दी एम० ए० भी यहीं से कर लिया।

एक बार श्री राहुल सांस्कृत्यायन काशी में आए। सर्वप्रथम अस्सी मोहल्ले के तुलसी पुस्तकालय में उनका भाषण हुआ। तत्पश्चात् दूसरे दिन काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में भी किसी गोष्टी के तत्वाधान में वे बोले। मैंने उनके दोनों भाषण सुने। वे यूनिवर्सिटी घाट के आस-पास कहीं ठहरे थे। मैं सवेरे उनसे मिलने जा रहा था तो एकाएक सड़क पर दूर एक रिक्शा आती हुई दिखाई दी। उसमें द्विवेदी बैठे हुए दिखाई दिये। मैंने अपनी चाल धीमी करते हुए रिक्शा के पास आने की प्रतीक्षा शुरू कर दी। यों ही रिक्शा पास पहुंची तो मेरे सामने खड़ी हो गई। द्विवेदी जी ने कहा आईये बैठ जाईये। उस समय मैं एक एम० ए० कक्षा के छात्र की ही हैसीयत रखता था, किन्तु उनकी सादगी भरी महानता से प्रभावित भी हुआ और रिक्शा पर बैठने में कुछ झेंप भी प्रतीत हुई फिर भी मैं उनके साथ बैठ गया। पांच दस क्षणों तक हम दोनों राहुल जी के पास पहुंच गए द्विवेदी जी को देख कर राहुल जी दूर से ही उठ खड़े होकर उनसे गले मिले। मेरी ओर संकेत करके बोले—यह आपका विद्यार्थी है। हां ऐसा ही है यों कह कर द्विवेदी जी हंस दिये। हम सब बैठ गए। देर तक साहित्य सम्बन्धी तथा प्रकाशन सम्बन्धी समस्याओं पर दोनों महान् लेखकों की बातचीत चलती रही। मैं बैठा-बैठा सब कुछ सुन रहा था। मुझ में साहित्य लेखन स्फूर्ति और उमंग दोनों करवटें लेने लगीं। ऐसी ही प्रेरणाएं मैं अनेकों बार

विभिन्न हिन्दी लेखकों से प्राप्त कर चुका था और अब तो कुछ-कुछ लिखने भी लगा था एवं कुछ रचनाएं प्रकाशित भी होने लगी थीं हिन्दी में लिखने का पूर्ण संस्कार मुझे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने ही दिया। यहीं पर सभी गण्य-मान्य हिन्दी लेखक आते रहते थे। मेरा उनसे मेल होता रहता था। स्वयं विश्वविद्यालय का परिसर भी हिन्दी लेखन का गढ़ था। यहां का प्रत्येक विद्यार्थी चाहे साईंस, आर्टस, ला-कामर्स आदि किसी भी विषय का हो हिन्दी में लिखना उसका जन्म जात संस्कार था। राहुल जी से मैं दिल्ली निवास के दिनों में ही परिचित था, जब मुझे कुछ मास शहादरा के लाल बाग में आचार्य चतुरसेन शास्त्री के साथ रह कर लेखन कार्य में उनका सहायक बनना पड़ा था। वास्तव में आचार्य जी बोलते चलते, मैं लिखता जाता। उनकी पिछली पाण्डुलिपियों की प्रैस कापियां भी पुनर्लेखन द्वारा मुझे ही तैयार करनी पड़ती थी। उन दिनों राहुल जी अधिकतर दिल्ली में रहते थे। मैंने एक दिन उन्हें पत्र लिखा तो उत्तर मिला जिसमें मुझे जल्द उनसे मिलने का आदेश लिखा था। तदनुसार उनसे मिला तो तीन चार दिन उन्होंने मुझे अपने साथ ही रखा। जाती बार कहने लगे कि मैं उन्हीं के पास रहूं। मैंने कहा आचार्य जी से पूछ लूंगा और चला आऊंगा। जब आचार्य जी को इस घटना का पता चला तो वे मुझ पर नाराज़ हुए क्योंकि इतना विश्वस्त और कुशल कार्य चालक शायद मेरे अतिरिक्त उन्हें कोई नहीं मिल पा रहा था। वे मुझे कब छोड़ते। अन्त में यही हुआ कि राहुल जी की आज्ञा पालन न करने के कारण फिर उनसे मिलने का साहस मुझे नहीं हुआ। दो-तीन मास के अनन्तर मेरी गृह सम्बन्धी समस्याओं ने मुझे आचार्य जी से विदा लेने को बाध्य कर दिया। यद्यपि उस समय उनकी स्थिति ऐसी थी कि मेरे बिना उनका कार्य नहीं चल सकता था फिर भी लाचार होकर उन्हें मुझे छोड़ना ही पड़ा।

काशी में जब राहुल जी से मिला तो वे मुझे झट पहचान गए। अरे! विनोद तुम यहां कहां। उनके यों पूछने पर मैंने सात वर्षों के उस अन्तर का अपना सारा इतिहास सुनाया कि किस प्रकार आचार्य चतुरसेन जी से विदा लेकर मैं जम्मू आया और श्री रघुनाथ संस्कृत कालेज में वेदाध्यापक के पद पर इतने वर्ष रह कर डा० कर्णसिंह जी से मासिक छात्रवृत्ति पाकर पुनः एम० ए० परीक्षा पास करने के लिए B. H. U. में प्रविष्ट हुआ हूं। मेरे इस वृत्तान्त से राहुल जी प्रसन्न अवश्य हुए किन्तु अब भी वे यही अनुभव कर रहे थे कि एम० ए० पास कर लेने के बाद मैं उन्हीं के साथ रहूं। उनकी बातों से उनके ये भाव समझने में मुझे देर नहीं लगी। किन्तु जीवन और नियति का प्रवाह मनुष्य को अचानक कहां से कहाँ ले जाता है। इस पर मानव का अपना कोई अधिकार नहीं होता। कुछ परिस्थितियों के अधीन भी होता है। इन दिनों दो तीन बार मैं राहुल जी से मिला। किन्तु उनके साथ काशी

के सब गण्य मान्य साहित्यकार, साहित्य प्रेमी तथा विद्यार्थी इन सब का लम्बा झुण्ड साथ ही चलता था कार्यक्रम बड़ा व्यस्त रहता था तथापि मेरे साथ उनका वार्तालाप तीनों बार पर्याप्त समय तक हुआ। मेरे सहपाठी छात्र कहने लगे विनोद बड़ा गहरा है, राहुल जी के साथ इतना सम्बन्ध कहां से कायम था।

एक दिन डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी मुझे पूछ ही बैठे-आप तो कश्मीर के हैं किन्तु यू० पी० के अधिकतर हिन्दी साहित्यकार आप को कैसे जानते है, मैंने कहा द्विवेदी जी सन् 1940 से हिन्दू विश्वविद्यालय में रहा हूं। सात साल ही तो यहां से गायब रहा। इतनी लम्बी अवधि में जो-जो महानुभाव यहां आए मैंने सब से परिचय बांध लिया और आचार्य चतुरसेन जी से मेरा सम्बन्ध सूत्र इन अनुपस्थिति के सात वर्षों में ही बंध गया। इसमें अकस्मात् कोई एक घटना थी। "वह क्या" द्विवेदी ज़ी पूछ बैठे मैंने उन्हें सारी बात सुनाई कि किस प्रकार आचार्य पास करने के बाद सन् 1946 में मैं लाहौर कुछ मास रहा। वहां आचार्य चतुरसेन से मेरा परिचय हुआ। उन दिनों वे मेहर चन्द्र लक्ष्मण दास पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता की ओर से निमन्त्रित होकर लाहौर आए थे और उनकी ओर से हिन्दी साहित्य का इतिहास लिख रहे थे। प्रैस कापी तैयार करने के लिए उन्होंने मुझे अपने साथ रख लिया। दो महीने मैंने उनके साथ यह कार्य किया। कुछ महीनों बाद जब स्वतन्त्रता मिली तो लाहौर पाकिस्तान को चला गया एवं प्रकाशक दिल्ली आ गए और मैं जम्मू पहले ही पहुंच गया था। एक दो वर्ष बीत जाने पर मैं दिल्ली शाहदरा आकर आचार्य जी के दर्शनार्थ गया तो उन्होंने मुझे पुनः लेखन कार्य में लगा लिया। इस प्रकार छ: महीने मुझे फिर उनके साथ रहना पड़ा। इस वृत्तान्त को सुन कर द्विवेदी जी गम्भीर हो गए। फिर कहने लगे तब तो आप केवल विद्यार्थी ही नहीं, जीवन-संघर्ष भी कुछ कर चुके हैं। मैं सुनकर मौन रहा। द्विवेदी जी के साथ मेरी उस दिन की इतनी ही बातचीत हुई।

एक दिन रुईया छात्रावास में कोई सभा थी जिसे द्विवेदी जी ने सम्बोधित करना था। मैं उन्हें लिवा लेने के लिए उन के निवास पर पहुंचा वे झट मेरे साथ पण्डाल तक आए। विद्यार्थियों की बृहद् भीड़ ने उनका स्वागत किया फिर उनका हिन्दी भाषा पर लम्बा और रोचक व्याख्यान हुआ। इसी प्रकार विश्वविद्यालय के परिसर में बीच-बीच में कभी हिन्दी विभाग में कभी किसी सभा में और कभी रास्ते में द्विवेदी जी के दर्शन होते ही रहते थे। एक बार नागरी प्रचारिणी सभा में वृहद् समारोह था। कवि सम्मेलन की रात को पण्डाल पर प्रसिद्ध कवि जुटे थे पचास-साठ हज़ार की जनसंख्या श्रोता के रूप में पण्डाल के नीचे बैठी थी। सभा के मन्त्री स्वर्गीय डॉ० राजबली पाण्डेय कार्य संचालक थे, द्विवेदी जी भी पास ही पण्डाल पर बैठे थे। इतने में श्रोताओं के बीच हुल्लड़ मचा। जो बढ़ता ही गया। पण्डाल पर बैठे कवि और लेखक जब डगमगा गए और मंच पर भी भीड़ उभड़ने लगी, तभी डॉ० हजारी

प्रसाद द्विवेदी उठे और लोगों को शान्ति से बैठने के लिए कहने लगे । उन्होंने एक बार फिर अनेक बार ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया, किन्तु जनता की उग्र भगदड़ और ऊंचे शोरगुल में उन की आवाज़ बीच में ही डूबती गई । अन्त में जब शोर हटा तो उन्होंने जनता से फिर शान्ति के लिए आग्रह किया । लोग अपने-अपने ठिकानों पर बैठ गए और सभा का कार्यक्रम अन्त तक चला । यहां पर मैंने द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की विशेष वरीयता देखी जो पण्डाल पर छा गई थी ।

एक दिन विश्वविद्यालय में कोई विशेष समारोह था । बाहर से तथा कुछ विदेशों से अतिथि भी पहुंचे थे । सभा के अनन्तर जल पान होने लगा । सभी अपने-अपने स्थानों पर बैठ कर चाय पान करने लगे एक-एक चाय टेबुल के चारों ओर कुर्सियां लगाई थीं और ऐसे ही चाय पान के अनेक स्थान इन कुर्सियों और टेबुलों से घिरे थे । जहां मैं बैठा था वहीं दूसरी कुर्सी पर द्विवेदी जी और तीसरी पर एक योरोपीय महिला बैठी थी । महिला अंग्रेजी में कुछ पूछ बैठी तो द्विवेदी जी ने अंग्रेज़ी में ही उसका उत्तर दिया । इसी प्रकार बात पर बात चलती रही । हम लोग साथ ही चाय-पान भी कर रहे थे और साथ ही बातें भी । उस दिन मुझे पहली बार पता चला कि द्विवेदी जी अंग्रेजी में भी निधड़क बोल लेते हैं । इस चाय गोष्टी में भी द्विवेदी जी के साथ वार्तालाप द्वारा एक साथ चाय-पान करने का सौभाग्य मुझे मिला । यद्यपि हम दोनों विश्वविद्यालय के परिसरवासी ही थे और इस प्रकार के मेल प्रतिदिन होते रहते थे तथापि विशेष उत्सवों में एक साथ बैठने की घटनाओं को मैं विशेष समझ कर ही यहां दे रहा हूं । एक बार डॉ० रघुवीर विश्वविद्यालय के पास कहीं आकर ठहरे थे । उनका एक भाषण विश्वविद्यालय में भी हुआ । दूसरे दिन रुईया होस्टल के गान्धी चबूतरे पर भी कुछ समारोह होने वाला था । लोग आकर आसपास खड़े होने लगे । इसी समय एक स्थान पर द्विवेदी जी भी खड़े थे । मैं भी उनके पास खड़ा था । डॉ० रघुवीर के काशी आगमन की चर्चा चली तो बातों के दौर में द्विवेदी जी हंस कर कुछ रस लेने के भाव में बोले अरे, रघुबीर तो रघुबीर ही हैं । सुनकर हम सब हंस दिये । मैंने मन में सोचा यहां काशी तो विद्वानों लेखकों स्कालरों आदि का गढ़ है, इस विद्या के क्षेत्र में भाग्यवान् को ही सम्मान मिल सकता हैं । डॉ० रघुवीर जी का भाषण कराने के लिए यदि उनका पी० ए० लोगों के पास जाकर कहता तो कोई आश्चर्य नहीं । उन जैसे व्यक्तित्व के लोग यहां कई आते जाते रहते हैं । फिर भी डॉ० रघुवीर विद्या के क्षेत्र में इने गिने व्यक्तित्व रखने वालों में थे । लेकिन यह काशी जो ठहरी ।

जहां द्विवेदी जी हिन्दी क्षेत्र में उच्चकोटि के समालोचक और चिन्तक माने जाते थे, वहां उनका व्यक्तित्व भी आकर्षक था, जिस के अणु-अणु में भारतीय संस्कृति की आभा थी । धोती, कुर्ता, कन्धे पर शाल आंखों पर काले फ्रेम का चश्मा तथा लम्बा

और भरा हुआ शरीर। इस के अतिरिक्त उनकी मुखाकृति, भव्य उन्नत ललाट तथा होठों पर सौजन्यपूर्ण आभा, जिस पर प्रियजनों के समागम पर मीठी मुस्कान की किरणें नाच उठती थीं। आज बड़े खेद से लिख रहा हूं कि इन पंक्तियों के लेखन काल में ही पहले समाचार पत्रों में उनकी बीमारी की खबर पढ़ी और चिन्ता लगी फिर शंकातुर हृदय पर उनकी दुःखद मृत्यु समाचार ने तीक्ष्ण प्रहार किया। इनके चल बसने से हिन्दी साहित्य का प्रांगण सूना तो हुआ ही किन्तु मेरे हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव जम गया कि अब मैं रिक्त जैसा हो गया हूं। द्विवेदी जी के जीवन-काल में ऐसा लगता था कि मेरे अपने विद्वान लेखक काशी में हैं जब चाहूं उनसे साहित्यिक सहायता और सौजन्य भरा प्यार तथा सहानुभूति प्राप्त कर सकता हूं। उन्होंने मेरी बात कभी नहीं ठुकराई। जब मैं राजकीय आर्टस कालेज श्रीनगर (कश्मीर) में प्राध्यापक था तो काशी से अपने एक छात्र जो कश्मीर यात्रा पर चला था, के हाथ मुझे कुशल मंगल का मौखिक सम्वाद भेजा। मुझे उसे प्राप्त कर प्रफुल्लता मिली कि द्विवेदी जैसे हिन्दी गगन के चमकीले नक्षत्र मुझे कितना याद रखते हैं। यह मेरे लिए गौरव का विषय था। एक बार प्रो० पृथ्वी नाथ पुष्प कहीं पर द्विवेदी जी से मिले तो उन्होंने सर्वप्रथम मेरा ही कुशल समाचार उन से पूछा। काश्मीर आकर प्रो० पुष्प ने मुझे कहा—"द्विवेदी जी आप को बहुत याद करते हैं" सुनकर मुझे असीम प्रसन्नता हुई। मैंने सन् 1955 में हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० परीक्षा पास की। इस समय तक द्विवेदी जी से मेरी पर्याप्त घनिष्ठता हो चुकी थी। उन्हीं की प्रेरणा पाकर मैंने इसी विश्व-विद्यालय से सन् 1957 में हिन्दी में भी एम० ए० परीक्षा पास कर ली। इसके पश्चात् जम्मू-कश्मीर राज्य में आकर यहां के राजकीय आर्टस कालेज में संस्कृत का प्राध्यापक नियुक्त हुआ (सन् 1957 में)।

सन् 1962 की बात है, जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष का पद रिक्त था। विज्ञापन और प्रार्थना पत्र आदि की औपचारिकता के अनन्तर साक्षात्कार के लिए जम्मू में द्विवेदी जी तथा डॉ० नगेन्द्र दोनों विशेषज्ञ के रूप में आए और राजकीय गेस्ट हौस में ठहरे, उन दिनों मैंने अपना एक कविता संग्रह 'उल्लोल' तैयार किया था। मैंने उस पर भूमिका लिखवाने का अच्छा अवसर समझा। द्विवेदी जी के दर्शनार्थ मैं गेस्टहौस में पहुंचा और साथ ही उल्लोल की पाण्डु-लिपि भी साथ ले गया। मुझे देख कर द्विवेदी जी अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। उन्होंने बड़ी सौहार्द्रता के साथ मेरा कुशल मंगल पूछा और पास बैठाया। द्विवेदी जी को पान खाने की विशेष आदत थी। किन्तु वहां कहीं पान की दुकान पास में नहीं थी एवं अपरिचित होने के कारण वे दूर की दुकान का मार्ग भी नहीं जानते थे। मुझे जब उनकी इस कठिनाई का पता चला तो मैं झट दूर के बाजार में गया और छः सात पान के बीड़े लगवा लाया। देखकर द्विवेदी जी अधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने एक बीड़ा

डॉ० नगेन्द्र को देकर दूसरा अपने लिए उठा लिया। शेष फिर के लिए रख लिए। लम्बी बातचीत के बाद मैंने उल्लोल पर भूमिका लिखने के लिए उनसे आग्रह किया। उन्होंने स्नेहवश स्वीकार कर लिया। उसी समय मैंने पाण्डुलिपि उनके हाथ दे दी और सायंकाल जब मैं पुन: उनके निवास पर गया तो देखा कि उन्होंने मेरी पुस्तक पर भूमिका लिखकर रख दी थी। कुछ समय तक उनके पास बैठ कर पाण्डुलिपि (भूमिका के साथ) लेकर मैं चलने लगा तो सहसा मन में विचार उठा कि द्विवेदी जी से कहूं कि वे मेरे लिए कुछ समय निकाल कर हमारी कुटिया में भी पदार्पण करें। जब मैंने प्रार्थना की तो द्विवेदी जी सोच में पड़ गए। वास्तव में उनके पास कोई भी समय रिक्त नहीं था। वे इतने व्यस्त कार्यक्रम में पड़े थे कि लाचार होकर मेरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर पाए। मैं भी उनकी यह परवशता समझ कर अधिक आग्रह नहीं कर पाया। उस दिन संध्याकाल हो आया था। दूसरे दिन का उनका कार्यक्रम और भी अधिक व्यस्त था। प्रात: दस बजे साक्षात्कार की गोष्टी में बैठना, तदनन्तर भोजन और फिर दिल्ली के लिए विमान पकड़ना यह ऐसी कार्य श्रृंखला बंधी थी, जिसमें एक क्षण भी अतिरिक्त समय नहीं बचता था।

दूसरे दिन साक्षात्कार के पश्चात् द्विवेदी जी चले गए। मैंने उसी दिन उल्लोल की पांडुलिपि छपने के लिए प्रैस को दे दी। छपने पर उसकी एक प्रति द्विवेदी जी को भी भेज दी। उन दिनों डा० द्विवेदी पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में हिन्दी विभागाध्यक्ष थे। बाद में पुन: हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष के पद पर विराजमान हो गए। इन्हीं दिनों (सन् 1973) में काशी गया और द्विवेदी जी के निवास पर पहुंचा। वे मुझे देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित हुए जम्मू का हालचाल पूछा तथा अन्य साहित्यिक चर्चा भी हुई। अन्त में मैंने उनके साथ चित्र लेने की इच्छा प्रकट की वे मेरे आग्रह को झट मान गए। मैं जाकर फोटोग्राफर को लाया और भवन के आंगन में चित्र ले लिया गया। आज उनकी सुनहरी स्मृति का प्रतीक वह चित्र मेरे पास सुरक्षित है। एक चित्र उन्हें भी मैंने समर्पित किया, जो उनके रिकार्ड में अवश्य पड़ा होगा।

यही मेरा उनके साथ अन्तिम मेल होगा, ऐसा उस समय मैं कब जानता था, जम्मू आकर मैं अपने कार्य कलाप में उलझ गया। द्विवेदी जी की स्मृति समय-समय पर मुझे भावुक बना देती थी, फिर भी इस आशा पर कि कभी काशी जाकर उनसे मिलूंगा, मन को शान्ति सी मिल जाती। उनकी सौम्यता भरी मुखाकृति जिस पर वास्तविक स्नेह अपनेपन का भाव तथा पारिवारिक वात्सल्य सदा टपकता रहता था मुझे सदा याद आकर हृदय को आन्दोलित कर जाती।

राजकीय आर्ट्स कालेज जम्मू के हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से अवकाश पाकर

मैं हिमाचल सरस्वती संस्कृत कालेज जंगला-रोहड़ू (शिमला) का प्रधानाचार्य नियुक्त हुआ। जीवन के इस नए परिवर्तन से उन्हें सूचित नहीं कर पाया, अब मैं अपनी बड़ी गलती मानता हूं। क्योंकि मेरे यहां नियुक्त होने पर इस संस्था का कार्यकलाप अकस्मात् बढ़ गया, जिस में मुझे अधिक व्यस्त रहना पड़ा। तब तक गगन चुम्बी पर्वतमाला पर चारों ओर से घनघोर बादल छा गए और मूसलाधार वर्षा निरन्तर होने लगी प्रकृति की यह उग्र लीला एक डेढ़ सप्ताह चलती रही। अधिक शीत लहर के साथ ही कुछ दिन यातायात भी बन्द रहा। मैं अपनी इन व्यक्तिगत कठिनाईयों में पड़ कर द्विवेदी जी को अपने जीवन के इस मोड़ से सूचित नहीं कर पाया लेकिन भविष्य में पत्र लिखूंगा, इसी विचार में पड़ा रहा। मौसम खुल जाने के कुछ समय बाद ही समाचार पत्रों में डा० द्विवेदी जी की बीमारी के समाचार आने लगे, पढ़ कर मैं घबरा गया, फिर भी उनके दर्शनार्थ काशी जाने की सोच ही रहा था, तो दूसरे दिन समाचार पढ़ा कि उन्हें दिल्ली के अन्तर राष्ट्रीय चिकित्सालय में लाया गया है। अब दिल्ली जाने की सोच रहा था तो एक दिन उनकी दुःखद मृत्यु का समाचार आकाशवाणी से सुन लिया। हृदय अत्यन्त व्याकुल हो गया। आज तक जितने संबंधी और इष्ट मित्रों की दुःखद मृत्यु से हृदय दुःखता आया था डा० द्विवेदी की मृत्यु का शोक मेरे लिये उन सब से भयंकर था। मुझे उनकी एक-एक बात याद आने लगी। उन का वह भाव व्यक्तित्व, मधुर मुस्कान, खिलखिलाहट, हार्दिक स्नेह तथा अभिभावक प्रभाव रह-रह कर याद आने लगा। इसी के साथ उनकी भव्य आकृति क्षण-क्षण मेरी आंखों के सामने नाचने लगी। मैं विमूढ़-सा समझ नहीं पाया कि मैं किस वातावरण में हूं, क्या देख रहा हूं और किस दशा में हूं, अब द्विवेदी जी को कहां देखूंगा कैसे मिलूंगा, मैंने गलती की जो उनके जीते जी इस बार काशी नहीं गया, क्या पता था कि वे अचानक चल बसेंगे, ऐसे ही विचार मेरे हृदय में दिन रात उठने लगे। लगभग एक सप्ताह मेरी यही दशा रही। ०००

डा० श्री सिद्धेश्वर वर्मा जी

स्वर्गीय डा० सिद्धेश्वर वर्मा भाषा, विज्ञान, साहित्य, अनुसंधान गहन अध्ययन इत्यादि बौद्धिक क्षेत्रों में न केवल अन्तर्देशीय ख्याति प्राप्त थे अपितु विशाल अध्ययन के प्रति अत्यन्त समर्पित और स्थापित महापुरुष थे।

इन्होंने सन् 1911 में एम० ए० (इतिहास) सन् 1913 में शास्त्री तथा सन् 1927 में डी० लिट् (लन्दन) की उपाधि प्राप्त की। इनका जन्म सन् 1887 ई० में पंजाब के एक कस्बे तत्राल (झेलम) जो अब पाकिस्तान में है, में हुआ। भाषा के क्षेत्र में अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत तामिल, उर्दू, ग्रीक, फ्रेन्च, जर्मनी, स्पेनिश, रशियन आदि 50 भाषाओं के विद्वान् थे, इन भाषाओं के साहित्य का जीवन भर रात-दिन अध्ययन करते रहने से इनका आश्चर्यजनक विशाल ज्ञान था। भाषा संबन्धी अनुसंधान कार्य द्वारा इन्होंने पहाड़ी और डोगरी बोलियों के कई नवीन तथ्य खोज निकाले। इस विषय पर इनके लिखे ग्रन्थ देश-विदेशों में पहुंचे, जिससे इन्हें अपने क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी मिली।

इन्होंने डा० रघुवीर के साथ नागपुर में इंग्लिश संस्कृत कोष के निर्माण में सहयोग दिया। तदनन्तर केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय में भी उच्चपद पर रह कर हिन्दी-संस्कृत संबंधी सृजनात्मक कार्य किया। यह सब कुछ प्रोफेसर के पद से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् इन्होंने किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने हिमालय की ग्यारह प्रकार की पहाड़ी बोलियों की खोज की, उन पर अनुसंधान कार्य किया, जो जापान फोनेटिक सोसायटी में पढ़ा गया। इनका पेपर जो तामिल भाषा पर खोज स्वरूप था, इसी सोसायटी ने छापा था। वैदिक रिसर्च इन्स्टीच्यूट होशियारपुर ने इनके सन्मान में "सिद्धेश्वर भारती" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला ने इन्हें डी० लिट् की उपाधि द्वारा सम्मानित किया। भारतीय राष्ट्रपति जी ने भी इनको संस्कृत विद्वत्ता पर सन्मान सूचक प्रमाण पत्र दिया। इसी प्रकार लन्दन की एक फोनटिक सोसायटी ने इन्हें अपना सदस्य बना कर सम्मानित किया। भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण पदवी से सम्मानित किया।

कहने का मेरा अभिप्राय है कि डा० सिद्धेश्वर वर्मा ऐसे परिश्रमी और ज्ञान के प्रति समर्पित व्यक्तित्व थे, जिनके पीछे-पीछे उपर्युक्त सम्मान न चाहने पर भी चलते रहे। जीवन में अध्ययन गवेषण लेखन आदि के अतिरिक्त ये संसार की भौतिक उन्नति के प्रति सदा निस्पृह ही बने रहे।

ऐसे महापुरुष के साथ मेरा संपर्क तब हुआ जब ये जम्मू के प्रिन्स वेल्ज कालिज के संस्कृत के प्रोफेसर थे। दिन रात पुस्तकों में जुटे रहने के पश्चात् सायं लगभग छः बजे तवी के पुल पर दो घण्टों के लिये विहारार्थ घर से निकलते थे। वहीं मैं प्रतिदिन इनके साथ घूमता था। इनके साथ घूमने की एक शर्त थी कि घूमते समय शास्त्रीय चर्चा को छोड़ कर और कोई बात न की जाये। मैं तो घर से ही कोई वैदिक दार्शनिक पौराणिक या भाषा संबंधी प्रश्न सोच कर इनके पास पहुंचता था और रात घूमते हुए इसी पर विचार विनिमय होता था। इस से बहुत कुछ बौद्धिक खुराक प्रतिदिन मिलने के कारण मेरा ज्ञान परिपक्व होता चला गया। यह समय सन् 1938 ई० का था।

यह नियम एक वर्ष तक लगातार चला। बाद में मैं शास्त्री पास करके अग्रिम अध्ययनार्थ काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय वाराणसी में प्रविष्ट हो गया परन्तु तब भी हमारा पत्र व्यवहार एक वर्ष तक चला। एक पत्र में डा० महोदय ने मुझे लिखा कि मैं ऋत शब्द पर खोज करूं, मैंने ऐसा करके जम्मू आकर उन्हें अपना अनुसंधान कार्य जब दिखाया तो वे देखकर बड़े प्रसन्न हुए। दो महीनों की गर्मी की छुट्टियों में पुनः उनके साथ घूमता रहा। एक दिन बातों-बातों में उन्होंने कहा—"गंगादत्त देख मैं सौ वर्ष का भी हो जाऊंगा तो भी तुम मुझे काशी के धुरन्धर संस्कृत विद्वानों के पास पुस्तक खोल कर उनसे शिक्षा लेते देखोगे।" इतनी प्रबल अध्ययन पिपासा थी उनकी, जो आश्चर्य में डालने वाली थी। एक दिन किसी छात्र ने रात को पुल पर आकर उन्हें हिन्दी कहानी शुद्ध करने को दी तो वे उस छात्र पर एकदम बरस पड़े। कहने लगे क्या मुझे तुमने कहानी के योग्य समझा है। मैं तो दर्शन, अलंकार व्याकरण साहित्य आदि शास्त्रों का रसिक हूं। मुझे वेद शास्त्र, पुराण उपनिषद् भाषा विज्ञान आदि में ही रस मिलता है, इस कहानी को ले जाओ कभी ऐसा मत करना। ऐसे थे डा० सिद्धेश्वर वर्मा सरस्वती के वरद पुत्र और अध्ययन प्रेमी, निस्पृह, शांत, सौम्य और लोकोत्तर गुणों से समृद्ध। उनका व्यक्तित्व अपने आप में ही एक अपूर्व था, जो कभी न हुआ न होने की संभावना है खास कर इस राजनैतिक उथल-पुथल और भौतिक भोगवादिता के युग में। ०००

महान् पत्रकार पद्मश्री श्री मुल्कराज जी सराफ

इस महापुरुष के पैदा होने का गौरव जम्मू की धरती को प्राप्त हुआ है। अपने जीवन में इन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में देश विदेश में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। एक प्रकार से ये पत्रकारिता के लिए पूर्ण जीवन तक समर्पित रहे। जम्मू कश्मीर राज्य में इन का एक विशिष्ट व्यक्तित्व माना जाता था। राज्य के बाहर भी इनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। इन्हें पत्रकारिता का पितामह कहते हैं। अपने जीवन में इन्होंने अनेक समाचारपत्र (दैनिक, साप्ताहिक और मासिक) चलाए। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी पर इनका पूरा अधिकार तो था ही, इन्हीं भाषाओं के माध्यम से इन्होंने इस क्षेत्र में हर प्रकार का प्रकाशन कार्य किया। भारत सरकार ने भी इन्हें इनकी इन उपलब्धियों पर अनेक सन्मान दिये। ये कई बार विदेशों में भी गए तथा अनेक मिशनों का भारत की ओर से प्रतिनिधित्व करने के लिए समय-समय पर विदेशों में जाते रहे। वहां भी इन्हें बड़े-बड़े सन्मान मिले।

श्री मुलकराज सराफ जी का जन्म जम्मू के लगभग तीस किलो मीटर दूर बसे साम्बा कसबे में सन् 1894 ई० में हुआ। बी० ए० पास करने के पश्चात् इन्होंने उस जमाने में पत्रकारिता (Journalism) में प्रवेश किया, जब जम्मू-कश्मीर राज्य में पत्रकारिता का क्षेत्र लगभग शून्य ही था, यह भी प्राचीन संस्कारों की ही बात है कि उस युग की उच्च शिक्षा मानी जाने वाली बी० ए० जैसी उपाधि प्राप्त करके इन्होंने आसानी से मिलने वाली बड़ी ऊंची सरकारी नौकरी की ओर से अपना ध्यान हटा कर लोक-सेवा स्वरूप पत्रकारिता में अपने को डाल दिया।

श्री सराफ जी ने इस क्षेत्र में सर्वप्रथम जम्मू से सन् 1924 ई० में 'रणवीर' नामक उर्दू पत्र निकाला। सर्वप्रथम इस प्रकाशन का शिलान्यास इसी वर्ष इनके द्वारा हुआ जो आगे चल कर इस राज्य में थोड़े ही समय के भीतर न केवल छा गया बलिक बाहर के प्रांतों में भी इसने अपना प्रचार क्षेत्र कायम कर लिया और इस की दिनोदिन आश्चर्यजनक उन्नति भी होने लगी। कवित्व भाषा में "रणवीर" के

बारे में ऐसा कहा जा सकता है कि यह प्रकाशन एक ऐसा महान् वृक्ष बना जिसके अन्य प्रकाशन भिन्न-भिन्न शाखाओं के रूप में फूट पड़े और जम्मू-कश्मीर राज्य में पत्रकारिता का एक समृद्ध वातावरण तैयार हो गया।

पत्रकारिता के पितामह श्री मुल्कराज सराफ का अपना व्यक्तित्व इतना विशाल था, जिसकी आवाज़ और लेखनी में भारतीय जनता की धड़कन और सम्वेदना प्रतिबिम्बित थी। शारीरिक रूप में जितने भव्य और सौंदर्यपूर्ण थे, वाणी और लेखनी में भी उतने ही सबल और सुन्दर थे। इन्होंने लगातार 65 वर्षों तक पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य किया। इस अवधि में पत्रकारिता के साथ-साथ इनके सामाजिक और देश की स्वतन्त्रता सम्बन्धी कार्य-कलाप भी बड़े प्रसिद्ध हैं। गरीबों की सहायता, समाज के उत्थान में योगदान तथा देश की आज़ादी इन लक्ष्यों पर ये जीवन भर वाणी लेखनी और कर्म द्वारा सतत् प्रबुद्ध रहे। भारतीय पत्रकारिता परिवार के वृद्ध महानुभाव सराफ महोदय का जीवन निरन्तर एक कर्म योगी के रूप में उभरता रहा। अटूट उत्साह, लगन और परिश्रम ये तीनों इनके साथ अन्त तक जुड़े रहे। 95 वर्षों की उम्र में भी इन्हें एकदम सबल, स्वस्थ, चैतन्य, प्रबुद्ध और कर्मण्य देखकर आश्चर्य होने लगता था। मृत्यु के कुछ दिन पूर्व इन के स्वास्थ्य में एक नया तारुण्य और रंगत आ गई थी जिसे देखकर यह आशा की जा सकती थी कि अभी मृत्यु इनसे बहुत दूर है किन्तु यह भाग्य की ही विडम्बना थी कि जो वस्तु हमें अलौकिक रूप में मिली थी वह अकस्मात् हमारे से खो गई।

श्री सराफ जी का कितना विशाल व्यक्तित्व था। जिसके सम्बन्ध में कुछ बातें यहां लिख देना पर्याप्त तो नहीं किन्तु उदाहरणस्वरूप ही समझ लेनी चाहिएं।

देश के अधिकतर जरनलिस्ट लोग समय-समय पर जम्मू आकर इनसे प्रत्येक विषय में दिशा निर्देशन लेते थे। जम्मू कश्मीर राज्य के नेतृत्व के लिए भी ये समय-समय पर इस क्षेत्र में तथा अन्य राजनैतिक विषयों में विचार-विमर्श का केन्द्र थे। राज्य सरकार में इन्हें उच्च सम्मानित दृष्टि से देखा जाता था। इनके जीवनजात सिद्धांत परस्पर भाईचारा, एकता, साम्प्रदायिक तत्वों का विरोध, राष्ट्रीयता, समाज सेवा और देश प्रेम से साम्बन्धित थे। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के साथ वर्षों तक रह कर "बन्दे मातरम" पत्र में कार्य किया। इस देश के इतने बड़े महापुरुष के साथ रहने का इन्हें गौरव ही प्राप्त नहीं हुआ अपितु उनसे देशप्रेम तथा देश की स्वतन्त्रता की भावना की प्रेरणा भी प्राप्त की, जो आगे चल कर इनके जीवन में साकार हो उठी। यही कारण था कि स्वतन्त्रता के आंदोलन के युग में उन्होंने स्वतन्त्रता सेनानियों, जो बाहर तथा भूमिगत रह कर कार्य कर रहे थे, की पूरी सहायता की। जम्मू कश्मीर राज्य के भूतपूर्व (महाराज के युग में) प्रधान मन्त्री श्री

मेहरचन्द महाजन के अनन्तर सराफ जी ने ही अखिल भारतीय महाजन कान्फ्रैंस के प्रधान का पद सम्भाला। (1931 में) उत्तर भारतीय एडल्ट एजुकेशन कान्फ्रैंस की प्रधानता भी इन्होंने ही की (सन् 1943 में) इसी प्रकार भारत के प्रसिद्ध समाचार पत्रों "स्टेट्स मैन" हिन्दुस्तान टाईम्ज़ आदि आदि को भी इन का लेखन द्वारा काफी योगदान मिलता रहा। विश्व पत्रकारिता के लिए भारतीय डेलीगेशन के वरिष्ठ सदस्य होने का गौरव भी इन्हें मिला था जिस का अधिवेशन फिनलैण्ड में था। (1956 ई० में)। वहीं चीन के प्रधान मन्त्री चो एन लाई तथा उत्तर कोरिया के राज्याध्यक्ष द्वारा इन का स्वागत किया गया। इसी प्रकार 1979 में पाकिस्तान की यात्रा करने पर वहां भी जनता द्वारा इनका स्वागत किया गया।

श्री मुल्खराज सराफ जी ने बहुत-सी पुस्तकें भी लिखी हैं। साहित्य के साथ इनका हार्दिक प्यार था। स्वयं भी सफल साहित्यकार थे। पिछले कुछ वर्षों में ये कश्मीर इन्साईक्लोपीड़िया भी छापते रहे, जिसमें जम्मू कश्मीर राज्य का सर्वतोमुखी विवरण देने के साथ-साथ राज्य में गण्यमाण्य पुरुषों के सचित्र जीवनियां भी छापते रहे। वहां भी इन्होंने प्रत्येक भाषा के साहित्यकारों को भी स्थान देकर साहित्य लेखन के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार के लगभग चार पांच प्रकाशन इन्होंने सफलतापूर्वक किये। अब इनके बाद यह अभियान शायद चलेगा ही क्योंकि इनके सुयोग्य पुत्र श्री ओम, श्री सूरज, श्री वेद राही आदि इस कार्य को अवश्य चलाएंगे ऐसी आशा है।

श्री सराफ महोदय इतने बड़े परिश्रमी थे जिसे देखकर एक बार जम्मू कश्मीर राज्य के राज्यपाल (माननीय श्री भगवान सहाय जी) ने भी इनके इस गुण की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। स्वभाव के मधुर, सभ्य, संस्कृत, शिष्ट और निराभिमान स्वर्गीय सराफ जी जैसा व्यक्तित्व अब कहां मिलेगा। भारत सरकार ने इन की उपर्युक्त सब योग्यताओं को देख कर इन्हें पद्म भूषण अलंकार से तथा राज्य सरकार ने भी (Role of Honour) देकर सम्मानित किया। सराफ मुल्खराज जी से मेरा सम्बन्ध पिछले तीस वर्षों से लगातार चलता रहा था। जब भी मुझे मिलते देखकर गद्‌गद् हो उठते। इस महापुरुष का प्रेम पात्र बनने का मुझे जो गौरव अनुभूत होता रहा वह शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इनके चले जाने से भारत की पत्रकारिता में जो रिक्तता आई है, उसकी पूर्ति असम्भव जान पड़ती है।

ooo

भाग्य और बुद्धि के धनी

खोजू शाह धर्मट्ट

आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जम्मू प्रदेश की स्थिति आज के युग से बहुत भिन्न थी। सादगी, संस्कृति, धार्मिकता, अन्ध विश्वास, धार्मिक रूढ़ियां, नेक नीयती, नैतिक जीवन जैसी कुछ विशेषताएं भी थीं उस समय हमारे समाज में। उस सुदूर पूर्व की लोकवार्ताएं जिन में जन जीवन प्रतिबिम्बित (उस युग का) दीखता है, आज हमारी रुचि उन्हें सुनकर विचित्र उत्सुकता के साथ जागृत हो उठती है। उन्हें बार-बार सुनने की ओर उस युग का चित्र देखने की जो इन जनश्रुतियों के माध्यम से ही हमें मिल सकता है, सत्य इतिहास के साथ सांस्कृतिक झांकी के दर्शन भी होते हैं। अतीत से प्रेरणाएं भी मिलती हैं। उस युग के विशिष्ट पुरुषों की गाथाएं सुन कर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव भी हम पर पड़े बिना नहीं रह सकता। ऐसी ही उस युग के एक विशिष्ट व्यक्तित्व की गाथा सुनी थी, जिन के वंश परम्परा आज भी जम्मू में प्रतिष्ठित शहरी के रूप में देखी जाती है। उस व्यक्तित्व के पुत्र और पौत्रों को हम शहर की सड़कों और गलियों में अपनी तरह चलते फिरते रोज देखते हैं।

यह व्यक्तित्व था उस युग का पं० श्री खोजू शाह धर्म भट्ट (धर्मट्ट) अद्भुत व्यक्तित्व था उस युग में। यह भी एक जिसने भाग्य के प्रभाव से समझिये या अपने बुद्धि तथा पौरुष के बल पर समझिये उस युग में आश्चर्यजनक उन्नति की।

इस उन्नति का मूल कारण एक साधारण घटना पर आश्रित था। महाराज गुलाब सिंह किसी समय जम्मू के अफगान मोहल्ले में सदल बल चल रहे थे। कुछ हालचाल देखने सुनने के लिये। सहसा एक युवक ने सामने आकर महाराज को अभिवादन किया।

कौन हो तुम ? महाराज ने पूछा।

मेरा नाम खोजू और मैं ऊधमपुर के आगे जिब्ब गांव का वासी हूं महाराज।

सुनकर महाराज ने तत्काल आदेश दिया —इसे दफ्तर में क्लर्क रख दो। युवक की प्रथम नियुक्ति सेना में लिपिक पद पर हुई। अपनी योग्यता उत्तरदायित्व तथा कार्य कुशलता द्वारा यह युवक तेजी से सेवा कार्य में उन्नति करता चला गया। कुछ समय बाद इसे ब्रिगेड का सप्लाई आफिसर बना दिया गया यहां भी युवक ने भारी कार्य कुशलता का परिचय दिया। महाराज द्वारा प्रसन्न होकर ऊंचे-ऊंचे पदों पर उत्तरोत्तर किया जाने लगा। इस प्रकार 45 वर्षों तक इस व्यक्ति ने अनेक उन्नत पदों पर रह कर राज्य में सेवा कार्य किया। अकाऊंटेण्ट जनरल (दिवान) जम्मू-कश्मीर डिप्टी रेवेन्यू मिनिस्टर (मशीरमाल), वजीर वजारत (डी. सी.) कस्टोडियन (टक्साल) जहां राज्यस्तरीय सिक्के बनते थे। डिवीजनल फारेस्ट आफिसर कुछ मन्त्रियों के प्राईवेट सिक्रेटरी आदि उच्च पदों पर श्री खोजू शाह ने अत्यन्त योग्यता और उत्तरदायित्व पूर्ण प्रकार से कार्य किया। अब उनकी प्रशासन कुशलता की धाक सारे राज्य में फैल गई। महाराज रणवीर सिंह के युग में आकर भी इन्होंने पूर्ववत् प्रशासन कार्य में अद्भुत क्षमता का परिचय दिया और उत्तरोत्तर राज्य सरकार के उन्नत पदों पर रह कर कार्य करते चले गए।

तीसरे महाराज प्रताप सिंह के युग में आकर इन का प्रशासनिक प्रभाव चरम सीमा तक पहुंच चुका था। ये राज्य के प्रशासन में एक स्तम्भ बन चुके थे। साथ ही राज्य और जनता सम्मान के अद्भुत पात्र भी। इसी बीच इन्होंने 1861 में विद्या विलास नामक साप्ताहिक पत्र चलाया तथा रघुनाथ बाज़ार में विद्या विलास प्रेस की स्थापना भी की। पत्र लगातार कई वर्षों तक निकलता रहा। इसी नाम की यानी विद्या विलास सभा नामक एक विद्द गोष्टी की स्थापना भी साथ की गई, जिसमें महाराज द्वारा बाहर के तथा स्थानीय विद्वानों का किया गया संगठन प्रति सप्ताह मंगलवार को साहित्य गोष्टी के रूप में शास्त्रार्थ तथा विभिन्न विषयों पर शोध पत्र पढ़ता था। यद्यपि इस सभा के संयोजक महाकवि चण्डीदास (1805-1885 ई०) थे तथापि इस सभा के संचालन में श्री खोजू शाह धर्मभट्ट का पर्याप्त योगदान चलता रहा। स्वयं अधिक पठित न होते हुए भी उनकी साहित्यिक और पत्रकारिता की गतिविधियों को देखकर आश्चर्य होता है। आज युवकों को इससे प्रेरणा लेनी चाहिये। यह विद्या विलास त्रयी (वि. वि. प्रे. वि. वि. पत्रिका, वि. वि. सभा) सन् 1861 से चलकर लगातार सन् 1885 तक चलती रही। इस सभा का कुछ दुर्लभ रिकार्ड संस्कृत में लिखा हुआ मेरे पास सुरक्षित है। जम्मू के एक लेखक महोदय ने इस विलास त्रयी पर अनुसन्धान करते हुए अनेक तथ्यों को प्रकाश में लाया है किन्तु वे मेरी इस संस्कृत में लिखित उस युग से सम्बन्धित सामग्री का अपनी खोज में उपयोग नहीं कर पाए।

इसी शृंखला में यह भी लिख देना आवश्यक है कि शाह जी प्रबन्ध करने में अत्यन्त कुशल थे। सन् 1875 ई० में राज्य में जो भयंकर अकाल पड़ा उसमें महाराज रणवीर सिंह ने राशन-वितरण का पूरा उत्तरदायित्व शाह जी पर डाल दिया। इन्होंने उस समय की यात्रा कठिनाइयों को सहकर जम्मू से कश्मीर तक राशन वितरण का कार्य पूरी चतुराई और लगन के साथ ऐसा किया कि अकाल देर तक राज्य में नहीं ठहर पाया। यह थी उनकी जन सेवा और राजाज्ञा का ईमानदारी से परिपालन। क्या आज ऐसे अधिकारी मिल पायेंगे जो राजाज्ञा को जन सेवा का रूप देकर अपने सुखों का त्याग कर पायें ?

कवियों ने कहा है—'गुणा: पूजास्थानम्' गुण ही पूजा का कारण है। श्री पं० खोजू शाह गुणी थे, सेवा से अवकाश प्राप्त करने के अनन्तर पुनः ड्योढी आफिसर नियुक्त कर दिये गए। उस युग में राजमहलों के समग्र प्रबन्ध का अधिकारी जो नियुक्त किया जाता था, उसे ड्योढी अफसर कहते थे। यह पद अत्यन्त राज कृपा, प्रबन्धचातुर्य एवं विश्वास पात्रता का परिचायक होता था। श्री खोजू शाह को इस पद के योग्य माना गया। यहां भी 16 वर्षों तक सफलता पूर्वक कार्य करने के अनन्तर वे 1914 में पुनः सेवा मुक्त किये गए। सन् 1915 में इस महान व्यक्तित्व का देहावसान हुआ।

जम्मू में यह घर अब तक प्राचीनता से चली आ रही अपनी शाही प्रतिष्ठा को संजोए हुए है।

शाह जी के 5-6 पुत्रों में अब केवल 87 वर्षों की आयु के वीरबल जी धर्मट्ट बचे हैं। अब भी उनका स्वास्थ्य अच्छा है और इनके जीवन के साथ भी जो एक राष्ट्रीय घटना जुड़ी हुई है, उसके संक्षिप्त वृत्तान्त यहां दिया जा रहा है।

बात 1946 की है। उन दिनों जम्मू कश्मीर राज्य में शेख अब्दुल्ला द्वारा चलाया गया कश्मीर छोड़ो आंदोलन जोरों पर था। इसका उद्देश्य था राज्य में डोगरा राज को समाप्त करना। इस बीच आंदोलन के नायक शेख को गिरफ्तार कर लिया गया चूंकि शेख का आंदोलन राष्ट्रीय धारा के अन्तर्गत होकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा समर्थित था, इस कारण शेख को कारागार से छुड़ाने के लिए अथवा उनकी गिरफ्तारी के विरोध में पं० जवाहर लाल नेहरू अपने साथियों के साथ कश्मीर में प्रवेश करना चाहते थे, जिस पर राज्य सरकार ने रोक लगा दी।

पं० नेहरू रावलपिण्डी के मार्ग से होकर कोहाला पहुंचे। वहां उन्हें रोकने के लिए राज्य सेना की एक टुकड़ी नायब सूबेदार श्री वीरबल धर्मट्ट की कमान में तैनात की थी। ज्यों ही पं० जी की कार वहां पहुंची, सैनिक टुकड़ी ने उसे रोक लिया। पंडित जी की पार्टी जो उनके साथ आई थी उसमें भारत के प्रसिद्ध कांग्रेस

नेता भी थे। सिपाही उनके व्यक्तित्व को क्या जाने। उन्होंने राईफलें तैयार कर ऊंची उठा लीं तभी श्री आसफ अली ने कहा—हम लोग तोड़-फोड़ नहीं कर रहे हैं शांति से कश्मीर में प्रवेश करना चाहते हैं इसलिये आप हम पर गोली नहीं चला सकते। सुनकर सिपाहियों के राईफल नीचे हो गए। टुकड़ी के नायक श्री बीरबल धर्मट्ट ने सिपाहियों को आदेश दिया कि वे कोई ऐसा कार्य न करें जिससे कोई अवांछित घटना घटने से सारे भारत में हलचल मच जाए क्योंकि स्वतन्त्रता की घोषणा हो चुकी है। दिल्ली में कांग्रेस का भारी अधिवेशन बैठा है, जिसमें महात्मा गांधी मुख्य भूमिका निभा रहे हैं, पं० नेहरू देश के प्रधानमन्त्री बनने वाले हैं, श्री बीरबल धर्मट्ट इस राजनीति को जानते थे उन्होंने सिपाहियों को भी अवगत कराकर समझा दिया कि सरकार के आदेश के पालनार्थ पंडित जी को कश्मीर जाने के लिए रोकते अवश्य रहिये किन्तु उन पर या किसी अन्य पार्टी के नेता पर हाथ न उठाएं। जहां तक हो पण्डित जी की रक्षा करें। चेक पोस्ट लांघ कर पार्टी कश्मीर की राह पर जबर्दस्ती अग्रसर होती जा रही थी और श्री बीरबल धर्मट्ट लगातार पंडित नेहरू को शांति से रोकते चले जा रहे थे। पं० नेहरू श्री बीरबल के हाथ को पीछे झटक कर वेग के साथ आगे बढ़ते जाते थे किन्तु धर्मट्ट जी उन्हें पुन: रोकते हुए उनके साथ-साथ चलते रहे। यह कार्य दोमेल पहुंचने तक चलता रहा। पंडित नेहरू धर्मट्ट जी को बार-बार कह रहे थे मुझे रोको मत गिरफ्तार कर लो। किन्तु धर्मट्ट जी ने अपना कार्य नहीं छोड़ा वे लगातार शांति से कहते चले जा रहे थे पंडित जी आगे मत जाईये। दोमेल में पहुंच कर राज्य सरकार के बड़े अधिकारी के आदेश से उन्हें जब गिरफ्तार कर लिया तभी श्री बीरबल धर्मट्ट का भारी उत्तरदायित्व समाप्त हुआ जिससे उन्हें काफी परेशानी और भावी आशंका का सामना करना पड़ रहा था। दूसरे ही दिन पंडित नेहरू को राज्य की ओर से सुरक्षित और सम्मानपूर्वक दिल्ली भेज दिया गया। वहां स्वतन्त्रता प्राप्ति घोषित हो चुकी थी अत: पंडित जी की भारी आवश्यकता थी ये ही उसके प्रधान नायक थे।

कहानी तो और भी लम्बी है मैंने यहां केवल उसका संक्षिप्त सार ही दिया है यह दिखाने के लिए कि उस समय यदि पं० बीरबल जैसा बुद्धिमान और सूक्ष्मदर्शी सेना अधिकारी वहां तैनात न किया होता तो कोई अवांछित घटना भी घट सकती थी जिसका प्रभाव सारे देश की राजनीति पर पड़ना था और हलचल मचनी थी। धर्मट्ट जी ने जोश के साथ होश को भी कायम रखा और अपनी टोली से भी रखवाया। यही उनकी देश के प्रति की गई सेवा आज भी स्मरण की जा रही है। इस का एक प्रमाण डेली मिलाप देहली सण्डे एडीशन मिलाप (उर्दू) 14-1982 किश्त नं० 4 में पढ़ा जा सकता है।

श्री खोजूशाह के पांच पुत्रों के साथ लेखक का वर्षों का सम्बन्ध रहा है। उनके नाम है श्री रामदास, श्री देवीदास, श्री जगन्नाथ, श्री परमानन्द और श्री वीरबल। श्री वीरबल जी को छोड़ कर इस समय शेष चारों दिवंगत हो चुके हुए हैं। जम्मू के प्रसिद्ध और सबल डोगरी कवि श्री वेदपाल दीप, श्री शाह जी के प्रपौत्र हैं तथा डी० ए० वी० कालेज चण्डीगढ़ के भूतपूर्व प्रिंसीपल श्री त्रिलोकी नाथ शाह जी के पौत्र है। दोनों ने जीवन में बौद्धिक क्षेत्र में काफी नाम कमाया है। ०००

हकीम परशुराम नागर

स्व० हकीम पंडित परशुराम नागर जम्मू के गण्य माण्य व्यक्तियों में अपना विशेष स्थान रखते थे। साहित्य, राजनीति, धर्म, संगीत, चिकित्सा, आध्यात्मिकता और भगवद्भक्ति के साथ समाज सेवा, दानशीलता, उच्चादर्श तथा लोकहित इन सब कार्यों में नागर जी जीवन भर व्यस्त रहे। अपने जीवन काल में इन्होंने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में बड़ी उपलब्धियां पैदा कीं। सर्वप्रथम चिकित्सा शास्त्र में नैपुण्य प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने इसे अपना व्यवसाय या जीविका साधन अवश्य बनाया किन्तु असमर्थ तथा अनाथ रोगियों को नि:शुल्क उपचार करने का व्रत भी निभाया, जिसे लोक हित का एक अंग माना जा सकता है।

वैद्य जी की प्रतिभा इतनी सर्वतोमुखी थी कि इन्होंने उपयुक्त सभी क्षेत्रों में कार्य करते हुए संस्कृत भाषा को भी न केवल पढ़ा अपितु श्री रघुनाथ संस्कृत महा-विद्यालय में उपाध्यक्ष के रूप में कुछ वर्ष रह कर संस्कृत सेवा भी की। इनका संस्कृत उच्चारण अत्यन्त शुद्ध और स्पष्ट था। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए संस्कृत पद्यों का उदाहरण देते समय ऐसा लगता था जैसे संस्कृत इन की वंशानुगत मातृभाषा हो।

इन्होंने ब्राह्मण समाज की प्रधानता पाकर इस क्षेत्र में अच्छा नेतृत्व और सुधार किया। जम्मू में नाटकीय रंगमंच की स्थापना में नागर जी का सब से बड़ा योगदान रहा है। सनातन धर्म सभा के निदेशन में दीवान मन्दिर मे जो रंगमंच बना है तथा जिसके माध्यम से प्रति नवरात्रों में जो राम लीला होती है उनके संचालन में भी हकीम जी का शुरू से ही पर्याप्त योगदान रहा था।

सफल चिकित्सिक

पं० परशुराम जी नागर अपने जीवन में अनेक स्थानीय संस्थाओं से सम्बद्ध रहे थे। जैसे ब्राह्मण समाज, सनातन धर्म समाज, जम्मू नाटक समाज आदि। आयुर्वेद

के क्षेत्र में तो अपने युग में नागर जी सर्वप्रथम चिकित्सक माने जाते थे। इन की औषधियों और चिकित्सा में जादू जैसा चमत्कार था। प्लेग बीमारी के युग में इन्होंने ऐसी बूटी खोज निकाली, जिसे प्रयोग में लाकर रोगी इस भयंकर बीमारी से बच जाता था।

बहुत से आयुर्वेद के विद्यार्थियों ने इन से शिक्षा पाकर इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त की। इन्हें आयुर्वेद का प्रकांड पांडित्य प्राप्त था एवं च संस्कृत श्लोकों के पढ़ने पढ़ाने की इन की शैली भी पांडित्य पूर्ण तथा मार्मिक थी। उस युग में जब अंग्रेज़ी उपचार प्रचार अभी इतना अधिक नहीं था, नागर जी निमन्त्रण पाकर रोगियों के घर जाते थे जिसके लिए इन्होंने अपनी फीस बहुत कम रखी थी, जिससे गरीब भी इनके उत्तम उपचार से लाभ उठा सकते थे। इन्होंने चिकित्सा को धनोपार्जन का साधन न मान कर लोक सेवा का साधन ही स्वीकार किया तथापि लक्ष्मी की इन पर कृपा ही रही।

योग्य प्रशासक

प्रशासन के क्षेत्र में इन की योग्यता इसी से स्पष्ट है कि इन्होंने विभिन्न संस्थाओं के पद ग्रहण करके अपने समय में उन्हें सुचारू रूप से चलाया। 1947 में भारत विभाजन के समय जम्मू-काश्मीर राज्य में लाखों शरणार्थी आ गए। उन्हें आवास और भोजन देना इस राज्य के आगे एक विकट स्थिति पैदा हो गई थी। उस समय की आपात्कालीन सरकार के प्राईम[1] मिनिस्टर शेख अब्दुल्ला ने शरणार्थियों का पूर्ण कार्यभार हकीम परशुराम नागर पर छोड़ दिया। रिलीफ कमिश्नर का पद पाकर इन्होंने बड़ी योग्यता और सुप्रबन्ध के साथ शरणार्थियों के भोजन आवास आदि का प्रबन्ध करते हुए शरणार्थियों के कैम्पों का संचालन किया। उस समय की इन की इस प्रकार की योग्यता और सेवा देखकर जम्मू की जनता चकित रह गई।

इसके अनन्तर इन्होंने जम्मू में गांधी भवन बनाने का बीड़ा उठाया और सारा कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। यह एक बड़ा साहस का कार्य था जिस में हाथ डालना इन्हीं की हिम्मत थी। इसके लिए इन्होंने लाखों रुपए चंदे के रूप में इकट्ठे करके तदनन्तर एक विशाल गांधी भवन बनाकर तैयार किया जो जम्मू नगर को नागर जी की एक बड़ी भारी देन है। इसमें अनेक साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिवेशन होते रहते हैं। विवाह तथा अन्य उत्सवों में भी इसका उपयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि इस भवन का जम्मू नगर को कितना बड़ा योगदान मिल रहा है।

---

1. उस समय जम्मू कश्मीर के मुख्यमन्त्री का पद प्राईम मिनिस्टर कहलाता था।

इसके अतिरिक्त जम्मू के प्रसिद्ध गुलाब भवन जो गांधी भवन जैसी ही उपादेयता रखता है, के निर्माण में भी नागर जी का विशेष योगदान रहा था। वह गुलाब भवन के पहले प्रधान हैं। गांधी भवन का उद्घाटन राष्ट्रपति डा० बाबू राजेन्द्र प्रसाद के कर कमलों द्वारा हुआ था।

ललित कला सम्बन्धी कार्य कलाप

श्री परशुराम नागर न केवल समाज सेवी, राजनीतिज्ञ, वैद्य तथा प्रशासक थे बल्कि वह संगीत, कीर्तन भजन आदि में भी परम प्रवीण थे। भगवान ने उन्हें सुरीले और मधुर कण्ठ का उपहार दिया ही था। उन्होंने अपनी कला प्रतिभा का प्रदर्शन नित्य के कीर्तन, विशेष उत्सवों तथा सनातन धर्म के रंगमंच पर समय-समय पर प्रदर्शित किया। हारमोनियम बजाने में दक्ष नागर जी जब भी सनातन धर्म सभा के वार्षिकोत्सव के रंगमंच पर भजनोपदेश करने लगते, तो हज़ारों की भीड़ मन्त्र-मुग्ध हो जाती। बाहर से बड़े-बड़े विद्वान, महात्मा, उपदेशक, प्रचारक और संगीतज्ञ आए हुए होते थे, जिनके बीच केवल नागर जी इस क्षेत्र में जम्मू का प्रतिनिधित्व करते दिखाई पड़ते थे।

ललित कलाओं के क्षेत्र में इनके अनेक कार्यकलाप रहे थे जैसे गीता भवन में प्रतिदिन कीर्तन भजन आदि करना आवश्यकता पड़ने पर जिसमें कलकण्ठ का स्वर हारमोनियम के साथ गायन का भी मधुर पुट होता था। समय-समय पर जम्मू आकाशवाणी से इनके भाषण भी प्रसारित होते थे। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न नागर जी ने जैसी विचित्र छवि जनता पर छोड़ी हुई थी, उसमें रंग बिरंगी गुण गरिमा थी। इसी सन्दर्भ में यह भी कहना होगा कि कलाकार होने के नाते इन्हें दुर्गा संगीत एकेडमी जम्मू, कलचरल एकेडमी जम्मू आदि प्रतिष्ठित संस्थाओं का सदस्य बनाया गया। एक बार ऐसा भी देखा कि नागर जी ने अपनी एक भक्त मण्डली कायम की जो प्रात: चार बजे उठ कर नगर कीर्तन का उच्चघोष करती हुई रघुनाथ मन्दिर में पहुंच कर प्रात:कालीन कीर्तन करती थी जिसके मुख्य सूत्रधार थे नागर जी, जो सुन्दर भजनों और स्तुतियों द्वारा कीर्तन और बीच-बीच में भक्ति के उपदेश किया करते थे। उस समय भक्तिरस की मधुर धारा बहने लगती थी। जहां कहीं भी धार्मिक उत्सव होता, नागर जी की कीर्तन मण्डली वहीं पहुंच कर भक्ति संगीत और उपदेश का अमृत रस बहाने लगती। यह आयोजन कुछ समय चल कर अन्त में समाप्त हो गया।

विविध संस्थाओं से सम्बन्ध

नागर जी जितने योग्य और समाज सेवी थे उसी के अनुसार जम्मू-कश्मीर की

विभिन्न सरकारी अर्ध सरकारी संस्थाओं ने उनकी योग्यता से लाभ उठाया। इसी कारण वह अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी रहे जैसे—जम्मू-कश्मीर कल्चरल एकेडमी के सदस्य, इंडियन रेडक्रास सोसायटी के सदस्य, चेम्बर आफ कामर्स की तदर्थ कमेटी के सलाहकार, वोर्ड आफ आयुर्वैदिक तथा यूनानी औषधि सिस्टम जे एण्ड के गवर्नमेंट के चेयरमैन इत्यादि प्रतिष्ठित संस्थाओं के अधिकारी बनने का गौरव इन्हें मिला। समाज सेवा, भगवद्भक्ति प्रकार, भारतीय संस्कृति का प्रसार, प्रचार आदि सब कार्य जीवन भर करते रहे।

यद्यपि नागर जी का कार्य क्षेत्र जम्मू प्रांत तक ही सीमित रहा तथापि इनकी ख्याति पंजाब तक अवश्य फैल चुकी थी। इनके साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक कार्य कलापों का सम्बन्ध जम्मू-कश्मीर, पंजाब, यू० पी०, गुजरात के कुछ प्रतिष्ठानों और व्यक्तियों के साथ भी रहा था। ऐसा सर्वतोमुखी प्रतिभावान कार्यकर्त्ता अपना उदाहरण स्वयं आप था। नागर जी को जब भी मैंने देखा खिलखिलाते और प्रसन्न मुख ही देखा। बात करने का सभ्य और शालीन ढंग भारतीय वेश भूषा मुख पर सौन्दर्य की किरणें और शारीरिक आकार प्रकार। उनके साथ मेरा पर्याप्त सम्पर्क तथा आना-जाना रहा था किन्तु मैंने कभी भी उन्हें आक्रोश और क्रोध की मुद्रा में नहीं देखा बल्कि जब देखा हंसते या मुस्कराते ही देखा।

राजनैतिक कार्य

सन् 1947 में विभाजन के समय जम्मू में लाखों शरणार्थी आ गए। उन्हें बसाने और भोजन देने के कार्य में नागर जी ने 'जो कार्य किया उसका विवरण ऊपर दे दिया गया है। इन की योग्यता और देश-सेवा देखकर ही उस समय प्राईम-मिनिस्टर शेख अब्दुल्ला ने इन्हें नेशनल कांफ्रैंस का जिला और बाद में प्रांतीय प्रधान बनाया। इस उत्तरदायित्व को इन्होंने बड़ी योग्यता के साथ निभाया। इसी कारण राजनीति क्षेत्र में भी नागर जी एक विशिष्ट स्थान पर गए किन्तु इनके संस्कार मूल रूप में भारतीय संस्कृति, सनातन धर्म, कीर्तन तथा पूजा पाठ पर आधारित थे अत: राजनीति के क्षेत्र के साथ इन का देर तक समझौता नहीं हो पाया। फलस्वरूप इन्होंने नेशनल कांफ्रैंस के प्रधान पद से त्यागपत्र देकर अपना पूरा समय समाज सेवा और धर्म प्रचार में लगाना ही अच्छा समझा। इसके अनन्तर इन्होंने पिपुल पार्टी के नाम से एक सियासी पार्टी बनाई। स्व० बक्शी गुलाम मुहम्मद जो उस समय जम्मू-कश्मीर राज्य के प्राईम मिनिस्टर थे, इन्हें बहुत मानने लगे थे और समय-समय वह इनसे जम्मू की उन्नति के सम्बन्ध में विचार भी करते थे। फिर भी नागर जी मुख्य रूप में धार्मिक और सांस्कृतिक विचारों के होने के कारण खुले अपना आप राजनीति को समर्पित नहीं कर पाए।

शिक्षा संस्थाओं से सम्बन्ध

पं० परशुराम नागर जहां समाज और धर्म के क्षेत्र में कार्य करते रहे वहां शिक्षा क्षेत्र में भी इन का योगदान कम नहीं रहा। जम्मू के अनेक स्वयंसेवी शिक्षा संस्थाओं के यह प्रधान तथा सहायक कार्यकर्ता रहे। उदाहरणस्वरूप सनातन धर्म कन्या विद्यालय मोहल्ला जुलाका के यह लम्बे समय तक प्रधान रहे एवंच उसकी उन्नति के लिए समय-समय पर जनता और सरकार से आर्थिक सहयोग के लिए झोली फैलाते रहे। इस संस्था को नव निर्माण और उन्नति के पथ पर ले जाने में नागर जी का मुख्य सहयोग रहा था। इसी प्रकार जम्मू की कई अन्य शिक्षक संस्थाओं के साथ भी इन का प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्ध रहा था।

साधारण स्तर से उच्च स्तर तक

जम्मू से कुछ दूरी पर बसे गांव कूटा (तहसील हीरानगर) में सन् 1892 ई० में जन्म ग्रहण करने वाले नागर जी को बाल्यावस्था में कौन जानता था कि यह जम्मू नगर निवासी होकर इतने महान् बन जाएंगे। इनके पिता जी का नाम पंडित जगतराम नागर था जो एक कर्मकांडी पंडित थे। जब श्री परशुराम जी 50 दिन के थे तो इन्हें जम्मू की तपस्विनी और धार्मिक वृत्ति की महिला श्रीमती चन्दा शाहनी नागर (धर्मपत्नी पं० कांशी राम नागर) ने गोद में लिया और इन्हें पाला पोसा। इन्होंने उन्नति की चोटी का स्पर्श किया। इस बालक ने बचपन में ही संस्कृत तथा संगीत में अपनी सांस्कारिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया। हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करने पर इन्हें डी० ए० वी० कालेज लाहौर में आयुर्वेद पढ़ने भेज दिया। वहां इन्होंने वैद्य कविराज की परीक्षा योग्यता के साथ पास की। वहां से इन्होंने संस्कृत की परीक्षा भी पास की। इसके तदनन्तर इन्होंने राव राजा हुकमा सिंह द्वारा स्थापित औषध निर्माण शाला के अधिकारी का पद प्राप्त किया। तदनन्तर सेठ विनायक मिश्र द्वारा स्थापित औषधालय के अधिकारी रहे। इसी प्रकार कई आयुर्वैदिक संस्थाओं के संचालन के अनन्तर इन्होंने स्वतन्त्र रूप में चिकित्सक का कार्य करना शुरू कर दिया और 1915 में आरोग्य रत्नाकर औषधालय की स्थापना की। इस समय तक एक सफल वैद्य के रूप में इनकी ख्याति राज्य भर में पर्याप्त फैल चुकी थी। यहीं से आयुर्वैदिक जीविका के साथ-साथ इनकी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और शैक्षणिक सेवाएं प्रारम्भ हुईं (जिस का ब्योरा ऊपर दिया जा चुका है) जो इनकी मृत्यु तक निरन्तर चलती रही।

लेखन कार्य

नागर जी जहां वक्ता, संगीतकार, कीर्तनकार, कथाकार, उपदेशक, सफल

चिकित्सक, समाज सेवी आदि गुणों से विभूषित थे वहां इन की लेखनी में भी बल था किन्तु जीवन में चारों ओर से अधिक व्यस्तताँ के कारण यह लेखन कार्य में अधिक समय नहीं दे पाए तथापि समय-समय पर कीर्तन और भक्ति के विषय में इन की जो संग्रह तथा स्वयं रचित पुस्तिकाएं मुद्रितावस्था में देखने में आती थीं उनसे इनके लेखन चातुर्य का प्रमाण मिल जाता था। उदाहरणस्वरूप इन की संकीर्तन मंजरी पुस्तक अत्यन्त रोचक है। इसमें भक्ति और कीर्तन की महिमा अनेक संस्कृत ग्रंथों तथा गीता के उदाहरण देकर स्पष्ट की गई है। इसी के साथ प्राचीन आदर्श पुरुषों, महिलाओं की जीवन गाथाएं हैं आदि कीर्तन को अत्यन्त रोचक और मन को शांति देनी वाली सामग्री के रूप में प्रस्तुत की गई है। इसमें नागर जी का भक्ति और कीर्तन पर विद्वतापूर्ण चिन्तन पढ़ने योग्य है।

इन की दूसरी रचना श्री भगवद्गीता का डोगरी कविता में अनुवाद है जो शुद्ध और सरल डोगरी भाषा के प्रयोग द्वारा पठनीय बन पड़ा है। डा० सिद्धेश्वर वर्मा, डा० कर्णसिंह, प्रो० गौरी शंकर जी व अन्य विद्वानों ने पुस्तक की बहुत सराहना की है।

इन पुस्तकों की भूमिकाएं नागर जी के गहन चिन्तन को प्रस्तुत करती है।

इनके अतिरिक्त उन की आयुर्वेद पर भी पुस्तकें प्रकाशित हुई है। इनके कई लेख हिन्दी, संस्कृत, गुजराती भाषा में कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

इन की दु:खद मृत्यु 22-4-1969 को हुई थी।

मैं उनके 101 वें जन्म दिवस पर अपनी हार्दिक बधाई अर्पित करता हूं और इस सम्बन्ध में समारोह की सफलता के लिए अपनी शुभ कामनाएं भी। ०००

महापुरुषों की यादें

(1)

उस समय मैं किशोरावस्था की अल्हड़ भावुक व सौम्य भावनाएं लेकर हिन्दू विश्वविद्यालय की गोद में बैठा-बैठा अध्ययनरत था । स्वर्ग तुल्य इस परिसर में अत्यन्त रमणीय रूइया छात्रावास के सुन्दर प्रकोष्ठ, जिसमें कुर्सी, टेवल, चारपाई, अलमारी, शैल्फ आदि सब विश्वविद्यालय के छात्रावासीय प्रकोष्ठों के उपयुक्त सामान मिला था, सुखपूर्वक पढ़ते रहना ही उस समय छात्रों का केवलमात्र कर्त्तव्य सार्वजनिक रूप से निश्चित था। राजनीति, व्यापार आदि जनता के हाथों नहीं सरकार के हाथों में थे। इसी कारण सब को केवल अपने-अपने अनुष्ठानों में एकमात्र विलीन हो जाने की संस्कृति की ही प्रधानता उस युग में थी। हम छात्र लोग अपने इस अनुष्ठान में ही व्यस्त रहते थे। सायं के पांच बजे होंगे, मैं कुर्सी पर बैठ कर अपने ही प्रकोष्ठ में पुस्तक में लीन था। सहसा द्वार पर आहट हुई देखा उड़ीसा के छात्र यमेश्वर त्रिपाठी सामने खड़े हैं। मेरी ओर देखकर शोक भरी मुद्रा में कुछ बोले, बाणी अस्पष्ट थी मैंने कहा क्या हुआ यमेश्वर—छात्र बोला अरे "विनोद" एक दुःख व आश्चर्य भरी वार्ता लाया हूं। मैंने उत्सुकतावश पूछा—क्या ? अरे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर चल बसे। सुनकर मैं भी बड़े आश्चर्य में पड़कर बोला अरे ! यह क्या कह रहे हो तुम ? अभी-अभी रेडियो की खबर आई है—यमेश्वर ने कहा।

बात यहीं समाप्त हो गई व दोनों उन्मन होकर रह गए। दूसरे दिन रूइया संस्कृत छात्र संघ की ओर से गुरुदेव टैगोर के महाप्रस्थान पर शोक सभा आयोजित की गई। छात्रों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से महाकवि के प्रति अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। तीसरे दिन आकाश पर काले बादल मंडरा रहे थे शीतल पवन अठखेलियां कर रही थी। सायं के पांच बजे होंगे। मैं गंगा तट पर घूमने निकला। लंका मोहल्ला से एक सीधी सड़क गंगा तट को जाती है। विश्वविद्यालय का परिसर पार कर मैं उस सड़क पर हो लिया। दोनों ओर हरे-भरे खेत लहरा रहे थे। धनिये की सौंधी-

सौंधी सुगन्धि भी हवा में मिश्रित थी। मैंने उभड़ते हुए काले बादलों वाले आकाश की ओर देखा। मन में अनन्त व दैवी अनुभूति की एक तरंग उठी। गुरुवर टैगोर का चिन्तन तो कर ही रहा था कि ऐसे थे, ऐसे थे वे महान् कि एकाएक आकाश के बादलों के भीतर एक प्रकाश किरण मानो बादलों के जमघट में घूम-घूम कर प्रकाश बिखेरती है तथा पुन: छिप जाती है। इधर सुगन्धित हवा के झोंके व उधर मैं भावना की तरंग में बह कर बादलों में गुरुवर टैगोर की किरण-स्वरूप आत्मा की अनुभूति का रस ले रहा था। देखते ही देखते वह किरण बादलों में विलीन हो गई। मुझे अनुभव हुआ कि टैगोर जी की आत्मा बादलों से होकर ऊपर जा रही है। इसे कल्पना समझूं या सत्यमय अनुभूति। अब तक भी कुछ निर्णय नहीं कर पाया हूं। वैसे तो वेद कहता है कि महान् आत्मा बादलों से होकर चन्द्रमंडल का भेदन करके पितृलोक में पहुंचती है। जिन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया हो उन की आत्मा सूर्यमण्डल से होकर ब्रह्मलोक को चली जाती है। गुरुवर टैगोर की बादलों वाली यह आकाशीय घटना, जिस की अनुभूति मुझे हुई थी इन्हीं दो स्थितियों में से किसी एक से सम्बन्धित है, ऐसा मेरा विचार है।

(2)

हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में मैं नया-नया ही प्रविष्ट हुआ था। हिन्दी लेखकों व कवियों से मेरी शुरू की ही लग्न थी। कईयों की रचनाएं भी पढ़ी थीं। जिनमें श्री अयोध्या सिंह जी का प्रिय-प्रवास तथा चौखे चौपदे भी खूब पढ़े थे। पढ़कर उनके दर्शनों की लालसा भी जगी थी। जिस साहित्यकार की रचना पढ़ ली जाए उसके प्रति लगाव व श्रद्धा भी उत्पन्न होकर दर्शनों की उत्सुकता को जन्म देती है। निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द आदि उज्ज्वल हिन्दी साहित्यकारों को अपनी किशोरावस्था में ही पढ़ चुका था। उनके प्रति भी एक समान लगाव व श्रद्धा और उनके दर्शनों की उत्सुकता मुझ में जन्म ले चुकी थी। सौभाग्य की बात थी कि जिस विश्वविद्यालय में मुझे प्रवेश लेना पड़ा, वही इन सब विभूतियों का विचरण क्षेत्र भी था। उन दिनों श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक थे। सरकारी नौकरी से अवकाश पाकर महामना मालवीय जी के कहने पर उपाध्याय जी ने यह सेवा कार्य स्वीकार कर लिया था।

छात्रावास में रहते हुए अभी मुझे मुश्किल से दो सप्ताह ही हुए होंगे। भयंकर गर्मी के दिन चल रहे थे। किन्तु मन में उपाध्याय जी के दर्शनों की उत्कण्ठा भी बलवती होती चली जा रही थी। वे कहां रहते हैं, इस का मैंने पता लगा लिया था।

एक दिन तपती दोपहर में मैंने उपाध्याय जी के पास जाना निश्चित किया व चल पड़ा। विश्वविद्यालय की सीमा का गेट पार कर मैं खुले खेत में जा पहुंचा, बीच में ही मार्ग उनके आवास तक जा रहा था। एक खेत के बाद दूसरा खेत पार किया। इसके अनन्तर आगे का जो सीधा मार्ग उनके आवास तक जा रहा था, उसमें हो लिया। दोपहर के तीन या साढ़े तीन का समय होगा। शरीर पसीना-पसीना हो रहा था, किन्तु इसकी तनिक भी मुझे चिन्ता न थी। केवल एकमात्र अभिलाषा थी इस प्रख्यात हिन्दी महाकवि के दर्शनों का लाभ उठाना। सामने के भवन के द्वार पर पहुंचा ही था तो एक व्यक्ति उसी भवन से आकर द्वार पर ही मुझे मिल गया। अपने किशोर सुलभ स्वभाव से कुछ झेंपते हुए व कुछ मुस्कुराते हुए मैंने पूछा---अजी ? उपाध्याय जी यहीं रहते हैं ? व्यक्ति ने गम्भीर दृष्टि से देखते हुए कुछ तीखी दृष्टि भर कर मुझे देखा फिर कहा कौन उपाध्याय नाम तो लेना चाहिए। जी अयोध्यासिंह उपाध्याय मैंने कहा। हां-हां वे सामने की चारपाई पर लेटे हैं जाकर मिल लो। व्यक्ति यों कह कर आगे बढ़ गया। मैंने द्वार को लांघा तथा कुछ आगे जाने का प्रयास किया, थोड़ी दूर जाकर देखा कि खुले आंगन में एक वृक्ष की छाया में एक साधारण-सी चारपाई पर एक वृद्ध महाशय लेटे हुए हैं। चारपाई के पास ही एक मेज व एक कलमदान रखा हुआ है। कड़कती दुपहरिया में वृक्ष की शीतल छाया में हवा के हल्के ठण्डे झोंकों से वृद्ध महाशय तन्द्रा की अवस्था में पड़े थे। सिर के पके हुए बाल दोनों ओर छाए थे किन्तु सिर के मध्य का भाग खल्वाट से आक्रांत था। लम्बी सफेद दाढ़ी छाती तक पहुंच रही थी। शरीर पतला था व वृद्धता के कारण भुजाओं की नसें उभरी हुई थीं तथा पेट अन्दर को गया हुआ था। उन्होंने शरीर पर केवल एक धोती बनियान ही पहनी थी। बनियान कन्धों तक थी, भुजाएं दुबली-पतली व उभरी हुई नसों वाली प्रत्यक्ष दीख रही थीं। धोती के बीच दीख रही पिण्डलियों में भी वृद्धता के कारण पीली नसें उभरी हुई दीख रही थीं। इस प्रकार का एक 75 वर्षीय वृद्ध खाट पर तन्द्रित था किन्तु आहट होने पर उसकी आंखें खुल जाती थीं। मैंने सोचा कि ये ही उपाध्याय जी हो सकते हैं, फिर विचार उठा कि उन का नाम तो हिन्दी जगत् में जाज्वल्यमान होने के कारण भारत में प्रसिद्ध है। वे गरिमामय व्यक्तित्व के रूप में विख्यात होने के कारण इस प्रकार की अत्यन्त सहजता व सादगी की स्थिति में नहीं हो सकते। अवश्य ही वह एक तेजस्वी व्यक्तित्व होगा। विचार उठा कि क्यों नहीं इन्हीं से उपाध्याय जी के बारे में पूछ लिया जाए। और आगे बढ़ा तो मेरे पैरों की आहट सुनकर उपाध्याय जी की आंखें खुलीं। वे मुझे देखने लगे। मैंने झुक कर प्रणाम किया व पूछा जी आप उपाध्याय जी के बारे में बता सकते हैं कि वे यहीं रहते हैं या कहीं अन्यत्र।

सुनकर उन्होंने पास ही पड़ी हुई साधारण-सी कुर्सी पर बैठने के लिए मुझे हाथ

से लेटे-लेटे ही संकेत किया। बात भी ठीक थी कि मैं 17 वर्ष का लड़का और वे 75 वर्ष के वृद्ध। औपचारिकता का प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। संकेत पाकर मैं कुर्सी पर बैठ गया। थोड़ी विश्राम की श्वास लेकर मैंने पूछा—श्री उपाध्याय जी कहां रहते हैं। उस समय उपाध्याय जी गम्भीर मुद्रा में मुझे पहले से ही देख रहे थे। मेरी बात सुनकर कुछ मुस्कुराते हुए बोले। किस उपाध्याय से आपको काम है। मैं कुछ झेंप-सा गया, फिर मैंने कहा श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय सुनकर वे कुछ रहस्य भरी मुस्कान बिखेरते हुए बोले इतने से भी अगर तुम अयोध्यासिंह को न जान पाए तो कैसे जनाऊं तुम्हें। मैं समझ गया कि वक्ता वृद्ध महाशय ही उपाध्याय जी हैं। तभी पूछने पर उन्होंने कुर्सी पर बैठने का संकेत देकर अपने को ही श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय होने का कवित्वपूर्ण परिचय दिया है। मैंने झुक कर पुनः चरण स्पर्श किया और कहा महाराज क्षमा कीजिएगा। प्रथम दर्शन में आप को वास्तविक रूप में न पहचान पाया। उन्होंने कहा—तो इससे क्या, कहो कहां से आए हो उपाध्याय जी ने स्वभाव की मधुरता व सौम्यता बिखेरते हुए कहा। जी मैं जम्मू से आया हूं। जम्मू कश्मीर नरेश से छात्रवृत्ति लेकर अग्रिम अध्ययन के लिए यहां हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्म-विज्ञान विभाग में प्रविष्ट होकर मुझे छः वर्षों तक वेदाध्ययन करके वेदाचार्य की उपाधि लेकर जाना है। जम्मू कश्मीर सरकार से मेरा यही अनुबन्ध हुआ है। एक ही सांस में मैं यह सब कुछ कह गया।

मेरी बात सुनकर उपाध्याय जी ने मुझे गम्भीरता से देखा और फिर मुस्करा दिए। पूछने का क्रम शुरू किया। कश्मीर की क्या हालत है? जी शांति है। कोई गड़बड़ तो नहीं देखी गई अभी तक मैंने कहा। उन्होंने पूछा—हिन्दी की वहां कैसी दशा है? मैंने कहा—जम्मू की प्रान्तीय भाषा डोगरी व कश्मीर की प्रांतीय भाषा—काश्मीरी है। दोनों अपने-अपने प्रांत में अधिकतर व्यवहार का विषय बनी हुई हैं। शेष हिन्दी व उर्दू वहां बड़े-बड़े लेखकों के व्यवहार में आती हैं साहित्य भी इन्हीं में लिखा जाता है। जम्मू में हिन्दी साहित्यकार कितने हैं? उन्होंने पूछा। मैंने कहा—अजी स्थापित साहित्यकार तो अभी कोई नहीं है। एक-दो शताब्दी पूर्व हिन्दी के दत्तू कवि वहां के (जम्मू) अच्छे कवि थे जो अपने युग में स्थापित थे। अब तो ऐसा कोई स्थापित हिन्दी साहित्यकार तो वहां नहीं है किन्तु गोष्ठियों में, सम्मेलनों में, कविता, कहानी, निबन्ध पढ़ने वाले युवकों की संख्या दिनों-दिन बढ़ रही है। उन्होंने पुनः पूछा—कोई संस्था भी है? मैंने कहा—जी हां एक अभी-अभी नई ही बनी है "हिन्दी साहित्य मण्डल।" उसी की गोष्ठियों में ये सब युवक लेखक अपनी-अपनी रचनाएं सोत्साह सुनाते हैं। उन्होंने पूछा—और कोई हिन्दी का क्षेत्र है? मैंने कहा—होगा भी तो मैं नहीं जानता हां इतना है कि रत्न, भूषण, 'प्रभाकर परीक्षाओं की पर्याप्त उन्नति है। प्रत्येक परीक्षा में जम्मू के शतशः लड़के भाग लेते

हैं। उन्होंने कहा—इसका अर्थ है कि हिन्दी का पठन-पाठन वहां बहुत प्रचलित्त है। हां, जी एक बात और भी है छात्र व छात्राओं की इतनी अधिक संख्या हो गई है कि हिन्दी अध्यापकों को विश्राम करने का भी समय नहीं मिलता। स्कूलों में प्रौढ़ अध्यापक व अध्यापिकाएं हैं, वे भी प्राईवेट रूप में प्रभाकर की कक्षाएं ले लेते हैं। इससे उन्हें कुछ पदोन्नति मिल जाती है। शास्त्रियों व हिन्दी अध्यापकों का ट्यूशन कार्य बड़े यौवन पर चल रहा है। मैंने कहा। सुनकर उपाध्याय जी आशा भरी दृष्टि मुझ पर डालकर कहने लगे—अहिन्दी भाषी प्रांत में भी हिन्दी के प्रति पर्याप्त जागरूकता है, किन्तु नया-नया साहित्य लिखा जाना चाहिए व नए लेखक तैयार होने चाहिएं। वार्ता का क्रम देर तक चलता रहा। मुझे याद पड़ा कि उपाध्याय जी को दिखाने के लिए एक कविता जेब में डाली थी। जेब टटोला मिल गई। उपाध्याय जी मेरे इस कार्य को देख रहे थे। शायद समझ भी गए होंगे कि मैं कविता शोधन करवाना चाहता हूं। कागज़ निकाल कर उपाध्याय जी को देते हुए मैंने कहा—उपाध्याय जी जरा इस कविता पर भी नजर डाल लीजिए कि कहां तक ठीक है। उपाध्याय जी ने चश्मा लगाया व पढ़ने लगे। पढ़ कर बोले कविता तो ठीक है भाषा, छन्द, भाव व तुक चारों ठीक हैं परन्तु एक बात मुझे नहीं जंची उन्होंने कहा। जी क्या? मैंने पूछा। कविता निराशावादी है, जो युवकों को शोभा नहीं देती, आपके अन्दर देशप्रेम की अग्नि प्रज्ज्वलित होकर उससे क्रान्ति की चिनगारियां फूटनी चाहिएं। अब रोने-धोने का समय नहीं। देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न है, निराशा से काम न चलेगा। कविता के शब्दों में आशावाद के स्फुल्लिगों की ही इस समय आवश्यकता है। तभी देश के लिए कुछ कर सकोगे। एक ही सांस में उपाध्याय जी यह सब कुछ कह गए। मेरी आंखें खुलीं। सोचा मैं कैसी कविता में बह गया हूं। तभी से जो कुछ मैंने छन्दों में गुनगुनाया, उसमें उपाध्याय जी का दृष्टिकोण और निर्देशन दोनों को मैंने साथ रखा। मेरी कविताओं का जो "उल्लोल" के नाम से प्रथम संग्रह छपा था, उन सभी कविताओं में उपाध्याय जी का वह निर्देश ही मुखरित हो रहा है।

उपाध्याय जी ने कविता देखने के अनन्तर उसके किसी एक शब्द को परिर्वातित करने को भी कहा मैंने इसके लिए मेज पर पड़ी कलमदान से यों ही पेन उठाया, ऐसा हाथ का झटका लगा कि दवात मेज पर उलट गई। और टेबल क्लाथ भी भीग गया। मुझे डर लगा कि उपाध्याय जी नाराज होंगे, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने बिल्कुल शान्ति व सहजता से कहा—कोई बात नहीं। टेबल क्लाथ उठाकर नीचे रख दो। मैंने ऐसा ही किया और उपाध्याय जी के कथनानुसार कविता के शब्द को भी परिर्वातित कर दिया। इसके अनन्तर मैंने सोचा कि इनका अधिक समय ले चुका हूं अब जाना चाहिए। मैं उठा व उनका चरणस्पर्श करते हुए जाने की आज्ञा मांगी।

उपाध्याय जी ने बड़े प्रेम के साथ मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा। "जाओ बेटा अब यहीं कभी-कभी आ जाया करो। मैंने नतमस्तक होकर आज्ञा पालन करने की प्रतिज्ञा की व चल दिया। उपाध्याय जी से मेरी यह प्रथम भेंट थी।

(3)

हिन्दू विश्वविद्यालय का परिसर। वसन्त बहार का यौवन व उद्यानों की विचित्र शोभा तथा छात्रों की उज्जवल वेश-भूषाएं यह सब कुछ था सन् 1941 के मधुमास के समय। युवकों में मादकता का रंग जमा था। विश्वविद्यालय का ऐतिहासिक तथा "न भूतो न भविष्यति" का प्रतीक रजत जयन्ती का महोत्सव चल रहा था। महोत्सव क्या था, भारत की समग्र प्रतिभा व महान् व्यक्तित्व की छटा जैसे एक ही रङ्गमञ्च पर आकर विराजित हो गई हो। भारतीय विश्वविद्यालयों के कुलपति, तात्कालिक भारतीय महान् नेता। राज्यों के राजे व महाराजे सब महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी का निमन्त्रण पाकर यहां पहुंच गए थे। ऐसा महान् समारोह शायद कभी पीछे न हुआ था। न ही आगे ही हो सकता है। कारण कि युग बदल गया है, जनता की परिस्थितियां, मान्यताएं, रहन-सहन, शिक्षा, उद्योग, यान्त्रिकी, व्यवसाय, राष्ट्रीयता सब बदल चुकी है। उस युग की तुलना में अब देश का चित्र ही दूसरा है। वे महापुरुष भी अब नहीं रहे। राष्ट्रीयता व नेतृत्व में भी अब नवीनता है। सब कुछ नवीन ही नवीन है। इसी मधुर व सुरभित समय में यह समारोह अपने यौवन में मुखरित होकर अटखेलियां कर रहा था। इसमें कार्यक्रमों की कितनी आकर्षक विविधताओं की झांकियां थीं, यह तो मेरे इस लेखन का विषय न होकर, इसके केवल एक अंग, श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय जी को समारोह में मानपत्र प्रदान करने का विवरण है।

समारोह के प्रथम दिन उद्घाटन के अनन्तर ही एक वृहत् व विराट् उपस्थिति रंगमञ्च पर जमी थी। जिसमें देश देशान्तर की भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की प्रसिद्ध प्रतिभाएं जुटीं थीं। राजों, महाराजों, नेताओं व बुद्धि जीवियों के इस सम्मेलन में नायक थे दो महापुरुष जो इस मञ्च में एक विशेष तथा उन्नत उपमञ्च पर बैठाए गए थे। वे थे महात्मा गान्धी जी व पं० मदन मोहन मालवीय जी। यह समारोह जिसे मेरे जैसे अब के वयोवृद्धों ने अपनी विद्यार्थी अवस्था में देखा था, अब वर्तमान की नई पीढ़ी के लिए ऐसा ऐतिहासिक बन गया है, जो अभी भी मेरे जैसे उस पीढ़ी के दर्शकों के हृदय पटलों पर अब तक अंकित है। पुस्तकों में उतरा है या नहीं यह मैं नहीं कह सकता। हां मेरी इस पुस्तक में चिन्तन के उन्मेष में अवश्य उतर रहा है।

उस ऐतिहासिक समारोह के अन्तर्गत दूसरे दिन प्रातः उपाध्याय जी को मानपत्र देने के उपलक्ष्य में बड़ा आभापूर्ण व प्रकाशमान पण्डाल जुटा था। दरभङ्गा नरेश सभापतित्व कर रहे थे और विश्वविद्यालय के अधिकतर बौद्धिक, लेखक कवि आदि अधिक संख्या में जुटे थे। मञ्च का सञ्चालन मालवीय जी के बड़े लड़के श्री रमाकान्त (अब स्वर्गीय) जी कर रहे थे। प्रारम्भ में मधुर गायन हुआ; चारों ओर जनता बैठी थी। एक मञ्च पर एक बड़ी चौकी और उस पर कालीन बिछी थी। उसी पर उपाध्याय जी को एक अत्यन्त राजसी ठाट की एक कुर्सी पर बैठाया था। कुर्सी की गद्दी मखमल की व तकिया ऊंचा था। उपाध्याय जी ने काला खुली मोरी का पायजामा नुमा अधोवस्त्र पहना हुआ था, ऊपर काली ही अचकन थी। तथा सिर पर सफेद पगड़ी थी। शरीर दुबला-पतला था किन्तु उस समय कुर्सी पर बैठे उनकी चमक ही कुछ दिव्य दिखाई पड़ रही थी। मानपत्र के पहले उपाध्याय जी पर विद्वानों के श्रृद्धातिरेक से परिपूर्ण भाषण हुए, जिनमें उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा, द्वारा उनकी साधना व कवित्व कला पर उद्‌गार प्रकट किए गए। तनन्तर मानपत्र पढ़ा गया। यह बड़ा रंगारंग कार्यक्रम बड़ी देर तक चलता रहा। कार्यक्रम की समाप्ति पर उपाध्याय जी जनता के साथ ही जब उठ चले तो छात्रों की भीड़ ने आटोग्राफ लेने के लिए उन्हें घेर लिया। वे कमजोर व वृद्ध होने के कारण इस युवा भीड़ को न संभाल पाए। कुछ को आटोग्राफ दिए व कुछ रह गए। जब मैं भी आटोग्राफ बुक लेकर उनके सामने आया तो उन्होंने कह दिया कि आप तो मेरा निवास जानते ही हैं वहां आकर ले लेना। बस यही उनसे मेरी दूसरी भेंट थी तदनन्तर वे विश्वविद्यालय की सेवा से लब्धावकाश होकर कुछ ही समय बाद आजमगढ़ चले गए।

(4)

विश्वविद्यालय परिसर में एक विशेष समारोह (किस उपलक्ष्य में था यह स्मरण नहीं आ रहा) में चाय पार्टी चल रही थी एक ओर विश्वविद्यालय के प्रशासकीय अधिकारी व दूसरी ओर भिन्न-भिन्न विभागों के प्रतिनिधि विद्यार्थी उसमें भाग ले रहे थे। चाय के मेज अलग-अलग, चार-चार या पांच-पांच ग्रुपों के लिए लगाए गए थे। मेरे ग्रुप में चार छात्र बैठे थे तथा वे गप्पों के साथ चाय की चुस्कियां ले रहे थे। सब ओर आना जाना व रौनक मेला लगा था। आनन्द का अवसर था। दूर एक विशेष समूह में बैठकर विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर राधाकृष्णन् भी चाय पी रहे थे। उनके साथ भी चार प्रतिष्ठित व्यक्ति चायपान में व्यस्त थे। चायपान की समाप्ति में कुछ ही समय शेष था तो सर राधाकृष्णन् जी उठकर सीधे हमारे समूह के पास आकर खड़े हो गए। हम लोग आश्चर्यचकित हुए कि वी०सी० जी सीधे हम पांच छात्रों के

पास क्यों चले आए। उन्होंने हंसते हुए हमारे में से एक छात्र को कहा "How are you what are you doing" वे यों कहते हुए मुस्कुरा रहे थे। छात्र कुछ उत्तर न दे सकने के कारण संकोचवश नीचे मुख किए मुस्कुराते रहे। इतने में कुलपति जी आगे की ओर बढ़ चले। उनके जाने के बाद हम पांचों आपस में ही विवाद में पड़ गए। विषय यही था कि उपकुलपति महोदय का इस प्रकार अचानक व असम्भावित हमारे पास आकर मुस्कुराते हुए हालचाल पूछना सिद्ध करता है कि इसमें अवश्य कोई रहस्य है। शायद हमारे में से यहां बैठे किसी से कोई युवासुलभ शरारत हो गई हो, जिसे उन्होंने दूर से देख लिया हो। उस दिन यह रहस्य हमसे खुल नहीं सका।

दूसरे दिन मैंने एक चतुर छात्र से इस रहस्य का कारण भी सुना। उसने हंसते हुए कहा—आपके समूह के अमुक छात्र ने सामने के समूह के एक छात्र पर कंकड़ फेंका था। दोनों एक दूसरे से इस प्रकार की शरारते करते ही थे। उस दिन भी उस लड़के से शरारत करने से नहीं रहा गया। पास बैठे आप लोग तो नहीं देख पाए परन्तु तीक्ष्ण बुद्धि के साथ ही तेज दृष्टि रखने वाले हमारे उपकुलपति जी ने दूर से ही इसे देख लिया था।

(5)

हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती का ऐतिहासिक व अभूतपूर्व समारोह चल रहा था। महात्मा जी उसके विशेष अतिथि थे। राजे, महाराजे, नेतागण, विश्वविख्यात बुद्धिजीवी, कुलपति, उपकुलपति आदि। भारत की सब प्रतिभाएं एक ही मञ्च पर आ जुटी थीं। दृश्य बड़ा दुर्लभ व अमूल्य था। उद्‌घाटन समारोह तो समारोह का प्राण था। उसी में महात्मा गान्धी जी का 90 मिन्ट का भाषण हुआ। जिस पर हिन्दी की आवश्यकता व प्रयोग दोनों छाए रहे। मैं विद्यार्थी था व उसी समारोह के समक्ष रखी गई सौ दो सौ लोहे की कुर्सियों पर बैठे विशेष दर्शकों में बैठ गया था। डर था कि कोई उठा देगा पर किसी ने नहीं उठाया। मञ्च पर एक ओर लगभग सौ राजे-महाराजे भिन्न-भिन्न राज्यों से आकर विराजमान थे। एक ओर राजेन्द्र बाबू, जयप्रकाश नारायण, कृपलानी, पं० नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू, श्री हृदय नारायण कुन्जरू, श्री कैलाशनाथ काटजू, श्री पुरूषोत्तम दास टण्डन आदि बड़े-बड़े दिग्गज नेता बैठे थे। बीच में एक अन्य छोटा-सा ऊंचा मञ्च था, जिस पर महात्मा गान्धी व पं० मदनमोहन मालवीय जी बैठे थे। वे दोनों राष्ट्र की महान् मूर्तियां सफेद वेशभूषा में वार्धक्य को लपेटे देवपुरूषों की भांति चमक रहे थे। इन्हीं के दर्शनार्थ विश्वविद्यालय के हजारों के परिवार के अतिरिक्त लाखों लोग बाहर से आकर

भीड़-भड़क्का करने लगे थे जिसका कि भयावह प्रभाव मञ्च पर बैठी महान् प्रतिभाओं के साथ जुड़ रहा था। मञ्च टूट सकता था व प्रतिभाओं का क्या होता यह आशंका वहां बैठे पं० जवाहर लाल नेहरू को सबसे पहले होने लगी। उन्होंने समय को संभालने की ठान ली। परतन्त्रता का युग था। आज की तरह राजकीय विशाल सुरक्षा नहीं थी। सीमित साधन थे तथा इनेगिने, पुलिस कर्मी तैनात थे, किन्तु उमड़ता हुआ जनसमूह अगाध था। उसे रोकने का कोई सबल साधन भी न था लाचारी थी। इस आपातकाल में अकेले पं० नेहरू ही थे जो कुछ कर सकते थे और मञ्च को बचा सकते थे। वे ताव में आकर जनसमुद्र पर उछले और ऐसे पड़ गए कि वह ज्वार उनके व्यक्तित्व का स्पर्श पाकर दूध के उबाल के समान स्वयं शान्त हो चला। किन्तु पण्डित जी को आधे घण्टे तक एक छोर से दूसरे छोर तक घूम कर धक्का-मुक्की से जनसमुद्र को पीछे भगाने का कठिन संघर्ष करना पड़ा।

अनन्तर जनता जब तीन-चार गज पीछे जाकर अपने ठिकाने पर स्थिर हुई तो पण्डित जी मञ्च पर न जाकर हमारी कुर्सियों की ओर बढ़े। जिस कुर्सी पर मैं बैठा था पीछे से उसका सहारा लेकर खड़े हो गए। युवक सुलभ लज्जा, भय व संकोच के कारण मैं उन्हें पीछे खड़े देखकर उठ बैठा। "बेटा बैठो मुझे अभी खड़े ही रहना है" ये शब्द उनके मुख से निकले मैं समझ गया कि अभी पण्डित जी कुछ देर और यहां निरीक्षण करेंगे ताकि पुन: पहली स्थिति उत्पन्न न हो जाए। जब महात्मा गान्धी जी का भाषण प्रारम्भ हुआ तो पण्डित जी पण्डाल पर जाकर नेताओं की पंक्ति में बैठ गए। उस समय मैं मञ्च की गरिमा देखकर कल्पना कर रहा था कि एक ओर राजाओं की पंक्ति क्या राजतन्त्र का प्रशासकीय उग्र रूप ठाठें मार रहा था। तथा दूसरी ओर परतन्त्रता से पीड़ित व स्वतन्त्रता संग्राम में जूझते हुए हर प्रकार की पीड़ाओं को गले लगाकर उपस्थित ये नेतागण सत्ताहीन ही नहीं सत्ता की कुटिल काल जैसी भ्रुकुटी के शिकार होकर अपनी पंक्ति में बैठे हैं। कितना अन्तर था उस समय इस समागम में परस्पर का ? किन्तु छ: बर्षों के बाद ही (1947) मैंने देख लिया कि जो उस समय सत्ताहीन नेता थे वे सत्ताशाली या शासक बन गए, जो उस समय साम्राज्यवादी शासन में विभिन्न राज्यों के राजतन्त्रीय शासक थे वे अब सत्ताहीन हो गए। समय व परिस्थितियां किस प्रकार युग परिवर्तन कर देती हैं, यह देखकर आश्चर्य होने लगता है।

दूसरे दिन महात्मा गान्धी जी ने मालवीय जी के आवास में आना था। आने की सूचना गुप्त रखी गई थी। अन्यथा भीड़ उमड़ आती। मैं तो मालवीय जी के बंगले में चला गया। मेरे सामने ही महात्मा गान्धी जी की कार आकर द्वार के अन्दर एक कोने में जा लगी। बीच में से महात्मा गान्धी जी धीरे से बाहर आए। उस समय उनकी आकृति विशेष रूप से चमक रही थी। लम्बा गोरा शरीर सिर के सब बाल

पके हुए चेहरा गोरा व तमतमाता हुआ। सफेद शाल ओढ़ा हुआ व लम्बी यष्टि हाथ में पकड़ी हुई। ऐसा था उनका उस समय का रूप अर्थात् अच्छा चमकीला व्यक्तित्व तथा महापुरुषों का तेज़ जो चेहरे पर तमतमा रहा था। हम लोग सब खड़े थे। उनके चरणों का स्पर्श करने लगे। हमारी पीठ थपथपाते हुए वे आगे बढ़े और सामने के बरामदे में ही उनके बैठने के लिए सजाए गए मञ्च पर बैठ गए और एक-एक करके पूछने लगे सबका परिचय। नीचे फर्श पर एक किशोरों व बालकों की कतार लगी थी, जिनमें केवल मुझे छोड़कर सब महामना मालवीय जी के पोते परपोते, दोहित्र आदि थे। प्रदर्शन का कार्य कर रहे थे मालवीय जी के पुत्र श्री गोविन्द मालवीय जी (बाद में हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति तथा संसद-सदस्य) वे एक-एक करके बच्चों व किशोरों का परिचय देते जा रहे थे और गान्धी जी उन्हें प्रेरित कर रहे थे, जीवन क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए। उस समय मैंने देखा कि गान्धी जी किस प्रकार स्फूर्ति उत्साह व वात्सल्य रस से विभोर होकर हंसते-हंसते बालकों से प्यारपूर्ण वार्तालाप कर रहे थे, जिनमें हास्य विनोद की चुटकियां भी थीं व बालकों के प्रति अतुलित स्नेह की आर्द्रता भी। गान्धी जी की बातों में रस था, शालीनता थी, वात्सल्य स्नेह व प्रेरणा के साथ वाणी में तेजी व युवकों जैसा ओज था। आवाज ऊंची थी। श्री गोविन्द मालवीय से हास्य विनोद में आकर और भी रस ले रहे थे। जिसमें उनका महामना मालवीय की पितृ भावना के समानान्तर भावों की लड़ी प्रकट हो रही थी। जैसे अरे गोविन्द ! सुनाऊंगा मालवीय जी से तूं चालक हो गया है। श्री गोविन्द जी सुनकर मुस्करा देते थे और अपना कार्य लगातार कर रहे थे। बालकों का परिचय देने में तथा इधर-उधर की बातों में। जब परिचय की शृंखला मेरे तक पहुंची तो मालवीय जी ने मेरा परिचय इस प्रकार से दिया। गान्धी जी यह लड़का जम्मू-कश्मीर के महाराजा की छात्रवृत्ति लेकर यहां वेदाध्ययन के लिए आया है। सुनकर गान्धी जी की दृष्टि मुझ पर घूम गई। हां तो तुम कश्मीर से आए हो या जम्मू से ? गान्धी जी ने पूछा। मैंने कहा "जी मैं जम्मू शहर का हूं वहीं से आया हूं राज्य तो जम्मू-कश्मीर एक ही है। हां मैं जानता हूं तुम तो तब जम्मू के हो कश्मीर के नहीं, उन्होंने कहा। हां महाराज में जम्मू का ही हूं, वेद पढ़ने की रूचि कैसे पैदा हुई उन्होंने पूछा। जी महाराज की छात्रवृत्ति वेद के लिए ही निर्धारित थी। इसी कारण मुझे यह विषय लेना पड़ा। अब तक कितना वेद पढ़ गए उन्होंने पूछा। जी भाष्य सहित ऋग्वेद का तृतीय मण्डल चल रहा है। साथ ही शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि विषयों की पुस्तकें भी साथ-साथ पाठ्यक्रम में निर्धारित होने के कारण पढ़नी पड़ती हैं। मैंने कहा। उन्होंने पूछा---इसमें अन्त में कैसी उपाधि मिलेगी। जी वेदाचार्य की। मैंने कहा। उन्होंने कहा—कितने वर्षों का कोर्स है। मैंने कहा—तीन वर्ष वेद शास्त्री के व तीन वेदाचार्य के। उन्होंने कहा—इसके पूर्व क्या पढ़े थे। मैंने कहा—जी पंजाब

विश्वविद्यालय से शास्त्री परीक्षा पास करके आया हूं। यहां पुन: वेद विषय में मुझे शास्त्री कक्षा में ही लिया गया है। उन्होंने कहा—यह तो विश्वविद्यालय के नियमों के अन्तर्गत ही हुआ होगा। मैंने कहा—हां महाराज ऐसा ही है। उन्होंने पूछा—देश की स्वतन्त्रता के बारे में कुछ सोचा है? जी मेरा तो जीवन ही इसीलिए है पढ़ाई तो इस लक्ष्य की पूरक है। बिना पढ़े तो स्वतन्त्रता का महत्त्व भी समझ में नहीं आता। मैंने एक ही सांस में सब कुछ कह डाला। महात्मा जी मेरी यह जोश भरी बात सुनकर प्रसन्न हुए व मेरी पीठ थपथपाते हुए आगे के बालक के बारे में पूछने लग पड़े। इसी प्रकार जब पंक्ति के अन्तिम बालक तक परिचय पूछने का कार्यक्रम समाप्त हुआ तो गान्धी जी ने अपनी यष्टि को संभालते हुए कहा। गोविन्द हम चले... कहते-कहते गान्धी जी उठ खड़े हुए। किन्तु अभी गोविन्द मालवीय जी ने उनसे अपनी आटोग्राफ पुस्तक में कुछ शिक्षा वाक्यों के साथ हस्ताक्षर लेने थे। उन्होंने अनुनय के साथ गान्धी जी के समक्ष आटोग्राफ पुस्तक रखी उन्होंने बैठकर दो चार शिक्षा वाक्यों के साथ नीचे पूरे हस्ताक्षर किए। मैं उनके लेख को ध्यान से देख रहा था लेख साफ व सुन्दर था। किन्तु शिक्षा वाक्य मुझे अब याद नहीं आ रहे हैं। इस कार्य की समाप्ति पर मालवीय जी ने उन्हें अभी कुछ और प्रार्थना करनी थी।

उन्होंने एक बड़ा सुन्दर सफेद रंग का शाल जो अनुमानत: खद्दर भण्डार से खरीदा गया होगा अथवा स्वयं आर्डर देकर विशेष रूप से बनवाया होगा, उठाकर कहा—गांधी जी मेरी प्रार्थना है कि इसे स्वीकार कर लीजिए। गांधी जी ने चुटकी लेते हुए कहा—अरे! शाल बाल की कोई आवश्यकता नहीं जाओ काम करो। गांधी जी यों कह कर प्यार से मुस्कुरा रहे थे, मालवीय जी ने कहा नहीं ऐसा नहीं होगा, यों कहते-कहते उन्होंने नम्रता व परम स्नेह से वह शाल उनके कन्धे पर लटका दिया। गांधी जी हंसते हुए चल दिए—"हम लोगों ने उनके चरणों का स्पर्श किया और वे हमें भी वातसल्य भरी दृष्टि से देखकर सब की पीठ थपथपा कर आशीर्वाद देते हुए कुछ डग भरने के बाद कार में बैठ गये। देखते ही देखते कार हवा से बातें करती हुई आंखों से ओझल हो गई। आज जब मैं यह लेख लिख रहा हूं, उस ऐतिहासिक संगोष्ठि का सारा वातावरण मेरी दृष्टि के सामने पुन: नवीन होकर घूम गया है जैसे कि यह घटना अभी हाल की ही हुई हो। महात्मा गांधी जी की वह दिव्य मूर्ति भी वैसी की वैसी मुझे इस समय साकार दिखाई पड़ रही है, जैसे कि वे अभी जीवित ही हों।

(6)

भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू स्वतन्त्रता के पूर्व राष्ट्रीय नेताओं की

पंक्ति में मुख्य स्थान प्राप्त किये हुए थी। देशभक्ति के साथ-साथ कवित्व कला का वरदान उन्हें ईश्वर की ओर से ही मिला था। इन गुणों के कारण वे अपने युग की राजनीति के गगन की तारिका थीं। उन दिनों उन की ख्याति यौवन पर थी जब की बात मैं लिख रहा हूं। उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी राष्ट्रीय विश्वविद्यालय कहा जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रत्येक आँदोलन का गढ़ भी विश्वविद्यालय बन जाता था। यहां के छात्र भी विशेष जोशीले, वाक्पटु व देशभक्त होते थे। बड़ी बात यह भी थी कि देश के महान् नेता महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी की यह रचना थी। वे स्वयं इस में ही विराजमान रहते थे। इस सन्दर्भ में उनका प्रभाव भी काम कर रहा था। यही कारण था कि इस महान् संस्था में देश-विदेश के महापुरुष नेता व्याख्यान देने आते थे और ऐसा कोई दिन खाली नहीं जाता था जब कि किसी महापुरुष का व्याख्यान परिसर में न हो। इसी शृंखला में एक बार भारत कोकिला का भी परिसर में व्याख्यान हुआ। इसके पूर्व भी कई बार हुआ होगा किन्तु मैंने अपने विश्वविद्यालय के छात्र जीवन में प्रथम बार ही यह व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया था। व्याख्यान क्या एक सिंह गर्जना थी। इतनी ऊंची बाणी आज तक मैंने किसी नेता की नहीं सुनी, मुझे उनकी इस तुमुल ध्वनि को सुनकर बड़ा आश्चर्य लगा। उनकी अंग्रेज़ी उनकी मातृभाषा के समान ही लग रही थी। वक्तृता का प्रभाव निरगर्ल था। कोई-कोई विराम कम ही दिखाई देता था। अस्तु। एक घण्टा तक उनका अंग्रेज़ी भाषण सुना जिसमें राष्ट्रीयता व स्वतन्त्रता की गहरी झंकार मुखरित थी। क्या ही आनन्द जमा था उस समय। छात्रों की उपस्थिति लगभग चार हज़ार की थी। विश्वविद्यालय का उच्चाधिकारी वर्ग बैठा था मञ्च पर शेष नीचे की कुर्सियों पर थे व छात्र दरियों पर बैठे थे। भाषण खुले प्रांगण में रखा गया था। अन्त में विश्वविद्यालय के उपकुलपति (Vice Chancellor) सर राधाकृष्णन जी का भी विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ था। इनके भाषण समय-समय पर विश्वविद्यालय में होते ही रहते थे। विश्वविद्यालय पर उपकुलपतित्व की सफलता इनकी व्यक्तिगत महानता व विद्वत्ता थी। मैंने अपने लम्बे छात्र जीवन में यहां इनके उपकुलपतित्व के काल में कभी कोई आंदोलन या उथल-पुथल नहीं देखी। कैसी शांत स्थिति में विश्वविद्यालय चल रहा था, कैसे पठनशील देशभक्त, परिश्रमी व सच्चरित्र छात्र होते थे उन दिनों में इस संस्था के। आज इस की स्थिति देखकर मुझे उस युग की याद आकर एक सिहरन दे जाती है। आज की व उस युग की स्थिति में बड़ा अन्तर आ चुका है। अब कहां मिलेंगे ऐमे महामना पं० मालवीय जी व सर डॉ० राधाकृष्णन जी जैसे महापुरुष, अभिभावक व प्रशासक ?

दूसरे दिन सरोजिनी नायडू का जनभाषण काशी शहर की ओर से टाऊनहाल में था। उन दिनों काशी पर बाबू सम्पूर्णानन्द जी का दबङ्ग व्यक्तित्व छाया हुआ

था। सरोजिनी जी के नागरिक व्याख्यान की आयोजना में बाबू जी के ही निर्देश काम कर रहे थे। उनके मुख से कोई ऐसा भी आदेश निकल गया था जिसे सरोजिनी जी ने अपने ऊपर आदेश के रूप में लिया। इसी कारण जब सायं उनका व्याख्यान प्रारम्भ हुआ तो वे शुरू में ही वे बाबू सम्पूर्णानन्द जी पर बरस पड़ीं। उन्होंने यहां तक कह दिया कि शायद श्री सम्पूर्णानन्द जी को भूतपूर्व शिक्षामन्त्री होने के कारण ही आदेश करने की आदत पड़ गई है। हम लोग उन की ये गर्मी भरी बातें सुन रहे थे। किन्तु बीच में कोई हलचल नहीं हुई। इसके अनन्तर उन्होंने राष्ट्रीय विषय पर एक घण्टे का सारगर्भित भाषण हिन्दी में दिया।

इस प्रकार भारत कोकिला श्रीमती नायडू के ऊंची वाणी या सिंह गर्जना के दो भाषण सुनने का मुझे अवसर मिला। आज भी उनकी वह जोशीली वाणी व मुखाकृति मेरे सामने साकार हो उठी है।

(7)

हिन्दू विश्वविद्यालय में रहते हुए हम कुछ छात्रों ने एक "साहित्य समिति" की स्थापना की, जिस में लेखक व कवि छात्र सप्ताह में एक बार मिल कर अपनी रचनाएं पढ़ते थे। समिति का प्रथम अध्यक्ष मुझे चुना गया। 17 वर्षों का मैं छात्र देखने में सुन्दर, स्वस्थ व चुस्त लगता था। मेरी कविता या कहानी कहां तक छात्रों को पसन्द थी यह तो मैं नहीं कह सकता किन्तु लिखने का शौक मुझे तब भी था अब भी है। इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। इस प्रकार प्रति सप्ताह हमारी गोष्ठियां सफलतापूर्वक चलने लगीं। जिसमें नरेश मेहता (उस समय के छात्र अब भारतीय ज्ञान पीठ पुरस्कार विजेता) जैसे होनहार छात्र भी आकर अपनी रचनाएं सुनाते थे। कभी-कभी श्री राजनारायण जी (उस समय के छात्र व बाद में प्रसिद्ध नेता तथा केन्द्रीय मन्त्री) भी गोष्ठी में आकर कविता पाठ करते थे। रचनाओं पर आलोचनाएं भी होती थीं किन्तु सद्भावना के अन्तर्गत। यही कारण था कि हम सब साहित्यिक छात्र परस्पर इतने हिलमिल गए थे कि अपने परिवार जैसा प्रेम व ममता एक दूसरे से प्राप्त करने लगे। भिन्न-भिन्न प्रांतीय हम सब हिन्दी साहित्य लेखन द्वारा परस्पर सम्बन्ध सूत्र में बंध गए थे। ऐसा साहित्यिक स्नेह अन्यत्र मिलना दुर्लभ था।

साहित्य समिति को चले हुए दो वर्ष हो चले थे। किन्तु इसका अभी तक वार्षिकोत्सव नहीं मनाया गया था। बसन्त पञ्चमी से दिन (प्रतिवर्ष) छात्रों की रोचक कविताओं का एक चयनात्मक संग्रह प्रकाशित करके छात्रों में बांट दिया जाता था। जिसे समिति की एक बड़ी उपलब्धि माना जाता था। अब वार्षिकोत्सव मनाने का प्रश्न दिनोंदिन जोर पकड़ता गया। और छात्र मेरे पास आ-आकर यह उत्सव मनाने

के लिए मुझे तंग करने लगे। इस समिति के सदस्य छात्र चार-पांच विभागों के थे। जैसे—संस्कृत, हिन्दी, आयुर्वेद, विज्ञान, कला। इन विभागों के छात्रों में कविता, लेख, कहानी आदि लिखने का बड़ा शौक दिखाई देता था, जिस कारण समिति उत्तरोत्तर उन्नति करती चली गई और मैं भी इसमें व्यस्त होता चला गया। साथ ही परीक्षा का भूत भी सिर पर नाचता रहता था। इसके लिए पढ़ाई में भी अधिक परिश्रम रखना पड़ता था। समिति के कार्यों में मुझे साहित्य बन्धुओं का पर्याप्त सहयोग मिलता रहता था। जब कभी किसी विशेष कवि को समिति में आने का आग्रह करने के लिए काशी शहर में जाना होता तो अवश्य हम चार-पांच छात्र एक साथ चल पड़ते थे। इसी प्रकार समिति अन्य कार्यों में भी हमारा परस्पर सहयोग बना रहता था। अब हमने इस उत्सव की तैयारियां करनी भी शुरू कर दीं। अभी और कुछ एक आध महीना इसमें लग जाता किन्तु अकस्मात् काशी नागरी प्रचारिणी सभा का कोई विशेष उत्सव प्रारम्भ हो गया। जिस की प्रधानता अफ्रीका निवासी भारतीय नेता श्री भवानी दयाल सन्यासी कर रहे थे। वे इन्हीं दिनों अफ्रीका से भारत यात्रा पर आए थे। हमने भी अपने उत्सव के लिए यह अच्छा अवसर समझा। हमने सोचा कि एक तो हमें अध्यक्षता के लिए भवानी दयाल संन्यासी जी जैसे चर्चित व्यक्तित्व की उपलब्धि होगी दूसरा नागरी प्रचारिणी सभा के उत्सव में जाकर हमें अपने उत्सव को भी विशिष्ट आगंतुकों तक पहुंचाने का अवसर मिलेगा। जिससे कुछ व्यक्तित्व हमारे उत्सव में आकर इसका गौरव बढ़ाएंगे। देखते ही देखते सायं सात बजे तक विशाल संगीत हाल में लगभग चार हजार दर्शक उपस्थित हो गए। मञ्च तो सजाया था किन्तु उसे सम्भालने वाले हमीं दो चार किशोर छात्र थे। दर्शकों में उच्च कक्षाओं (स्नातकोत्तर) के छात्र भी अधिक संख्या में थे। इसके अतिरिक्त उच्च कर्मचारी, प्राध्यापक, रीडर, प्रोफेसर आदि भी अधिक संख्या में उपस्थित हो गए। किशोरों द्वारा आयोजित इस समारोह में इतनी बड़ी भीड़ बुद्धिजीवियों की या विद्वद्जनों की हो जाएगी यह एक आश्चर्य की घटना थी अन्यथा बड़े-बड़े अधिवेशनों में दर्शकों की संख्या की कमी की समस्या बनी रहती है। अब हमें इतनी भारी दर्शकों की संख्या को संभालना पड़ गया। मञ्च पर जब तक श्री भवानी दयाल सन्यासी व गोपालशरण सिंह नेपाली जैसे व्यक्तित्व न पहुंचे तब तक दर्शकों को मञ्च से कुछ लचीला कार्यक्रम मिलना चाहिए था। अन्यथा भारी उथल-पुथल व शोर मचने का भी डर था। मेरे दूसरे सहयोगी छात्र श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी मेरे पास आकर पूछने लगे कि—"विनोद" अब क्या किया जाए ? बोलो भाई मामला गम्भीर आ पड़ा है। कहता तो था कि अभी आयोजन मत करो। आयोजन अब नहीं तो कब करते ? इसे करना ही था। मैंने धीरता से कहा। करना ही था तो सोचो कुछ उपाय भीड़ में सीटियां बजनी शुरू हो गई हैं। हल्ला-गुल्ला भी शुरू हो रहा है. अभी सम्भालो, उन्होंने घबरा कर कहा। किन्तु मैंने

मानसिक सन्तुलन को कायम रख और गम्भीर बनकर मञ्च पर ही सोचने लगा कि इतने में ही जनता से आवाजें आने लगी—"सोचते क्या हो ? हमें क्यों बुलाया गया है ? कुछ कार्यक्रम दो अन्यथा तोड़ देंगे मञ्च-वञ्च किसी उत्तेजित छात्र ने कह दिया।

मेरे भाग्य ने मेरा साथ दिया कि इतने में ही डा० आत्रेय दर्शन विभाग के अध्यक्ष मञ्च पर आ पहुंचे। दर्शक छात्र उन्हें देखकर प्रभावित भी हुए। मैंने तत्काल भाषण देने के लिये उनके समक्ष प्रार्थना की। वे तत्काल मान गए व रोचक और प्रभावशाली भाषण देने लगे। छात्र दर्शकों में सन्नाटा छा गया, भाषण प्रभावशाली था ही। मञ्च की सफलता अब दिखने लग गई थी। इतने में "सन्यासी" जी भी आ गए। अभी डा० आत्रेय जी का भाषण चल ही रहा था। हम लोगों ने द्वार पर जाकर "सन्यासी" जी का स्वागत किया। उन्हें मञ्च पर आये देखकर दर्शकों ने हर्षित होकर तालियां बजाईं। अब मञ्च जम गया था व उसका सञ्चालन मैं कर रहा था। कुछ अन्य कवि भी आकर मञ्च पर बैठ गये। भाषण के बाद मैंने सन्यासी जो का स्वागत भाषण पढ़ते हुए उन का संक्षिप्त परिचय भी दिया। वैसे तो इस की आवश्यकता नहीं थी। चूंकि उन्हें सभी जानते थे। तथापि नए छात्रों के लिये मुझे परिचय देना पड़ा। अब सन्यासी जी को हमने मानपत्र दिया। इसके अनन्तर उन का भाषण प्रारम्भ हुआ। उन्होंने अफ्रीका की स्थिति के बारे में कुछ संस्मरण भी सुनाये। भाषण अत्यन्त रोचक व उत्तेजक था। अब मेरे समक्ष इस भाषण के पश्चात् अन्य कार्यक्रम रखने की समस्या उत्पन्न हुई, मञ्च पर देख रहा था किसी प्रभावशाली व्यक्तित्व को जो विश्वविद्यालय के सुलझे व स्तरीय छात्रों पर अपनी रचना का जादू बिखेर सके। एकाएक मेरी दृष्टि श्री नरेश मेहता (अब प्रसिद्ध साहित्यकार तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार आदि के विजेता) पर पड़ी। भाषण के पश्चात् नेपाली जी के आने तक कविता पाठ शुरू रखने के लिये मैंने उनसे अनुरोध किया, प्रार्थना शब्द का प्रयोग इसलिये नहीं कर रहा हूं कि उस समय हम दोनों एक ही संस्था के छात्र थे। अब तो वे बहुत आगे बढ़ गए हैं। उनका कविता पाठ हो ही रहा था तो "नेपाली" जी भी आ गए। दर्शकों ने हर्ष ध्वनि से तालियां बजाकर उन का स्वागत किया। अब तो मञ्च और जम गया। देखते ही देखते डेढ़ दो हजार दर्शक और आकर इधर-उधर खड़े हो गये, कुछ हाल के बाहर खड़े थे, भीड़ अधिक बढ़ गई थी किन्तु कार्यक्रम भी अच्छा चल पड़ा था। इस प्रकार दो तीन घण्टों के कार्यक्रम के बाद मैंने आगन्तुकों का धन्यवाद करते हुए सभा विसर्जित की। मञ्च पर नेपाली जी का कविता पाठ इतना अधिक प्रभावशाली रहा कि सब छात्र तो गद्‌गद् हो गए और श्री भवानी दयाल सन्यासी ने भी उन्हें गले लगा लिया। वे इनकी कविता पर मुग्ध थे। इस प्रकार हमने जिस अधिवेशन को सीमित सीमा में करने का विचार किया था, उसने स्वयं ही

दैवयोग से विशालता प्राप्त कर ली। किशोरावस्था में इतने बड़े उन्नत बुद्धि-जीवियों का साहित्यिक समारोह संचालित करने का मेरा पहला अवसर था, जिसमें मुझे इतनी सफलता मिली कि विश्वविद्यालय में सर्वत्र मेरा नाम गूंज उठा। विद्यार्थी अवस्था के ये बौद्धिक खेल मैंने कितने ही किए थे, इसका यदि लेखा-जोखा करने लगूं तो एक पुस्तक बन जाएगी। इस अवस्था के ये अधिक संख्या में संस्मरण मेरे साथ जुड़े हुए हैं, किन्तु यहाँ स्थानाभाव से नहीं लिखे जाते। जो विशेष-विशेष यहां लिख भी रहा हूं, डर है कि पाठकों के लिए ऐसे पुराने संस्मरण अब रुचिकर भी होंगे या नहीं फिर मुझे महापुरुषों का तथा विशाल क्षेत्र का जो वर्षों तक सम्पर्क मिला था, वह अब इतिहास बन गया है। ऐसा इतिहास जो अब तक मेरे हृदय के किसी कोने में छिपा था, उसे बाहर निकाल कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का लोभ भी मैं संवरण नहीं कर पाया हूं।

(८)

सन् 1946 की घटना है। विभाजन के कुछ माह पूर्व मैं लाहौर में था। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मण दास की विशाल पुस्तकों की दुकान पर जाकर बैठता था। बड़े-बड़े लोग वहां आते थे। लेखक, प्रोफैसर, अन्य बुद्धि-जीवी, सम्पादक आदि सभी का वह पुस्तकालय केन्द्र स्थान बन चुका था। पुस्तक विक्रय तथा प्रकाशन के इस केन्द्र के मालिक थे लाला खजानची राम। उनके सहायक थे श्री मनोहर लाल। मेरे वहां प्रतिदिन आने से उनसे मेरा आत्मीय सम्बन्ध भी बना। मैंने अभी नई-नई आचार्य परीक्षा पास की थी। लाला खजानची लाल मुझे देखकर कभी कह भी बैठते कि इस युवक को कोई संस्कृत प्रकाशन का कार्य देना चाहिए। सुनकर मैं हंस देता और कहता आपके ही यहां मुझे कोई कार्य शीघ्र ही मिलने वाला है, मेरी आत्मा की यही आवाज़ है। कुछ दिनों बाद इनके यहां श्री चतुरसेन शास्त्री जी सपत्नीक आ गए। इन्हीं के निमन्त्रण पर आए थे। इन से हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखवाना था। इनके आवास व भोजन की सुन्दर व्यवस्था पुस्तक भवन की ओर से ही की गई थी। लाला खजानची राम जी की इन पर बड़ी श्रद्धा व आस्था थी। अब प्रश्न पैदा हुआ किसी विद्वान् का जो शास्त्री जी की इस उदीयमान रचना को लिखे। शास्त्री जी बोलते चले और विद्वान लिखता चले व प्रेस कापी तैयार करे। शास्त्री जी का लेख कम्पोज़िटरों द्वारा पढ़ा नहीं जाता था। इसके लिए लेखन कर्ता का होना आवश्यक था। मुझे इस कार्य में नियुक्त किया गया।

इस प्रकार मैं लाहौर में शास्त्री चतुरसेन जी के साथ उनके प्रतिलिपिकार के

रूप में दो महीनों तक रहा। इस समय मैं उनका अधिक विश्वासपात्र तथा घरेलू सदस्य जैसा बन गया। एक धुरंधर लेखक के साथ इस प्रकार रहने के अवसर को मैं अपना सौभाग्य अधिक व परिश्रम कम समझता था। शास्त्री जी के साथ रह कर मुझे उनके व्यक्तिगत रहन-सहन व स्वभाव का पूर्ण परिचय मिला। उनके सम्पर्क में आने से पूर्व मैं उनकी दो-तीन रचनाएं पढ़ चुका था। वे थीं—हिन्दू राष्ट्र का नव-निर्माण, हृदय की प्यास, दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी—प्रस्तुत कहानी शास्त्री जी की कहानी लेखन कला का उत्कृष्ट नमूना समझा जाता था। इस समय भी इन का विशाल साहित्य छप चुका था। और हिन्दी साहित्य में भी इन की स्थापना प्रधान रूप में थी। आगे चलकर इन्होंने और अधिक उपयोगी व विशाल साहित्य की रचना की एवंच हिन्दी साहित्य गगन में उज्ज्वल नक्षत्र बन कर चमकने लगे थे। किसी महापुरुष के व्यक्तिगत जीवन में आना भी एक भाग्यवत्ता ही होती है। जिसे मैंने प्राप्त किया। सच कहूं तो यह निश्चित है कि मुझे लिखने की प्रेरणा भी इन्हीं से मिली। यद्यपि इसके पूर्व मैंने हिन्दू विश्वविद्यालय काशी की छात्रावस्था में रह कर श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, महादेवी वर्मा, निराला, पन्त, बेढब, बेधड़क बनारसी, डा० शिवमंगल सिंह "सुमन", आदि अनेक हिन्दी साहित्यकारों का सान्निध्य प्राप्त कर लिया था। एवंच साहित्यिक गतिविधियों में भी पर्याप्त भाग ग्रहण किया और कुछ लिखा व छपवाया भी था। किन्तु लाहौर व दिल्ली में पूरे छ: मास आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के साथ व्यक्तिगत जीवन में रह कर मैंने विधिवत लेखनी चलाना इन्हीं से सीखा था। इस से ऐसी महती प्रेरणा मुझे मिली, जिससे अब तक मेरे लिए लिखना एक व्यसन सा बन चुका है। रचना छपे या न छपे इसकी चिन्ता किए बिना ही मैं अब तक लिखता चला जा रहा हूं। यह बात नहीं कि मेरा कुछ साहित्य छपा ही नहीं, 14-15 पुस्तकें छप चुकी हैं, अभी एक छप रही है। सौ के लगभग लेखादि पत्रिकाओं व पत्रों में छप चुके हैं। कुछ रचनाएं अभी अप्रकाशित ही पड़ी हैं।

कालिज के छात्रों के पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी लिख चुका हूं। इस सन्दर्भ में कुछ हिन्दी साहित्यिक कार्य भी मेरे से हुआ है व छपा है। दो मास शास्त्री जी के साथ रह कर और "हिन्दी साहित्य का इतिहास" का प्रतिलिपि कार्य पूरा करके मैं अपने घर जम्मू चला गया। इस बीच स्वतन्त्रता व भारत विभाजन की ऐतिहासिक घटनाएं घटीं। अब तक मैं जम्मू में रह कर शरणार्थियों की सेवा करता रहा। सन् 1948 की गर्मियों में पुन: लाल बाग शाहदरा दिल्ली के शास्त्री जी के निवास पर पहुंचा। उन्होंने तत्काल मुझे अपने घर पर रख कर प्रतिलिपि कार्य में लगा दिया। यहां मैं उनके साथ चार मास रहा। "वैशाली की नगर वधू" उनके इस ऐतिहासिक उपन्यास की प्रतिलिपि मैंने ही की थी। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य रचनाओं की प्रतिलिपियां मैंने की थीं जो अब स्मरण नहीं

आ रहा है। इस कार्य के अतिरिक्त उनके न्यायालय सम्बन्धी (विवाद से सम्बन्धित) कई प्रपत्रों (लेखों) की प्रतिलिपियां भी करता था। एवंच उनके पत्राचार के अन्तर्गत उत्तर आदि मैं ही लिखता था। वे तो लेखन में व्यस्त रहते थे। इतना समय ही कहां था कि सांसारिक लेखन भी करें, यह सब मुझे ही करना पड़ता था।

चार मास वहां रह कर मैंने उनकी पुत्रवत् डट कर सेवा की। भोजन निवास आदि का मेरा प्रबन्ध उन्हीं के यहां था। उनके परिवार में ही रहता था। इतना बड़ा विश्वास था उन्हें मुझ पर कि कभी मुझे पराया नहीं समझा और कोई बात भी मुझ से गोपनीय नहीं रखी। गोपनीय कुछ था भी नहीं। वे एक शुद्ध सरल साहित्य तपस्वी, लेखन शूर व आर्ष प्रकृति के थे। उनका व्यक्तिगत जीवन शुद्ध सादा तपस्यापूर्ण तथा भारतीय संस्कृति का प्रतीक था। साधन हीनता में भी वे प्रसन्न व प्रफुल्लित थे। और लेखन साधना में दिन-रात दस बारह घण्टे वृद्धावस्था में भी रत रहते थे। मुझे भी उन्होंने अपने साथ रख कर ऐसा ही बना दिया था कि आज मैं उनकी इस धरोहर को साथ संजोए लेखन में व्यस्त रहता हूं। आचार्य श्री से छुट्टी पाकर मैं कुछ दिन श्री राहुल सांस्कृत्यायन जी के साथ (दिल्ली में) रहा। उनकी रचनाओं की प्रतिलिपि का कार्य न था केवल उनके साथ रह कर घूमना पड़ता था। इसी में उन्हें आनन्द था। कभी कोई लेखन कार्य भी पड़ जाता था। मुझे याद है एक दिन रात के 11 बजे तक हम दोनों प्रसिद्ध कहानी लेखक श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार के घर पर बैठ कर साहित्य व लेखन की बातें करते रहे। यहां का मुख्य विषय था अंग्रेज़ी शब्दों का हिन्दी करण। जैसे उन्होंने "रेडियो" शब्द पकड़ा और उसका हिन्दी करण "रेदियो" कर गए। बीच में किसी ने कहा राहुल जी "रेदियो" शब्द से काम न चलेगा, कोई और नितांत हिन्दी शब्द ढूंढिए। तो उन्होंने कुछ देर सोचकर कहा ऐसा कोई शब्द होना चाहिए जो अंग्रेज़ी स्वर के साथ चल कर संस्कृतनिष्ठ बन पाए। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई निर्णय उस समय नहीं हो पाया। राहुल जी के साथ एक दिन प्रातःकाल मैं नई दिल्ली के हवाई अड्डे पर गया। दोनों लम्बे सैर का ही उद्देश्य रख कर गये थे। राहुल जी की यह आदत थी कि वे कहीं पर भी जाते अपना अनुसन्धान का कोई पहलू अपने साथ ही रखते थे। उस दिन एअर पोर्ट के चारों ओर चक्कर लगाते हुए उन्होंने एक दस पृष्ठों का निबन्ध अपने काले कोट की जेब से निकाल लिया (सर्दी के दिन थे उन्होंने गर्म काला कोट पहना था) उस में रशियन भाषा के व संस्कृत भाषा के सैंकड़ों शब्द तुलना की दृष्टि से आमने सामने लिखे गये थे। वे एक-एक शब्द को लेकर संस्कृत शब्द के साथ उस की समानता सिद्ध करते चले जा रहे थे। सुनने वाला उस समय मैं ही अकेला उनके साथ था। मुझे उन की व्याख्याएं सुनकर आश्चर्य हुआ कि उन्होंने किस सुन्दर अनुसन्धान विधि द्वारा प्रत्येक रशियन भाषा के शब्द की प्रत्येक संस्कृत शब्द के साथ

सूची के क्रम के अनुसार ध्वनि साम्य व क्रिया साम्य द्वारा समानता सिद्ध की थी। दस पृष्ठों का एकमात्र यही विषय था। वे ऐसे तन्मय होकर सुनाते जा रहे थे कि जैसे उन्हें यह भी पता न हो कि वे किसी को सुना रहे हैं। अपनी ही अन्तर्मुखी उमंग में डूब कर वे प्रत्येक शब्द युगल की समानता सिद्ध करते चले जा रहे थे। उधर मैं भी उन दोनों भाषाओं की इतनी सन्निकटता सुनकर आश्चर्य-चकित हो रहा था। इतनी बड़ी दूर के देश की भाषा संस्कृत के साथ अत्यन्त सन्निकट हो यह बात तो आश्चर्य की है ही किन्तु मेरा दूसरा आश्चर्य यह भी था कि आज तक इस तथ्य का बौद्धिक जगत् में अधिक प्रचार क्यों नहीं हुआ। तब मैंने समझा कि वास्तव में ही रशियन भाषा संस्कृत के अधिक सन्निकट है। भाषा एक ऐसा साधन है जिसके आधार पर अनुसन्धान द्वारा बड़े-बड़े आश्चर्यजनक रहस्य, जो विश्वमानव की प्रारम्भिक एकता के साथ जुड़े हैं, स्पष्ट होने लगते हैं। इससे कभी विश्व एक था उसकी भाषा एक थी, उस की मान्यताएं एक थीं यह तथ्य अवश्य ही सिद्ध हो सकता है। तथा कई विद्वानों द्वारा सिद्ध हो भी चुका है। राहुल जी ने उस दिन शब्द ब्रह्म का यह रहस्य मेरे सामने खोल कर मानों मेरे युवा मस्तिष्क में एक हल-चल पैदा कर दी थी। उसके अनन्तर भाषा विज्ञान की ओर फिर भी मेरी प्रवृत्ति जागृत नहीं हुई। मैं ललित साहित्य, आलोचना तथा निबन्ध की दिशा में ही लिखता रहा। कभी-कभी भाषा पर भी कुछ लिख देता था। किन्तु वह अप्रासांगिक ही बना रहता। एक दिन मैंने राहुल जी से पूछा—आपने आखिर मेरे लिये क्या सोचा है? युवा होकर जीविका की खोज में हूं आपके साथ रह कर मेरी यह समस्या भी क्या हल हो सकती है? महापुरुषों के सम्पर्क में आना यद्यपि मेरे जीवन का यह भी एक लक्ष्य है तथापि जीविका की समस्या भी साथ ही जुड़ी हुई है। सुनकर राहुल जी गम्भीर हो गये व कहने लगे—"त्याग होगा तो सब प्रकार की समस्याएं स्वयं ही निपट जाएंगी।" "किसी भी महापुरुष ने अपने प्रारम्भिक जीवन में किसी बड़े उद्देश्य के हाथों अपने को समर्पित करते हुए यह नहीं सोचा था कि उसकी जीविका का क्या होगा? मुझे ही देख लो। मैंने कब इस प्रश्न पर सोचा है? स्वयं ही गाड़ी चल रही है। मुझे सरस्वती की आराधना करनी है वही मेरे जीवन का एक लक्ष्य है। उसी को समर्पित हूं तुम्हें भी ऐसा ही बनाना चाहता हूं।" यह भावोत्तेजक वाणी सुनकर मुझे स्वयं पर लज्जा आने लगी। मैंने सोचा क्या तुच्छ बात मैंने इस महान् व्यक्तित्व के आगे कर डाली। सरस्वती की आराधना के क्षेत्र में जीविका का प्रश्न कैसा? वह स्वयं हल होता ही है, त्याग व तपस्या करते चलो फिर उस का प्रसंग चलाना ही मूर्खता थी मेरी। फिर भी इस घटना से मैंने जो शिक्षा पाई वही मेरे लिये एक बड़ा लाभ था।

इस प्रकार मैं राहुल जी के साथ दस बारह दिन ही दिल्ली में रह सका।

राहुल जी घुमक्कड़ अधिक थे व अपने साथ किसी विद्वान् को सहायक रखने के भी शौकीन थे। जहां जाते मुझे भी साथ ले जाते। जिस व्यक्तित्व के घर जाते वहीं मैं भी छाया की तरह उनके साथ रहता था। उदार इतने कि सर्वत्र मेरा परिचय खुल कर देते थे। यह मैंने उनमें बड़ी विशेषता देखी थी।

राहुल जी अधिकतर दाल-भात, सब्जी व दही का ही प्रयोग करते थे। माँसाहारी भी कई उन्हें भले ही कहें किन्तु मैंने उन्हें माँस खाते कभी नहीं देखा। मैं भी उनके साथ ही भोजन करता था। उनके स्वभाव में मधुरता थी। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आता उसके साथ शास्त्रीय व साहित्य सम्बन्धी चर्चाओं के प्रसंग में हास्य रस का प्रस्फुटन भी करते थे जिसमें उनके माधुर्यपूर्ण सौजन्य के साक्षात् दर्शन होते थे। लेखन उन्हें पूर्वजन्म के संस्कारों से मिला था। किन्तु इसी के साथ आनुसन्धानिक दृष्टिकोण, अध्ययनशीलता ये दो गुण भी उनके सांस्कारिक ही थे। मैं उनकी सज्जनता, सरलता, निरभिमानता, विद्वत्ता तथा उनकी प्रखर बुद्धि पर अत्यन्त मुग्ध था। वे अपने साथ एक थैले जैसा बैग रखते थे, और घर से बाहर जाती बार कन्धे पर लटका लेते थे। जहाँ-जहाँ भी उन्हें लेखन सामग्री मिलती उसकी प्रतिलिपि के रूप में स्लिपें बना-बनाकर थैले में डालते जाते। समय पर उन्हीं को संजोकर गहन अनुसन्धानिक लेख द्वारा नई रचना को ही जन्म दे देते। एक दिन मुझे स्वयं ही कहने लगे—"आपको भी मैं अनुसन्धान सिखाऊँगा" कोई मानक ग्रन्थ आपके नाम से भी छपना चाहिए। उनकी इस उक्ति में मेरा कितना सुन्दर भविष्य छिपा था, उसका ध्यान मुझे उस समय नहीं आया। आया होता तो मैं कभी भी उनका सम्पर्क न छोड़ता। किन्तु घर की विकट परिस्थितियों ने मुझे उन्हें छोड़ने पर बाध्य किया। बाद में उनकी प्रेरणा पाकर मैंने भी अनुसन्धान की दिशा में कार्य किया। राहुल जी इस बात को स्वयं मानते थे कि वे साम्यवाद व बौद्धवाद को क्रियात्मक रूप में समर्पित हैं। उन्होंने इस क्रान्ति में भाग भी लिया। उनसे विदा लेकर मैं जम्मू चला आया किन्तु बाद में एक बार उनके काशी में पुनः दर्शन करने का सौभाग्य मिला। मैं उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय में पुन: प्रवेश पाकर संस्कृत में एम० ए० कर रहा था। यह एम० ए० करने के बाद पुनः हिन्दी में एम० ए० करने के लिए यहीं रहा। इस समय डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। उनकी छत्रछाया में या विभागाध्यक्षता में मैं उस समय हिन्दी कक्षा में था। उसी समय राहुल जी काशी आए और हिन्दू विश्वविद्यालय में खबर फैल गई। जहाँ वे ठहरे थे वहाँ हिन्दी के शोधार्थी छात्र जाने लगे। प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष आदि भी। इसके अतिरिक्त काशी के गण्यमान्य विद्वानों का उनके आवास पर जमघट लगने लगा। मैं भी जा रहा था तो मार्ग में डॉ० हजारी प्रसाद जी ने रिक्शा पर बैठकर उसी मार्ग की ओर गुजरते हुए मुझे देखा तो बुलाकर अपने पास बैठा लिया। हम दोनों गुरु शिष्य राहुल जी से मिले, द्विवेदी जी देर तक

उनसे बातें करते रहे। मैं भी तब तक पास बैठा रहा। राहुल जी मुझे पहचान गए। सात वर्षों के अन्तर में भी मुझ में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा था। वे कहने लगे यह लड़का मेरे साथ रहा था। मैं हंस पड़ा और कहने लगा कि अब भी हृदय से मैं आपके ही साथ हूँ।

इस समय राहुल जी और अधिक सादी वेशभूषा में थे। मुझे उनके पैरों में लगे साधारण झुकी एड़ी वाले खाखी कपड़े के फ्लीट बूट देखकर आश्चर्य होने लगा। पायजामा कुर्ता व कन्धे पर चद्दर ओढ़े हाथ में यष्टि लेकर वे अब काशी के स्थानों में चलते थे। दूसरे दिन अस्सी मोहल्ले के तुलसी पुस्तकालय में जब उनका अभिनन्दन था तो वहाँ भी वे इसी वेशभूषा में गए। जबकि इनके स्वागत कर्त्ता व श्रोताजन चमकते चेहरे लेकर भड़कीली वेशभूषा में वहाँ उपस्थित थे। मञ्च पर बैठकर राहुल जी ने तिब्बत यात्रा के अनेक संस्मरण सुनाए। एक संस्मरण बड़ा आनन्ददायक उन्होंने सुनाया। वे पाण्डुलिपियों की खोज में एक मन्दिर में पहुँचे। पुजारी भक्तों को भूर्जपत्र पर लिखी किसी रचना के पन्ने फाड़कर नैवेद्य के रूप में उनका एक-एक टुकड़ा भक्तों को दे रहा था। जिसका अर्थ था कि इस पवित्र टुकड़े को घर में रखने से भगवान् की कृपा होती है। तथा घर में सुख शान्ति फैल जाती है। इस कार्य में पुजारी को भक्तों से दक्षिणा मिलती थी। राहुल जी ने उन पन्नों में अपूर्व साहित्य देखा। उन्होंने उस हस्तलेख को जो अब अधूरा या अपूर्ण कर दिया गया था। अधिक द्रव्य देकर पुजारी से खरीद लिया। उन्होंने कहा—कि उस पूरे हस्तलेख के टुकड़ों से पुजारी को जो कुछ द्रव्य भक्तों से मिलना था उससे दुगुना, तिगुना दाम देकर उन्होंने उस हस्तलेख को खरीद लिया। यह बात तो सर्वविदित हैं कि राहुल जी तिब्बत जाकर वहाँ का विपुल साहित्य भारत में लाए थे। यह घटना भी उसी अभियान की एक कड़ी थी। ऐसे थे राहुल जी, जिस रूप में मैंने उनके साथ रहकर अनुभव किया। उन्होंने जीवन में साहित्य व अनुसन्धान की दिशा में जो अपूर्व लेखन कार्य व सृजन किए उसका विवरण अत्यन्त विशाल है तथा सर्वविदित है, जिसके कारण वे ज्ञान व विद्या के गगन में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र बनकर चमक रहे हैं।

(9)

आचार्य चतुरसेन शास्त्री महान् लेखक थे। हृदय के कोमल, सज्जन, प्रखर बुद्धिमान्, परिपक्व अनुभवी तथा दृढ़ परिश्रमी थे। उनके साथ लगभग छः माह रहकर मैंने उन्हें इस रूप में पाया। वे लेखन के प्रति समर्पित थे। राजवैद्य के वैभव पूर्ण जीवन को ठुकरा कर उन्होंने लेखनी के प्रति अपने को ऐसा समर्पित किया कि अनेक कठिनाईयाँ झेलते हुए भी सरस्वती के अमर कोष को सैकड़ों रत्न देकर अमर

हो गए। शास्त्री जी इतने महान् लेखक होकर भी गृहस्थी जीवन के कुशल कलाकार भी थे। उनके यहाँ सम्भ्रान्त अतिथियों का आना जाना लगा ही रहता था। जिसके कारण दिनभर रसोई चलती रहती थी। चाय-जलपान आदि तो उनका एक नित्य का शिष्टाचार ही बन गया था। प्रातः चार-पांच बजे उठकर लेखन की सामग्री जुटाने के लिए गम्भीर अध्ययन तथा सञ्चित लेखभार इकट्ठा कर लेते थे। लगभग सात बजे प्रातः चाय तैयार करवाकर खाद्य सामग्री के साथ उठाकर अपने आराम प्रकोष्ठ में ले जाते हुए मैंने उन्हें कई बार देखा। वहाँ दोनों पति-पत्नी प्रातःकालीन जलपान करते थे। मैं उनके लेखन कक्ष में बैठकर उनके आने की प्रतीक्षा करता था। इतने में उनके भाई श्री चन्द्रसेन जी मेरे लिए एक कप चाय भेज देते थे। घर में एक वृद्धा पाचिका का काम करती थी। श्री चन्द्रसेन के दो बच्चे थे एक पुत्र व एक पुत्री एक दस वर्षों का दूसरी बारह वर्षों की बालिका। पत्नी का देहान्त हो चुका था। शास्त्री जी की उस समय कोई सन्तान न थी। मेरे छोड़ कर जाने के वर्षों बाद उनके यहाँ एक कन्या रत्न पैदा हुआ था। शास्त्री जी जितनी लेखन की साधना करते थे उतना ही उन्हें सांसारिक क्रियाकलापों में भी जूझना पड़ता था। कुछ दीवानी मुकद्दमें थे, प्रकाशक लोग समय पर उन्हें रायल्टी नहीं देते थे। अतएव नई-नई रचनाओं की प्रकाशन व्यवस्था करनी पड़ती थी। छापने पर उनका वितरण, घर के खर्चे का, जोकि एक मध्यम परिवार के खर्चे के समान था, उत्तरदायित्व आदि-आदि फिर भी वे इतने उत्साही, आशावादी व सबल हृदय के लेखक थे, जिससे ये समस्याएँ उनके मार्ग की बाधाएं कभी नहीं बनीं। उनका जीवन निरामिष भोजन पर ही आश्रित था। दाल, रोटी, सब्जी, पूरी, कचौरी, मिठाई, बिस्कुट, फल इत्यादि सब समय-समय पर वे उचित मात्रा में ही लेते थे। किन्तु लिखते-लिखते थक जाने पर सादा चाय के दो कप अपने प्रकोष्ठ में मंगवा लेते थे। एक अपने लिए व एक मेरे लिए। जिस दिन न्यायालय में जाना होता था तो प्रातः पाँच बजे उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर सात बजे चाय परौंठे खाकर सीधे निकल जाते थे तथा मुझे लेखन कक्ष का प्रतिलिपि कार्य दे जाते थे। मध्याह्न या सायं आकर मेरा कार्य देख लेते थे। मैं अब इस बात का गौरव मान रहा हूँ कि कभी भी मुझसे उनके कार्य में कोई त्रुटि नहीं हुई। उन्हें ऐसा लगता था कि मेरे द्वारा उनका कार्य उनकी इच्छानुसार हो रहा है। वे मुझ पर बहुत प्रसन्न रहते थे। मुझ से उनका अटूट स्नेह था। मैं भी ऐसी जाज्वल्यमान प्रतिभा का सान्निध्य पाकर स्वयं को भी गौरवशाली समझता था। प्रबल लेखन कला के साथ भगवान् ने उन्हें कोमल हृदय तथा गृहस्थ जीवन का उत्तरदायित्व भी दिया था। घर के प्रत्येक सदस्य के सुख-दुःख का उन्हें पूरा ध्यान रहता था। स्त्रियों के प्रति उनकी बड़ी कोमल भावना थी। इसीलिए अपनी धर्मपत्नी कमला जी का वे बड़ा सम्मान करते थे। उनका सिद्धान्त था "यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा

होती है वहाँ सभी देवगण क्रीड़ा करते हैं । एक बार उन्होंने मुझे यह भी कहा था कि—भोजन बनाना नारियों के सौन्दर्य का नाशक है ।

(10)

महापुरुषों के साथ मेरा बड़ा सान्निध्य रहा है । ये वे महापुरुष थे जो आज ऐतिहासिक बन चुके हैं । आज की युवा पीढ़ी उन्हें पुस्तकों में पढ़ती है । मैंने प्रत्यक्ष रूप में उनके सान्निध्य का गौरव प्राप्त किया था । जैसे महात्मा गान्धी, पं० मदनमोहन मालवीय जी, पं० जवाहरलाल नेहरू, डॉ० सर राधाकृष्णन् जी, डॉ० नरेन्द्र देव जी, महादेवी वर्मा जी, निराला जी, पन्त जी, राहुल जी, आ० चतुरसेन जी, डॉ० रघुवीर जी, श्री कमलापति त्रिपाठी जी इत्यादि महापुरुषों का मुझे काशी तथा दिल्ली रहते हुए सान्निध्य मिला था । आज वे महापुरुष इस संसार में नहीं हैं, परन्तु उनके सान्निध्य से मैं आज भी गौरवान्वित हूँ । इस विषय पर एक वृहद् ग्रन्थ लिखा जा सकता है । यहाँ तो मैंने कुछ ही महापुरुषों के स.न्निध्य का संक्षिप्त या विहङ्गम दृश्य प्रस्तुत किया है ।

काशी के प्रवास (हिन्दू विश्वविद्यालय की छात्रावस्था में) मैंने कई वर्षों तक महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी तथा डॉ० सर राधाकृष्णन् के सैंकड़ों व्याख्यान सुने किन्तु डा० राधाकृष्णन् जी हमारे कुलपति थे अतएव उनके पास आना जाना या सम्पर्क रखना एक छात्र के लिए अधिक संभव नहीं हो सकता था । उनके पास समय ही कहाँ होता था उनके कन्धों पर तो समग्र विश्वविद्यालय का बोझ होता था । तथापि हम छात्र लोग उनके प्रति सप्ताह या प्रतिपक्ष कोई न कोई भाषण अवश्य सुन लेते थे । एवञ्च किसी समस्या के अन्तर्गत डेपूटेशन के रूप में मिल भी लेते थे । अथवा विशेष उत्सवों में जलपान का सौभाग्य भी हमें उनके साथ मिलता था ।

किन्तु मेरे छात्रकाल में पूज्य मालवीय जी अपनी वृद्धता के कारण आराम ले रहे थे । मेरे विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होने के समय वे (1940 ई०) में अस्सी वर्षों के थे किन्तु अवस्था के अनुपात से उन्हें इतना वृद्ध न होना चाहिए था । जितने कि वे थे । दुबले-पतले शरीर पर वार्धक्य का पूरा प्रभाव छा गया था । कमर झुक गई थी व कद भी छोटा पड़ गया था । हाथों व टाँगों में यष्टि के बल पर चलते हुए कम्पन भी होता था । सन् 1940 ई० में 9 जुलाई के दिन मैंने पहली बार उनके दर्शन किए । मैं एक सप्ताह पूर्व ही विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुआ था । रविवार का दिन था आज आर्टस कॉलेज हाल में महामना मालवीय जी का गीता प्रवचन था । हजारों छात्र उस विशाल हाल में एकत्रित होकर मालवीय जी के आगमन की प्रतीक्षा में थे ।

मैं भी वहाँ पर एक स्थान में छात्रों की पंक्ति में बैठा था। वह पंक्ति मञ्च के अधिक समीप थी। सोच रहा था कि मालवीय जी के खुले दर्शन निकटता से होंगे तथा रोचक भाषण भी सुनने को मिलेगा। अभी सोच ही रहा था कि बाहर से कार के रुकने की आवाज आई व खट्ट से कार की खिड़की खुली तो हम सबने देखा कि मालवीय जी महाराज लकुटी के बल पर धीरे-धीरे से आ रहे हैं। उन्हें दाएँ-बाएँ सेवकों ने सहारा दिया हुआ था। इस प्रकार चलते-चलते यह दिव्य विभूति तालियों की गड़गड़ाहट के साथ मञ्च पर आ विराजी। वार्धक्य में भी इनके चेहरे पर दैवी प्रकाश की किरणें नाच रही थीं। चेहरा अब भी भरा हुआ व चमकीला था। वेशभूषा भी सफेद थी व सिर पर सफेद गोल टोपी पहनी थी, पायजामा व कुर्त्ता पहना था तथा कन्धे पर शुभ्र रेशमी शाल लटक रहा था। देखकर मेरे किशोर हृदय में भाव उठे कि यह वही महामानव है कि जिसका नाम भारत के घर-घर में गूंज रहा है, जिसके कई बार छपे चित्र समाचार पत्रों में देख चुका हूं। और जिसके चित्र बाजारों की दुकानों पर तथा घरों में भी टंगे बीसों बार देख चुका हूँ।

वह युग ही इन नेताओं की गतिविधियों का था। इसीलिए सर्वत्र इनके चित्र देखने को मिलते थे। पूज्य मालवीय जी तो भारत के इने-गिने महान् नेताओं में से एक थे ही। आज अन्तर्देशीय ख्याति प्राप्त महापुरुष के इस मञ्च पर मुझे कैसे स्पष्ट रूप में दर्शन हो रहे हैं, अभी इन विचारों में ही डूबा था तो पास ही बैठे गायनाचार्य श्री शिवप्रसाद त्रिपाठी जी ने उच्च स्वर से भक्तिरस पूर्ण गायन शुरू कर दिया। कुछ समय इस मधुर गायन का रस लूटते रहे। बीच-बीच में मालवीय जी गायनाचार्य की ओर भी देखने लगते थे। गायन बड़ा सुन्दर व भक्तिरसपूर्ण था। तदनन्तर मालवीय जी माईक पर व्याख्यान देने लगे। हम लोग तन्मय होकर उनके मधुर व रोचक भाषण का लाभ उठाने लगे। भाषण समाप्त हुआ तो मालवीय जी दोनों सेवकों के कन्धों पर हाथ टिका कर धीरे-धीरे कार तक पहुँचे। जब कार के अन्दर बैठने ही वाले थे तो छात्रों की भीड़ एक-एक करके उनके चरणों का स्पर्श करने लगी। इसी में काफी समय व्यतीत हो गया। क्योंकि छात्र भी हजारों की संख्या में थे। वहाँ तो चरणस्पर्श के लिए आपाधापी व धक्कम-धक्का भी काफी हुआ। वृद्ध मालवीय जी फिर भी इतनी देर तक लकुटी के बल पर खड़े रहे तथा फिर कार में बैठकर भी खिड़की से छात्रों को दर्शन देते रहे। तदनन्तर कार हवा में तैरती हुई भाग गई। ऐसा व्यक्तित्व था महामना मालवीय जी का जैसा लोहे व चुम्बक का होता है। इसी प्रकार जनता व मालवीय जी का भी आकर्षण सम्बन्ध था। तब मैंने सोच लिया था कि मुझे अभी कई वर्ष विश्वविद्यालय में रहना है और प्रतिदिन या सप्ताह में तीन चार बार तो इस महापुरुष के दर्शनों का लाभ भी मिलता रहेगा। विचित्र आकर्षण था इस महापुरुष में।

विश्वविद्यालय के जीवन में मैंने देखा कि जब कोई अधिवेशन किसी भी विभाग के मञ्च पर होता तो हज़ारों की संख्या में छात्र आकर शोरगुल मचाते, कलाबाजियां करते किसी वक्ता को मञ्च पर जमने नहीं देते। काफी हल्ला, गुल्ला, हू, हू, हा, हा, करते परन्तु जब मालवीय जी दुबला-पतला शरीर लेकर लकुटी के बल पर धीमे डग भरते अचानक मञ्च पर अवतीर्ण हो जाते तो छात्र सब कुछ नटखट व्यवहार छोड़कर तालियों की गड़गड़ाहट के साथ प्रसन्न मुद्रा में शान्त होकर चुपचाप बैठ जाते। इस महापुरुष के दर्शन करते ही वे चमकते चेहरों वाले हीरोनुमा अमीरों के लाडले नटखट भी श्रद्धा से कितते नतमस्तक हो जाते तथा आत्मविभोर हो जाते थे, यह चुम्बकीय व्यक्तित्व वाले महामना मालवीय जी का ही जादू था। वे अमीर शहजादे युवक चटकीले, भड़कीले भला अन्यत्र कहीं ऐसी स्थिति में आते या किसी भी अन्य प्रकार से प्रभावित होते, यह कठिन था।

एक बार हम निश्चित समयानुसार सायं छः बजे व्यायाम शाला (शिवाजी हाल) में व्यायाम कर रहे थे। यहां विज्ञान, कला, लॉ, ओरियण्टल कामर्स आदि सब विभागों के छात्र सायं व्यायाम करने आते थे। व्यायाम के साधन भारतीय व वैदेशिक दोनों प्रकार के रखे गए थे। प्रतिदिन की तरह यहां व्यायामार्थी छात्रों की भीड़ थी। सब अपनी-अपनी रुचि पर व्यायाम कर रहे थे। मैंने देखा कि व्यायाम भवन का द्वार पार कर मालवीय जी भीड़ के साथ अन्दर आ रहे हैं। उस समय भी उनका वही स्वाभाविक रूप यष्टि के बल पर धीरे-धीरे चल कर वे हमें व्यायाम करते हुए देखने को इच्छा लेकर ही यहां आए थे। मालवीय जी हमें सदा यही उपदेश देते थे।

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्म त्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति व आत्मत्याग द्वारा सदा सम्मानित बनो। यह संस्कृत श्लोक पूज्य मालवीय जी की अपनी ही रचना है जिसके अर्थ को उन्होंने अपने जीवन में पूरी तरह ढाला था और तभी इतने महान् बने थे। उनका मुख्य सिद्धान्त था, आचार ग्रहण, देशभक्ति, सुन्दर स्वास्थ्य, धर्म में दृढ़ता आदि आदि। जब सैंकड़ों छात्रों ने उन्हें आते देखा तो व्यायाम की सुधबुध भुलाकर वे उनके दर्शनों तथा चरणस्पर्श के लिए दौड़ पड़े। मालवीय जी इस भीड़ में ऐसे घिर गए कि उनके मुख से निकलते ये शब्द मैंने सुने, "अरे मुझे चारों ओर से आप लोगों ने बुरी तरह से घेर लिया है भगा दोगे क्या भाई?" फिर भी मालवीय जी व्यायामशाला के चारों ओर घूमे और पूरा निरीक्षण किया। यह उनका अचानक व्यायामशाला में आ जाना देखा था।

विश्वविद्यालय में रहते हम लोग मालवीय जी के प्रतिदिन दर्शन करते थे। वह

इस प्रकार कि उनका बंगला विश्वविद्यालय की प्रधान सड़क पर ही था। वे अपने आवास के एक विशाल प्रकोष्ठ जिसकी दो खिड़कियां सड़क की ओर खुलती थीं, उसमें सुन्दर शुभ्र शय्या पर लेटे रहते थे तथा बैठे भी रहते थे। हम लोग सड़क से होकर गुजरते थे तथा सामने की खिड़की से, दूर से उनके दर्शन भी करते थे। यह सौभाग्य हमारे लिए प्रतिदिन का था। विशेष पर्वों तथा उत्सवों पर हमें संस्कृत के छात्र तथा हमारे गुरुजन मालवीय जी के आवास पर जाकर वेदमन्त्रों द्वारा उनका अभिनन्दन करते थे। आचार्य लोग प्रशस्तियां बनाकर बोलते थे और उन्हें तिलक करते थे। हम सब छात्र उनके चरणों पर नतमस्तक होते थे। जब बसन्त पञ्चमी का दिन आता तो विश्व-विद्यालय के सब विभागों के छात्र एक अनुशासित पंक्ति में आकर 'मधुर मनोहर अतीव सुन्दर यह सर्वविद्या की राजधानी" गीते गाते हुए चलते थे और विश्वविद्यालय के शिलान्यास स्थान महोत्सव पर जा पहुंचते। उस दिन विश्वविद्यालय के स्थापना के दिवस का महोत्सव वहीं पर मनाया जाता था। पंडाल लगा दिया जाता व मञ्च पर विराजमान होकर मालवीय जी महाराज अपना व्याख्यान देते। हजारों की संख्या में हम सब छात्र तन्मय होकर उनका भाषण सुनते और उनके खुले दर्शन करते।

जब कभी विश्वविद्यालय का कोई विशेष दिन होता तो मालवीय जी महाराज वहां पहुंचते भाषण देते तो छात्रों में नया जोश, उत्साह तथा जीवन की अद्‍भुत प्रेरणा हिलोरें लेने लगती।

एक बार प्रातःकाल ही मैं विश्वविद्यालय की प्रधान सड़क पर जा रहा था। तत्काल सामने से मालवीय जी भी अपने बंगले के द्वार पर पहुंचे हुए थे। इस समय वे सामने की सड़क के पार वाले पार्क में कुछ समय चक्कर काटते थे। किन्तु अकेले नहीं, उनके साथ उनका नौकर होता था। उसने कुर्सी उठाई हुई होती थी ताकि वार्धक्य से मालवीय जी कुछ डग भरने के बाद विश्राम के लिए बैठ सकें। मैं जब द्वार पर पहुंचा तो मालवीय महाराज अपने कुर्सी उठाए हुए नौकर के साथ वहां पहुंचकर कुर्सी पर कुछ समय विश्रामार्थ बैठ गए। फिर बैठकर जब आराम करने लगे तो मैंने समीप जाकर उनका चरण-स्पर्श किया। उस समय चलने की थकावट से उनकी सांस फूल रही थी, जिससे उन्हें बात करने में कुछ कठिनाई हो रही थी। फिर भी मैंने किशोर सुलभ चञ्चल आदत से कह डाला—'मालवीय जी मैंने आपकी जीवनी बाजार से खरीदी है, कमरे में पड़ी है, उस पर आपके शिक्षा वाक्य के साथ हस्ताक्षर लेना चाहता हूं। लाओ, उन्होंने कहा आज्ञा होने पर दौड़कर होस्टल में गया और वृहत् ग्रंथ के रूप में छपी उनकी जीवनी लाया। इस कार्य में दस मिनट तो लगे ही होंगे किन्तु करूणामय मालवीय जी तब तक मेरी प्रतीक्षा वहीं बैठे करते रहे। यद्यपि उनके भ्रमण का समय बीत रहा था। मैंने जीवनी की जिल्द उठाकर खाली पृष्ठ उनके आगे कर दिया और जेब से पैन निकाल कर दिया। वे धीरे-धीरे इतना ही लिख पाए "मदनमोहन" उस

समय उनमें पर्याप्त दुर्बलता दिखाई पड़ रही थी। श्वांस भी फूल रहा था। हस्ताक्षर कराकर मैंने उनका चरण स्पर्श किया और चल दिया। सोचा कि इन वृद्ध महापुरुष की देश के लिए कितनी प्रसिद्ध सेवाएं रही हैं। महात्मा गान्धी जी ने भी अपने भाषण में कहा था कि—"हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना मालवीय जी के बड़े-बड़े कार्यों में से एक है।" गान्धी जी के ये शब्द जैसे मेरे कानों में अब भी गूंज रहे थे, वही मधुर आवाज, किन्तु तारस्वर की जिसमें जनता को मुग्ध करने की शक्ति थी। फिर विचार तरंग उठी कि मालवीय जी जैसे देश के महापुरुष कहां मिलते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हम इन्हें यहां पा रहे हैं। जिसे सारा देश नतमस्तक होकर स्मरण कर रहा है। वह महापुरुष अब वार्धक्य की इस पतझड़ में भी फौलाद की दृढ़ता तथा शक्ति बटोर कर देश के लिए कार्य कर रहा है। देश व समाज के लिए कितनी तड़प है इसमें जैसे कि इसकी रगरग में देश व समाज के प्रति प्रेम और ममता की तीव्र ज्वाला जल रही हो। ऐसे मनीषियों को भगवान् अपने देश के कार्य करने के लिए ही भेजते हैं। भारत की परतन्त्रता का कितना भारी सन्ताप छाया था इनके हृदय पर। सुना जाता है कि मालवीय जी भारत के प्रसिद्ध नेता तथा धुरन्धर वक्ता रहे हैं। इनका एक भी भाषण विदेशी सरकार की जड़ें हिला देने वाला होता था। चार-चार घण्टे एसेम्बली में बोलते थे। वायसराय दहल जाता था। धर्म के कितने पक्के अनुयायी हैं। कट्टर सनातनी विचारों के। प्रतिदिन श्रीमद्भागवत की कथा सुनते हैं। पण्डित जी ने मुझे एक दिन कहा—"जब मैं कथा सुनाता हूं तो मालवीय जी आत्मविभरो हो उठते हैं। जनता की बात अलग है हम नए माडल में ढले विश्व-विद्यालय के शौकीन युवक भी इनके व्यक्तित्व पर इतने मुग्ध हैं कि जहां ये जाते हैं हम सब इन्हें घेरे लेते हैं। चरण स्पर्श करते हैं और इन्हें छोड़ने का हमारा मन ही नहीं करता। हम पागलों की तरह इनके पीछे भागते हैं। इनके दर्शनों का हम पर जादू जैसा प्रभाव पड़ जाता है। क्या चुम्बकीय आकर्षण है इस महापुरुष में। यह सोचते-सोचते मन में यह विचार भी उभरा कि यह महान् आकर्षण इनमें इनके देश के लिए किए गए महान् त्याग व तपस्या का ही परिणाम है। शुद्ध आचरण, उज्ज्वल, चरित्र सिद्धान्तों की अटलता, आदर्शमय जीवन, देशभक्ति ये सब गुण जो इनमें संचार कर गए हैं, उनका ही तो यह आकर्षण है। इस प्रकार की महानता ही तो जन आकर्षण का पर्याय है। बचपन में जम्मू के घरों व दुकानों पर नेताओं के चित्र टंगे हुए देखता था, घरों में, बाजारों में भी उनमें इनका चित्र भी टंगा रहता था। कोट, दुपट्टा, पगड़ी और माथे पर तिलक धारण किए इस भव्यमूर्ति को चित्र में अवश्य देखता था। घरों में भी बाजारों में भी परन्तु अबोध अवस्था में राजनीति से अपरिचित होने के कारण इनके महत्त्व को नहीं समझता था। ज्यों-ज्यों आयु के पथ पर अग्रसर होता गया तो मालवीय जी की राष्ट्रीय छवि भी मेरे हृदय पर छाप छोड़ने लगी। नाम बहुत सुना था।

मेरे होश संभालने के युग में महात्मा गान्धी, सुभाष बाबू, पं० जवाहर लाल नेहरू, राजेन्द्र बाबू, श्री राजगोपालाचार्य, श्री वल्लभभाई पटेल, तथा पं० मदनमोहन मालवीय इन उज्ज्वल व्यक्तित्वों का देश में बोलबाला था। अर्थात् भारतीय राजनैतिक गगन पर ये उपर्युक्त नेता ही सूर्य की तरह चमक रहे थे। दूसरे शब्दों में इनका ही युग चल रहा था। विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के पूर्व मैं मालवीय जी की गतिविधियों से कुछ परिचित हो चुका था। भारतीय राजनीति व और उसमें इन नेताओं के योगदान से भी परिचित था। एक प्रकार से मैं भारतीय राजनीति की पुस्तकों तथा समाचार पत्रों के दैनिक अध्ययन द्वारा कुछ-कुछ आत्मसात कर चुका था। विश्व-विद्यालय में पहुंचकर सर्वप्रथम मेरी इच्छा व उत्कण्ठा थी महामना मालवीय जी के दर्शन करने की। वे तो उस दिन के आर्टस कालेज के हाल में उस गीता प्रवचन के प्रसंग में शीघ्र ही पूर्ण हो गई थी। वैसे तो प्रतिदिन विश्वविद्यालय के मार्ग से कई बार गुजरते हुए मैंने इनके बंगले की खिड़की से इन्हें चारपाई पर बैठे या लेटे देख लेता था। तथा इनसे भेंट करने का सौभाग्य भी मुझे यदा कदा मिल ही जाता था। इस सन्दर्भ में ऊपर मैंने दो-तीन विवरण दिए हैं। किन्तु 8 वर्षों के इस संस्था के छात्रावस्था में रहते हुए कितने अधिक मैंने सौभाग्य प्राप्त किए इनसे मिलकर उन सबका विवरण यहां स्थानाभाव से तो नहीं दिया जा सकता, किन्तु इस सम्बन्ध की एक और घटना यहाँ लिखने का लोभ भी मैं सम्वरण नहीं कर पा रहा हूं। घटना इस प्रकार से है—

मेरा आचार्य उपाधि (डिग्री) का अन्तिम वर्ष था। एक दिन मैंने छात्रों के समक्ष प्रस्ताव रखा कि इस वर्ष हमें अन्तिम परीक्षा पास करके चले जाना है तो विश्वविद्यालय की छात्रावस्था का संस्मरण स्थिर रखने के लिए एक सामूहिक फोटो का आयोजन होना चाहिए। जिसमें अपने-अपने विषयों के विभागाध्यक्षों के साथ आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्र बैठें। इसके अतिरिक्त उपकुलपति डॉ० सर राधाकृष्णन उन दिनों विदेश गए हुए थे। उनके स्थान पर प्रो० उपकुलपति जी को बैठने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। पूज्य मालवीय जी यदि चित्र में बैठने के लिए मान जाएं तो समझिए कि हमारे कार्यक्रम की तभी सफलता रहेगी। हमें महापुरुष के साथ चित्र में बैठने का जो सौभाग्य मिलेगा व गौरव होगा वह ऐतिहासिक उपलब्धि होगी। सबने एक राय से यह भार मुझ पर डाल दिया कि मैं ही जाकर मालवीय जी से मिलूं व प्रार्थना करके उनके चित्र में बैठने की स्वीकृति लूं। कार्य बढ़ा कठिन था। सुन रखा था कि मालवीय जी चित्रों में बहुत कम बैठते हैं व्यस्तता के कारण। मुझे यह तो गौरव था ही बीच-बीच में मालवीय जी महाराज जी के चरणस्पर्श करने से मैं उनके पास जाने से उनका सन्निकट छात्र बन गया था। अब मेरी प्रार्थना वे मान भी सकते हैं। इस तथ्य को सभी छात्र जानते थे।

दूसरे दिन प्रातः 10 बजे मैं उनके पास पहुंच गया, उनके पास बहुत लोग बैठे थे। अतः वे अधिक कार्य में व्यस्त भी थे। उनके व्यक्तिगत सचिव श्री शिवदानी सिंह जी से मैंने मालवीय महाराज से मिलने की आज्ञा मांगी। उन्होंने कहा कि जब ये लोग चले जाएंगे तो तुम्हें सर्वप्रथम मिलने का अवसर दूंगा। धीरे-धीरे लोग जाने लगे। कुछ समय बाद श्री शिवदानी सिंह जी ने मेरी स्लिप मालवीय जी के पास भेजी। उन्होंने मुझे बुलाकर प्रेम की डांट देते हुए कहा—"तुम्हें स्लिप भेजने की क्या जरूरत थी तुम तो नित्य मेरे पास आने वाले छात्र हो।" महाराज मैंने सोचा कि कोई अन्य न आ जाए। इसलिए मैंने स्लिप भिजवाकर समय पर अपना अधिकार जमा लिया। मेरी यह बात सुनकर मालवीय जी हंस दिए तथा बैठने को कहा। कुछ देर बाद उन्होंने मुझे पूछा—"कैसे आए हो? मैंने कहा—मालवीय जी एक प्रार्थना लेकर आया हूं। उन्होंने कहा—कहो। आपने कल हमारे आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्रों के साथ चित्र में बैठना है। मैंने कहा। सुनकर मालवीय जी कुछ सोच में पड़ गए और फिर बोले—"अरे! मेरी वहां बैठने की क्या जरूरत है? बैठा लो अन्य गुरुजनों को।" नहीं मालवीय जी यदि आप न बैठेंगे तो हम चित्र ही नहीं लेंगे। आपकी चिर स्मृति के साथ हम भारत के महान् नेता के साथ चित्र में बैठ कर गौरवान्वित होना चाहते हैं। यह लाभ हमें और कहीं से भी नहीं मिलने वाला है। हमारा विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना सफल हो जाएगा। मेरी इस प्रकार की नम्रता भरी प्रार्थना सुनकर मालवीय जी पहले तो मुस्कुराए फिर बोले—"अच्छा भाई चलो जैसी तुम्हारी इच्छा।" मैं प्रफुल्लित हो उठा। मैंने फिर कहा "मालवीय जी कल सायं पांच बजे चित्र भी—आपके बंगले पर ही रखेंगे। अच्छा रखो कोई बात नहीं कह कर मालवीय जी अपने कार्य में व्यस्त हो गए और मैं उन का चरण स्पर्श करके बाहर आ गया। जाती बोर मैंने वहां के किसी परिजन को यों कहते हुए सुना—"लड़का बड़ा चालाक व वाचाल लगता है। महाराज जी को चित्र में बैठने के लिए मना ही लिया इसने" दूसरे एक नौकर ने कहा—"मैं जानता हूं कश्मीरी छोकरा है।" मालवीय जी के बंगले से मैं सीधा रुइया छात्रावास के अपने कमरे में पहुंचा। मेरे आने की खबर पाकर आचार्य अन्तिम वर्ष के सभी छात्र आकर पूछने लगे "अरे, क्या हुआ?" उनके चेहरों पर भारी उत्सुकता छाई थी। अरे क्या होता है अच्छा ही हुआ। क्या मालवीय जी चित्र में बैठने को मान गए हैं? एक ने पूछा। और क्या? सुनकर छात्र खुशी से प्रफुल्लित हो उठे कईयों ने मुझे गले से भी लगाया मेरी विजय पर।

दूसरे दिन हमने पूज्य मालवीय महाराज के बंगले में जाकर वहीं से दरी, कालीन और कुर्सियां लेकर सफलतापूर्वक मालवीय जी के साथ चित्र लिया। साथ में भिन्न-भिन्न विषयों के विभागाध्यक्ष तथा प्रो० उपकुलपति (Prof. Vice Chancellor)

भी बैठे थे। आज भी वे छात्र जो अब ऊंचे-ऊंचे पदों पर बैठे हैं या कुछ अवकाश पा गए हैं। मेरे इस प्रयास की प्रशंसा करते हैं। इस प्रयास ने उन्हें एक ऐतिहासिक उपलब्धि दे दी थी। जिस का आज और भी अधिक गौरव है। कुछ दिन बाद मैं पुनः मालवीय महाराज के पास गया अपनी आटोग्राफ बुक लेकर मैंने जाते ही चरण-स्पर्श करके उनके आगे आटोग्राफ बुक रख दी। उन को समझने में देर नहीं लगी कि मैं उसमें शिक्षा वाक्य के साथ उनके हस्ताक्षर लेना चाहता हूं। क्योंकि जीवन में उन्हें सैंकड़ों बार हस्ताक्षर लेने वाली भीड़ का सामना करना पड़ा होगा। अरे भाई इससे क्या होगा? लो कर देता हूं हस्ताक्षर उन्होंने कहा। महाराज जी साथ ही शिक्षा वाक्य भी बढ़िया लिख दीजिए मेरी प्रार्थना सुनकर मालवीय जी ने हंसते हुए यों लिखा—"धर्मे दृढ़ो भव। मदन मोहन मालवीय।" देखकर मैं अत्यन्त ही हर्षित हुआ। इधर हस्ताक्षर करवाने के लिए कई अधिकारी भी फाईलें इत्यादि लेकर बैठे थे। मैंने चरण स्पर्श किया और जाने की आज्ञा मांगी। महाराज ने कहा—"जाओ बेटा", मैं अपने छात्रावास में पहुंचा। वह आटोग्राफ बुक मैंने अब भी सम्भाल कर रखी है। कभी-कभी मालवीय जी महाराज के हस्ताक्षरों के दर्शन कर लेता हूं।

मेरे विश्वविद्यालय में रहते पं० जवाहरलाल नेहरू वहां पर भाषण देने दो-तीन बार आए थे। पहली बार जब उन्हें आना था तो बनारस सीटी के टाऊन हाल में उनका भाषण था। हम लोग सायं टाऊन हाल में पहुंच गए। किन्तु उनकी ट्रेन दो-तीन घण्टे विलम्ब से थी। इसी कारण रात्रि के लगभग आठ बजे बनारस पहुंचे। तब तक जनता में से ही उठकर कुछ कवि स्टेज पर राष्ट्रीय कविता पाठ करते, जिसमें अंग्रेज सरकार की तीखी आलोचना व देश भक्ति का जोश भरा हुआ था। जब नेहरू जी आए तो सब ने तालियां बजाईं। नेहरू जी गुस्से में आकर बोले—अरे! इस प्रकार तालियां बजाकर किसी का अपमान नहीं करना चाहिये। इसके बाद उन्होंने यह भी कहा कि "सरकार की कुर्सी डोल रही है तभी तो प्रबन्ध की शिथिलता के कारण आज ट्रेन तीन घण्टे लेट रही"—सुनकर जनता फिर तालियां बजाये बिना नहीं रह सकी। इस पर नेहरू जी ने कुछ नहीं कहा और अपना भाषण शुरू कर दिया। उनका उत्तेजक व जोशीला एक घण्टे का भाषण सुन कर हम लोग रात के 11 बजे विश्वविद्यालय में पहुंचे। दूसरे दिन दोपहर को नेहरू जी ने विश्वविद्यालय में भी भाषण देना था। पण्डाल जम गया। सब छात्र हजारों की संख्या में उत्सुक होकर उपस्थित हो गए थे। ठीक समय पर पं० नेहरू जी मंच पर पहुंच गए तालियों की काफी गड़गड़ाहट हुई। भाषण शुरू होने के पूर्व श्री शिवमंगलसिंह (उस समय एम० ए० के छात्र) मंच पर आकर राष्ट्रीय कविता पाठ करने के पूर्व कहने लगे—जो कविता मैं बोलने जा रहा हूं वह छात्रों की एक-दो गोष्ठियों में पढ़ी जा चुकी हैं क्षमा करें, यों कह कर उन्होंने कविता प्रारम्भ कर दी। उसकी प्रथम पंक्ति मुझे कुछ याद है—"बज उठी

रणभेरी......" बीच में उठकर किसी एक छात्र ने कहा—"यह कविता पढ़ी गई है", सुनकर "सुमन" जी ने लाचार मुद्रा में कहा "हां पढ़ी तो गई है।" तदनन्तर नेहरू जी का भाषण शुरू हुआ। भाषण उत्तेजक था। उस समय द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था, हवाई जहाजों की गड़गड़ाहट सदा आकाश मंडल पर दहाड़ती रहती थी। नेहरू जी ने कहा—आज भयंकर शस्त्रों द्वारा जिस प्रकार विश्व में संहार की लीला हो रही है, वहां का एक दो संहार शस्त्र ही इस पूरी संस्था को धराशायी कर सकता है। सुनकर कुछ छात्र दहल गए व कुछ हंसने लगे। व्याख्यान समाप्ति के बाद आटोग्राफ लेने वालों की भीड़ लग गई। मैं अपने कमरे में चला आया। उन दिनों नेहरू जी शरीर के पतले लम्बे व कश्मीरियों जैसे ही बड़े गोरे थे। प्रौढ़ युवक जैसे लगते थे।

इसके अनन्तर फिर एक बार व्याख्यान देने आए। कामर्स विभाग के मैदान में उनका भाषण हुआ। भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि आप लोग विज्ञान में कुछ नये आविष्कार करना सीखिये। वाइसलिन मात्र बना लेने से वैज्ञानिक नहीं बना जा सकता। सुनकर छात्र हंस दिए। राष्ट्रीयता पर आते ही उन्होंने अंग्रेजों को आड़े हाथों लिया और श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर की इस उक्ति का उद्धरण दिया कि—"पहले तो अंग्रेज़ भारत को जल्दी नहीं छोड़ेंगे, जब छोड़ेंगे तो इस की तबाही करके ही छोड़ेंगे।" इस उक्ति को सुनकर छात्र गम्भीर हो गए। उन दिनों भारत स्वतन्त्रता का अभियान सारे भारत में अपने यौवन पर चल रहा था। विशेषकर हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र इसके सूत्रधारों में आते थे। हर दिन विश्वविद्यालय में स्वतन्त्रता प्राप्ति के जलसे जलूस नारे और पढ़ाई का त्यागकर आगे बढ़ो के जोशीले उद्घोष छात्रों के द्वारा होते ही रहते थे। उन दिनों के छात्र महान् राष्ट्रीय व क्रांतिकारी विचारों के होते थे। जो देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई के लिए हर समय कटिबद्ध रहते थे। आज के भोग, धन लिप्सा, आत्मनिष्ठता, राष्ट्रीयता की हीनता आदि बातें जो पाई जाती हैं उन दिनों लोगों में नहीं थीं। छात्र भी ऐसे ही राष्ट्रीय थे। नेहरू जी के भाषण के पश्चात् उन्हें चाय भवन में ले जाकर हम लोगों ने उनके साथ चाय पी।

विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के समय जैसा कि मैंने पूर्व में वर्णन कर दिया है। वे भी वहाँ थे। प्रथम दिन के अधिवेशन की समाप्ति पर जब म० गांधी मालवीय जी व अन्य सभी नेता बुद्धिजीवी, व राजे-महाराजे उठकर चले गये तो हम सब छात्रों ने मिलकर नेहरू जी को खुले मैदान में घेर लिया। सब कहने लगे—"नेहरू जी हमारे बीच कुछ बोल जाइए।" नेहरू जी बुरे घिर गए। चारों ओर छात्र थे। अब तो बोलना ही पड़ा उन्हें। छात्र बैठ गए बीच में नेहरू जी बोलने लगे। किन्तु वे अवसर भी ढूंढ रहे थे वहां से निकल भागने का। अन्ततः उन्होंने ऐसा ही किया।

छात्रों के घेरे से बाहर निकल कर वे जब तेज डग भरते हुए आगे बढ़े तो छात्रों की भीड़ शोरगुल करती हुई उनके पीछे भागी। यह देखकर नेहरू जी भी दौड़ने लगे। मैं भी उस मण्डली में दौड़ रहा था। आगे नेहरू जी भाग रहे थे तो पीछे-पीछे हम सब। नेहरू जी ने गति तेज कर दी मैं भी उनके निकट पहुंच गया और भागता जा रहा था। कुछ देर बाद सब छात्र पीछे छूट गये व अपने-अपने छात्रावासों को चले गए। मैं आज आटोग्राफ बुक लाया था नेहरू जी के हस्ताक्षर लेने के लिये किन्तु अब मेरा स्वप्न मुझे पूरा होता हुआ नहीं लग रहा था। फिर भी मैंने साहस न छोड़ा और अकेला ही उनके साथ जल्दी-जल्दी चल पड़ा।

आगे पुस्तकालय के सामने उन की कार खड़ी थी। बीच में इन्दिरा जी व श्रीमती विजय लक्ष्मी जी बैठी थीं। नेहरू जी भी कार में बैठ गए। मैंने खड़े-खड़े खिड़की से आटोग्राफ बुक उनके पास धकेल कर कहा—"कर दीजिए कृपा नेहरू जी? अरे! क्या कहते हो? केवल तुम्हीं पर कृपा करूं बाकी छात्र कहां जाएँ? यदि तुम्हें हस्ताक्षर दूं तो उन्हें भी देने चाहिएं जो वापिस चले गये हैं। सुनकर इन्दिरा जी हंस पड़ीं। मैंने पूछा—तो मैं कब आपके पास आऊं? आप कहां ठहरे हैं? मैं श्री प्रकाश जी के घर पर ठहरा हूं। वहाँ आ जाओ। दूसरे दिन मैं बनारस शहर में श्री प्रकाश जी के घर गया। वहां मैंने कुछ समय उनके पास बैठ कर और बातें करने के बाद हस्ताक्षर ले लिए। हस्ताक्षर उन्होंने हिन्दी में किए थे। लिखा था—"जवाहर लाल नेहरू" आज भी मेरे उस आटोग्राफ बुक में उनके हस्ताक्षर उनकी उस समय की याद दिला रहे हैं। कैसा था विश्वविद्यालय का वह छात्र जीवन जिसमें हम इन महान् नेताओं से निश्शंक मिलते थे, बातचीत करते थे। वे हमें छात्र समझ कर भावुकता में हमारी सब प्रकार की नटखटों को हंसी में टाल कर हमें प्यार देते, हमारी प्रार्थनाएं मानते और हम में अपनी छात्रावस्था का रूप देख कर खुश होते थे। नेहरू जी से मैं इसी अवस्था में कई बार मिला। उन्होंने मुझे ऐसा ही प्यार किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इतने विशाल राष्ट्र को चलाने का भार जब उनके कन्धों पर पड़ा। उस समय हमारे छात्रावस्था के सुहाने दिन भी नहीं रहे थे। नेहरू जी भी अत्यन्त व्यस्त होकर महान् अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन लेकर विश्व पर छा गए थे। तथा भारत के कर्णधार तो पहले ही थे। अब उस के योग्य संचालक थे। विश्वविद्यालय के जीवन में पं० नेहरू जी को बड़ी चुस्ती में देखता था। ये चाल, ढाल व बातें करने में बहुत तेज थे। युवकों के समान तीव्र चलते थे, तीव्रता से ही यात्राएं और स्थान-स्थान पर जाकर भाषण देते थे। स्वतन्त्रतापूर्व उस युग में उनकी राजनैतिक गतिविधियां एक तूफान या ववण्डर जैसी थीं। वे बेताज बादशाह होकर धरती के लाडले पुत्र की तरह भारतीय जनता के हृदय में बसे हुए थे। मैंने उन्हें उस समय इसी रूप में बार-बार देखा था।

सन् 1947 के बाद अर्थात् भारतीय स्वतन्त्रता के बाद भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री बन कर नेहरू जी जब एक वर्ष बाद जम्मू आए तो परेड ग्राउण्ड में इनका भाषण हुआ। भाषण व सभा के मुख्य कर्णधार थे उस समय जम्मू-कश्मीर के प्रधान मन्त्री (उस समय राज्य का मुख्यमन्त्री, प्रधानमंत्री कहलाता था) शेख अब्दुल्ला। पं० नेहरू का भाषण मैंने ऊपर मंच पर बैठ कर सुना। उनके साथ इन्दिरा जी भी आई थीं। उन दिनों मैंने कश्मीर पर पाकिस्तान के आक्रमण सम्बन्धी कथावस्तु लेकर एक लघु हिन्दी काव्य की रचना की थी। प० नेहरू जी जब व्याख्यान समाप्त कर चुके तो मैंने तत्काल उठ कर उन्हें नमस्कार करते हुए अपनी रचना उनके हाथ थमा दी। देखकर मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा क्या है भैया यह? जी कश्मीर आक्रमण पर लिखित काव्य। वे मुझे पहचान तो गए थे किन्तु जनता की भीड़ उमड़ आई। और वे उसी में व्यस्त हो गए हज़ारों ने उन्हें घेर लिया। मेरी रचना पर गत्ते की जिल्द नहीं थी। उस पर मोटा रंगीन कागज जड़ा था। जिस पर पुस्तक का नाम "इन्कलाब-कश्मीर" छपा था। नेहरू जी ने उसे लम्बे आकार में लपेट कर कोट की जेब में डाल दिया। उसका आधा भाग जेब के बाहर ही रहा। जब जीप पर खड़े होकर लोगों के अभिनन्दनों का हाथ के इशारे से जवाब देते जा रहे थे और लाखों लोगों से घिर कर जीप धीरे-धीरे चल रही थी तो उनकी जेब से कुछ बाहर आई मेरी रचना स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। मुझे गौरव हुआ भारत के प्रधानमंत्री की जेब में अपनी रचना देखकर। दिल्ली जाकर उन्होंने अवश्य ही उस रचना को अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय में रख दिया होगा।

०००

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता श्री नरेश मेहता

नरेश मेहता कई सालों तक मौन साधना में रत रहे। इधर ज्ञानपीठ पुरस्कार ने उनका भारतीय जनता से परिचय कराया और समीपता भी दी।

उनके प्रशंसकों और पाठकों व साधारण जनता को तो उनके इस साहित्यिक सम्मान से अपार हर्ष हुआ ही है, उनके सुदूर पूर्व के छात्र जीवन के सहचरों को भी इससे कम हर्ष नहीं हुआ होगा। उन्हीं में से एक इन पंक्तियों का लेखक भी है, जिसने अपने हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी के छात्र जीवन में एक छात्र के रूप में दूसरे साहित्यकार छात्र मेहता जी को वर्षों समीप से देखा और सुना। पुरस्कार की घोषणा, उसका राजकीय परिप्रेक्ष्य में विवरण, पुस्तक विमोचन यह सब कुछ देख ऐसा लगा कि अब भी मैं मेहता जी के साथ उसी छात्र युग की सुनहरी दुनिया की ओर घूम गया हूं। केवल घूम ही नहीं गया अपितु तात्कालिक विश्वविद्यालय के वातावरण का पूरा चित्र भी मेरी आंखों के सामने आया। साथ ही नरेश मेहता का वह छात्र जीवन का आकार, वेशभूषा, वार्तालाप, कविता पाठ, विहरण आदि भी साकार दिखे।

हम दोनों के निवास का अंतर थोड़ा ही था। प्रतिदिन कहीं न कहीं साहित्यिक गोष्ठी जुटी ही रहती। इनके बिना गोष्ठी में रंग ही न जमता। वास्तव में इस छात्रावास में भी नरेश जी की कवि के रूप में हजारों छात्रों में अपनी अलग पहचान थी। एक अलौकिक कवि आभा का किरणजाल इनकी शरीराकृति में से फूटता दिखाई देता था जहां भी कहीं किसी समारोह में जाते सबकी आंखें इस दिव्य साहित्यिक मूर्ति पर गढ़े बिना नहीं रहती।

वेशभूषा भी इनकी अपनी ही थी—कंधों तक लटकती हुई बालों की लटें आंखों पर चश्मा, पायजामा-कुर्त्ता, जैकेट, पैरों में चप्पल, ऊपर कभी-कभी हल्का शाल लिए हुए नरेश जी शाम को राजमार्ग पर छात्रों की टोली में चलते हुए अपनी पृथक

पहचान भी देते थे। कविता श्रवण के बिना भी दर्शक लोग उन्हें देख कर कवि मान लेते थे। वेश धारण की यह स्वाभाविक रुचि उनमें सांस्कृतिक लेखकत्व की देन थी। मैं भी उसी मार्ग का अनुयायी था। अपने छात्रावास में एक 'साहित्य समिति' नामक संस्था चलाता था, जिसका मैं लगातार तीन-चार बार प्रधान चुना गया। इसी संस्था की एक गोष्ठी के अवसर पर नरेश जी से मेरा वाद-विवाद हुआ। वह एक साहित्य सहयोगी और मित्र के नाते वार्तालाप का रूप था। उसमें दुराग्रह नहीं था न कोई अहम् का भाव था। वे कहने लगे सुनो "विनोद' उस समय मैं नहीं आ पाऊंगा, क्योंकि मैं आजकल अध्ययन में काफी व्यस्त हूं। रात के करीब आठ बजे सूचनानुसार संगीत हाल में सब छात्र इकट्ठे हो गए। गोष्ठी का आरम्भ होने लगा। सर्वसम्मति से प्रधानता मुझे दी गई। कविता पाठ शुरू ही हुआ था कि नरेश मेहता अपने कुछ साथियों के साथ गोष्ठी में आ गए। छात्रों ने तालियां बजा कर प्रसन्नता प्रकट की। छात्र तो आगे ही उनके आगमन के लिए उत्सुक थे, जब उनसे कहा गया कि वे नहीं आएंगे तो उनके चेहरों पर उदासीनता छा गई थी। अब वे आ गए तो छात्रों में एक नया उत्साह जाग उठा। वे आकर मेरे ही पास बैठे। मैंने इन्हें गोष्ठी में पधारने का धन्यवाद दिया। कविता पाठ का कार्यक्रम चल रहा था। दर्शकों से आवाजें आने लगीं। नरेश मेहता कविता पाठ करें। मैंने उनसे कविता पाठ के लिए प्रार्थना की तो साफ इनकार कर गए। कहने लगे, मैंने केवल श्रोता बन कर ही यहां आना था, आ गया हूं। कविता पाठ नहीं करूंगा। आवाजें आने लगीं, क्यों नहीं इस बीच मैंने कोलाहल चुप कराने का प्रयत्न करते हुए उनके कविता पाठ न करने का कारण कहने को उद्यत ही हुआ था तो नरेश जी झट उठे और कविता पाठ के लिए राजी हुए।

कैसे उन्होंने सहसा विचार बदल दिया, इस सम्बन्ध में भले ही हम में जिज्ञासा थी, पर हमने पूछना उचित नहीं समझा। उनके कविता पाठ पर हम सब में प्रसन्नता छा गई और हमने अपनी मनोकामना की सिद्धि इसमें देखी। इस प्रकार छात्र-जीवन में हम दो छात्र कवि गोष्ठियों में कविता पाठ, निबंध पाठ और प्रतियोगिताओं में एक साथ भाग लेते थे। नरेश जी के कारण ब्रोचा होस्टल के छात्रों में हिंदी लेखन की दिशा में एक नवीन जागृति पैदा हो रही थी। रूईया होस्टल में मैं दूसरा था, जो इसी क्षेत्र में नरेश जी का साथ देता था। कभी-कभी तो किसी कवि सम्मेलन में हम दोनों कविता पर श्रोता छात्र टिप्पणियां भी करते थे, कभी पक्ष में कभी विपक्ष में। पर हमने इस पर कभी अच्छा-बुरा नहीं मनाया था। इतना ही संतोष था कि हम हिंदी की कला साधना कर रहे हैं।

इस प्रकार नरेश जी से सम्बन्धित इस युग के सम्बन्ध में अनेक संस्मरण अब भी मेरे स्मृति पटल पर अंकित हैं। इस छः वर्ष के छात्र जीवन में हम एक साथ हिंदू विश्वविद्यालय के परिसर में रहे थे। इस अवधि के अनेक संस्मरण हैं, पर यहां एक

दो और संस्मरण देकर प्रस्तुत लेख को समाप्त करना चाहता हूं। एक बार महामना पं० मदनमोहन मालवीय महाराज के जन्म दिन पर रूईया होस्टल के गांधी चबूतरे पर एक विशाल समारोह जमा था। मालवीय जी को एक विशेष मंच पर रखी गई कुर्सी पर बैठाया। हम छात्र लोग हजारों की संख्या में वहां उपस्थित हुए। हमारे साथ प्राध्यापक, प्रोफैसर, प्राचार्य, विभागाध्यक्ष आदि सब कुर्सियों पर बैठे थे। हम लोग नीचे दरियों पर थे। मंच पर इने-गिने कुछ अधिकारी मालवीय के अगल-बगल में बैठे हुए थे। मंच पर कार्यक्रम के संचालक के कार्यक्रम प्रारम्भ किया।

पहले मालवीय जी के सम्बन्ध में भावात्मक उद्दार व प्रशंसाएं भिन्न-भिन्न लोगों द्वारा अभिव्यक्त की जाने लगीं। बीच-बीच में उनके सम्बन्ध में प्रशंसात्मक कविता गान भी हो जाते। इसी सन्दर्भ में एक-दो कविता के बाद मेरा नाम बोला गया। मैंने मालवीय जी की प्रशंसात्मक अपनी कविता पढ़नी शुरू की व तालियों की गड़गड़ाहट में समाप्त की। मेरी कविता को महामना मालवीय ध्यान से सुन रहे थे व मुस्करा भी रहे थे।

इसके अनन्तर नरेश मेहता का नाम पुकारा गया। वे मंच पर आकर कविता बोलने लगे। मालवीय की प्रशंसा में जो पद उन्होंने बोले थे, वे मुझे याद तो नहीं है, हां, पहले पद का एक अंश अपनी धुंधली स्मृति के अनुसार लिख सकता हूं जैसे 'हे भारत संस्कृति के अग्रदूत' बस इतना मुझे याद है उनकी उस कविता के एक पद का अंश। उनकी कविता अत्यन्त प्रभावित रही। तालियां भी पीटी गई और मालवीय भी ध्यान से सुन रहे थे व मुस्करा रहे थे।

हजारों श्रोताओं, विश्वविद्यालय के मुख्य अधिकारियों और मालवीय के समक्ष खड़े होकर हम दोनों का कविता पाठ हम दोनों छात्रों के लिये उत्साह व गौरव का संकेत था। यद्यपि विश्वविद्यालय के परिसर में हिन्दी कविता व लेखन के क्षेत्र में कार्यरत छात्रों की सूची में मेरा भी नाम था, तथापि इन सब छात्रों की श्रेणी में नरेश जी का अपना ही कोई विशेष प्रभाव था, जिसमें कवि व लेखक की स्वाभाविक आभा व गरिमा ने अभी से उनमें अपना स्थान बनाना शुरू कर दिया हुआ था। उस आभा रूपी नूतन कलिका में सुगंधित पुष्प का निर्माण हो रहा था, ऐसे पुष्प का जो सामान्य नहीं अलौकिक आभा लेकर आ रहा था यदि इस बात का इस अपरिपक्व बुद्धि के मेरे जैसे छात्र को आभास मिल जाता तो मेरा उनके साथ आजीवन पत्राचार और मेल-मिलाप का सम्बन्ध जुड़ जाता, पर बात ऐसी नहीं रही। दोनों विश्वविद्यालय का अध्ययन समाप्त कर अपने-अपने प्रान्तों में पहुंच गए। तदनुसार एक दूसरे का कोई पता नहीं रहा तो भी नरेश की उत्तरोत्तर प्रकाशित साहित्य के अंशों को जो कभी-कभी अकस्मात दृष्टिगोचर हो जाते थे, पढ़ कर मैंने उन्हें अपने स्मृति पटल पर स्थापित

रखा। विश्वविद्यालय की उन साहित्यिक गतिविधियों का चित्र जिन पर हम दोनों की छाया भी रहती थी, आशा है कि अब भी नरेश मेहता के हृदय पर अंकित होगा।

नरेश मेहता ने अपनी सतत् साहित्य साधना द्वारा देश के मूर्धन्य साहित्यकारों की सूची में सम्मानित नाम अंकित कर लिया है। भारतीय ज्ञानपीठ का सर्वोच्च पुरस्कार, देश के प्रधानमन्त्री के कर कमलों द्वारा उसका ग्रहण और उन्हीं के कर कमलों द्वारा पुस्तक का विमोचन, यह कितना बड़ा सम्मान है, जो उनकी प्रतिभा द्वारा अर्जित किया गया है। यह सब कुछ देख कर आज मेरा हृदय सरोवर हर्ष की तरंगों से छलक उठा है।

इस मौन साधक कवि लेखक का साहित्य के उद्यांचल पर कैसा सुनहरा उदय हुआ है, जिसकी स्वर्णिम किरणें सुन्दर स्वर्ण विहान को पार कर आगे बढ़ी हैं।

हिन्दी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी काल में हमारे दो अन्य होनहार छात्र मित्र थे। उनमें एक स्व० राजनारायण जो बाद में राजनीति में ऊंचा स्थान बना गए। दूसरे थे डा० शिव मंगल सिंह सुमन, जो बाद में साहित्य में और प्रशासन के क्षेत्र में काफी नाम कमा गए और कमा रहे हैं, पर मेरी अधिक प्रवृत्ति साहित्यिक मित्रों में ही रहती थी। इसी कारण ये दो साहित्यिक छात्र मुझ से अधिक घनिष्टता के साथ जुड़े हुए थे या मैं इनसे जुड़ा हुआ था। हम तीनों का परस्पर यह सम्पर्क वर्षों के उस छात्र जीवन में निरन्तर चलता रहा या तब तक चला, जब तक हम अपनी-अपनी अध्ययन समाप्ति पर घरों में न आए। नरेश मेहता के साथ मेरा सम्पर्क 1943 में हुआ था। इसके पूर्व भी मुझे हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र जीवन में रहते तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। संयोग की बात है कि एक बार मेरे द्वारा ही आयोजित की गई साहित्य-गोष्ठी में बड़े-बड़े कवियों के साथ नरेश का भी कविता पाठ हुआ। सब में नरेश ही ऐसे थे, जिनकी कवि-प्रतिभा और कवि-आभा दोनों आकर्षक थीं। यहीं मेरा उनसे परिचय हुआ। फिर तो हम तीन वर्षों तक परस्पर घुल-मिल गए। सप्ताह में एक-आध बार किसी न किसी गोष्ठी में भी साथ-साथ कविता पाठ करते। कभी गंगा तट पर सायं भ्रमण में, कभी वाराणसी शहर में कभी विश्वविद्यालय की सड़कों पर और कभी संकटामोचन हनुमान जी के मंदिर में। कहीं न कहीं हम प्रतिदिन आपस में मिलते ही थे। आज भी नरेश जी, कितनी ऊंची चोटी पर चढ़ गए हैं, यह देख कर मुझे उस स्वर्णिम युग की याद आ जाती है, जब यह होनहार किशोर अपनी अलग छटा बिखेरता हुआ अपनी उज्जवल भविष्य और भावी महानता का संकेत दे रहा था पर दुख है कि उस समय हम अबोधता के कारण इनकी इस भावी महानता का अंदाज नहीं लगा पाए। विश्वविद्यालय की छात्रावस्था में भी इनका एक कविता संग्रह मेरे वहां रहते निकला था, जिसे मैंने पढ़ा भी था। एक दिन मेरे कमरे में ही बैठे-बैठे नरेश ने मेरे आग्रह पर अपनी सुन्दर कविता का सस्वर गान किया था।

०००

स्वर्गीय मुनि सुशील

आज समाचार पत्र में मुनि जी की मृत्यु की दु:खद घटना पढ़ कर मन में अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन के चले जाने से देश ने एक देश भक्त, अहिंसा के पुजारी तथा शान्ति के सन्देश वाहक महापुरुष को खो दिया है। उनके दुखद महा प्रयाण पर भारतीय जनता के साथ ही राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, अनेक केन्द्रीय मंत्री, विभिन्न प्रान्तों के मुख्य मंत्री आदि शोक प्रकट कर चुके हैं। मेरी आत्मा को भी ऐसी ही ठेस पहुंची है क्योंकि आज से छब्बीस वर्ष पूर्व जब मैं एस. पी. आर्टस कलिज श्रीनगर (कश्मीर) में संस्कृत प्रोफेसर के पद पर था तो मुनि जी अपनी शिष्य और भक्त मण्डली के साथ श्रीनगर आये थे। यह भी सुन रखा था कि मुनि जी 1954 ई० से विश्व धर्म का प्रचार कर रहे हैं। इसी वर्ष बम्बई में उन्होंने विश्व धर्म सम्मेलन का विधिवत् प्रवर्तन किया था। अब मैंने जब सन् 1968 में इसी विश्व धर्म के प्रचारार्थ कश्मीर में आए, उन्हें देखा तो मन में एक अपूर्व श्रद्धा की गुदगुदी पैदा हुई कि इस महापुरुष से परिचय करना चाहिये मैंने सुना कि मुनि सुशील जी ने इस अभियान में शेख अब्दुल्ला को भी प्रभावित किया है। तभी एक दिन उनकी सभा में शेख जी ने भी भाषण दिया था। दूसरी सभा में जब मैं भी दर्शकों में बैठा था तो शेख साहब आकर मेरे पास बैठ गए। यानी मन्च पर जाकर न हमारे बीच ही आकर बैठे। इस सम्मेलन के सन् 1957 के अधिवेशन में देश विदेश के अनेक महापुरुषों ने आकर भाग लिया था। जनता की उपस्थिति भी अत्यधिक थी। इस अधिवेशन की देश भर में खूब धूम मची थी। इस अन्तर्देशीय (International) सम्मेलन की अध्यक्षता उस समय के भारतीय राष्ट्रपति जी ने की थी। वक्ताओं में मुख्य थे भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू जी। इसी से इस सम्मेलन की गरिमा प्रकट हो जाती है। इसके अनन्तर इसी स्तर के अधिवेशन अन्यत्र भी हुए थे। सम्मेलन के साथ सम्पर्क न होने पर भी इसके प्रति मेरा आकर्षण था जो सम्मेलन भाई-चारा शान्ति, एकता, जन कल्याण और जन-जन को जोड़ने का प्रयत्न करता हो उस के साथ लगाव हो जाना स्वाभाविक होता है। देशों के देश तभी जीवित रह सकते हैं जब कि जनता साम्प्रदायिकता के ऊपर उठ कर परस्पर प्रेम, भाईचारे तथा जीओ और जीने दो के सिद्धान्त पर चलती हो, जाति पाति, नस्ल, ऊंच-नीच की भावना के ऊपर उठकर ही

देश सुख, शान्ति तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर बलवान् बन सकता है। मुनि सुशील जी का सम्मेलन भी इसी उद्देश्य को लेकर चला था। इसी कारण मेरा इसके प्रति अथाह आकर्षण था। यदि धर्म का स्वरूप सन्दर्भ में मानवतावादी बने तो विश्व के मानव इस नाते भावात्मक रूप से एक सूत्रता में पिरोए जा सकते हैं। फिर कहां रहा कलह, कहां रहा आतंकवाद, कहां रही संकीर्णता और कहां रहे धर्म के नाम पर खून खराबे ? मुनि सुशील का सर्वधर्म सम्मेलन एकेश्वरवाद, आध्यात्मिकता और मानवतावादी है, जिस का प्रचार प्रसार करने के लिए बहुत बार विदेशों में जा चुके हैं। वहां इन्होंने विभिन्न देशों में सम्मेलन की शाखाएं भी स्थापित की हैं। जिस युग की मैं बात कर रहा हूं उसी के आगे चल कर मुनि जी ने अपनी गतिविधियों को धीरे-धीरे इतना विशाल कर दिया, जिन की अनेक शाखाएं फूट निकलीं जैसे अमेरिका, ब्रिटेन में चार आश्रमों की स्थापना। वर्ल्ड फैलोशिप आफ रिलिजनस।

पंजाब समस्या के समाधान में सहयोग, रामजन्म भूमि बाबरी मस्जिद की समस्या सुलझाने का प्रयत्न इत्यादि। अब जो सुशील जी अपनी शान्ति अहिंसा जन कल्याण जन-एकता आदि गतिविधियों द्वारा विश्व विख्यात ही नहीं सम्मानित और श्रद्धास्पद हो कर जन मानस में अपना श्रद्धापूर्ण स्थान बना चुके थे। उनकी दु:खद मृत्यु पर भारत की अनेक संस्थाओं ने भी गहरा शोक प्रकट किया है। जब मैं इन पंक्तियों को लिख रहा हूं आकाशवाणी की खबरों में उनकी मृत्यु पर अनेक संस्थाओं द्वारा शोक सम्वाद प्रसारित होते सुन रहा हूं। उनकी दु:खद मृत्यु का समाचार सुन कर मेरी आंखों के सामने सन् 1968 का वह चित्र स्पष्ट घूम गया जब मैं उनके पास लगभग डेढ़ घण्टा बैठ कर उनसे सर्वधर्म सम्मेलन के सम्बन्ध में बातें करता रहा। उस समय कमरे में केवल मैं और सुशील मुनि ही थे। बातें बड़ी सद्भावना प्रेम और शान्ति से हुई थी। मुनि जी भी चाहते थे कि मैं उनसे सम्मेलन के सम्बन्ध में लम्बी बातचीत करूं। पहले दिन तो मैंने उनसे परिचय किया। मेरा परिचय पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे आप जैसे विद्वानों को तो मैं ढूंढता ही हूं कुछ बौद्धिक चर्चा होती रहे। आप कल मेरे पास आईये बैठ कर बातें करेंगे, सुन कर मैं अति प्रसन्न हुआ कि मुनि जी ने मुझे स्वयं आमन्त्रित किया। मेरा यह सौभाग्य ही था।

प्रथम भेंट में ही मुनि जी की भाव भरी सज्जनता और भोले स्नेह की स्निग्धता का प्रथम उन्मेष पाकर मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने किसी वात्सल्य लोक के क्षणिक दर्शन कर लिए हों।

प्रात: काल नौ बजे मैं उनके पास पहुंचा। आकाश पर काली घटा छाई हुई थी। बूंदा-बांदी भी हो रही थी। वायु में अधिक शीतलता थी। हम दोनों एक कमरे में बैठे थे। आचार्य श्री उच्च आसन पर विराजमान होकर मुझ से वार्तालाप करने लगे।

कमरे के किवाड़ बन्द कर दिए गए। इसलिए कि आने वाले बीच में वार्ता का क्रम न तोड़ पाएं। मैंने एक-एक कर उन से अनेक प्रश्न पूछे। वे सब का उत्तर देते चले गए। मैंने प्रथम प्रश्न किया--यह तो बताईये कि कश्मीर में साम्प्रदायिक एकता कान्फ्रैन्स स्थापित करने तथा अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने में आप को कहां तक सफलता की आशा है, और अभी तक इस सम्बन्ध में क्या कुछ हो पाया है ? सुन कर मुनि जी ने उत्तर देना शुरू किया—मुझे ऐसा लगता है कि जैसे सम्बन्धित विषय पर कहने के लिए हृदय में संचित विपुल भाव सामग्री की वेगवती धारा स्वयं बाहर आना चाहती है। फिर उन्होंने प्रसंगानुसार कहना शुरू किया—सर्वधर्म सम्मेलन कश्मीर में अधिक सफल हो सकता है, ऐसी मेरी धारणा है। इस में भी कुछ कारण हैं, उन्हें भी सुन लीजिये। सन् 1947 के साम्प्रदायिक संघर्षों में कश्मीर ने कोई योगदान नहीं दिया और साम्प्रदायिक एकता बनाए रखी। हिन्दू-मुसलमानों की यह परम्परागत एकता देख कर आज मैं सोचता हूं कि बापू के वे शब्द कितने सत्य सिद्ध हुए हैं जो उन्होंने इस प्रकार कहे थे---"मुझे कश्मीर में प्रकाश की किरण दिखाई पड़ रही है।" यही नहीं और भी देखिए यहां दोनों जातियों के घरेलू मेल मिलाप, एक दूसरे के घरों में बिना भेद भाव के आना जाना, दोनों के धार्मिक उत्सवों में दोनों का मेल मिलाप आदि, धार्मिक और सामाजिक उतसवों और सभाओं में एक साथ इकट्ठे बैठ कर समस्याओं पर विचार करना। दोनों जातियों की भावात्मक एकता यहां स्वत: सिद्ध है। जहां तक कि भट्ट, डार, पण्डित ये जातियां दोनों अपने नामों के साथ लगाते हैं। इन कारणों द्वारा मेरा साम्प्रदायिक एकता का अभियान कश्मीर में सफल होगा, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। यद्यपि अब तक इस बात को अभी इस रूप में अधिक प्रोत्साहन नहीं मिल पाया है। लेकिन मिलेगा अवश्य। अब तो केवल राजनैतिक तथा व्यावहारिक स्तर का कलह है, जिसके अन्तर्गत एक मानवतावादी एकता की झंकार के स्थान पर सत्ता हथियाने, कुर्सी की भाग दौड़, वर्गगत दलगत तथा व्यक्तिगत स्वार्थ साधन के लिए धर्म को साधक बनाने का कटु शोर गुल, जो अपेक्षित एकता में विघटन ही पैदा कर सकता है, इधर उधर सुनाई पड़ रहा है। इस राजनीति सन्दर्भित एकता प्रचार की अपेक्षा शुद्ध धार्मिक एकता के प्रचार में अधिक बल है। जहां राजनैतिक मनोमालिन्य के अन्तर्गत परस्पर संघर्ष हो वहां शुद्ध सैद्धान्तिक चेतना के अभाव में एक दूसरे को गिराने की चेष्टा रहती है किन्तु यहां हमारे अभियान में स्वार्थ लाभ शून्य आदर्श स्नेह द्वारा सब को साथ लेकर चलने की भावना है।

कुछ रुक कर और ऊंची सांस लेकर मुनि जी ने अपने वक्तव्य को पुनः चालू करते हुए फिर जो कहना शुरू किया—जहां राजनीति की शतरंज के चतुर खिलाड़ियों का लाभान्वित स्रोतों पर अधिकार हो जाता है, वहाँ किसी दल से सम्बन्ध रखने

वाले योग्य पुरुष को भी अपने क्षेत्र में प्रोत्साहन नहीं मिल पाता और होता क्या है योग्यता की कसौटी केवल पहुंच पर आधारित हो जाती है ।

कश्मीर में परम्परागत इस एकता के रहते हुए भी ऐसे राजनीतिक प्रभाव द्वारा वर्ग गत और दल गत स्वार्थों के कारण साम्प्रदायिक एकता में बाधा आ सकती है। इसीलिए धार्मिकता के आधार पर एकता का होना अधिक निश्चित बन जाता है। क्योंकि इस में आध्यात्मिकता है और उस में भौतिकवाद आध्यात्मिकता में अधिक बल और आकर्षण है।

मुनि जी के इस प्रकार के सारगर्भित भाषण से मैं बहुत प्रभावित हुआ। ऐसा लगा जैसे मेरे ही मन की बातें या अनुभूतियां मुझे दे रहे हैं। इस संदर्भ में मुनि जी ने और भी कुछ बातें युक्तिपूर्वक कहीं थीं और प्रस्तुत विषय को अधिक बढ़ाया था किन्तु मैं यहां स्थानाभाव के कारण उस वक्तव्य का सारांश ही दे रहा हूं। छब्बीस वर्षों के लम्बे समय के अनन्तर उनके कुछ विचार भूल भी चुका हूं ।

वक्तव्य के प्रथम दौर की समाप्ति पर मैंने पुन: एक प्रश्न प्रस्तुत कर दिया। मैंने कहा, मुनि जी यह तो बतलाईये कि शेख अब्दुल्ला तथा उन के शेष साथियों के इस विषय पर क्या विचार आपने सुनें या उन्हें आप ने इस सन्दर्भ में किस रूप में पाया, यह कृपया कह दीजिए। मेरा प्रश्न सुन कर मुनि जी कुछ मुस्कराए फिर गम्भीर होकर कहने लगे ।

मैंने उन सब में धार्मिक एकता के सम्बन्ध में समान रूप से तड़प देखी है। शेख अब्बास, फारूक, बेग, जमायते इस्लामी तथा बौद्ध—यहां किसी को भी लीजिए, उनके राजनैतिक विचार तो भिन्न हो सकते हैं, किन्तु धार्मिक एकता में सब का एक ही विचार है। मेरे आयोजनों में सब धर्मों के नेता और लोग आते हैं।

शेख साहब ने तो धार्मिक एकता पर ऐसा सुन्दर प्रकाश डाला कि मुझे आश्चर्य हुआ उनके मानवतावादी एकता सम्बन्धी भाषण पर।

मैंने फिर प्रश्न किया—सन् 1954 से अब तक आपके इस संगठन का उतना अधिक प्रभाव क्यों नहीं पड़ सका कि देश भर में साम्प्रदायिक दंगे बन्द हो जाते और लोगों में भाई चारे की भावना जोर पकड़ती ? सुन कर मुनि जी का गौरवर्ण सौम्य मुख मडल अगले उत्तर के लिए व्यग्र हो उठा। फिर उन्होंने कहना शुरू किया—अभी तक हमारा एतत्र सम्बन्धी संगठन ठीक ढंग से नहीं चल पाया था किन्तु अब जल्दी ही ठीक हो रहा है। हम अभी तक शांति सेना की पूर्ण व्यवस्था नहीं कर पाए थे किन्तु अब इसकी व्यवस्था हो रही है। हमें राजनैतिक साधन नहीं मिल पाए इसी लिए ऐसा हुआ था ।

क्योंकि संसार ने राजनीतिक स्वार्थ साधन के लिए धर्म की आड़ भी ले ली जाती है। जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता वे भी राजनैतिक स्वार्थवश 'धर्म खतरे में है' का नारा लगा देते हैं। आज तक के दंगे फिसाद इसी का परिणाम हैं। हम चाहते हैं कि यदि विश्व धर्म सम्मेलन पर जनता चले तो राजनीति का यह विद्रूप रूप समाप्त हो जाएगा और सारे देश में साम्प्रदायिक एकता कायम हो जाएगी।

शान्ति सेना का कार्य अब तक कहां तक पहुंचा है ? मैंने पूछा। मीठी मुस्कुराहट बिखेरते हुए मुनि जी ने कहा—अभी यह संगठन हो रहा है। हर एक सेना में 100-100 व्यक्ति भर्ती किये जाएंगे। मुनि जी ने उत्तर ललित भाषा में युक्तियुक्त सन्तोष जनक थे इसी कारण मुझे बीच में अन्य प्रश्नों का अवकाश ही नहीं मिल पाया तथापि मैंने पर्याप्त प्रश्नों की झड़ी लगा दी जिस का उन्होंने एक-एक का शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

मैंने फिर पूछा—क्या आप वर्ल्ड रिलिजन कान्फ्रैन्स का प्रचार योरोप और एशिया में पूरी तरह कर पाएंगे ?

इस पर अभी तक थोड़ा बहुत कार्य हो भी चुका है। जैसे योरोप और एशिया में अब तक हमने चालीस शाखाएं खोल दी हैं, यहां कार्य तेजी से हो रहा है। पैरिस और तेहरान में भी कान्फ्रैन्स हो चुकी है अब जर्मन टेक्सास और इंग्लैंड में होने जा रही है, मुनि जी ने उत्तर दिया।

मैंने फिर पूछा—भारत के किन-किन प्रान्तों में अब तक इस का प्रचार हुआ है ? कलकत्ता, बम्बई, मध्य भारत, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, काशी तथा जम्मू कश्मीर इन सब में हमारे सर्वधर्म सम्मेलन का काफी प्रचार हो चुका है, मुनि जी ने कहा।

मेरे प्रश्नों की शृंखला समाप्त होने पर मुनि जी ने उपसंहार के रूप में एक वक्तव्य भी दे दिया जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—प्रो० गंगादत्त देखो मेरा तो विचार है कि एकता के लिए आन्तरिक साधन अधिक प्रबल होते हैं। हिन्दू जिसे ईश्वर कहता है मुसलमान उसे अल्लाह, ईसाई उसे प्रेम स्वरूप। इस प्रकार संसार के सब धर्म उसी एक शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। वास्तव में यह सब का परम सत्य एक ही असीम सत्ता रूप है। सब में उसी का प्रकाश झिलमिला रहा है। यही तथ्य मानव मात्र को जोड़ने वाला है। यदि लोग इस विवेक भूमि पर उतरें तो धार्मिक एकता के सन्दर्भ में सब एक हो जाएं। ऐसा तो मानवता वादी धर्म लोगों को जोड़ता है। आज धर्म के विकृत रूप दिखा कर मानव को जोड़ने के स्थान पर विखण्डित किया जा रहा है यही दुःख का कारण है। हम तो समझते हैं, राम,

रहीम, ईसा गुरू नानक उसी एक शक्ति के नामान्तर हैं, सब जीव उसी का रूप है। भूख, नींद, अनुभूति., सम्वेदना सुख-दुख आदि का सब को एक जैसा अनुभव होता है। इससे स्पष्ट है कि सच्चा धर्म वही है, जो सब को जोड़ सकता हो। जो धर्म विखण्डन कर रहे हैं वे धर्म नहीं है। प्राचीन युग में धर्म के इसी रूप द्वारा मानव एकता का प्रयत्न किया जाता था। एलग्जेण्डर ने यूनान में ऐसा ही एक सर्वधर्म सम्मेलन बुलाया था।

मेरे प्रत्येक प्रश्न के उत्तर के साथ मुनि जी की सैद्धान्तिक वक्तृता जुड़ती चली जा रही थी। इसी कारण इस कार्य में डेढ दो घण्टे उन्हें मुझे देने पड़े। बाहर मिलने वालो की संख्या बढ़ रही थी। स्त्रियां भी पहुंच रही थीं। इसी कारण मुनि जी के साथ मेरा साक्षात्कार यहीं समाप्त हो गया। समाप्ति पर भी मुनि जी ने बड़े प्रेम से कहा—प्रो० गंगादत्त तुझे छोड़ने का जी नहीं चाहता। अभी और कुछ कहना था किन्तु बाहर मिलने वालों की भीड़ चिर प्रतीक्षारत है। अन्त में मुनि जी ने मुझे हार्दिक आशीर्वाद दिया। मैंने भी उन्हें सादर अभिवादन करके प्रस्थान किया। दूसरे दिन उन के इस वार्तालाप का पूरा विवरण मैंने लिख कर उन्हें दिखाया तो बड़े प्रसन्न होकर मेरी पीठ थपथपाते हुए कहने लगे आपकी लेखनी में जादू है। बीच-बीच में दिल्ली जाने पर उनके दर्शन भी करता रहा। आज उनकी दुखद मृत्यु पर कितना गहरा घाव लगा है, यह मेरा हृदय ही जानता है। अभी तो वे अठसठ वर्षों के ही तो थे। एक महापुरुष का, जिसकी देश को अभी बड़ी आवश्यकता थी अकस्मात और असमय में चला जाना बड़ा आघात है।

०००

चतुर्थ अध्याय

(वेद से सम्बन्धित)

वैदिक शासन विज्ञान व जगदुत्पत्ति

वैदिक कालीन भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन प्रणालियों के प्रमाण वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं। संक्षेप में उस समय शासन के प्रकार ग्यारह-बारह की संख्या में मिलते हैं। जैसे—राज्य, महाराज्य, साम्राज्य, स्वराज्य, सामान्त पर्यायी राज्य, भौज्य, वैराज्य, आधिपत्य राज्य तथा जनराज्य ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में तो प्रत्येक की दिशा के निर्देश भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण में हमें इस सम्बन्ध में एक और विचित्र शब्द मिलता है "वैराज्य" इसका अर्थ है कि राजा के बिना। आजकल यह बात कही जाती है कि सृष्टि के आरम्भ में कोई राजा न था। जब इससे काम चलता नहीं दिखाई दिया तभी कुछ गण्यमान्य जनों द्वारा एक समिति बनाई गई। जिसमें एक प्रधान व्यक्ति को समाज के नियन्त्रण व प्रबन्ध का कार्य सौंपा गया। इस व्यक्ति का नाम पड़ा राजा। इस घटना की क्रमबद्धता व प्रामाणिकता भी हमें वैदिक संहिताओं में मिलती है। जैसे—:

विराट् वा इदमग्र आसीत्। तस्या: जातायाः सर्व
अविभेद इदमेवेदं भविष्यति इति ॥ अथर्व 8।10।11॥

इसका आशय है कि पहले विराट् ही था अर्थात् राजाभाव ही था। उससे सबको भय हुआ कि यदि सदा यही स्थिति रही तो समाज कैसे चलेगा नियन्त्रक के अभाव में देश के अन्दर कभी भी उथल-पुथल मच सकती है, तभी क्या होता है इसका वर्णन अग्रिम मन्त्र में है।

सा उद्क्रामत् सा सभायां व्यक्रामत्
सा उद्क्रामत् सा समितौ व्यक्रामत्
सा उद्क्रामत् साऽमन्त्रणे व्यक्रामत् ॥ अथर्व वे।10।8-12 ॥

इसका अर्थ है कि राजाभाव की दशा में जनशक्ति एक सभा के रूप में आई, फिर और आगे बढ़कर, राष्ट्र समिति के रूप में आई व अन्त में वही अधिक उन्नत

होकर मन्त्रिमण्डल के रूप में चली। इस प्रकार ग्रामों में ग्राम सभाएं व राष्ट्र में राष्ट्र सभाओं ने जन्म लिया और इन्हीं के द्वारा शासन चलने लगा। जो राष्ट्र सभा का मुखिया नियुक्त किया गया, उसी को राजा कहा जाने लगा। इस प्रकार से विराट् की स्थिति को दूर करने के लिए राजा का उदय हुआ। राजा की यह प्रारम्भिक अवस्था पूर्णरूप से जन निर्वाचन पर ही निर्भर थी। सभा व समिति ही उसका चुनाव करती थी। बाद में इस शक्ति को राष्ट्र देवी का रूप मिला जैसा कि ऋग्वेद के देवीसूक्त में स्पष्ट है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकिलुषी प्रथमा यज्ञियानाम्
यं कामये तं तं उग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं त ऋषिं तं सुमेधाम्॥

इस लम्बे सूक्त में राष्ट्र शक्ति की प्रबलता का उद्घोष है। इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेद काल में जनशक्ति द्वारा चालित शासन अत्यधिक शक्तिशाली हो चला था। "यं कामये तं तं उग्रं कृणोमि॥" जो कहा गया है, इसी से राष्ट्र शक्ति की प्रखरता का संकेत मिल जाता है कि वह शक्ति जो चाहती थी वह कर सकती थी। इस राष्ट्र शक्ति का अर्थ है कि राष्ट्र की जनता की संघ शक्ति। यही राष्ट्र की सभा में होती थी जैसे लोकसभा में होती है। इस सभा का कितना बड़ा प्रभाव होता था जिसका संकेत नीचे के मन्त्र में दिया गया है।

सभा च या समिति श्चानतां
प्रजापतेर्दुहितरौ सम्विदाने॥

राजा कहता है कि सभा व राष्ट्र की समिति मिलकर मेरी रक्षा करें। ये दोनों प्रजापति भी दुहिताएं हैं अर्थात् पुत्रियाँ हैं। वर्तमान जनतान्त्रिक युग में इन्हीं दो सभाओं के नए रूप लोकसभा या संसद् तथा राज्य सभा है। राष्ट्र की सारी शक्ति जिस प्रकार इनमें रहती है, उसी प्रकार वैदिक युग में सभा व समिति में ही राष्ट्र की शक्ति रहती थी। जो राजा का निर्वाचन पार्टी नेता के रूप में करती थी। इसलिए यह स्पष्ट है कि आज का पार्लियामेण्टरी सिस्टम उस वैदिक शासन पद्धति का ही नवीन रूप है। यह भारतीय उपज है वैदेशिक नहीं। आगे चल कर इसी वैदिक काल में राजा की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई व इसे सोम, इन्द्र आदि कई शक्तिशाली नामों से पुकारा जाने लगा।

ऋग्वेद के इन्द्र व विष्णु इसी राजा के संकेत मिलते हैं। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता में एक मन्त्र में राजा को सोम व इन्द्र कहा गया है तथा उसके महान् महत्त्व को दिखाया गया है।

"क्षत्राय महते ज्येष्ठयाय महते ज्ञानराज्यायेन्द्रस्येदिद्रयाय । इमममुष्यममुष्यैस्मै पुलमस्यै विश एष वो मी राजा सोमो अस्माकं ब्राह्मणानां राजा इत्यादि।" इसमें राजा को इन्द्र, सोम, बल का अधिष्ठाता क्षात्रतेज व ज्ञान राज जनराजा के विशेषणों से अभिहित किया गया है।

"त्रातारमिन्द्रम कृण्भेरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्तर पूर्वीरयमुग्रो विरुधो यथासत्।" इस मन्त्र में इन्द्र को रक्षक कहा गया है तथा सब लोग इसके चारों ओर घिरे रहते हैं।

यह भाव जो प्रकट किया गया है, इससे प्रतीत होता है कि वैदिक काल में राजा इन्द्र के रूप में जनरक्षक होकर जनता से घिरा रहता था जैसे आज का प्रधानमन्त्री। ऐतरेय ब्राह्मण की एक उक्ति से यह अनुमान भी होता है कि उस युग में भी जब राज शक्ति ने सारे देश में खण्ड-खण्ड रूप में व्यापकता प्राप्त कर ली तो राज्यों के परस्पर संघर्ष की चिन्ता का उदय हुआ। जिससे कहा गया—

"पृथिव्यैक समुद्र पर्यन्ताया एक राजेति"

अर्थात् पृथ्वी व समुद्र के विस्तार तक पूर्ण भूमि पर एक ही राजा होना चाहिए। जिससे छोटे-छोटे राज्यों को आक्रमण के डर से मुक्ति मिले।

पीछे जो वैदिक शासन-प्रणाली के नाम दिए गए हैं उनमें राज्य शब्द की व्याख्या हो जाती है। अब देखिए दूसरी प्रणाली "महाराज्यम्" इसके अन्तर्गत छोटे राज्य एक विशाल राज्य के अधीन होकर रहते थे। तीसरी प्रणाली साम्राज्य के अन्तर्गत सारे देश पर एक ही शासन अर्थात् केन्द्रीय शासन पद्धति; चतुर्थ प्रणाली स्वराज्य के अन्तर्गत कुछ राज्य ऐसे थे, जो किसी साम्राज्य क. अंग न होकर स्वतन्त्र होते थे। पांचवीं प्रणाली में सामन्तपर्यायी राज्य केवल छोटे सामन्तीय राज्य के अस्तित्व का संकेत देते हैं। भौज्य प्रणाली में ऐसे राज्य थे जो भुजबल द्वारा जीत कर बनाए जाते थे।

वैराज्य प्रणाली की पूर्व ही व्याख्या कर दी गई है। आधिपत्य प्रणाली में भी एक ही राजा का राज्य पर आधिपत्य होता था। जानराज्य प्रणाली में जनता का राज्य होता था जिसे आज लोकराज या जनतन्त्र गणराज्य कहा जाता है। इस प्रणाली का शासक जनता द्वारा प्रतिष्ठित होने के कारण जनप्रिय होने की सदा कामना करता था जैसे अथर्ववेद के निम्नलिखित मन्त्र में यह तथ्य भली भांति स्पष्ट हो जाता है।

प्रियो देवानां भूयासम्
प्रियः प्रजानां भूयासम्
प्रियः समानां भूयासम् अथर्व 17.1

इसका अर्थ है कि "मैं देवों का प्रिय बनूं, मैं प्रजा का प्रिय बनूं और मैं अपने समान लोगों का भी प्रिय बनूं।" वैदिक काल में प्रजा ही राजा का चुनाव करती थी। इसके कई स्पष्ट प्रमाण अथर्ववेद में मिलते हैं। यहां एक उदाहरण पर्याप्त होगा।

"त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमा:
प्रदिश: पञ्चदेवी। बर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि
श्रयस्व ततो न उग्रा विभजा वसूनि"

अथर्व 3।4।2

इसका संक्षिप्तार्थ है—हे राजन् सब प्रजा तुम्हें राज्य करने के लिए स्वीकृति दें। ये दिशाएं जो पांच देवियां हैं, ये भी मुझे स्वीकार करें। इसके अनन्तर तुम उच्च पद पर बैठो और हमें धन आदि बांटो। धनादि बांटने का विशद् अभिप्राय है, नौकरियां, सबसीडियां, अनुदान आदि-आदि। आज हमारे यहां शासन की ओर से यह सब कुछ दिया जा रहा है तथा परम्परा से दिया जाता आ रहा है।

वैदिक सृष्टि रचना

वेद में सृष्टि रचना के अंश भी कुछ विचित्र चमत्कार लेकर वैज्ञानिक रूप में उभरे हैं। सर्वप्रथम सृष्टि संचालन का ऋग्वेद सम्बन्धी एक मन्त्र इस प्रकार से है—

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वाभुवनानि तस्थौ॥

ऋ० 1।164।1

इस मन्त्र का गूढ़ अभिप्राय ब्रह्माण्ड रचना और संचालन से सम्बन्धित है। इस एक चक्र वाले ब्रह्माण्ड रूपी रथ को सूर्य की सात किरणें अश्वों की तरह चला रही हैं और ये ही सूर्य की सात किरणें एक सूर्य के रूप में अश्व के रूप में इसको चला रही हैं। इस चक्र की तीन नाभियां अर्थात् धरती, आकाश व द्युलोक हैं। जो अजर व अनर्व अनश्वर है जिसमें सब भुवन (चतुर्दश भुवन) स्थिर हैं। इस चराचर प्रपञ्च के संचालन का आधार यद्यपि सूर्य की सप्त किरणें हैं तथापि कोई चेतन सत्ता भी जड़-प्रकृति में स्पन्दन कर रही है, इस पक्ष में भी वेद ने यत्र तत्र विस्तार से प्रतिपादित किया है। उदाहरण स्वरूप ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अस्यवामीय सूक्त 52 ऋचाएं तथा नासदीय सूक्त यहां संकेतित किए जा सकते हैं। विस्तार भय से उनमें से किसी एक मन्त्र का विश्लेषण भी यहां नहीं दिया जा सका किन्तु विद्वान् पाठक इन सूक्तों को स्वयं देख लेंगे।

सूर्य की किरणों से जगदुत्पत्ति व प्रचलन के संकेत वैदिक संहिताओं के अन्य स्थलों में भी उपलब्ध होते हैं। उनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप यहां दिए जा रहे हैं—शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के तीसवें अध्याय का एक मन्त्र देखिए—

इरावती, धेनुमती हि सुयवासिनी मनवे दशस्या व्यस्कम्नाद्रोदसी विष्णवेते दाधत्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ।।

अग्नि प्रसंग में यहां अन्तरिक्ष अग्नि विद्युत के लिए कहा गया है कि वह धरती वाली धेनुओं वाली जगत् को सुन्दर प्रकार से स्थापित करने वाली मनुष्य की मार्ग दर्शिका है। जिसने धरती व आकाश को धारण कर रखा है तथा अपनी किरणों द्वारा इस ब्रह्माण्ड को उठाए हुए हैं। इस मन्त्र से भी सूर्य रश्मियों या विद्युत प्रकाश द्वारा ब्रह्माण्ड के चालन की प्रक्रिया सम्यक् प्रकट होती है। एक अन्य मन्त्र में भी ऐसा ही संकेत मिलता है।

अष्टाचक्रं वर्तते एकनेमि सहस्राक्षरं प्रपुरो निपश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्ध कतम स केतुः ।।

अर्थात् आठ चक्रों वाला अर्थात् आठ ऋतुओं वाला, एक नेमि अर्थात् एक नाभि या मूल स्थानवाला, तथा सहस्राक्षर हजार किरणों वाला ऐसे सूर्यदेव ने अपने आधे भाग से इस विश्व को पैदा किया, किन्तु इनका शेष अर्धभाग किस चिह्न के रूप में संसार में वर्तमान है इसका उत्तर स्पष्ट भासित हो जाता है कि जो सूर्यदेव अपना रूप लेकर गगन में दिन रात चल रहे हैं। विश्व निर्माण का यही शेष है। जिस प्रकार सूर्यदेव समुद्र से अपनी किरणों द्वारा पानी खींचकर धरती पर बरसाते हैं किन्तु इतना पानी देकर भी समुद्र का शेष भाग पूर्वाकार जैसा ही बना रहता है, उसी प्रकार जगदुत्पत्ति में इतना विशाल किरणों का उपयोग करके भी भगवान् सूर्य का शेष भाग पूर्ववत् ही बना रहता है।

जगदुत्पत्ति के सम्बन्ध में यद्यपि संस्कृत वाङमय में कुछ अन्य प्रक्रियाएँ भी हैं तथापि मुख्य रूप में वेद के पर्यालोचन से यही सिद्ध होता है कि यह सारा ब्रह्माण्ड सूर्य की किरणों के आकर्षण के बल पर ही निराधार में टिका हुआ है।

सामवेद के एक मन्त्र से इस सम्बन्ध की अधिक पुष्टि होती है।

अपः प्रैरयत सगरस्य बुघ्रात् यो अक्षेणेव चक्रिया।
शचीभिः विष्वक् तस्तम्भ पृथ्वीभुत द्यौः ।।

यहाँ समुद्र के मूल से जल को प्रेरणा देते हुए अपने अक्षीण चक्र द्वारा व सुन्दर किरणों द्वारा भगवान् सूर्य ने चारों ओर से इस पृथ्वी व द्युलोक को आधार दिया हुआ

है, यह भाव स्पष्ट होता है। सूर्य भगवान् जल खींचकर किरणों द्वारा ऊपर ले जाते हैं। उस जल से वर्षा व विद्युत् तेज़ की प्रखरता व प्रचण्डता ऐसी पैदा होती है कि जिसकी गर्जना से ब्रह्माण्ड काँप उठता है। यह सृष्टिचक्र का सृजन व संचालन किस तरह नट्वत् हो रहा है इसके मूल तक पहुँचकर भगवान् सूर्य का सृष्टि सृजन व धारण दोनों स्पष्ट हो जाते हैं।

वेद ने इसी सूर्यदेव को इन्द्र के नाम से पुकार कर बड़ी गहरी स्तुतियाँ की हैं। जिनमें इनके ब्रह्माण्ड की सृजन शक्ति का संकेत मिलता है। जहाँ तक कि इस प्रत्यक्षी भूत सूर्य देव की भी एक सर्वशक्तिमान अधिष्ठातृ देवी का संकेत ऋग्वेद ने दे दिया है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्ष से आ सूर्यमारोहता दिवि। इन्द्र ने विशाल दर्शन के लिए आकाश पर सूर्य को आकाश पर चढ़ाया यह भाव इस मन्त्र से स्पष्ट होता है। सूर्य के मूल में भी किसी प्रकाशमय सृजन शक्ति का संकेत इस दूसरे मन्त्र से भी मिलता है।

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवि—सामवेद-अ० 1-दश० 2॥

अर्थात् प्राचीन रेतस सृष्टिभूत जो ज्योति है, उसे दिन में देखा जाता है जो द्युलोक से भी परे है। इससे स्पष्ट है सृष्टि का आदि रेतस अर्थात् आदि बीज द्युलोक से परे कोई ज्योतिस्वरूप है, जिसके एक भाग के रूप में हम दिन में सूर्य को देखते हैं। इस मन्त्र से भी प्रकाश द्वारा सृष्टि सृजन प्रक्रिया का संकेत मिलता है। उपनिषद् ने इस तथ्य का संकेत इस रूप में दिया है।

एकमेवाग्र आसीत् स ऐक्षत् बहुस्यामिति तत्तेजोऽसृजत्॥

अर्थात् वह परम सत्ता पहले-पहल एक ही थी केवल मात्र। उसने सोचा में बहुतों से परिणत हो जाऊँ तो सर्वप्रथम उसने तेज की रचना की। इसी प्रकार आगे फिर कहा "तस्माद् वा एतस्यादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशद्वायुः वायोरग्नि-रग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी।

यहाँ भी परमसत्ता आत्मस्वरूप से आकाश, पृथ्वी आदि पैदा हुए। यहाँ देखना यह है कि अदृश्य पदार्थ से आकाश वायु के पैदा होने के अनन्तर मूर्त पदार्थों की सृष्टि फिर तेज़ में ही मानी गई है। जैसे वायु से पैदा होकर अग्नि ने जल की उत्पत्ति की, जल से पृथ्वी पैदा हुई तथा पृथ्वी से जड़-चेतन का जन्म आदि। यहाँ भी मूर्त जड़-चेतन जगत् की सृष्टि की उत्पत्ति तेज़ से ही मानी गई है। इस मूर्त

जगत् का धारण कर्त्ता भी तेज़ ही है। जिसे वेदों में विष्णु नाम दिया गया है, अपने ही तीन पादक्षेपों से जिसने धरती, आकाश व पाताल को घेर लिया है। यहाँ "विष्लृ व्याप्तौ" धातु से व्यापक अर्थ में विष्णु का संकेत सूर्य की ओर ही है तथा विष्णु के पक्ष में समग्र वैदिक वर्णन सूर्य पर ही घटित होता है। "यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं" इस वेद वाक्य द्वारा द्युलोक का आधार अर्थात् उसे शून्य में पकड़े रखने का कार्य स्पष्ट संकेतित हो रहा है।

०००

ऋग्वेद में सूर्य वन्दना

सूर्य के सम्बन्ध में चारों वेदों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। यहां सर्वत्र भावुक हृदय से सूर्य की ऐसी वन्दनाएँ स्तुति पाठों द्वारा की गई है जो परम हार्दिक होते हुए भी गम्भीर वैज्ञानिक रहस्यों को अपने आंचल में समेटे हुए हैं। प्रस्तुत लेख में सूर्य के सम्बन्ध में वैदिक वन्दनाओं का पक्ष ही प्रस्तुत किया जाएगा।

सर्वप्रथम प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में सूर्य वन्दना के दर्शन होते हैं। पूरा मन्त्र इसी विषय को स्पष्ट करता है। ऋग्वेद के मण्डल तीन सूक्त बासठ का यह दसवाँ मन्त्र है। यजुर्वेद के अध्याय तीन का पैंतीसवां मन्त्र भी यही है तथा सामवेद के उत्तरार्चिक प्रपाठक छ: में भी यही गायत्री मन्त्र मिलता है। इसका अर्थ है—भू: लोक, भुव: लोक व स्व: लोक के स्वामी उस सविता देवता के सुन्दर प्रकाश का हम ध्यान करते हैं। वही हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे। यह बुद्धि की प्रार्थना भी रहस्य भरी है, जिस पर बहुत कुछ सोचा जा सकता है।

ऋग्वेद में सूर्य की कई नामों से वन्दना मिलती है, जैसे सूर्य, सविता, भग, मित्र, अर्यमा, आदित्य, वरुण, इत्यादि ऋग्वेद देवताओं की स्तुतियों का वेद है। इन स्तुतियों में भावनात्मक श्रद्धा के साथ सर्वत्र सामाजिक वैज्ञानिक तथा भौतिक रहस्य भी भरे हुए हैं। प्रथम मण्डल सूक्त 41 में वरुण, मित्र, अर्यमा, इन तीन नामों से सूर्य की स्तुति की गई है। इसमें कहा गया है कि ये तीनों वरुण, मित्र व अर्यमा प्रकाशमान व जगत के रक्षक हैं। हमारे यज्ञ का मार्ग आविष्कृत करते हैं। पापों व दुष्टों को दूर करते हैं। इनके उपासक कटुभाषी की कभी भी प्रशंसा नहीं करते इत्यादि। एक मन्त्र इस प्रकार है। ये अन्तरिक्ष प्रचेतसो वरुणो मित्रो ऊर्यमा। नू चित् स दभ्यते जनः ॥ ऋ० 1।41।10 ॥

इसी मण्डल के सूक्त 115 में सूर्य की विस्तृत वन्दना की गई है। इसमें कहा गया है कि यह चित्र विचित्र परम ज्योति हमारे सामने प्रकट हुई है, जो अग्नि का नेत्र है तथा धरती, आकाश व द्युलोक को अपने प्रकाश से आच्छादित कर देता है।

यह जड़-चेतन सृष्टि की आत्मा है, यह सूर्य उषा:काल का ऐसा अनुसरण करता है जैसे पति-पत्नी का और इसी के उदित होने पर संसार कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर होता है। सूर्य के रथ के साथ किरणें रूपी घोड़े जुते हैं, यह रथ द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक व पृथ्वी लोक की प्रतिदिन यात्रा करता है। सूर्यदेव का देखो कितना बड़ा महत्व है कि काली रात के स्थान पर ब्रह्माण्ड में प्रकाश फैल जाता है। जब यह अपने घोड़े में रथ जोतता है तो रात ही प्रकाश का कपड़ा पहन लेती है इत्यादि एक मन्त्र इस प्रकार से है---

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्याकर्तो विततं संजमार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थाद्रात्रीवासस्तनुते सिसस्मै ॥
ऋ० 1।115।411

इसी मण्डल के 164 वें सूक्त के 47, 48 सवें दो मन्त्रों में सूर्य की वैज्ञानिक स्तुति की गई है। इन दो मन्त्रों का भाव इस प्रकार से है—

सूर्य रथ की किरणें जब आकाश के कृष्णमार्ग अर्थात् दक्षिणमार्ग की ओर चलने लगती हैं, वे अपने में पानी समेटकर द्युलोक की ओर बढ़ती हैं। जब यहां से वापिस लौटती हैं तो धरती पानी से भर जाती है अर्थात् खूब वर्षा होती है।

सूर्य स्तुति के माध्यम से ऋग्वेद ने सूर्य किरणों द्वारा समुद्र से पानी खींचकर बरसाने का संकेत भी दे दिया है। दूसरे मन्त्र की सूर्य स्तुति में रूपक द्वारा वर्षा का रहस्य दिखला दिया है। जैसे वर्षारूपी चक्र में बारहमास रूपी अरे, ऋतु, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा रूपी तीन नाभियों और 360 दिवस रूपी शङ्कु (कीलें) लगे हुए है और यह कालचक्र चलता चला जा रहा है। मन्त्र इस प्रकार से है—

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन् सदनादृतस्यादिद घृतने पृथिवी व्युद्यते ॥
ऋ० 1।94।47-48 ॥

इस कालरूपी चक्र के चालक भगवान् सूर्य ही तो हैं। प्रकारान्तर से यहाँ उन्हीं की वन्दना के साथ महिमा गाई गई है। इसी मण्डल के 191 वें सूक्त के 8वें मन्त्र में सूर्य की वन्दना इस प्रकार की गई है कि उषा के उदित होने के पश्चात् विश्व द्रष्टा सूर्य आते हैं, वे सब अदृष्ट वस्तुओं को दूर कर उन्हें दृष्ट बना देते हैं। और दुष्टों का दमन करते हैं। दूसरे मण्डल के 40वें सूक्त में भी सूर्य की वन्दना पूषा के नाम से की गई है, इसके साथ सोम भी जोड़ दिया गया है। सोम चन्द्रमा है, ये दोनों तीनों लोकों का अन्धकार मिटाते हैं और विश्व के रक्षक हैं तथा देवों ने इन्हें अमृत का उद्गम माना है। इस सूक्त के पांचों मन्त्रों में सूर्य की गम्भीर वन्दना की गई

है। वेद की वन्दना शैली में वन्दनीय के गुणों का आख्यान भी किया जाता है, उसी आख्यान में अनेक रहस्य प्रस्फुटित हो उठते हैं। प्रस्तुत सूक्त भी इस प्रकार का है। तीसरे मण्डल के 49 वें सूक्त में मित्र के नाम से सूर्य की वन्दना की गई है। यह मित्र लोगों को कर्मक्षेत्र में गतिशील करता है। यह द्यु अन्तरिक्ष व पृथ्वी को धारण करता है और मित्र ही प्रजाओं को प्रकट करता है। इसी प्रसंग में आदित्य नाम से भी सूर्य की स्तुति की गई है। जो इसकी उपासना करता है वह मारा नहीं जाता। और इसे समीप या दूर से भी पाप नहीं छूता।

सम्बन्धित एक मन्त्र इस प्रकार से है।

प्रसमित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन।
न हन्यते न जीर्यते त्वोतो नैनमहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्॥

ऋ० 3।59।2

पञ्चम मण्डल के 69वें सूक्त में मित्रावरुण की जो वन्दना की गई है तथा अन्यत्र भी इसी रूप में जो स्तुतियाँ मिलती हैं, उनका स्पष्ट संकेत सूर्य की ओर ही है। सूर्यों की संख्या बारह कही गई है। उसमें सूर्य, सविता, मित्र, वरुण, अर्यमा, पूषा, भग आदि सब नाम आ जाते हैं। इसी दृष्टि से ऋग्वेद में सूर्य की भिन्न-भिन्न इन नामों द्वारा वन्दना मिलती है। इस सूक्त में जो मुख्य बात कही गई है वह है सूर्य द्वारा लोकों का धारण करना "दाधार पृथ्वीं द्या मयूखैः" इस मन्त्र भाग द्वारा यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह ब्रह्माण्ड सूर्य की किरणों द्वारा धृत है।

छठे मण्डल के 53 वें व 54वें सूक्त में सूर्य की स्तुति पूषा के नाम से की गई हैं। यहाँ पर पूषा को सब प्रकार का धनदाता बार-बार कहा गया है। यह पूषा अदानियों का अनिष्ट भी करता है। इसी मण्डल के 71वें सूक्त में सविता के नाम से छः मन्त्रों में सूर्य की भावुक वन्दना मिलती है। यह सविता स्वर्णिम हस्तों वाला है। सुक्रतु है, हिरण्य जिह्व, हिरण्य पाणि, दमनकारी और पृथ्वी, आकाश व द्युलोक का आरोहक व प्रकाशक है। हम इसकी वन्दना करते हैं। वह हमें धन, श्रेय व रक्षा आदि प्रदान करे। सातवें मण्डल के 38वें सूक्त के 8 मन्त्रों में सविता नाम से सूर्य की वन्दना की गई है। यहाँ की मुख्य भावनाएँ इस प्रकार से हैं-- यह सविता देव सब रत्नों का सुवर्णों का धारक है, यह धरती का नायक व निर्माता है। वरुण, मित्रावरुणा, अर्यमा आदि सबका एकरूप है, इसी से रात-दिन बनते हैं। यहाँ "अर्काः" यह शब्द द्वारा बहुत सूर्यों का संकेत देता है, जो बारह आदित्य समझे जाते हैं। यह सविता हमारी प्रार्थना सुने, धन रक्षा व आवासादि हमें दे। इसी प्रकार 51वें सूक्त में तीन मन्त्रों द्वारा आदित्य की स्तुति की गई है। किन्तु यहाँ भी आदित्य शब्द बहुवचन होने के कारण 12 सूर्यों का संकेत देता है। आगे चलकर 60वें सूक्त के

12 मन्त्रों में सूर्य की विस्तृत स्तुति की गई है। यहां की मुख्य बातें यों कही गईं हैं। ये सूर्यदेव लोगों को देखते हैं, ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं, पुण्यात्माओं के पोषक, सत्यासत्य के ज्ञाता, अदिति के पुत्र व टेढे तथा बिगड़े लोगों को भी सुमार्ग पर लगाते हैं। द्युलोक व पृथ्वी लोक के द्रष्टा तथा सबको सुमार्ग देने वाले हे सूर्यदेव आप हमें सुन्दर जीवन दीजिए, आप ही ब्रह्माण्ड के पालक व रक्षक हैं। 63वें सूक्त में सूर्य नाम से छः मन्त्रों में सूर्य की वन्दना की गई है। यहाँ कहा गया है—अन्धकार नाशक, लोकों का जनक, व समस्त संसार का केतु है, हम ऐसे सूर्यदेव की हवि द्वारा स्तुति करते हैं इत्यादि।

पुन: अष्टम मण्डल के 18वें सूक्त में भी आदित्य नाम से सूर्य की वन्दना की गई है, जो दो मन्त्रों तक सीमित है। इसके 47 वें सूक्त में भी आदित्य नाम से सूर्य का स्तवन किया गया है। यहाँ सूर्य के सम्बन्ध में कुछ विचार इस प्रकार से हैं—ये आदित्य धन के स्वामी हैं, रक्षक हैं बादल को फाड़ कर बरसाते हैं, हे आदित्य आप ही संसार के रक्षक, प्रकाशक व पालक हैं। आपके बिना यह संसार शून्य ही रह जाएगा। एक मन्त्र इस प्रकार से है----

मनो विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो।
व ऊतय: ऊतयो व ऊतय: ।।। ऋ० 8।47।4।।

इस सूक्त के 18 मन्त्रों में सूर्य को प्रधान रूप से रक्षक बताकर उससे गऊओं, घोड़ों व वीर पुत्रों की कामना करते हुए ऋषि ने ऋणमुक्ति की भी प्रार्थना की है। सूर्य उपर्युक्त सब कुछ देते हैं, इसे भली-भाँति स्पष्ट करते हैं। आजकल सूर्य की ऊर्जा पर अधिकार पा लेने से राष्ट्र सब प्रकार से रक्षित, धनाढ्य अत्युच्च बन सकता है। किन्तु धार्मिक दृष्टि से भी सोचने पर इसमें अदृष्ट रहस्यों के दर्शन होंगे। सूर्य की उपासना से सब कुछ उस युग में उपलब्ध होता होगा व आज भी होता ही है, विश्वास की आवश्यकता है। इस मण्डल के 100वें सूक्त में वन्दना के माध्यम से सूर्य की महत्ता का वर्णन है। एक मन्त्र इस प्रकार से है।

यन्महाँ असि सूर्य बलादित्य महाँ असि।
महस्ते सतोमहिमा पथस्पतेऽद्धा देव महाँ असि ।। ऋ० 8।170।1।।

नवममण्डल पूरे का पूरा सोमरस वर्णन से सम्बन्धित है, इसमें स्पष्ट या मुख्यरूप में सूर्य का स्तवन नहीं देखा गया परन्तु प्रसंगवश कहीं कुछ संकेत मिलते हैं। आगे दशम मण्डल के 37 वें सूक्त में पुन: सूर्य स्तुति के मन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें सूर्य की सर्वव्यापकता, दिन विस्तारक, द्युलोक का पुत्र, आकाश की ध्वजा तथा प्रकाश से तमनाशक आदि गुणों के प्रकटीकरण के साथ वन्दना की गई है।

नमो मित्राय वरूणास्य चाक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत।
दूरे दृशे देव जाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ।। ०००

वेद में रहस्यवाद

रहस्य का अर्थ है अतिगूढ़। संसार के साहित्यों में अन्य विषय के साथ एक ऐसे विषय का प्रतिपादन भी रहता है, जो अतिगूढ़ हो। इस गूढ़ का रहस्य समझने के लिए लम्बे चिन्तन या अध्ययन मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता पड़ती है। संस्कृत में इस गूढ़ ज्ञान का प्रचुर साहित्य मिलता है। जैसे—गीता, उपनिषद वेद, वेदान्त इत्यादि। इन ग्रन्थों में इस रहस्य की गूढ़ ग्रन्थियों का आविष्करण अवश्य किया गया है। अब देखना है कि यह रहस्यवाद है क्या वस्तु जिस पर इतना विशाल साहित्य लिखा गया है। प्रस्तुत साहित्य में रहस्य अध्यात्म विश्लेषण का रूप है। आत्मा जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध में अतिगूढ़ ज्ञान का वर्णन अध्यात्म या रहस्य कहा जाता है। रहस्यवाद के अर्न्तगत एक अद्वितीय गहरा चिन्तन प्रस्तुत किया जाता है। वह है ब्रह्म का स्वरूप। इस ज्ञान का मूल उद्गम वेद है। दूसरे शब्दों में सर्वप्रथम वेद ने ही इस विषय पर गहरा चिन्तन किया। उसके अनन्तर पश्चाद्भावी वेद के दूसरे भाग उपनिषद् ने इसका विस्तार से वर्णन किया। फिर गीता पंचदशी, श्रीमद्भागवत, वेदान्तसार आदि अनेक ग्रन्थों में इसी रहस्यवाद का बड़ी गहराई और विस्तार से वर्णन हुआ। यह रहस्यवाद नाम की विद्या एक गहरा विज्ञान है, जिसका आविष्कार भारत ने सर्वप्रथम वेदों के माध्यम से दुनिया के सामने रखा। इस प्रसंग में वैदिक रहस्यवाद का ही एक संक्षिप्त विवरण यहां उपस्थित किया जा रहा है।

ब्रह्म के स्वरूप के बारे में वेद या उपनिषद् ने विस्तार से वर्णन किया है। एक उपनिषद् ने कहा है, जैसे एक मिट्टी के पिण्ड के ज्ञान से सारी मिट्टी का ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म के जान लेने से सारे संसार का ज्ञान हो जाता है। क्योंकि यह संसार ब्रह्म का ही विवर्त है।

ब्रह्म इस जगत का उपादान कारण है। जैसे मिट्टी से असंख्य वस्तुएं बनती हैं उनका बनावटी नाम भेद हो जाने पर भी जैसे वास्तव में वे मिट्टी ही है, इसी प्रकार से चराचर प्रपंच के असंख्य पदार्थ उसी एक ब्रह्म का वास्तविक रूप है।

यही है वेदान्त तथा वेद का विवर्तवाद। उत्तर तापनीयोपनिषद् में ब्रह्म को सच्चिदानंद कहा गया है। अनेक उपनिषदों ने ब्रह्म को आनन्द स्वरूप कहा है, इसी प्रकार भूमा, अव्याकृत ये नाम ब्रह्म के छान्दोग्योपनिषद् में दिए गए हैं। वह रहस्य स्वरूप ब्रह्म ऐसा है जो नित्य शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव होकर सृष्टि का संचालन माया शवलित अपने द्वितीय रूप ईश्वर के द्वारा करता है। वही ब्रह्म आत्मा के रूप में प्रत्येक मनुष्य के अन्दर बैठ कर सृष्टि चक्र चला रहा है, और अविद्या तथा त्रिगुणात्मक होकर तथा अपनी अनन्तता को इनमें छिपाकर सीमित रूप ले लेता है। इस आत्मा को उसका ही मायोपाधिक रूप मानकर छान्दोग्योपनिषद् ने इसके स्वरूप के बारे में यों कहा है—यह आत्मा पापरहित, वृद्धावस्था रहित, मृत्युहीन, कष्ट, भूख, प्यास आदि संसार के सब विकारों से अस्पृष्ट होकर सत्य युक्त है। इसी आत्मा को जानना चाहिए। और इसी का निदिध्यासन करना चाहिए। जो इसे जानता है, वह सब सुखों को प्राप्त करता है। बिजली, वायु, बादल आदि का जैसे शरीर नहीं है, उसी प्रकार से इस आत्मा का भी शरीर नहीं है। यह अंगुष्ठ मात्र स्थान हृदय प्रदेश में विराजमान है। किन्तु अपने वास्तविक रूप में अनन्त ब्रह्माण्ड का रूप है, जैसे वट के बीज में विशाल वट वृक्ष छिपा हुआ है।

इसकी उपासना द्वारा मनुष्य "अहं ब्रह्मास्मि" इस स्तर तक पहुंच कर अमर हो जाता है। इसी आत्मा को पाने के लिए विरोचन जैसे असुर भी प्रजापति के पास पहुंच कर इसका उपदेश सुनाने की प्रार्थना करने लगे। श्वेताश्वेतरोपनिषद् में ब्रह्म प्राप्ति के विस्तृत उपाय बताए गए हैं। इसी प्रसंग में ब्रह्म का वैज्ञानिक रूप भी प्रस्तुत किया गया है। फिर इसी में कहा गया है कि—परम ब्रह्म, वृहत, सब भूतों में विराजमान है। वही सृष्टि की रचना कर उसे अपने गर्भ में छिपा लेता है। उसकी आखें, कान नाक आदि संसार के कण-कण में विराजमान हैं। वह इन्द्रियों से रहित भी सब कुछ देखता है, सुनता है, दौड़ता है, चलता है। वेद कहता है—"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" उस को जानकर मनुष्य मृत्यु को जीत लेता है। और कोई मार्ग इसके अतिरिक्त मुक्ति का नहीं है।

वही अग्नि, वही सूर्य, वही वायु वहीं चन्द्रमा, वहीं शुक्र, जल, प्रजापति और वही ब्रह्म है जैसे :—

"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः तदेव शुक्रं, तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः।"

अध्यात्मोपनिषद् में भी इस रहस्यवाद को यूं कहा है :—

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिद्रः स्वयं शिवः।
स्व ं विश्वमिदं सर्वं तस्यादन्यन्न विद्यते ॥

अर्थात् वह स्वयं ही ब्रह्म, विष्णु, महेश, इन्द्र तथा सारे जगत् का रूप है। उसके अतिरिक्त यहां और कुछ नहीं है। इसी प्रकार केनोपनिषत् में प्रश्नों द्वारा उत्तर के रूप में उस रहस्यात्मक ब्रह्म का व्याख्यान किया गया है। प्रश्न इस प्रकार किया है कि :—

केनेषितं पतति प्रेषित मनः, केन प्राणः प्रथमः प्रैतियुक्तः।
केनेषितां वाचमियां बदन्ति, चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥

अर्थात् किसके द्वारा प्रेरित होकर मन, प्राण, वाणी, आंखें व कान अपने-अपने विषय ग्रहण करते हैं, इसका उत्तर ऋषि ने ब्रह्म के बारे में लम्बा व्याख्यान देकर दिया जैसे :—ये सब इन्द्रियां उसी (ब्रह्म) की प्रेरणा से अपने-अपने विषयों का ग्रहण करती हैं। वहां तक वाणी मन आदि कुछ नहीं पहुंचता वह इतना गम्भीर व रहस्यात्मक है कि जो कहता है कि मैं उसे जानता हूं वह नहीं जानता, जो उसे नहीं जानता, वही जानता है। आगे देखिए :—

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते, तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि वेदं यदिदमुपासते।
यन्मनसा न मनुते भेनाहुर्मनो मतम् तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते।
यश्चक्षुषा न पश्यति येन चंक्षुषि पश्यति तदेव......
यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते तदेव.......

अर्थात् जिसे वाणी नहीं कह सकती अपितु वाणी ही जिसके द्वारा बोलती है, जो मन से नहीं जाना जाता, मन ही जिससे पदार्थ को जानता है, जो आंखों से नहीं देखा जाता, आंख ही जिसकी शक्ति से देखती है। वही ब्रह्म है, जिसकी तुम उपासना करते हो वह ब्रह्म नहीं है।

प्रशनोपनिषत् के अनुसार सुकेशा सत्यकाम अदि छः किशोर पिप्पलाद मुनि के पास आकर ब्रह्मोपदेश के लिए प्रार्थना करने लगे। उनकी प्रार्थना पर ऋषि ने इस सम्बन्ध में जो विस्तृत उपदेश दिया, वह अत्यधिक रहस्यात्मक है। ये छः किशोर ज्यों-ज्यों इस रहस्य के बारे में प्रश्न करते ऋषि जी उनका त्यों ही बड़ी गम्भीरता से उत्तर देते। थोड़ा सा उत्तर निम्न प्रकार से है—

यह आत्मा हृदय में प्रतिष्ठित है, यहीं पर सौ नाड़ियां हैं, प्रत्येक नाड़ी में सौ शाखाएं हैं, प्रत्येक शाखा में बहत्तर हजार सूक्ष्म नाड़ियां हैं। इन सब में व्यान वायु भ्रमण करता है, इनके अतिरिक्त यहां एक और सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। मनुष्य के कर्मों के अनुसार यह कार्य करती है। इस सम्बन्ध में ऋषि ने बड़ा लम्बा रहस्यात्मक व्याख्यान देकर अन्त में ब्रह्म की सार्वभौमिकता, अनन्तता व सर्वव्यापकता सिद्ध की

है। यहीं पर ओंकार को ब्रह्म का दूसरा नाम बता कर उसी की उपासना का गम्भीर निरूपण किया है। ओंकार का यह रहस्य यहां बड़ा वैज्ञानिक बन पड़ा है।

मुण्डकोपनिषत् में भी ब्रह्म की रहस्यात्मकता इस रूप में प्रकट की गई है कि वह ब्रह्म अदृश्य, अग्राह्य, आगोत्र, अचक्षु तथा इन्द्रिय आदि से रहित है। वह नित्य, विभु, सर्वगत और सूक्ष्म है। अन्य उपनिषद् में कहा है "अणोरणीयान्, महतो महीयान्" वह अणु से भी अणु है और महान् से भी महान् है। इस उपनिषद में उसकी रहस्यात्मकता आगे भी गिनाई गई है जैसे वह ब्रह्म दिव्य, अमूर्त, पुरुष, बाहर व भीतर व्यापक अज, अप्राण, अमन, शुभ्र तथा अक्षर से भी परे है।

ऐतरेयोपनिषद में इस प्रकार के गुण वाले आत्मा से सृष्टि की उत्पत्ति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। जो ऋषि की केवल रहस्यात्मकता ही नहीं सूक्ष्म वैज्ञानिकता भी प्रकट करता है। इस उपनिषद् के अनुसार ज्ञान, शक्ति, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धैर्य, मनन, स्मृति आदि सब भाव ब्रह्म के अस्तित्व के ही ज्ञापक हैं। उसी प्रकार तैत्तीरीयोपनिषद् में भी ब्रह्म का रहस्यात्मक वर्णन मिलता है। इसके अनुसार वह असत् था फिर सत् भी हुआ, वह सत्य ज्ञान और अनन्त है इत्यादि।

रहस्यवाद के सम्बन्ध में यजुर्वेद का एक मन्त्र इस प्रकार से है—

वेदाहंमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

अर्थात् मैं उस महान् पुरुष सूर्य के समान व अन्धकार से परे स्थित को जानता हूं; उसी को जान कर मृत्यु को जीता जा सकता है; और कोई मार्ग इस संसार बन्धन से छुड़ाने का नहीं है।

ऋग्वेद की एक ऋचा इस सम्बन्ध में इस प्रकार है कि :—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोरुतबाहुरुत विश्वतस्पात् सम्बाहुभ्यां
धमति साम्पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन्दे व एक:
किंस्विद्वनं क उ स वृष आसयतो द्यावा पृथिवी निष्ठतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिषृद् भुवनानि धारयन्।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल का यह 81वां सूक्त रहस्यवाद पर अद्भुत प्रकाश डालता है। इसका आशय है कि वह अनन्त शक्तिमान् देव सर्वद्रष्टा, प्रवक्ता, सबका रक्षक व सर्वत्र व्यापक है। वह अपनी ज्ञान, क्रिया, शक्ति द्वारा उन अव्यक्त गतिशील तत्वो से द्युलोक, भूलोक, आदि समस्त लोक, लोकान्तरों को उत्पन्न करता है।

यही भाव ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के इस एक मन्त्र में भी अभिव्यक्त किया गया है; जैसे—

इयं विसृष्टिर्यत् आवभूव यदिवादधे यदि वा न ।
भोऽस्याध्यक्षः परमे व्योम्नन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।।

अर्थात् यह विविध प्रकार की सृष्टि जहां से उत्पन्न होती है और जिसके द्वारा धारण की जाती है। तथा जब इसका अन्त होता है या अपने कारण में ही लीन हो जाती है। इस सबका जो अध्यक्ष नियन्ता, सर्व व्यापक परमात्मा है, वह इसकी वास्तविकता को जानता है। जब यह जगत कारणान्र्तगत होता है, उसको भी जानता है। यह बात तैत्तरीयोपनिषद् में भी इस प्रकार से कही है—

यतो वा भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञास्व तद्ब्रह्म ।।

अर्थात् जिससे सब चराचर प्रपञ्च पैदा होता है जिसका आधार लेकर जीवित रहता है और अन्त में जिसमें लीन होता है उसी ब्रह्म को जान लो।"

रहस्यवाद के बारे में सब वेदों में जो वर्णन मिलता है, उसके अनुसार अनन्त लोक-लोकांतरों तथा अन्य विविध रूपों में संसार कहां तक भी फैला हो वह ब्रह्म की सत्ता के बाहर नहीं है। इसीलिए ब्रह्म को ऋग्वेद में "विश्वतस्पात्" कहा है। उस की सर्वत्र व्याप्ति है। ब्रह्मांड चाहे अनन्त है किन्तु वह सब ब्रह्म का एक अंश मात्र है। ऐसी स्थिति में यह समस्त ब्रह्मांड ब्रह्म से पैदा होता है, उसी में विद्यमान रहता है व अन्त में उसी में लीन हो जाता है । अतः सारा जगत् प्रपञ्च या प्राणी व्याप्ति जगत् उसी का रूप है। जैसे घट मिट्टी का रूप है। रहस्यवाद की यही दार्शनिकता है। दूध व पानी दोनों जब मिल जाते हैं तो उन की एकाकारता के अन्तर्गत दोनों का अभेद हो जाता है। इसी प्रकार जीव आत्मज्ञान द्वारा ब्रह्ममय होकर मुक्तावस्था यानि ब्रह्म की एकाकारता में आ जाता है। यही रहस्यवाद वेदों का मुख्य विषय है, जिसे आज के हिन्दी साहित्य में भी कवित्व के अन्तर्गत अपना लिया गया है। उसके प्रसिद्ध कवि सुश्री महादेवी वर्मा, निराला, पन्त व पूर्व हिन्दी कवियों में कबीर माने जाते हैं। वास्तव में हिन्दी कविता का यह रहस्यवाद वेदों से ही लिया गया है। वेद में ब्रह्म के कई नामों से स्तुति की गई है जैसे इन्द्र, वरुण, विष्णु, मित्र, आदित्यादि। ऋग्वेद के इस मन्त्र में यही भाव प्रकट किया गया है—

यो अवधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना स मधूनि ।
अद्याः प्रियं शूष मिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो वृहदुक्थादवाचि ।।

नासदीय सूक्त में इस ब्रह्म के बारे में कहा गया है—"अनीदवातं स्वधया तदेकं तस्मादन्यन्न परः किञ्चिनास" अर्थात् वह ब्रह्म अबाध गतिवाला, सर्वशक्ति सम्पन्न तथा जगत् का मूल कारण होकर ही विद्यमान है। उसके परे दूसरा कोई नहीं है ।

०००

वैदिक विज्ञान के कुछ मार्मिक संकेत

परम्परा से बात चलती आ रही है कि वेदों में गम्भीर विज्ञान भरा पड़ा है। वैसे तो वेद ज्ञान का भण्डार हैं किन्तु इस में विज्ञान भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। आज के विज्ञान के बहुत से संकेत वेद में पाए जाते हैं, जिनसे अनुमान होता है कि वैदिक युग में भी अपने प्रकार का विज्ञान प्रगति पर था। आज की और उस युग की वैज्ञानिक प्रक्रिया में भले ही अन्तर हो, किन्तु उस युग का विज्ञान भी चरम चोटी पर पहुंचा हुआ था। जिसने गम्भीरता से वेदों का मनन किया हो, इस तथ्य को नकार नहीं सकता। वेदों के मन्त्रों में औषधि, शल्यक्रिया-सर्जरी, विमान, बिजली, समुद्री नौका तथा इंजीनियरी कार्यों के संकेत मिलते हैं, उन की निर्माण प्रक्रिया नहीं। किन्तु इन संकेतों द्वारा वैदिक युग की विज्ञानोन्नति का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। आजकल उपलब्ध वैदिक साहित्य से इन वैज्ञानिक तथ्यों का ज्ञान मिलता है किन्तु यही केवल परम्परा से चलता आया है, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। क्योंकि वेद का बहुत बड़ा भाग लुप्त हो चुका है, जो उपलब्ध है, वह इसका शतांश भी नहीं। प्राचीन ग्रंथों से पता चलता है कि ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएं थीं, अब केवल दो ही मिल रही हैं। कृष्ण यजुर्वेद की पचासी शाखाओं में अब चार मिल रही हैं। सामवेद की हज़ार शाखाओं में अब केवल तीन ही मिल रही हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद की नौ शाखाओं में से अब केवल एक ही शाखा मिलती है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में इस लुप्त हुए विशाल वैदिक साहित्य में विज्ञान और भी अधिक भरा होगा, यहां तक कि वैज्ञानिक आविष्कारों की निर्माण विधियां भी दी होंगी। ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है। किन्तु वर्तमान काल में उपलब्ध वैदिक साहित्य में जो विज्ञान मिलता है, वह भी आश्चर्यजनक है।

वेद मन्त्रों में शब्दों के अर्थ इतने गम्भीर हैं और अनेक हैं, जिससे विद्वान् अपने-अपने मतानुसार उनका अर्थ कर लेते हैं। इसी कारण याज्ञिकों ने मन्त्रों को यज्ञानुष्ठान के अर्थों में लगा लिया, अध्यात्मवादियों ने अध्यात्म में तथा भौतिकवादियों ने भौतिक अर्थों में मन्त्रों के अर्थ स्पष्ट किए। इसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि लेकर वेद मन्त्रों के कई स्थल विज्ञान के साथ भी जोड़े जाते हैं किन्तु यह नहीं

समझना चाहिए कि यह वैज्ञानिक अर्थ कपोल कल्पित हैं। वास्तव में जहां-जहां वैज्ञानिक वस्तुओं के स्पष्ट प्रसंग आए हैं वहां-वहां वे अर्थ भी सर्वसम्मति से संगत ही सिद्ध हुए हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार वेद-मन्त्रों के अर्थ तीन प्रकार से किए जाते हैं आधिदैविक जो देवताओं की स्तुति तथा यज्ञ के पक्ष में लगते हैं, आधिभौतिक जो पार्थिव अथवा सांसारिक पदार्थों के पक्ष में लगाए जाते हैं। आध्यात्मिक जो ईश्वर, जीव, आत्मा, सृष्टि, प्रलय आदि के रहस्य बतलाते हैं। विज्ञान का पक्ष आधि भौतिक मन्त्रों की श्रेणी में आ सकता है। क्योंकि विज्ञान की वस्तुएं भौतिक वस्तुओं से ही बनती हैं। बिजली और जलवर्षण का विज्ञान वेद में वर्षा तत्व का वैज्ञानिक वर्णन है।

अर्ष्टिषेण ऋषि ने यज्ञ में बैठकर आकाश से वर्षा बरसाई जैसे—

"स उत्तरस्मादधरैं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि"

निरुक्त के द्वितीय अध्याय में इस वैदिक मन्त्र में वर्षा बरसाने का प्रकार स्पष्ट है। उस ऋषि ने आकाश के समुद्र से नीचे के समुद्र में बरसाने योग्य पानी बरसाये किस मन्त्र या प्रक्रिया से बरसाये यह विषय विचार करने योग्य है।

वेद में इन्द्र और वृत्र के युद्ध का वर्णन भी इस जल वर्णन के साथ सम्बन्ध रखता है। वृत्र नाम बादल का और इन्द्र से तात्पर्य बिजली का है। निरुक्तकार ने लिखा है—वृत्र कौन है बादल ऐसा हमारा मत है क्योंकि बादल और बिजली का युद्ध होता है उससे वर्षा आती है किन्तु इस घटना को इन्द्र वृत्रासुर युद्ध का नाम दे दिया गया। बिजली मेघ के संघर्षण से वर्षा होने के तत्व से वैदिक ऋषि भली भांति परिचित थे, वेद के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में इस बात को इस भान्ति स्पष्ट किया गया है—जिस प्रकार पणि नामक दत्य ने गऊओं को इकट्ठा कर रखा था, उसी प्रकार बादलों में पानी इकट्ठा हो गया। बिजली ने उस पर प्रहार करते हुए सभी बादल धरती पर बरसा दिए।

अग्नि के सम्बन्ध में भी वेद में कुछ वैज्ञानिक तथ्य मिलते हैं जैसे—ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल का एक मन्त्र इस प्रकार है—

"त्वमद्भयस्त्वमश्मनस्परि त्वं बनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचि:।"

इस मन्त्र के अनुसार अग्नि पत्थर, लकड़ी, औषधियों और पानी में निवास करती है और इन्हीं से पैदा की जाती है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक युग में पानी से

अग्नि निकालने की विधि प्रचलित थी। उस युग में शस्त्र अग्नि की सहायता से बनाए जाते थे, ऐसा ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों से स्पष्ट होता है—जैसे इन्द्र स्तुति प्रसंग में कहा है "तपुर्षी हेतिमस्य" अर्थात् इन्द्र का शस्त्र अग्नि से तपा है। तृष्णीमनु प्रसितिं द्रुणानोऽस्तासि बिध्य रक्षस स्तपिष्टैः" इस मन्त्र में भी अग्नि से तप्त शस्त्रों द्वारा शत्रुओं के संहार का संकेत है। इन मन्त्रों से पता चलता है कि वैदिक युग में ऐसे शस्त्रों का प्रचार अवश्य था जो अग्नि या बिजली से चलते थे। वैदिक मन्त्रों से यह भी स्पष्ट होता है कि अन्तरिक्ष और द्युलोक की अग्नि अर्थात् सूर्य और बिजली से धरती पर आग आकृष्ट की जाती थी।

वैश्वानर नामक आग मध्यम स्थान (आकाश) में रहती है जिसे जातवेदा भी कहते हैं। जब तक वहां रहती है, वह बिजली का काम करती हुई वर्षा बरसाती है। वहां वह पानी से प्रज्ज्वलित होती है और काठ से शान्त होती है। जब वही धरती पर आ जाती है, पानी से शान्त होने लगती है। आज भी काठ पर बैठ कर बिजली की नंगी तारों को छूने से करेन्ट नहीं लगती। यह तथ्य ऋग्वेद के मन्त्रों में संकेतित किया गया है, जिस की व्याख्या यास्क ने निरुक्त ग्रंथ में की है। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि वैदिक युग में अन्तरिक्ष की वैद्युत आग से धरती की आग पैदा करने का कोई यन्त्र प्रचलित था।

आकाश यान विज्ञान :

विमान जैसा कोई आकाश यान उस समय था, ऐसा वेद के अनुशीलन से प्रतीत होने लगता है। स्वयं शुक्ल यजुर्वेद संहिता के सत्रहवें अध्याय के उनसठवें मन्त्र में विमान शब्द मिलता है। वहां सूर्य वर्णन के प्रसंग में ऐसे विमान का चित्रण है, जो द्युलोक तथा अन्तरिक्ष लोक के बीच रह कर उन्हें प्रकाश से भर देता था। वह पूर्व और पश्चिम आकाश के दोनों भागों को प्रकाशित करता था। यह विमान आकाश में उड़ता हुआ भारी प्रकाश पुन्ज भी अपने साथ रखता था, ऐसा प्रस्तुत मन्त्र से प्रतीत होता है। सूर्य के समान गति और तेज़ युक्त होने के कारण इसे सूर्य ही कहा जाने लगा था जैसा कि ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सातवें सूक्त की तीसरी ऋचा से स्पष्ट होता है—

> "इन्द्रों दीर्घाय चक्षसे आसूर्यं रोहयद् दिवि
> वि गोभिरद्रिमैरयत ।"

इन्द्र ने दूर तक दृष्टिपात करने के लिए आकाश पर सूर्य को चढ़ाया और किरणों के द्वारा पहाड़ों को हिला दिया। इस आकाश यान को देखकर लोग आश्चर्य

करते, ऐसा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चौवीसवें सूक्त की सातवीं ऋचा से प्रतीत होता है। ऋषि कहता है राजा वरूण ने बिना आधार के आकाश में एक स्तूप जैसा खड़ा कर दिया है, जिस की किरणें नीचे भी आती हैं और ऊपर भी। आगे की ऋचा में कहा है कि इस यान द्वारा वरूण ने शून्य पर अपने पैर जमा लिए हैं। इसी प्रकार पच्चीसवें सूक्त की ऋचा में फिर ऐसा कहा गया है—वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पततां वेद नाव: समुद्रिय:" अर्थात् वह वरूण आकाश के मार्गों को जानता हुआ इस आकाश नौका को भी जानता है। इस मन्त्र में उस युग के विमान का स्पष्ट संकेत है। निघण्टु और यास्क ऋषि के अनुसार समुद्र आकाश को भी कहते हैं। आगे के मन्त्र में फिर लिखा है कि वरूण हवा के विशाल मार्ग तथा आकाश एवं द्युलोक वासियों को भी जानता है। वैदिक काल का प्रसिद्ध वैज्ञानिक यह वरूण कितना कुछ जानता था, यह जानकर आश्चर्य होता है।

इसके अतिरिक्त दूसरा देवता अश्विनी युगल था, जो आकाश विद्या तथा आकाशीय यानों का निर्माता था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डलीय तीसवें सूक्त की अठारवीं ऋचा में देखिए—"समान योजनों हिवां रथो दस्नावमर्त्य:। समुद्रे अश्विनीयते।" अर्थात् हे अश्विनों तुम्हारा यह दैवी रथ एक समान गति वाला आकाश में चलता है। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में कहा है उर्वन्तरिक्षमन्वेभि अर्थात् मैं विशाल आकाश की ओर जाता हूं। अश्विनी युगल वैदिक इंजीनियर थे जिन्होंने सौ पंखों वाला विमान बनाया, जो आकाश में उड़ता था जैसे—"अनारम्भणे तदवोरयेथाम्" इस मन्त्र का अर्थ है—हे अश्विनी जहां कोई धरती नहीं कोई स्थान नहीं वहां भुज्यु ऋषि को अपनी इस नौका पर चढ़ा कर आप ने घर पहुंचाया। यहां समुद्र का अर्थ आकाश और जल का समुद्र दोनों लिए जावें तो वह नौका आकाश और समुद्र में भी चलती थी।

कुएं को उठाकर अन्यत्र ले जाना :

एक विचित्र वैदिक विज्ञान का संकेत यह भी मिलता है कि इन अश्विनों ने एक कुएं को उठाकर दूसरे स्थान पर स्थापित कर दिया जैसे—"परावतं ना सत्यानुदयेथा मुच्चाबुध्नं चक्रथु:।" इत्यादि मन्त्र में यह तथ्य अत्यधिक स्पष्ट हुआ है।

चिकित्सा विज्ञान :

वेद के एक मन्त्र से पता चलता है कि वैदिक काल में वृद्धावस्था को युवावस्था में परिवर्तित कर देने की भी कोई विधि प्रचलित थी। अश्विनों ने बूढ़े च्यवन ऋषि

को जवान बना दिया और विशाला नामक स्त्री की कटी हुई जंघा फिर शरीर से जोड़ दी। और किसी अन्धे को आंखें दे दीं। सर्जरी के ऐसे चमत्कार वेदों में जहां-तहां मिलते ही हैं।

चिकित्सा विज्ञान के सम्बन्ध में भी वेद में अनेक औषधियों के नाम मिलते हैं, जिनकी विस्तृत सूचि आथर्व में गिनाई गई है, जैसे—अञ्जनम्, अपामार्ग, आपः, कुष्टौषधि: लशरेहणम्, केशवर्धिनी, रोहिणी, वनस्पति, कास शमनम् पृष्णी पर्णी, वाजीकरणम् इत्यादि। अथर्ववेद में सैंकड़ों बीमारियों के नाम तथा औषधियां दिखाई गई हैं।

ज्योतिष :

ज्योतिष विज्ञान के बारे में वेद में अनेक संकेत मिलते हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के पैंतीसवें सूक्त में सूर्य भ्रमण, उदयास्त, राशि विवरण, सूर्य के कारण चन्द्रमा की स्थिति, सूर्य द्वारा पृथिवी को थामने और उस की गति के बारे में वैज्ञानिक बातें कही गई हैं यहां तक कि सूर्य के मार्ग की 5049 योजन लम्बाई भी कही गई है।

संसार की उत्पत्ति :

संसार की उत्पत्ति का विज्ञान वेदों में काफी मात्रा में मिलता है। यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में इस सम्बन्ध में बड़ी चर्चा की गई है। उपनिषदों के अनुसार मुख्य रूप में दो मत प्रधान हैं। पहले में अण्डे से ब्रह्मांड की उत्पत्ति तो दूसरे आत्मा से आकाश, आकाश से वायु से अग्नि, अग्नि से पानी और पानी से धरती की उत्पत्ति की यह प्रक्रिया तैत्तरीयोनिषद में कही गई है। मुण्डकोपनिषद् में यह प्रक्रिया दो प्रकार से कही गई है। प्रथम तपस्या से ब्रह्म स्थूल रूप में आता है। उससे अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से मन, सत्य, लोक, कर्म और कर्म से अभृत संज्ञक कर्म फल पैदा होता है। आगे चलकर दूसरा सृष्टि क्रम इस प्रकार बतलाया है जिस प्रकार जलती हुई आग के चिनगारे सर्वत्र फैल जाते हैं, उसी प्रकार उस अक्षर यानी परब्रह्म से सारी सृष्टि फैल जाती है। एतरयोपनिषद् में सृष्टि विज्ञान दूसरे ही प्रकार से कहा है। ब्रह्म ने देखा मैं अकेला हूं सृष्टि की रचना करूं। उसने सारी प्रकृति और देव जाति बना कर पुरुष की रचना की और उसके मस्तक में से ब्रह्म ने स्वयं प्रवेश किया जिससे पुरुष में चैतन्य भर गया। यजुर्वेद के पुरुष से विराट्, विराट् से अधि पुरुष उससे भूमि आदि पैदा होने का लम्बा वृत्तांत दिया गया है किन्तु ऋग्वेद के

नासदीय सूक्त में इस सृष्टि विज्ञान के बारे में बड़ा गहरा विचार प्रस्तुत किया गया है जैसे सृष्टि के पहले सत् असत् कुछ नहीं था लोक, आकाश, मृत्यु, अमृत, दिन रात, आदि कुछ नहीं था। केवल गहरा अन्धेरा छाया हुआ था। इत्यादि। केवल एक "आयु" तरल पदार्थ था, जिससे ढके हुए चेतन से संसार बना।

यात्रा के वैज्ञानिक साधन :

वेद के ऋ० 5/42/6 में एक ऐसे रथ का संकेत दिया गया है जो वायु वेग से चलता था। यानी उस में वायुं भर दी जाती थी। उसी की प्रबल शक्ति से यह तीव्र गति से दौड़ता था। जैसे प्रवो वायु रथे कृणुध्वम्) एक रथ ऐसा भी दिखाया गया है जिसके तीन प्रकोष्ट थे। उसमें बैठने के लिए तीन कमरे थे। जो एक के ऊपर दूसरा और दूसरे पर तीसरा था। ऐसे अधिक सवारियों वाले रथों को घोड़े तो खींच नहीं सकते थे। अवश्य ही कोई यन्त्र इन्हें चलाता होगा।

एक तीसरे रथ विधुद्रथ का संकेत भी वेद में मिलता है। यह रथ बिजली से चलता था। ऐसा ही निधुद् यान वेद के समय में प्रचलित था। इसी प्रकार एक अन्य रथ का नाम अनश्वरथ इस वेद में मिलता है। यह रथ भी बिना घोड़ों के चलने के कारण यन्त्र चालित ही था।

इस विवरण से पता चलता है कि आज की कार (मोटर) के समकक्ष वेद में कुछ यान साधन भिन्न-भिन्न प्रकार के आकार के यन्त्र चालित प्रचलित थे, जिन पर जनता यात्रा करती थी। इसी प्रकार एक वैदिक काल के एक अन्य यात्रा साधन का नाम निर्देश किया गया है। वह है "त्रिचक्र रथ" इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसके तीन चक्र होते थे। यह यान भी यन्त्र चालित लगता है क्योंकि इसमें घोड़ों का कहीं संकेत नहीं आया। मन्त्र का भाव यह है--तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त तथा तीन प्रकार के घेरों वाले रथ के साथ है देवो मेरे यज्ञ में आ जाओ।

ऋग्वेद में एक यन्त्र चालित यान "कार" के नाम से सम्बोधित किया गया है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—नदी या समुद्र तरंग पर स्थित, क्रांत दर्शी, ज्ञानी शिल्पी और अन्यत्र प्रशंसनीय (चालक) "कार" को समुद्र की लहरों पर धारण करता हुआ सब को चलाता है। यहां कार शब्द से आधुनिक कार या मोटर जैसा कोई यान साधन नहीं समझना चाहिए जो धरती पर चले। यह वैदिक कार तो ऐसा यान साधन है, जो समुद्र की लहरों पर चलता था।

एक अन्य रथ का वर्णन भी ऋग्वेद में है जो बिना घोड़ों का होकर तीन चक्रों

वाला आकाश में उड़ता था। यह रथ घोड़ों से हीन है, बेरोक टोक चलने के कारण प्रशंसनीय है। इसके तीन चक्र हैं और यह आकाश में दौड़ता है। ऐसे हैं ऋभु देवता जिन्होंने इसे बना कर आकाश और धरती को एक कर दिया अर्थात् यह आकाश और धरती दोनों पर चलता है।

इसी प्रकार वेद के अन्य अनेक स्थलों पर यात्रा के यांत्रिक (मशीनी) साधनों के विचित्र वर्णन मिलते हैं, जिन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि ऋग्वेद काल में हमारा यह विज्ञान आज के विज्ञान से भी आगे बढ़ा हुआ था।

वायुयान का वर्णन तो वेद में बारह बार भिन्न-भिन्न स्थलों पर मिलता है।

ooo

एक वैदिक डोगरी जाति नाद

यद्यपि जम्मू प्रदेश अति प्राचीन काल में वैदिक ऋषियों की कर्म भूमि रहा था किन्तु आजकल इस तथ्य को बहुत कम लोग जानते हैं कि यहां की कुछ जातियों के वेद में संस्मरण भी हुए हैं। कुछ तो वैदिक नाम आज की डोगरी में भाषायित हो गए हैं यानी तद्भव और कुछ नाम तत्सम के रूप में मिलते हैं। वेद का द्रुह्यु शब्द अब यहां द्रोड़ा बन गया है जो यहां की एक जाति विशेष है। किन्तु नाद शब्द में थोड़ा ही परिवर्तन हुआ है। नाद को वेद में नादेय कहा गया है। नाद डुग्गर प्रदेश की एक ब्राह्मण जाति है, जो अधिकतर अम्ब गढोटा और अखनूर में पाई जाती है। इसका संस्मरण वेद में आया है। जैसे शुल्क यजुर्वेद की माध्यदित संहिता के अध्याय सोलह के सोलहवें पृष्ठ में कुछ विशेष जातियों को नमस्कार की गई है वे जातियां काटय नीत्य और नादेय हैं। नादेय तो आज की नाद जाति ही है। इसे वेद में नमस्कार की गई है। नाद शब्द का व्याकरण के अनुसार अर्थ है 'नदस्य अयं नादेय': यानी जो नद (नदी) से सम्बन्ध रखता हो, उसे नाद कहते हैं स्पष्ट है कि चिनाव के किनारे पर रहने वाली इस जाति का नाम नाद पड़ गया था किन्तु यह इतना अधिक प्राचीन नाम है, जिस का उल्लेख वेद में हुआ है। वेद तो अत्यन्त प्राचीन हैं। उनमें भी ऋग्वेद दुनियां के साहित्य में सब से पुराना है। उसमें भी नाद जाति के पूर्वजों का स्मरण आंगिरा ऋषियों के रूप में किया गया है, जो अत्यन्त विचित्र और आश्चर्यकारी है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त 109 में 202 का अर्थ इस प्रकार है—हमारे पूर्वज अंगिराओं ने अपने स्तोत्रों और मंत्रों द्वारा बड़े-बड़े पर्वतों को हिला दिया। तथा आकाश में हमारे चलने के लिए मार्ग बनाया और उसे विशाल कर दिया। वे स्वर्ग सूर्य और पर्यास्विनी गायों को जानते थे।

इस उपर्युक्त ऋग्वेदीय मंत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है कि डुग्गर की इस ब्राह्मण नाद जाति में पूर्वजों ने ऐसी मन्त्र-सिद्धि प्राप्त की थी, जिससे वे आकाश मार्ग में घूमते थे, सूर्य के दर्शन करते थे। और स्वर्ग लोग तक भी पहुंचते थे। पयास्विनी गायें तो गालोक में हैं वहां जाकर उन्हें देखते थे। आंगिराओं

का वर्णन ऋग्वेद के अन्य स्थलों में भी आया है। वहां भी इन की दैवी सिद्धियां और मन्त्र द्रष्टत्व दोनों स्पष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त इस मन्त्र के साथ एक वैज्ञानिक तथ्य भी जुड़ा हुआ है कि इन ऋषियों ने अन्तरिक्ष मार्ग को ढूंढ निकाला तथा वहां की यात्राएं करते रहे। इनके मंत्रों में इतना बल था, जो पर्वतों को भी हिला देता था और आकाश की यात्राएं भी कराता था। इस के साथ ही इन यात्राओं के लिए यान आदि साधनों का भी इन्होंने निर्माण किया होगा।

नाद जाति का गोत्र है पराशर। गोत्र का अर्थ होता है वह ऋषि जिससे कोई वंश चले। यानी नाद जाति का वंश पराशर ऋषि से चला था पराशर शक्ति के पुत्र थे इसीलिये इन्हें शाक्त कहां जाता है। ये वैदिक ऋषि थे। ऋग्वेद में कई सूक्त इन्हीं के नाम से मिलते हैं। उन्हीं सूक्तों में से एक सूक्त के मंत्र में अंगिराओं का स्मरण हुआ है। पराशर ऋषि को अपने पूर्वजों अंगिराओं पर बड़ा गौरव प्रतीत होता है, और उन्हीं से वे स्वयं को गौरवान्वित मानते हुए प्रतीत होते हैं। नाद जाति के सम्बन्ध में इस खोज सम्बन्धी और भी बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि इस जाति का वेद शुल्क यजुर्वेद माध्यन्दित्री शाखा है। सूत्र कात्यायन श्रौतसूत्र तथा ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण (पुस्तक) है।

नाद जाति की श्रेष्टता डोगरी की एक परम्परागत प्राचीन कहावत से भी स्पष्ट है। उसका एक पद ही मुझे याद है वह है—'पत्तल नाद कपूर की सौ विप्रन को मूल' इस कहावत के साथ एक कथा भी जुड़ी हुई है। जो इस प्रकार है कि एक बार किसी नाद ब्राह्मण के घर लड़की की बारात आई बारात समझती थी कि ब्राह्मण गरीब है उन्हें कोई बड़े पदार्थ तो खिलाएगा नहीं। साधारण भोजन ही होगा। जब बारात खाने बैठी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा यह देखकर कि सब पत्तलें और डोने चांदी के हैं और उन पर अनेक प्रकार के बहुमूल्य खाद्य पदार्थ परोसे जा रहे हैं तभी किसी के मुख से यह कहावत निकली जो ऊपर लिखी गई है। इस का भाव यह है कि नाद जाति कपूर की पत्तल के समान बहुमूल्य और सौ ब्राह्मणों में अपना विशेष स्थान रखती है।

पाराशर ऋषि अठारह पुराणों महाभारत तथा श्री पदागवत के रचयिता भगवान व्यास के पिता थे, जो दिव्य दृष्टि सम्पन्न मन्त्र द्रष्टा तथा ज्योतिष के महान विद्वान थे। ज्योतिष पर रचे गए इनके ग्रंथों में अब केवल दो ही मिलते हैं। एक लघु पाराशरी दूसरा वृहत पाराशरी। दोनों फलित ज्योतिष के मानक ग्रंथ हैं। इस प्रकार की वैदिक ब्राह्मण जाति नाद डुग्गर प्रदेश की ऐसी जाति है जिसके वैदिक

कालीन पूर्वज महान् ऋषि वैज्ञानिक खगोल विद्या विशारद ज्योतिष शास्त्र के पंडित तथा मंत्र दृष्टा थे जिन्हें ऐसी वेद मंत्र-सिद्धि प्राप्त थी, जो पर्वतों को हिला देती थी और आकाश तथा द्युलोक के मार्गों पर अधिकार प्राप्त कर लेती थी।

आज इस जाति के युवकों में उन्नति करने की अथाह इच्छा तथा महत्वाकांक्षा के साथ बुद्धि वैभव भी प्रबलता में देखा जाता है किन्तु इसके साथ यह देखकर दुःख भी होता है कि ऐसे महान् ऋषियों की यह सन्तान अब संस्कृत भाषा और वैदिक ज्ञान से बहुत दूर चली जा रही है। जहां तक मैं जानता हूं आज इस जाति ने भले ही भौतिक उन्नति कुछ की है और सोत्साह प्रयत्नशील भी हैं किन्तु संस्कृत के क्षेत्र से अभी यह बहुत दूर पड़ी हुई है। इसे अपनी इस धरोहर के पास आना ही चाहिए।

दूसरी दुःख की बात यह है कि आज यह जाति अपने ही समाज में कलह के कारण एक दूसरे से टूट रही है। इस समय इस जाति के दो आदर्श विशेष रूप से अपनाने हैं एक कलियुग में संघ में शक्ति होती है, यह समझना दूसरा संस्कृत भाषा की शरण में आना इसी में इसके उज्ज्वल भविष्य की किरण छिपी हुई है।

आज इस जाति के कुछ परिवारों में परस्पर द्वेष, वैर, कलह तथा संस्कृत से अरुचि ये बातें आ गई हैं। जिन्हें देख कर मुझे दुःख होता है। ०००

समकालीन संदर्भ में वैदिक साहित्य की उपयोगिता

भारत की मूल स्थिति का चित्र व चिन्तन, जिसकी आज के युग में, हमारे देश को समृद्धि, नैतिक जीवन, शिक्षा व जन-संस्कार के सन्दर्भ में अत्यन्त अपेक्षा है, वेद में ही मिलेगा। इस समय हमारे राष्ट्र के आगे जो दैनन्दिन नई-नई समस्याएं जैसे आतंकवाद, अलगाववाद, नैतिक मूल्यों का ह्रास, भ्रष्टाचार, दिशाहीनता, हिंसा, महंगाई, भोगवाद, धन लिप्सा, अराष्ट्रीयता आदि पैदा हो रही हैं, उन का निदान राजनैतिक उपायों से देख लिया गया है। इससे अभी तक कुछ नहीं बन पाया है। और समस्याएं अधिक उग्र रूप धारण करती चली जा रही हैं, जिनके कारण विखडन, अराजकता और टूटन की ही आशंकाएं पैदा हो रही हैं।

अब सोचना यह है कि इन सब समस्याओं को दूर करते हुए हम अपने राष्ट्र को किस प्रकार संगठित, समृद्ध, सुखी और देश विदेशों में गौरवपूर्ण बना सकते हैं। सर्वप्रथम हमें अनेकता में एकता और सुशासन की स्थापना की आवश्यकता है। इसके साथ ही शिक्षा में परिवर्तन और उसे भारतीयोन्मुख बनाना, युवाओं को एक सांस्कृतिक, चारित्रिक व राष्ट्रीय दिशा देनी इत्यादि कार्य भी सर्वप्रथम हैं।

इस समय हमारे देश की जो विषम परिस्थितियां चल रही हैं, उनका निदान वैदिक साहित्य में ही ढूंढा जा सकता है। उसका भी एक प्रकार है, जिस का दिग्दर्शन इस लघु निबन्ध में किया जाएगा।

यह तो स्पष्ट है कि जिस देशवासी को अपने देश का मूल इतिहास, धर्म, संस्कृति व चिन्तन तथा आचार, व्यवहार का पता न हो, वह अपने देश के प्रति न तो निष्ठावान् बन सकता है, न राष्ट्रीय और न अपने राष्ट्र के प्रति गौरव अनुभव करने वाला होता है। इसलिए बाल्यावस्था में ही मनुष्य को सर्वप्रथम अपने देश के सम्बन्ध में इन बातों की शिक्षा दी जाती है, जो उस देश के मूल सांस्कृतिक साहित्य में निहित रहती है। भारत की मूल संस्कृति, मूल स्वरूप और मूल चिन्तन तथा आचार व्यवहार का मुख्य कोष है वैदिक साहित्य। उसके पढ़े बिना मनुष्य का राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चरित्र नहीं बन सकता।

अब हमें भारत की इस मूल स्थिति और संस्कृति को आधुनिक उपयोगिता के रूप में देखने के लिए कुछ नीचे लिखे वैदिक तथ्यों पर विचार करना है।

1. वैदिक भूगोल—पर्वत, नदियां, समुद्र, भिन्न-भिन्न प्रदेश, आर्यों का निवास, आर्य सभ्यता, जाति, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीयता, राजनैतिक स्थिति व धार्मिक जीवन।

सृष्टि के आदिकाल में जब वेद प्रकट हुए थे तो सर्वप्रथम ऋग्वेद का जन्म हुआ। इसलिए यह रचना संसार की प्रथम रचना मानी जाती है, इसमें भारत के भूगोल के बारे में कुछ संकेत मिलते हैं। सर्वप्रथम लीजिए नदियों को ही। वेद में 'सप्त सिन्धवः' शब्द अनेक बार आया है। ये सात नदियां शतुद्रि, विपाश, परूष्णी, वितस्ता, असिक्नी ये पांच तो हैं ही सम्भवतः सिन्धु व सरस्वती इन दो को मिला कर वेद में 'सप्त सिन्धवः' कहा गया हो। ऋग्वेद के ही एक दूसरे मन्त्र में दस नदियों के नाम गिनाए गए हैं। जैसे—

> इमं मे गंगे यमुने सरस्वति
> शतुद्रि स्तोमं सचता परूष्ण्या
> असिक्न्या मरूद्वृधे वितस्तयाऽ
> जीर्कीये शृणुष्वा सुषोमया

इस नदियों की सूची में जिन नदियों का नाम निर्देश है, उनका अति संक्षिप्त परिचय भी वैदिक रीति के अनुसार इस प्रकार है—

इस मन्त्र में गंगा का निर्देश स्पष्ट है। अन्यत्र ऋग्वेद के 6।45।31 स्थल पर भी गांगेय शब्द का प्रयोग मिलता है। इसका अर्थ है, गंगा के तीर पर उत्पन्न होने वाला। यहां भी गंगा नदी का ही संकेत मिलता है। यमुना नदी का नाम यहां के अतिरिक्त ऐतरेय तथा शतपथ ब्राह्मण में भी आया है। किन्तु सरस्वती नदी के सम्बन्ध में कुछ विचारणीय बातें हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में सरस्वती का वर्णन एक महती वेगवती नदी जो किनारों को तोड़ती हुई चलती है, के रूप में वर्णन आया है। उस समय यह यमुना तथा शतुद्री (सतलुज) के बीच बहती हुई समुद्र में गिरती थी, किन्तु आगे चलकर यह नदी मरुभूमि के रेत में सूख गई या अन्तर्गामिनी हो गई। आजकल इसे पटियाला के आसपास सुरसुति के नाम से पुकारा जाता है। पुराणों के अनुसार यह अदृश्यावस्था में ही प्रयाग त्रिवेणी से आ मिलती है। ऋग्वेद काल में यह नदी अत्यन्त प्रखर थी और पश्चिम समुद्र में जाकर गिरती थी। ताण्डय महाब्राह्मण में इसके लुप्त होने और जैमिनीय ब्राह्मण में इसके पुनः प्रकट होने के

---

1. 25।12।16, 2. 4।26।12

स्थान का उल्लेख भी मिलता है। लुप्त होने के स्थान को "विनशन" और प्रकट होने के स्थान को "प्लक्ष प्राश्रवसन" कहा गया है। जिसे आज रावी कहा जाता है। इसी के किनारे पर वेद का प्रसिद्ध युद्ध दाशराज युद्ध हुआ था। इसमें महाराज सुदास ने विरोधी सेनाओं को परास्त किया था। वर्त्तमान चन्द्रभागा या चिनाव को ही वेद में असिन्की कहा गया है। मरूद्वृधा चिनाब नदी का एक भाग है जो जम्मू व किश्तवाड़ के मध्य में आकर चिनाब में मिल जाता है। आर्जीकीया सिन्धु नदी की एक शाखा जैसी है जो किसी स्थान पर इसी में मिल जाती है। निरूक्तकार यास्क ने ठीक कहा है।

सुषोमा को आजकल सोहन नदी के रूप में पहचाना जाता है, जो अटक जिले में बहती है, इसी प्रकार तृष्टमा, सुसर्तु, रसा, श्वेनी, गोमती, सरयू आदि नदियों के नाम भी वेद में मिलते हैं।

समुद्र (क)

वैदिककालीन ऋषि समुद्र से परिचित थे। इसमें एक प्रमाण **मुक्ता** शब्द का है, जो वेद में मिलता है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि वैदिक काल में आज के राजस्थानीय रेतीली भूमि पर समुद्र लहराता था। अब भी इस धरती के खोदने पर कहीं-कहीं नमकीन पानी मिलने लगता है। बिहार व उत्तरप्रदेश के मैदान भी उस समय समुद्र के किनारे थे। भारतीय आदि आर्य समुद्र से परिचित ही नहीं थे, बल्कि समुद्र में नावें भी चलाते थे। शायद इनसे विदेशों में व्यापार भी होता था भुज्यु के समुद्र यात्रा करते बीच में उसकी नौका टूट गई, उसने अश्विनी कुमारों की स्तुति की उन्होंने आकर उसे बचाया। सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है—

अनारम्भणे तदवीरयेथाँ मनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना अहथुर्भुज्यु मस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥

प्रदेश (ख)

वैदिक साहित्य में भारत के अनेक प्रदेशों के नाम उस युग की वैदिक भाषा में दिए गए हैं, जो आज भी वैसे ही प्रचलित हैं। प्राज्य, उदीच्य, कुरू,[1] पाञ्चाल,

---

(क) प्रदेश:—1. ऐतरेय ब्राह्मण 8।3 शनपत ब्राह्मण 1।7।2।8
(ख) समुद्रः—ऋग्वेद 1।71।7, 1।190।6, 2. ऋ० 1।16।5

उत्तर कुरु[1], गांधार[2], कम्बोज, कीकट, वाल्टिक तथा वाहीक मिलते हैं।[3] इसी प्रकार मद्र महावृष आदि कुछ प्रदेशों के नाम वेद में मिलते हैं। प्रमाण स्वरूप मन्त्रों का एक भाग यहां उपस्थित किया जाता है—

1. गांधारिभ्यो मूजवद्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्य: (छांदोगा 6।14।1)

2. इस वाक्य में गांधार मूजवद् अङ्ग (आसाम) तथा मगध प्रदेशों के नाम आए हैं।

मद्र प्रान्त की राजधानी शाकल (आज का स्यालकोट, जो अब पाकिस्तान में है) थी। इसी स्थान पर ऋग्वेद की शाकल संहिता ऋषियों के हृदय से प्रवाहित हुई। यह हिमालय के उत्तर में पड़ता है (परेण हिमवन्तम) इसे उत्तर कुरु भी कहा जाता था। जिसका प्रमाण ऐतरेय ब्राह्मण (8।3।14) में मिलता है। मूजवत् कौन स्थान था, इसका निश्चय नहीं हो पाता। शायद सोम वल्ली का उद्गम स्थान मूंजवान् पर्वत से इसका सम्बन्ध ही छांदोग्योपनिषद् के अनुसार महर्षि रैक्व यहीं के थे।

अथर्ववेद, शतपथ ब्रा०, जैमिनीय ब्रा० तथा वृहदारण्यक ग्रंथों में काशी का नाम भी सम्मिलित मिलता है, जिसे आजकल काशी या वाराणसी कहते हैं। यह परम्परा से संस्कृत विद्या का केन्द्र रहती चली आ रही है। इसके अतिरिक्त कुरुक्षेत्र, त्रिप्लक्ष (त्रै० आ० 5।1।1) तथा नैमिष का नाम भी वेद में आया है।

(ग) भारत में आर्य

भारत में आर्यों का आगमन कब हुआ यह प्रश्न एक विवादग्रस्त है। हमारे मत में तो यह आर्यों का आदि निवास स्थान है, किन्तु विदेशी विद्वानों के अनुसंधानों पर चलने वाले भारतीय विद्वान् भी आर्यों का मध्य एशिया आदि देशों से आकर यहां बसना मानते हैं। इस प्रश्न का अधिकतर सम्बन्ध भी वेद के साथ ही है। वेदों के प्रमाणों के अनुसार आर्यों का आदि स्थान भारत-भूमि ही सिद्ध होता है। वेद में सिन्धु नदी के प्रबल वर्णन से पता चलता है इसी के आस-पास आर्यों का प्रथम निवास था। इस नदी को महान् वेगवती, गर्जनशील, स्वपावा, सुरथा, उर्णावती आदि बड़े-बड़े विशेषण दिए गए हैं। ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल में 61 सूक्त से यह सिद्ध होता है

---

1. ,, ,, 8।14 2. ऋ० 6।53।14,
3. ऋ० 1।12।26।8

कि गोमती[1] नदी के आसपास भी आर्यों के आवास थे। सरस्वती सिन्धु, गंगा आदि नदियों के जो स्वाभाविक व सुन्दर चित्रण किए गए हैं, में वैदिक युग, जो आज से पचासों हज़ार वर्ष पूर्व था, से सम्बन्ध रखते हैं। इन नदियों की उस युग की स्थितियां बड़ी उन्नत व प्रबल थीं, इसी से आर्यों की भारत में अति प्राचीनता सिद्ध होती है, वेद में ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिलता कि आर्य लोग बाहर से आए थे। संस्कृत भाषा का विश्व की भाषाओं पर प्रभाव देखकर कुछ विद्वान् आर्यों के बाहर से आने का अनुमान करते हैं, जो युक्तियुक्त नहीं। संस्कृत का प्रचार ही भारत से चलकर अन्य देशों में होने के कारण वहां की भाषाएं संस्कृत से प्रभावित हो सकती हैं।

ऋग्वेद में भारत की जिस सौन्दर्यपूर्ण और ममता भरे शब्दों का वर्णन मिलता है, उससे आर्यों का बाहर से आना सिद्ध नहीं हो सकता। पूर्वापर समुद्रों के चित्रण का एक उदाहरण इस प्रकार है—

वातश्वासो वायोः सखाय देवेषितो मुनिः।
उया समुद्रा वा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः। ऋ० 10।136।5

नदियों के समुद्र में गिरने के प्रसंग बहुतायत से वेद में मिलते हैं। पर्वतों का वर्णन भी पर्याप्त हुआ है। वैदिक आर्य चार समुद्रों से भलीभांति परिचित थे। जैसे—

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोन।
विश्वतः आ पवस्व सहस्त्रिणः॥ ऋ० 7।33।6

किन्तु उस समय भी कुछ ऐसे वर्ग थे जो वैदिक रीति-नीति के विरुद्ध होकर अपने-अपने सम्प्रदाय चलाते थे। उन्हें अनार्य या दस्यु कहा जाता था। ये शब्द वेदों में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। कभी-कभी अनार्यों या असुरों का आर्यों से युद्ध भी हो जाता था, जैसे पंजाब की भूमि पर लड़ा गया राजा सुदास के नेतृत्व में दाशराज युद्ध।

वेद में आर्य वर्गों के अनेक नाम आए हैं, जिन से हमें पता चलता है कि उस समय भारत की संस्कृति इस पूरे देश में व्यापक थी। उत्तर से हिमवान पर्वत से लेकर दक्षिण में मुञ्जवान् पर्वत तक तथा उत्तर पश्चिम में कुभा नदी, जो काबुल में बहती है, तक आर्य लोग फैले हुए थे। ये कुछ आर्य वर्ग इस प्रकार है—पञ्चजन इस शब्द में आर्यों की पांच श्रेणियां दिखलाई गई हैं—देवता, गन्धर्व, मनुष्य, अप्सरा, निषाद

1. एषतेतिरथवीतिर्भधवा गोमती रनु पर्वते ष्वाश्रितः ऋ० 5।61।19

पञ्चगम्। इन्हें वेद के अन्य ग्रंथों में पञ्च कृष्टयः, पञ्च क्षितयः आदि नामों से भी कहा गया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु तथा पुरू में पांच वर्ग आर्यों के दिखाए गए हैं। मन्त्र अग्र प्रकार से हैं—

यदीन्द्राग्नि यदुषु तुर्वरेषु यद द्रुह्यष्वनु तुरुषुस्थः। इत्यादि ऋ० 1।108।8 इसके अतिरिक्त तृत्सु, सुदास, दिवोदास, पुरूकुत्स, त्रसद, दस्यु, करू श्रवण, उपय श्रावस आदि आर्यों के प्रबल राजाओं का वेदों में उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार ऋंजय, क्रिवि, वृचीवन्त, नहुष, भरत आदि आर्य जातियों के नाम भी वेदों में मिलते हैं और इसी प्रकार पुरुमीढ़ अम्पावर्ती, मनुसावर्णी ऐसे राजाओं के नाम भी मिलते हैं। वेद में दस्यु और दास ऐसे दलों के साथ सम्बन्ध रखते हैं जो अन्य सम्प्रदाय के थे और यज्ञ को नहीं मानते थे। वे भी आर्य ही थे, किन्तु आर्यों की मर्यादाओं को छोड़ चुके थे। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान् जो यह कहते हैं कि ये ही भारत के आदिवासी थे आर्यों ने बाहर से आकर इन्हें खदेड़ दिया, बिल्कुल भ्रान्त धारणा है। सारे वैदिक वाङ्मय में यह कहीं स्पष्ट नहीं मिलता कि आर्य बाहर से आए थे और दास या दस्यु यहां के आदिवासी थे। इन दासों के कुछ महापुरुषों के नाम वेद में मिलते हैं; जैसे शुष्ण, शम्बर, वेवसु, तुभ्ज, बचमुरि, तथा अर्बुद। इन नामों से ही इनका आर्य होना सिद्ध होता है। इनमें शम्बर विशेष शक्तिशाली पुरुष था, जिसके पास निन्यानवे या सौ दुर्ग थे; जो पहाड़ों पर बनाए गये थे। इन्द्र की सहायता पाकर राजा दिवोदास ने कई बार इससे युद्ध किए और किलों को भी तोड़ा। इस सम्बन्ध में एक मन्त्र भाग हैं—

देवकं चिन्मन्यमानं जघन्थाऽव
त्मना वृहतः शम्वरं भेत्।

जो व्यापार से जीविका चलाते थे उन्हें पणि कहा जाता था। ये एक प्रकार के बनिये थे। इनके बारे में बहुत कुछ कहा गया है ऋग्वेद में, तथा देवों से प्रार्थना की गई है कि वे इनके हृदयों को कोमल बना दें, जिससे ये लोग लोक कल्याण के लिए उदारतापूर्वक धन दें। ये लोग ही बाद में नावों द्वारा समुद्रतरण करके विदेशों में जा बसे और फिनिगिया कहलाए ऐसा डा० अविनाश चन्द का मत है।

इसी प्रकार वेदों में समाज और उसकी दशा, विवाह प्रथा, नारी महत्व, सामाजिक जीवन, धर्म, सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा, अध्यात्म ज्ञान, विज्ञान आदि तत्त्वों पर पूरा प्रकाश मिलता है। जिससे पता चलता है कि सृष्टि के आदिकाल के इस साहित्य में भारत कितना उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था। पाश्चात्य सिद्धान्तवादी या उनके अनुसार भारतीय विद्वानों का पत्थर युग सम्बन्धी चिन्तन, तथा वानर से मनुष्य का विकास ये दोनों विचार यही निरस्त हो जाते हैं, जब हम लाखों वर्ष पूर्व

की अत्युन्नत वैदिक सभ्यता के दर्शन वेद ग्रन्थों में करते हैं। वर्तमान युग की प्रगति व नवीन आविष्कार का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो वेद में न मिलता हो किन्तु स्थानाभाव व समयाभाव के कारण वह सब कुछ इस निबन्ध में देना असम्भव है। वैदिक युग के कुछेक आविष्कार और प्रगति के उपकरण ही यहां संक्षेप से दिए जा सकते हैं। विज्ञान—हम सीमित अध्ययन के कारण ही आज के विज्ञान की चकाचौंध में भूलकर मान बैठते हैं कि प्राचीन भारत में पत्थर युग, धातु युग आदि ही प्रधान थे, यह चामत्कारिक विज्ञान कहा ? किन्तु जब हम वेद पढ़ते हैं तभी हमारे सामने उस युग के विज्ञान के इतने ऊंचे चमत्कार हमें मिलने लगते हैं कि जिनके आगे आज का विज्ञान फीका लगने लगता हैं। इस सम्बन्ध में कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत करूंगाविस्तार भय से।

आर्ष्टीषेण ऋषि ने धरती पर बैठ कर आकाश से वर्षा खींच लाई। अग्निवास के कई स्थान वेद में दिखाए गए हैं, उनमें प्रसिद्ध पत्थर, लोहा, लकड़ी, जल व गोबर हैं। जल से अग्नि निकालने का उपाय भी ऋषि जानते थे और उन्होंने पहली बार जल में अग्नि का अन्वेषण किया, उसी संकेत पर आज के वैज्ञानिकों ने जल से अग्नि का निकालना प्रारम्भ किया। काठ पर बैठ कर विद्युत करण्ट नहीं लगती यह रहस्य भी वैदिक ऋषि जानते थे। यास्क ने अपने निरूक्त में इस सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट किया ही है।

विज्ञान शब्द का प्रयोग वेद में अनेक बार मिलता है, शुक्ल यजुर्वेद के सत्रहवें अध्याय के उनसठवें मन्त्र में भी यह तथ्य देखा जा सकता है। सूर्य के स्तुति प्रसंग में एक ऐसे विमान का चित्रण मिलता है; जो पूर्व व पश्चिम आकाश के इन दोनों भागों को प्रकाशित करता था। वह विमान अपने साथ भारी प्रकाश पुंज रखता था। इस मन्त्र द्वारा यह तथ्य स्पष्ट होता है।

"इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे गोभिरद्रिं भैरयत"

अर्थात दीर्घ दृष्टि प्रदानार्थ इन्द्र ने सूर्य नामक विमान आकाश पर चढ़ाया जिस विमान ने किरणों द्वारा पर्वतों को हिला दिया। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के चौबीसवें सूक्त की सातवीं ऋचा से इस तथ्य की पुष्टि होती है। आगे कहा है कि वरुण देव आकाश के उन मार्गों को जहां तक पक्षी उड़ते हैं, जानता है। और आकाश की नौका को भी जानता है।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् वेद नाव: समुद्रिय:।

यास्क व निघण्टु के अनुसार समुद्र आकाश का भी नाम है। अश्विनों का एक ऐसा रथ था, जो आकाश और पानी के समुद्र दोनों पर चलता था। यह बात ऋग्वेद

प्रथम मण्डल के तीसरे सूक्त की अठाहरवीं ऋचा से स्पष्ट है । यजुर्वेद में कहा है—

उर्वन्तरिक्षमन्वेभि —अर्थात् मैं विशाल आकाश को जाता हूं । अश्विनी युगल वेद कालीन ऐसे इन्जीनियर थे । जिन्होंने ऐसी आकाश नौका बनाई, जो शून्य में चलती थी; ऐसा विमान बनाया, जिसकी प्रकाश किरणों से पर्वत कांपते थे और ऐसी नौका का रथ बनाया जो धरती और पानी में एक साथ चलता था । बूढ़े च्यवन ऋषि को जवान बना दिया । जब कोई देश उन्नति की चरम कोटि तक पहुंच जाता है; तभी उसमें वैज्ञानिक चमत्कार भी पैदा होने लगते हैं । इसी प्रकार राष्ट्रीयता, राष्ट्र प्रेम तथा राष्ट्र गौरव भी उन्नतिशील देशों में ही पैदा होता है । वेद में राष्ट्र प्रेम तथा राष्ट्रीयता के भाव सर्वत्र ओतप्रोत दिखाई देते हैं । शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के नव अध्याय में राष्ट्र के गुणगान मिलेंगे । ऋग्वेद के इन्द्र अश्विनी, ऋभु, वरूण, मरूत इन सूक्तों में भी राष्ट्रीयता और राष्ट्र प्रेम प्रस्फुटित होता दिखाई दे रहा है । राजनीति एक उन्नत देश की धरोहर होती है, वेदों में राष्ट्रीयता के साथ राजनीति भी वर्णित मिलती है । अथर्ववेद में राष्ट्र प्रेम कितना उमड़ पड़ा है, इस सम्बन्ध में एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे ।

अभिवर्धताम् पयसामिः राष्ट्रे न वर्धताम् अथर्व 6।64

अर्थात् जल सम्पदाओं से हमारा राष्ट्र बढ़ें । आजकल नदियों के जलों को इकट्ठा करके बड़े-बड़े डै बनाम कर राष्ट्र को समृद्ध करने के उपाय सोचे जा रहे हैं; यही स्थिति अथर्ववेद काल में भी थी, ऐसा इस मन्त्र से स्पष्ट है । आगे देखिए—

सहस्रमेषां राष्ट्रं पश्यामि समोजो वीर्यः
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाम् अथर्व० 3।19

मैं अपने राष्ट्र को हजारों रूप में उन्नत देखता हूं । मैं इस हविष प्रदान द्वारा, देश के दुश्मनों का नाश करता हूं । इन मन्त्रों में आज के भारत का ही स्वर गूंज रहा है । आगे देखिए ।

एषा क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु एषां चित्रं विश्वेऽवन्तु ।

भाव यह कि हमारा राष्ट्र अजर, अमर और विजयी रहे । यह वेद की भावना आज के भारत की वाणी का ही प्रतिनिधित्व करती है । ऐतरेय ब्राह्मण में राज्यों के भेदों की जो सूची दी गई है—उससे वैदिक भारत का राजनैतिक चिन्तन बहुत उन्नत दिखाई देता है । स्वराज्य, वैराज्य, भौज्य राज्य, पारमेष्टय आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रशासनिक रैलियां उस युग में प्रचलित थीं । स्थानाभाव व समयाभाव के कारण

इस विषय पर अधिक सामग्री होने के कारण भी मैं उसे यहां न देकर केवल सूत्र रूप में ही कुछ तथ्य लिख रहा हूं। इस पूरे निबन्ध के लिखने का मेरा प्रयोजन केवल यही दिखाना है कि वैदिक काल सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, धर्म, राजनीति, देशप्रेम, प्रशासन इत्यादि सन्दर्भों में आज की अपेक्षा बहुत ही आगे बढ़ा हुआ था। आज भारत की अनेक ज्वलंत समस्याओं के समाधान, भारतीय जनता विशेषकर युवा पीढ़ी में राष्ट्रीयता, देशानुराग, चरित्र, आचार, भारतीय सभ्यता और संस्कृति में दीक्षित करने के लिए हमें सर्वप्रथम वेदों के माध्यम से प्राचीन भारत के गौरव की शिक्षा का प्रचार प्रसार करना चाहिए। यही एक मात्र मूल कारण है कि आतंकवाद, अलगाववाद, लूट, अपहरण, हत्या, हिंसा, भ्रष्टाचार, देशद्रोह आदि विकृतियों को दूर करने का जब तक भारतीयों को विशेषकर नेताओं और प्रशंसकों का इस वैदिक युग की गरिमा पर ध्यान नहीं जाता तब तक पाश्चात्य पद्धति के इस प्रशासन और चिन्तन के वातावरण में हमारे देश का भला नहीं हो पाएगा। शासकीय दण्डनीति की अपेक्षा प्राचीन भारत के साहित्य का आदर्श तथा अध्ययन देश की दशा सुधारने में अधिक सक्षम होता है।

उपर्युक्त विवरण द्वारा यह स्पष्ट हो गया होगा कि समकालीन सन्दर्भ में वैदिक साहित्य की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है। ०००

यज्ञ की उपादेयता

यज्ञ संसार की शांति व सुख का एक अमोघ शस्त्र है। प्राचीन ऋषियों ने वैज्ञानिक खोज द्वारा इस का प्रचलन किया था। जिससे संसार के अनेक रोग व कीटाणु नष्ट होते हैं। यज्ञ का धुंआं आकाश में जाकर बादलों को बरसने के लिये प्रेरित करता है। अथवा सूखे की दशा में यज्ञ हवन करने से तथा कई प्रकार की औषधियों द्वारा निर्मित आहनीय द्रव्य की आहुति अग्नि में पड़कर अपनी शक्ति के बल पर बादलों को खींच लाती है, जिससे वर्षा होती है, उससे अन्न पैदा होता है तथा अन्न खाकर पृथ्वी के प्राणी जीवन धारण करते हैं। जैसा कि शास्त्र में भी वर्णित है—

अग्नौ प्रस्ताहुतिर्नित्यमादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।

"अर्थात् अग्नि में डाली गई आहुति सूर्य भगवान् तक पहुंचती है। सूर्य भगवान् द्वारा वर्षा होती है। वर्षा से अन्न पैदा होता है तथा अन्न से प्रजाएं जीवन धारण करती हैं।" यह द्रव्य यज्ञ है। इसमें अनुष्ठान के समय द्रव्य का उपयोग होता है। घी, दूध, दही, अनाज, चरू तदनन्तर अन्न। इस द्रव्य यज्ञ का शास्त्रों में बहुत बड़ा महत्त्व लिखा है।

प्रतिदिन प्रातःकाल चरू या घी द्वारा वेद मन्त्र पढ़कर विधिवत् अग्नि में आहुति देना, दोनों को प्रसन्न करते हुए संसार का कल्याण करना है। इससे बढ़कर और कौन-सा सुकृत हो सकता है। प्रातःकाल इस प्रकार के हवन द्वारा आसपास का वातावरण शुद्ध हो जाता है। सब प्रकार की बीमारियों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति हर्षित हो उठती है। जिन-जिन देवों के नामोच्चारण पूर्वक अग्नि में आहुति डाली जाती है वे-वे देव प्रसन्न होकर वरदान देते हैं। इससे भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होती है। मन प्रफुल्लित दृढ़ और निश्चिन्त होकर दैवी आत्मशक्ति प्राप्त कर लेता है। इसीलिए "शतपथ ब्राह्मण" में इसे "विष्णु" कहा गया है—"यज्ञो वै विष्णुः" ऋग्वेद में यज्ञ को संसार की नाभि कहा गया है अर्थात्—

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (ऋग्वेद) इसी वेद में आगे कहा गया है—तस्याद् यज्ञाद् सर्वहुतऋच: सामानि जज्ञिरे, छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्, यजुस्तस्मादजायत" इत्यादि अर्थात् इस यज्ञ से जिसे सब अपनाते हैं, ऋक्, साम, यजु इन तीन वेदों की उत्पत्ति हुई। शास्त्र में वर्णित है—"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" अर्थात् "वेद सब धर्मों का मूल है।" वही वेद यज्ञ से उत्पन्न होता है। यह दिखला कर वेद ने यज्ञ की अत्यन्त महिमा सिद्ध की है। यज्ञ में स्वाहा, स्वधा, वषट्कार इन शब्दों के प्रयोग द्वारा आहुतियां दी जाती हैं। इसी के अंगभूत अन्न यज्ञादि कार्यों का भी साथ ही अनुष्ठान होता है। जिस से जगत् के प्राणियों को अन्न-पान, मधुर पदार्थ आदि खाने को मिलते हैं। इस प्रकार यज्ञ की बड़ी महिमा शास्त्रों में वर्णित है। महाभारत का इस सम्बन्ध में एक वाक्य इस प्रकार से है—"स्वाहा स्वधा विवर्जितानि श्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि" अर्थात् जिन घरों में ऐसे स्वाहा, स्वधा शब्दोच्चारणपूर्वक यज्ञ नहीं होते वे घर श्मशान के समान हैं।

शास्त्र में धर्म के तीन स्कन्ध वर्णित हैं—यज्ञ, अध्ययन व दान। द्रव्य यज्ञ में दोनों ही आ जाते हैं। अत: ये दो स्कन्ध तो धर्म के इस अनुष्ठान से मिल जाते हैं, शेष रहा अध्ययन यज्ञ के साथ उस का होना भी अनिवार्य है। अध्ययन से ज्ञान प्राप्त होता है ज्ञान से कोई भी क्रिया सुचारू रूप से सम्पन्न हो सकती है। अज्ञान व अश्रद्धा से किया गया यज्ञ, तप व दान कहीं न कही त्रुटिपूर्ण रह जाने के कारण कर्त्ता का अनिष्ट भी हो सकता है। "अध्ययनं परमं तप:" अर्थात् अध्ययन एक बहुत बड़ा तप होता है।

शास्त्र कहता है—यज्ञाद्भवति पर्जय: पर्जन्यादन्न सम्भव: ।
अन्नाद्भवन्ति भूतानि, यज्ञ: कर्म समुद्भव: ॥

अर्थात्—यज्ञ से ही वृष्टि होती है उसी से फिर अन्न उत्पन्न होता है उससे फिर प्राणी उत्पन्न होते हैं और वह यज्ञ भी कर्म से ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार यज्ञ व कर्म की महिमा ही यहां गाई गई है।

यज्ञ के भेद

गीता के चतुर्थ अध्याय में यज्ञ के भेद बड़े सुन्दर प्रकार से विस्तृत रूप में बताए गए है। यज्ञ के इस प्रत्येक भेद की अपनी विशेषता भी वहां दिखाई गई हैं।

वे यज्ञ हैं—1. द्रव्य यज्ञ, 2. तपो यज्ञ, 3. योग यज्ञ, 4. स्वाध्याय यज्ञ, 5. ज्ञान यज्ञ।

इनमें से द्रव्य यज्ञ पर ऊपर प्रकाश डाल दिया गया है। अब द्वितीय स्थान पर

आता है तपोयज्ञ। इसका अर्थ भी स्पष्ट है। तप भी मनुष्य जीवन की महान् उपलब्धि है, बिना तप के किसी का जीवन कभी नहीं बना। उसे भौतिक जगत् में अपने जीवन को बनाने तथा स्थिर करने के लिए जो घोर संघर्ष करना पड़ता है वह एक व्यक्ति के लिए तप होता है इसके अनेक भेद हैं। कोई विद्या के लिए, कोई धन के लिए, कोई यश के लिए, कोई गृहस्थी के सुख के लिए आदि-आदि अनेक दिशाओं में भौतिक जगत् में मनुष्य का संघर्ष उसे तप की ओर ले जाता है। इसी भौतिक क्षेत्र में भी तप के अनेक उद्देश्य हैं। देश सेवा, समाज सेवा, राष्ट्रोत्थान, राजनीति, योजना निर्माण, स्थापन आयोजन आदि के लिए मनुष्य जीवन भर संघर्ष करता है। यह उसका भौतिक तप है। धर्म की दिशा में धर्मोत्थान यज्ञ-यागादि, मन्दिर, धर्मशाला, जलाशय, उद्यान, मार्ग आदि का निर्माण, अन्नदान, देवपूजन, यज्ञ आदि के लिए जो कार्य किए जाते हैं, वे सब इसी भौतिक यज्ञ (द्रव्य यज्ञ) में ही आते हैं। इनसे धर्म का मार्ग बनता है। इस प्रकार के तप को धर्म के लिए किया गया तप माना जाता है।

तीसरा यज्ञ है योग यज्ञ जिसके अन्तर्गत दो प्रकार के योग का अनुष्ठान किया जाता है। पहला यह जो भगवान् कृष्ण जी ने श्री गीता में उपदिष्ट किया है कि "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" अर्थात् हे अर्जुन तुम्हारा कर्म करने का ही अधिकार है उसके फल की इच्छा का नही। कर्म करो उस का फल मत चाहो। इसी सिद्धांत पर श्री कृष्ण ने छः अध्यायों तक अतिगूढ़ उपदेश किया है। यहां विस्तार भय से उनके कहे हुए निष्काम कर्म पर अधिक नहीं लिखा जा सकता। जिज्ञासु जन यह विषय गीता में देख लें व मनन करें।

दूसरा योग वह है जिसके अन्तर्गत योगी निरन्तर योग साधना द्वारा षट् चक्र भेदन पूर्वक अपने प्राणों को ब्रह्म रन्ध्र में पहुंचा कर विराट् के दर्शन करता है। यह सब कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर होता है। यह प्रक्रिया बड़ी गम्भीर व दुर्लभता के साथ अति कठिन है। इसके लिए योग के पार पहुंचे हुए गुरु की आवश्यकता होती है, किन्तु ऐसे किसी एक गुरु का मिलना भी बड़ा असम्भव दीखता है। पातंजल योग शास्त्रानुसार योग का प्रथम द्वार है चित्त वृत्तियों का निरोध करना। योग मार्ग में यह प्रतिक्रिया सर्वप्रथम मानी गई है। अर्थात् "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" चित्तवृत्ति का निरोध ही तो योग है।

चित्त या मन का निरोध कैसे हो यह एक बड़ी महती समस्या है। बर्रे की तरह मन एक स्थान पर नहीं टिकता, उड़ता ही रहता है। ध्यान में बैठे तो इस की उड़ान इतनी तेज हो जाती है कि जिस वस्तु का विचार भी कभी मन में नहीं आया उसी की उस समय स्मृति होने लगती है। योग के भी कुछ नियम हैं। उन्हें पालने पर मनुष्य योगमार्ग में आसानी से प्रवृत्त हो सकता है। वे नियम हैं—"शौच सन्तोषतपः

स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि" अर्थात् योग के प्रारम्भ में शौच, सन्तोष, तप व स्वाध्याय व ईश्वर स्मरण ये पाँच तत्त्व हैं योग के साधक। इसके अनन्तर अन्य तत्त्व भी योग-मार्ग में अपनाने पड़ते हैं, जैसे—मद, मान, मात्सर्य, ईर्ष्या, असूया (गुणों में दोष दिखाना), काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, मान, अपमान हानि, लाभ, सब समान समझ कर इस भूमि पर अपने को जब आरोहित कर दिया जाता है तभी अखंड समाधि और ईश्वर प्रणिधान दोनों की उपलब्धि होती है। इस भूमि पर पहुंचना ही मुक्ति पाना है। मुक्ति तभी मिलती है जब उपर्युक्त मार्ग के अन्तर्गत साधना की जाए। स्वर्ग ऐसी अवस्था नहीं है जिसमें कि जन्म व मरण का बन्धन छूट सके। वह तो ईश्वर के साक्षात्कार से ही टूट सकता है। इसी अवस्था का नाम ही तुरीयावस्था है। जन्म लेना ही महाकष्ट है चाहे अमीरी में हो या गरीबी में, राजा में हो या रंक में वही परम दु:ख का कारण है उसे मिटाने के लिए ही योग की साधना द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार किया जाता है। वास्तव में मनुष्य जीवन इसी के लिए मिला है। इसके अनन्तर किसी भी योनि में आकर मुक्ति पाने का अवसर नहीं रहता। अब समाधि कैसे लगती है। इस का उत्तर भी बहुत आसान है, उपर्युक्त गुण सम्पत्ति के साथ मन को एकाग्र करके ईश्वर चिन्तन से समाध लग जाती है। योग सूत्र का भी यही मत है। जैसे—"समाधिरीश्वर प्रणिधानात्" प्राणायाम से भी मन एकाग्र हो जाता है। जैसे कि योगशास्त्र में भी आता है कि श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम: तत: क्षीयते प्रकाशावरणम्" अर्थात् श्वास प्रश्वास की गति का निरोध ही प्राणायाम है उसके करने से मन पर जो आवरण या अविद्या का पर्दा पड़ा है वह हट जाता है। मन के दो ही आच्छादक हैं। आवरण व विक्षेप। आवरण तो आत्मा पर जो माया का पर्दा पड़ा है, उसे कहते हैं। तथा विक्षेप का अर्थ है मन का विक्षुब्ध या भ्रांत होना। ये दो ही ऐसे निरोधक हैं कि जिनके रहते मन एकाग्र नहीं हो सकता।

स्वाध्याय यज्ञ :

स्वाध्याय यज्ञ के अन्तर्गत अध्ययन (विद्याध्ययन) आ जाता है। विद्या मनुष्य का तीसरा नेत्र है। वेद में लिखा है—"स्वाध्यायोऽध्येतव्य:" अर्थात् स्वाध्याय का अध्ययन करो। "अध्ययनं परमं तप:" अध्ययन ही परमं तप है। नीति शास्त्र कहते हैं कि शस्त्रविद्या व शास्त्रविद्या दोनों एक समान नहीं। शस्त्र विद्या वृद्धावस्था में हंसी का कारण बन जाती है किन्तु शास्त्रविद्या का सम्मान वृद्धावस्था के साथ-साथ ही बढ़ता जाता है। "विद्याधनं सर्वधनात् प्रधानम्" विद्या धन सब धनों में प्रधान होता है। वेद भी कहते हैं कि—"ऋते ज्ञानान्नमुक्ति:" ज्ञान के बिना दु:खों से मुक्ति नहीं मिलती। अविद्वान् पुरुष प्रबल धनवान् होकर भी पैसे का न तो ठीक प्रकार से

उपयोग कर सकता है न ही आती हुई विपत्तियों का निदान ही खोज सकता है। उसमें विद्या के अभाव में बुद्धि का अभाव भी होता ही है और वही भयंकर गलतियाँ कराती है। "ज्ञानयज्ञं विहीनानां विनिपातः पदे-पदे" ज्ञानयज्ञ से हीन पुरुष की पग-पग पर गिरावट होती है। अर्थात् वह भयंकर गलतियाँ कर बैठता है। उसके समक्ष पाप-पुण्य की परिभाषा का स्वरूप नहीं होता। यह स्वरूप शिक्षा से ही तो मिलता है। अशिक्षित क्या जानेगा? क्या कर्त्तव्य क्या अकर्त्तव्य। उसे जिस प्रकार की धर्म धारणा दी जाएगी उसी पर आँख मूंद कर चलेगा अपना विचार तो उसमें होता ही नहीं। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 164 वें सूक्त में ज्ञान की बड़ी महिमा गाई गई है। विद्यावान् मनुष्य ही उन प्रश्नों के उत्तर दे सकता है, जिन्हें वेद मन्त्रों में उपन्यस्त किया गया है, जोकि सृष्टि के अनेक रहस्यों के परिचायक हैं। इस सूक्त के एक मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से है—इस परम सत्ता के पद को जो कोई जानता हो वह इस विषय में आकर हम से कहे। वह परम सत्ता ऐसी विलक्षण है कि इसका प्रकाश ब्रह्मांड में अमृत बांट रहा है। इस की किरणें भुवन पर पानी बरसा रही हैं। इसके पैर उस पानी को पुनः खींच लेते हैं। सूर्य का वर्णन वेद में इस प्रकार किया गया है—सूर्य का बारह अरों वाला (बारह महीने) चक्र चल रहा है, वह कभी बूढ़ा नहीं होता।

इस चक्र ने सारे द्युलोक को व्याप्त कर लिया है। इस चक्र के 720 अरे हैं (एक वर्ष के 360 दिन व रात)। आगे के मन्त्रों में लिखा गया है कि इसी सूर्य ने सारे ब्रह्मांड को अपनी किरणों से थाम रखा है। फिर आगे कहा गया है कि विद्वान् वेद के इन रहस्यों को जानता है वह चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे पुरुष ही समझना चाहिये। जो इस प्रकार की वैज्ञानिक या अन्य शास्त्र सम्बन्धी विद्या नहीं जानता वह अन्धा है और जो जानता है वह पिता का भी पिता है। वह कवि (क्रांतदर्शी) है। फिर वेद प्रश्न करता है कि बताइए यह मन कहां से पैदा हुआ? कौन इस गम्भीर विद्या का प्रवचन करेगा। इसी कारण वेद ने विद्या की प्रशंसा करते हुए मेधा (बुद्धि) की उपासना पर जोर दिया है। वेद में वर्णित है—"यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते तथा मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु। अर्थात् हे अग्नि जिस मेधा की देवतागण उपासना करते हैं, आज उसी मेधा द्वारा मुझे बुद्धिमान् बनाईए। नीति कहती है "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य" अर्थात् वही व्यक्ति बलवान् है जिसके पास बुद्धि हो। बुद्धिमान् न्यायाधीश बड़े-बड़े खूंखार आतंकवादियों व डाकुओं के विरुद्ध निर्णय दे देता है वे उसका कुछ भी नहीं कर सकते। थोड़े से बल वाला व्यक्ति हाथी को अपना वाहन बना कर उसे तीखे अंकुश प्रहारों से जहां चाहे वहीं ले जाता है। इसीलिए नीति शास्त्र का कथन है कि "बुद्धिर्यस्य विराजते सः बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः"

अर्थात् जिसके पास बुद्धि है वही बलवान् है, मोटे-ताजे व बुद्धिहीन पर क्या विश्वास।

गायत्री मन्त्र में भी बुद्धि प्राप्ति की ही प्रार्थना की गई है। विद्या से ही बुद्धि प्राप्त होती है। विद्याहीन बुद्धिहीन ही होता है। वेद के अनुसार विद्याहीन पुरुष उल्लू, भेड़िये, श्वान, गीदड़ व गीध के समान त्याज्य है। जैसे उल्लू ज्ञान का शत्रु है, भेड़िया, श्वान भी परम अज्ञानी हैं, गीध भी उड़कर छोटे जीवों की हिंसा करता है उसी प्रकार अपठित व्यक्ति भी सबके लिए हानिकारक हो सकता है। सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार से है।

उलूक यातुं शुशुलूक यातुं जहि श्वयातुमुत कोक यातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र ॥ ऋ 7।104।22॥

इस मन्त्र में उल्लू, भेड़िया, श्वान, चकवा, गरूड़ व गीध इन छ: प्रकार के प्राणियों वाली वृत्ति रखने वाले अज्ञानी पुरुषों से रक्षा करने की प्रार्थना की गई है। इनके काम ही ऐसे हैं कि जो अन्य प्राणियों को हानि ही पहुंचाते हैं। अपठित होने से अज्ञानी मानव भी अन्यों के लिए हानिकारक ही होता है। उन की अपेक्षा पठित व्यक्ति यदि अपना शत्रु भी हो वह अच्छा है। नीतिकारों ने लिखा भी है कि "पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्नच मूर्खो हितकारक:।" अर्थात् मूर्ख 'हितकारी की अपेक्षा पंडित शत्रु भी श्रेष्ठ है। स्वाध्याय यज्ञ से अज्ञानरूपी सर्पदंश से रक्षा हो जाती है। श्री आदि शंकराचार्य जी ने ठीक ही कहा है—

अज्ञानसर्पदंष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं बिना।
किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मन्त्रै: किमौषधै: ॥ (विवेक चूड़ामणि)

अर्थात् अज्ञानरूपी सर्प द्वारा डसे गए व्यक्ति के लिये ब्रह्मज्ञान के बिना वेद, शास्त्र, मन्त्र व औषधियां कुछ भी नहीं कर सकतीं। यहां ब्रह्मज्ञान का अर्थ ब्रह्म प्राप्ति का ज्ञान या शब्द ब्रह्म अर्थात् विद्या भी लिया जा सकता है। वेद में भी कहा है कि--"अन्धन्तम: प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते" अर्थात् जो व्यक्ति अविद्या (अज्ञान) की उपासना करते हैं वे अन्धकार के लोक में ही प्रविष्ट होते हैं। अज्ञान में डूबते हैं।

भगवान् कृष्ण जी ने भी गीता में कहा है कि—"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" अर्थात् ज्ञान के समान इस संसार में कुछ भी पवित्र नहीं है। वे पुन: कहते हैं कि "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्" अर्थात् ज्ञानी तो मेरी ही आत्मा है। ज्ञान का ही दूसरा नाम स्वाध्याय अर्थात् विद्या है। अत: जीवन में स्वाध्याय यज्ञ की महती आवश्यकता है।

ज्ञान यज्ञ :

ज्ञान यज्ञ के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा सकता है। जिसके सम्बन्ध में ऊपर स्वाध्याय यज्ञ प्रकरण में संक्षिप्त रूप में विवरण दे दिया गया है। विस्तार भय से ज्ञानयज्ञ जैसे परमावश्यक व अनन्त विस्तार वाले इस विषय पर यहां कुछ और अधिक लिखना संभव नहीं है। सूत्ररूप में यह समझ लेना चाहिए कि ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समान होता है। ज्ञानहीन दशा में उसके सब प्रकार के कार्य अधूरे व बिगड़े हुए ही रहते हैं। इसीलिए वेदों, उपनिषदों व गीता में ज्ञान प्राप्ति को ही मुख्य कहा गया है। इस प्रकार द्रव्य यज्ञ, तपोयज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ व ज्ञान यज्ञ इन पांच प्रकार के यज्ञों की क्रमश: उत्तरोत्तर महिमा वेद शास्त्रों में कही गई है। इसके अतिरिक्त भी कोई भी सुकृत यज्ञ के नाम से पुकारा जा सकता है। जैसे अन्न यज्ञ, निर्माण यज्ञ, प्रवचन यज्ञ, पूजा यज्ञ, धर्मप्रचार यज्ञ आदि-आदि। परमात्मा ने भी सर्वप्रथम सृष्टि निर्माण में यज्ञ रचा था, जिस का वर्णन ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में विस्तृत रूप से किया गया है। अध्यात्म चिन्तन के यज्ञ का गीता के चतुर्थ अध्याय में विस्तृत विवरण है ही इसके अतिरिक्त सब उपनिषद् भी इसी अध्यात्म यज्ञ का गुण-गान कर रहे हैं।

०००

संसार की शान्ति और गौरव का साधन वेद

वेद का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान द्वारा ही सृष्टि प्रपञ्च प्रचलित है। जड़ वस्तु में ज्ञान द्वारा ही स्पन्दन पैदा होकर शेष सृष्टि संचालन और लोक व्यवहारों के कार्य चलने लगते हैं। वेद वाणी को अनादि-निधना वाक् कहा गया है, जिसे भगवान ने सृष्ट किया है। यह वाणी नित्य कही गई है—("अनादि-निधना-नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुना") वेद जगत् साहित्य का सबसे पुराना ग्रन्थ माना गया है। इसमें निहित ज्ञान इतना गम्भीर और अथाह है, जिसे भगवान को छोड़ कर और कोई भी पूर्ण रूपेण नहीं समझ पाता। इसके मन्त्रों में शब्दार्थ के अनुसार सीधे प्रकार से तो कईयों को कर्मकाण्ड का अर्थ कईयों को वैज्ञानिक अर्थ तथा इसी प्रकार आधिभौतिक आधि-दैविक और आध्यात्मिक अर्थ प्रतीत होते हैं। वे अपने चिन्तन और समझ के अनुसार इन्हीं सन्दर्भों में वेदानुवाद या भाष्य भी कर देते हैं। तथापि वेद के अर्थ में गम्भीरता की यथार्थ सीमा को परमात्मा के अतिरिक्त कोई नहीं छू सकता। संस्कृत ग्रन्थों में लिखा है कि संसार के सभी नाम कर्म आदि विधाता ने वेद शब्दों से ही प्रकट किये थे।

यजुर्वेद के 31।7 स्थल के एक मन्त्र के अनुसार उस यज्ञ यजनीय परमात्मा से ऋक्, साम, यजु और अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई। इसी से वेदों का सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकटीकरण का तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

अथर्ववेद के 10।7।20 स्थल के अनुसार उस सम्बन्धित परमात्मा से ऋचाएँ (ऋग्वेद मन्त्र) प्रकट हुई। यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद प्रकट हुआ। इस वेद वाक्य द्वारा वेद की अति प्राचीनता तथा परमात्मा से उत्पत्ति का होना स्पष्ट होता है।

जब वेद साक्षात् परमात्मा से प्रकट हुआ है, उसका निःश्वास है तथा उसका ज्ञान है तो यह केवल भारतीय साहित्य न होकर सारी दुनिया का साहित्य माना जा सकता है। वेदों में जो ज्ञान भरा है उसकी सीमा नहीं है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका वर्णन वेद में न मिलता हो। वेद के मन्त्रों में सृष्टि उत्पत्ति, सृष्टि विनाश, प्रकृति का रहस्य, सूर्य चन्द्र तारे ग्रह नक्षत्र सारा ब्रह्माण्ड आदि सबका रहस्य वर्णित

किया गया। वेद में जिस विज्ञान के संकेत मिलते हैं वह आज के विज्ञान से बहुत आगे बढ़ा हुआ है। यहां स्थानाभाव के कारण इन रहस्यों को कुछ वैदिक मन्त्रों के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। तथापि इस सम्बन्ध में ऋभु आश्विन मरूत इत्यादि वैदिक देवों के वैज्ञानिक निर्माणों के विवरण इन्हीं के सूक्तों में देखे जा सकते हैं।

वेदों के अध्ययन के सम्बन्ध में भारत के अतिरिक्त विश्व के अन्य देशों के विद्वानों ने भी पर्याप्त परिश्रम करके वेदों का अध्ययन और मनन और अनुसन्धान किया है। इससे भी वेद की विश्व साहित्यकता और विश्व गौरव प्रकट होता है। यदि इस दृष्टि से आज वेद को देखा जाए तो वेद ही विश्व शान्ति तथा गौरव का कारण है।

वेद को विश्व कल्याण भावना :

वेद में यत्र तत्र विश्व जनीन विचार मिलते हैं। जो कुछ भी योगक्षेम अथवा कल्याण भावनाएं मन्त्रों में अभिव्यक्त हुई हैं, उनका सम्बन्ध अधिकतर विश्व के साथ है। इसी कारण वेदों में विश्व शब्द का पर्याप्त प्रयोग हुआ है "विश्व मन्यो अभिचष्टे शचीभिः" इस वेद वाक्य का अभिप्राय है कि अन्य देव अपने कार्यों द्वारा समग्र विश्व को प्रकाशित करते हैं।

शुक्ल यजुर्वेद में लिखा है—हे पृथ्वी तू महान् है, तू अदिति है सारे संसार को धारण करने वाली है[1]। यजुर्वेद वाजसनेय संहिता-अध्याय 13 इसी वेद में आगे लिखा है—हे अग्ने ! तुम सारे संसार के जीवन के लिए हो, प्राण अपान, व्यान उदान के लिए हो, प्रतिष्ठा और चरित्र के लिए हो।[2]

वैदिक ऋषियों की प्रार्थनाओं में भी पृथ्वी अथवा विश्व की भलाई की कामना सर्वत्र प्रकट होती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—हे भूमि तू महान् है। आप हमारे लिए जीवन का मार्ग तैयार करो। जैसे माता पुत्र के लिए करती है। हे पृथ्वी ! तू स्थिर या शाश्वती है। तुझे भगवान रक्षित करते हैं।

वेद का दृष्टिकोण अखिल ब्रह्माण्डीय है। इसीलिए यहां उषा भुवन अदित्य

---

1. भूरसि भूमिरसी अदितिरसि विश्वधाया।
   विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ॥ शु० यजु० ॥
2. विश्वस्यै प्राणाय अपानाय व्यानाय उदानाय
   प्रतिष्ठायै चरित्राय। यजु० अ० 13।

विराट् विश्व इत्यादि शब्दों का अत्यधिक प्रयोग हो चुका है । जैसे :—वाणी विराट् है, पृथ्वी विराट् है, आकाश विराट् है और प्रजापति विराट् है । (अथर्ववेद) आगे देखिए— अथर्ववेद का यह मन्त्र इस भावना को कैसे और अधिक स्पष्ट करता है। इस पृथ्वी ने हमारे रहने के लिए विशाल भूमण्डल तैयार किया है।[1]

वेद ने इन सब भावों में विश्व कल्याण और विश्व लाभ का दृष्टिकोण ही प्रस्फुटित किया हुआ है। जहां संसार में प्रतिप्राणी और प्रति देश के लिए ऐसी भावनाओं का विस्तार हो वहीं शान्ति का साम्राज्य कायम होता है। किन्तु हम देख रहे हैं कि सदियों से दुनिया का मानव अपने-अपने देश की भलाई के लिए दूसरे देशों को अपना ग्रास बना रहा है। इसी कारण महायुद्ध हुए हैं और सारा विश्व टूटा है क्योंकि उन देशों में सर्व विश्व मंगलकारी वैदिक भावना का अभाव है। इससे स्पष्ट है कि जब तक वेद की सार्वभौमिक शान्ति की शिक्षा पर विश्व के अन्य देश नहीं चलते तब तक दुनियां में आज जैसी अशान्ति, शीत युद्ध, परमाणु प्रसार विभिन्न देशों के परस्पर टकराव दूर नहीं हो सकते। वेद ही दुनिया का एकमात्र ऐसा साहित्य है जो सारे विश्व को एक होकर चलना, उन्नति के पथ पर अग्रसर होने का सन्देश युग-युगों से देता आया है।

वेद के कुछ मन्त्रों में शान्ति तथा सह-अस्तित्व के भाव बड़ी प्रखरता के साथ मुखरित हुए हैं। यहाँ स्थानाभाव के कारण कुछेक उदाहरण ही दिये जा सकेंगे।

वेद के एक स्थान में लिखा है—मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, वृहस्पति और विष्णु ये देव हमारा श्रेय सम्पादन करें यानी हमें शान्ति दें। ब्रह्म को नमस्कार हो। हे वायो! तुझे नमस्कार हो। तुम्हीं प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। तुम्हें मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा। मैं सत्य बोलूंगा। इसीलिए वे मेरी रक्षा करें । इस मन्त्रार्थ द्वारा संसार को जो शिक्षाएं मिल रही हैं वे सब संसार में शान्ति स्थापना का मुख्य कारण है । इनका अनुसरण करने पर संसार में अवश्य शान्ति स्थापित होगी। यह शान्तिवचन वेदोपदेश है संसार के शुभ के लिए।

विश्व संगठन के सम्बन्ध में वेद-वाक्यार्थ इस प्रकार है—हम सब एक साथ एक दूसरे की रक्षा करें। एक साथ खाएँ। एक साथ व्यायाम तथा बल सम्बन्धित कार्य करें हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम एक-दूसरे से ईर्ष्या द्वेष न करें।

ईर्ष्या द्वेष ही वैर का मुख्य कारण है। देशों के देश एक दूसरे की ईर्ष्या करते

---

1. उरूं लोकं पृथ्वी नः कृणोत् । (अथर्ववेद का 12 सू 1)

हुए लड़ पड़ते है जिससे संसार की शान्ति भंग होती है। इसीलिए वेद ने दुनियां के राष्ट्रों को उपर्युक्त शिक्षा दी है।

फिर वेद तो संसार के कल्याण की कामना तो करता ही है। देखिए एक उदाहरण—वेद कहता है कि संसार के लिए आकाश, धरती, जल, औषधियां वनस्पतियां विश्वदेव (सर्वदेव) ब्रह्म ये सब शान्ति के कारण बन जाएं यानी सर्व विश्व के सब पदार्थों और देवी-देवों में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो।

इसके अनन्तर वेद समस्त विश्व के प्राणियों के लिए कामना करता है कि वे स अज्ञानान्धकार से प्रकाश की ओर जाएं तथा मौत से हट कर अमरता की ओ अग्रसर हों।

विश्व समानता के सम्बन्ध में वेद की भावना इस प्रकार प्रकट हुई है—हम स एक साथ बातें करें एक साथ चलें हमारे मन एक जैसे हों, हमारी मन्त्रणा एक सा हो हमारी सबकी एक ही सभा हो हमारे मन और चित्त एक हों और हम सब मि कर यज्ञ हवनादि करें।

वेद का यह समानतावाद न केवल भारत के लिए है अपितु समस्त संसार के लिये है। वेद ने यह नहीं कहा कि मैं यह उपदेश अथवा कामना या सम्भावना भारत को लक्ष्य रख कर कह रहा हूँ उसका प्रत्येक कथन विश्व से सम्बन्ध रखता है। ज वेद विश्व के कल्याणार्थ तथा शान्ति स्थापनार्थ समानता, सह-अस्तित्व के सा ईर्ष्याद्वेष से रहित होकर विश्व संगठन का उपदेश दे रहा है तो समझना चाहिए कि विश्व को इसी से शान्ति सह-अस्तित्व और गौरव मिल सकेगा।

विश्व का गौरव वेद :

वेद अपनी अतुलित गुण सम्पति द्वारा न केवल भारत का अपितु विश्व का गौरव (Prosperity) है।

यह तथ्य वेद में निहित गम्भीर ज्ञान द्वारा स्पष्ट हो सकता है। वेद के मन्त्रों के इतने गम्भीर अर्थ हैं; जिन तक कोई विरला ही पहुंच सकता है। सृष्टि का रहस्य सूर्य, चन्द्र, तारों आदि की गति, स्वभाव, आकार-प्रकार, क्षेत्र आदि सब कुछ वेद के मन्त्रों में मिल जाता है।

दर्शन, उपनिषद् ज्ञान विज्ञान, अध्यात्म तथा ब्रह्माण्डीय प्रकृति का पूर्ण रहस्य वेद के मन्त्रों में निहित है। वेद मन्त्रों में क्या-क्या कुछ विश्व रचना के तत्व भरे हैं तथा आकाश, द्युलोक, धरती पाताल की स्थिति, उनका परस्पर सम्बन्ध, आकर्षण-विकर्षण

भूचाल, जलप्लावन, समुद्र की स्थिति आदि समग्र ब्रह्माण्ड के रहस्य का अणु-अणु वेद मन्त्रों में छिपा पड़ा है। ऐसी असीम ज्ञान राशि दुनिया के किसी भी साहित्य में नहीं मिलेगी। इसी कारण वेद को ईश्वरीय ज्ञान और ईश्वरीय निःश्वास के रूप में स्वीकृत किया गया है।

वैज्ञानिक चिन्तन :

वेद का वैज्ञानिक चिन्तन आधुनिक विज्ञान के समान केवल धरती से ही सम्बन्ध नहीं रखता अपितु इसकी दृष्टि सकल ब्रह्माण्ड के अणु-अणु तक पहुंची है। ऋग्वेद में ऐसे कुछ मन्त्र देखे गए हैं जिनकी वैज्ञानिकी दृष्टि आश्चर्यकारी लगने लगती है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण भी साथ ही दे रहा हूं।

हे अश्विनो ! आपने निराधार आकाश पर सौ पतवारों वाली ऐसी नौका चलाई जिससे भुज्यु पार उतरा। सूर्य की किरणें अपने में जल भर कर आकाश को उड़ी और दक्षिणायन की ओर गई। जब वापस मुड़ी तो धरती पानी से भर गई। इस मन्त्र में पानी बरसने की रहस्यमयी बात कही गई है।

आठ पहियों वाला यह चक्र जिसकी हजार नेमियां है हमारे सामने चल रहा है। इसके आधे भाग से ब्रह्माण्ड की रचना की गई। बचा हुआ आधा भाग व्योम है, जो प्रकाश स्वरूप है ?

इस मन्त्र से प्रतीत होता है कि यह भुवन सूर्य की किरणों पर टिका हुआ है क्योंकि इस प्रकाश पुञ्ज के आधे भाग से जब इसका निर्माण किया गया तो आधा प्रकाश पुञ्ज जो बचा है वह कौन है यही पुरोदृश्य मान सूर्य। इसी की किरणों के आधार पर धरती आकाश और द्युलोक टिके हुए हैं। एक मन्त्र भाग में कहा भी है "दाधार पृथिवीममितो मयूखैः" अर्थात् इस धरती को सूर्य ने अपनी किरणों पर उठा रखा है। यदि वैदिक विष्णु का अर्थ विश्लृ व्याप्तौ धातु के अनुसार व्यापक माना जाए तो वेद का संकेत सूर्य की ओर जाता है। इसके सम्बन्ध में एक मन्त्र भाग में कहा गया है कि विष्णु ने उत्तर सधस्प (द्युलोक) को थामा हुआ है। (य अस्कमायदुत्तरं सद्यस्थम्)

सामवेद के एक मन्त्र में बताया गया है कि अति प्राचीन और सृष्टि का मूल एक ज्योति है, जो दिन में देखी जाती है (सूर्य)। जो द्युलोक से भी परे है, जिसका

अदित् प्रलस्थरेतसो ज्योति पश्यन्ति
वासरम् परो यदीध्यते दिवि ॥ इति

एक भाग सूर्य है, वह ज्योति सूर्य के अतिरिक्त द्युलोक के भी परे है। इस मन्त्र से स्पष्ट प्रकट होता है कि एक अन्य सूर्य द्यूलोक के भी परे है।

सामवेद तथा ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एक मन्त्र से चन्द्रमा में जीवन का अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है। हे सोम! जो तेरी प्रजाएं हैं, वे तुम्हारी अमृतमयी धरती पर निवास करती हैं।[1]

ऋग्वेद के ही प्रथम मण्डल में एक मन्त्र का अर्थ बड़ा रहस्यपूर्ण देखा गया है। जैसे द्युलोक के प्रकाश पुन्ज तीन हैं, एक यमराज के भुवन में, एक सूर्य में तथा एक स्वर्ग लोक में है। जहां चक्र नाभि के समान देवलोक में देवगण रहते हैं।[2]

अब इस मन्त्र पर विचार पूर्वक यह बात निश्चित की जा सकती है कि तीन सूर्य एक यमराज के भुवन में एक स्वर्ग में और यह जो आकाश में चमकता है, इस रहस्य का पता वेद ही हमें देता है।

इस प्रकार धरती आकाश द्युलोक तथा समस्त भुवन की गहराईयां जिस प्रकार वेद में निहित हैं उसी प्रकार की अन्य किसी साहित्य में नहीं मिलेगी।

इस मन्त्र के रहस्य का प्रदर्शन करने के साथ-साथ यह भी जोड़ दिया गया है कि इस रहस्य को वहीं खोलें जो ज्ञान-वान और विद्वान हो। (इह ब्रवीतु य उ तच्चिकेत्)।

ऋग्वेद मं 1 सू 72 मन्त्र 4 के मन्त्र में भी एक बड़ा गम्भीर रहस्य मिलता है। इस मन्त्र का भाव इस प्रकार है—देवता लोग विशाल धरती द्युलोक का ज्ञान रखने वाले हैं। उन्होंने द्युलोक से भी परे स्थित अग्नि को प्राप्त किया। इस मन्त्र से प्रकट होता है कि सर्वप्रथम अग्नि का मूल स्थान द्युलोक से भी अन्य लोक में था। वहीं से याज्ञिकों ने इसे ढूंढ निकाला जो विद्युत सौर्य और भौम अग्नि के रूप में ब्रह्माण्ड में फैल गई। यहां वेद का आकाशीय ज्ञान की विशालता का परिचय मिलता है।[3] शतं ते राजत् "भेषज:" इस ऋग्वेद के 1/24/9 मन्त्र से प्रकट होता है कि आदिकाल में सैंकड़ों सफल वैद्य होते थे ऋग्वेद के 1/35/16 के मन्त्र का भाग है। "आणि न

---

1. यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन धामनामृतस्य मूर्धा नामा सोम वे आभूषन्ती:। (ऋक् 1 म मण्डल)।
2. तिस्त्रोघाव: सवितुर्द्वे उपस्थां एका यमस्य भुवने विराषाट्‌ आणि न रूपं अमृताधितस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेत्॥
3. आरीदसी वृहती वेविदाना प्ररूद्रिया जभ्रिदे यज्ञियास:।
   विन्दनं मर्तो नेमाधिता चिकित्वानग्नि पदे परमे तस्थिवाँसम्।
   ऋक् 1/72/4।

रथ्यममृताधितस्थु:—" यानी जिस प्रकार रथ के चक्र में कील जुड़ी होती है, उसी प्रकार सब अमर सूर्य पर रहते हैं। इस वेद वाक्य द्वारा यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि देवताओं का निवास सूर्य लोक पर है। इस से सूर्य में जीवन भी सिद्ध होता है।

चन्द्र लोक पर जीवन होने का दूसरा प्रमाण ऋग्वेद के 1/43/9। (1 म मण्डल 43 वां सू० तथा नवम मन्त्र) स्थान पर स्पष्ट मिलता है। उस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है। —हे सोम (चन्द्र)। जो तेरी ये प्रजाएं तुम्हारे अमृत स्वरूप धाम जो सत्यमय है तथा आकाश के मस्तक पर रह कर उस स्थान को शोभायमान करती है। इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से चन्द्र में जीवन की सिद्धि होती है।[1]

आश्विनों का रथ पक्षी की भान्ति उड़ता हुआ प्रशंसनीय स्वर्ग के स्थल पर जा उतरता है। यह भाव ऋग्वेद के 1/46/3 के स्थल पर प्रकट होता है। वहां स्वर्ग को त्रिविष्टप कहा गया है। रथ का उड़ना एवं त्रिविष्टप को पहुंचना यह भी एक अद्भुत विज्ञान है। जो सृष्टि के आदिकाल की वैदिक सभ्यता की उन्नति का प्रकृष्ट निदर्शन है।[2] यह रथ सूर्य की किरणों द्वारा चलता था। यह तथ्य ऋग्वेद के 1/47/7 स्थल पर के मन्त्र द्वारा स्पष्ट होता है। इस मन्त्र का भाव इस प्रकार हैं। हे नासत्यो (अश्विनो)! जो तुम समीप रहे हो या दूर। आप अपने सुन्दर रथ में बैठ कर सूर्य की किरणों के साथ हमारे यज्ञ में आ जाओ।[3]

इसी प्रकार वर्षा बरसने के रहस्य बिजली की ऊर्जा, सूर्य की किरणों द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिरता। धरती का द्युलोक से उत्पन्न होना (ऋक् के 1/65/2) के अनुसार जल में अग्नि, अग्निवास के स्थान, अग्नि में 21 प्रकार के तत्व, अध्यात्म विद्या की गम्भीरता युक्त वर्णन, आदि, आदि असंख्य चिन्तन, रहस्य तथा ज्ञान-विज्ञान का स्रोत वेदों में उमड़ रहा है। जो इसे नहीं देखता अथवा जानता वह भारतीय या विश्व में किसी भी देश का मानव अमूल्य ज्ञान निधि से अपने को वञ्चित ही रखता है। वेद शान्ति का स्रोत और विश्व का

---

1. यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामनमृतस्य मूर्धा ना मा सोम वेन आभूषन्ती: ॥ सामवेद ॥

2. वच्यन्ते वां कुहुकासो जूर्णायामधिविष्टय
   यद्वां रथो विमिषातात् (ऋक् 1/46/3)

3. यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधितुर्वशे।
   अतो रथेन सुवृता न आगतं साकं सूर्यस्य रश्मिभि:। ऋक् 1/47/7।

गौरव है। उसका अस्तित्व एक मन्त्र से सिद्ध होता है। जैसे :—

वेद अक्षय ज्ञान निधि का भण्डार है। इस के पढ़ने और चिन्तन करने से, न केवल ब्रह्माण्ड के रहस्य का पता चलता है अपितु हृदय के अज्ञान की ग्रन्थियां खुल जाती हैं और एक अलौकिक ज्ञान की किरणों का प्रकाश हृदय में फैल जाता है।

मगर दुःख इस बात का है कि वेद भाषा के अति कठिन होने के कारण मानव की रुचि इस परिश्रम साध्य ज्ञान की ओर नहीं जाती और परिणामस्वरूप आज भी यह ईश्वरीय ज्ञान का स्रोत सब की आंखों से ओझल होकर अज्ञात पड़ा है। अब समय आ गया है जब संसार का मानव इस प्रबल भौतिकता से ऊब कर वेद ज्ञान की शरण आकर शाश्वत शान्ति प्राप्त करेगा।

पंचम अध्याय

(फुटकल निबन्ध)

क्षेमेन्द्र का हास्य-विनोद एवं सामाजिक चिंतन

संस्कृत साहित्य की दिशा में काश्मीर का जो योगदान संस्कृत साहित्य को मिला है, उसमें क्षेमेन्द्र का साहित्य उपयोगिता तथा परिमाण में सब से अग्रसर है। वर्तमान काल में विभिन्न विषयों पर क्षेमेन्द्र द्वारा लिखी गई लगभग तीस पुस्तकें उपलब्ध होती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी रचनाएं भी हैं जिन के उद्धरण अन्य पुस्तकों में मिलते हैं किन्तु वे उपलब्ध नहीं हैं, उनमें 'कवि कण्ठाभरण' ग्रन्थ द्वारा प्रदर्शित शशि वंश कनक, जानकी तथा पद्य-कादम्बरी विशेष उल्लेखनीय हैं।

क्षेमेन्द्र का संस्कृत साहित्य के विभिन्न विषयों पर अधिकार था, यह उनकी उपलब्ध रचनाओं द्वारा ही स्पष्ट है।

पौराणिक विषय के अन्तर्गत उनकी रामायण मञ्जरी तथा भरत मञ्जरी है कथा साहित्य की दिशा में वृहत्कथा मञ्जरी आ जाती है। नीति में नीतिलत दर्शन में मुनिमत मीमाँसा, अलंकार में औचित्य विचार चर्चा काव्यों में मुक्तावलि काव्यम आदि, कामशास्त्र में वात्स्यायन सूत्रसार चरित्र साहित्य में दशावतार चरित तथा प्रहसन में दर्पदलन, समयमातृका, सेव्य सेवकोपदेश देशोपदेशतथा नर्ममाला उनकी कृतियाँ हैं।

यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि काश्मीर के प्राचीन संस्कृत लेखकों में क्षेमेन्द्र ने सब से अधिक लिखा है और ऐसे विषयों पर भी लेखनी-कौतुक दिखाया जिस पर संस्कृत साहित्य में अन्य लेखक या कवि नहीं दिखा पाए हैं। जैसे सामाजि भ्रष्टाचारों का प्रहसन शैली (Humorous Style) द्वारा कविता में अभिव्यक्तिकरण यह विषय क्षेमेन्द्र ने प्रधान रूप से अपनी पुस्तक देशोपदेश तथा नर्ममाला में रखा है इसके अतिरिक्त दर्पदलन, समयमातृका तथा सेव्य सेवकोपदेश उनकी इन तीन पुस्तक में भी यही विषय प्रतिपादित है, किन्तु प्रस्तुत लेख का उद्देश्य केवल उनकी रचनाओं देशोपदेश तथा नर्ममाला के सन्दर्भ में ही उनके उपहास-कलापूर्ण समाज सुधार पर विचार किया जाएगा क्योंकि इन्हीं दो रचनाओं में उनकी इस शैली पूर्ण यौवन पकड़ा है।

इन पुस्तकों की उपलब्धि :

सन् 1921 के आरम्भ तक क्षेमेन्द्र की प्रस्तुत दो रचनाओं का अभी किसी को
छ पता तक नहीं था। राज्य (जम्मू कश्मीर राज्य) के अनुसन्धान एवं प्रकाशन
esearch and Publication Department J&K Government) द्वारा संचा-
त पांडुलिपि अन्वेषण कार्य के अन्तर्गत श्री मधुसूदन कौल, जो उस समय विभाग
अध्यक्ष थे, ने अपने इस अन्वेषन अभियान में इन पुस्तकों की एक समन्वयात्मक
डुलिपि रैनावारी (श्रीनगर) से प्राप्त की। पांडुलिपि शारदा अक्षरों में लिखी गई
जो अभी इतनी अधिक दुष्पाठ्य नहीं बनी थी। सन् 1921 में ही उक्त विद्वान्
। इन दो रचनाओं का यथासम्भव विभाग की ओर से प्रकाशन भी हुआ। विषय
नवीनता तथा क्षेमेन्द्र-युगीन समाज-स्थिति के चित्र दर्शन के कारण इन दोनों
शनों का समाज में न केवल सम्मान ही हुआ अपितु क्षेमेन्द्र साहित्य के प्रति
नों का और अधिक झुकाव हो चला। क्योंकि इन रचनाओं के माध्यम द्वारा लेखक
स्कृत को एक नया विषय प्रदान किया था, जिस पर पीछे संस्कृत साहित्य में कोई
न्त्र ग्रन्थ शायद ही लिखा गया हो।

एक साहित्यकार की सच्ची ईमानदारी इसी में है कि वह अपने युग के समाज
चित्र भलीभांति देखे। उस की धड़कनें समझे और उस पर लिखे। जिसने ऐसा
किया, उसकी साहित्य कला धरती पर बैठे-बैठे रंगीन स्वप्न लोक की रचना
ही कर डाले, किन्तु उससे अपने समाज को लाभ नहीं मिलता।

क्षेमेन्द्र ने ही सर्वप्रथम इस तथ्य पर विचार किया और उसे साहित्य के माध्यम
कार्यरूप में परिणत किया, ऐसा मेरा विचार है। उस समय काश्मीर की आंत-
स्थिति में जो सामाजिक तथा प्रशासनिक कमियां थीं, उन्हें क्षेमेन्द्र ने संस्कृत
ा में प्रकट करने का सफल प्रयास किया। लेखक ने सीधे उपदेशात्मक स्पष्टी-
शैली न अपना कर प्रहसन शैली को इसलिए अपनाया कि इस माध्यम में
रुचि का झुकाव अधिक होता है और यही तो क्षेमेन्द्र चाहते भी थे कि उनकी
चनाओं को लोग अधिक संख्या में पढ़कर समाज के वास्तविक चित्र को देख
जिस से भ्रष्टाचार पूर्णरूपेण समाप्त न भी हो तो भी कम तो हो ही। हंसी
से दोषी मनुष्य लज्जित होकर उन दोषों से छूट पाने का प्रयत्न भी करता है।
ने इस बात को भी समझा हुआ था जैसा कि देशोपदेश के चौथे श्लोक में
इसी प्रकार का विचार प्रकट किया है :—

"मनुष्य हास से अत्यन्त लज्जित होकर दोषों की ओर प्रवृत्त नहीं होता। उन
के उपकार के लिए यह मेरा (ग्रंथ निर्माण) प्रयत्न है।

(देशोपदेश प्रथम उपदेश लोक 4)

वास्तव में क्षेमेन्द्र सभी समाज तथा राजकीय दायरों के भ्रष्टाचारों को ए विद्रोही नेता बन कर समाप्त करने का विचार नहीं रखते थे और उस युग की परि स्थितियों के अनुसार ऐसा हो भी नहीं सकता था। क्षेमेन्द्र विद्वान साहित्यकार थे नेतृत्व की दिशा के नहीं। इसी कारण उन्होंने इस सन्दर्भ में समाज कल्याणार्थ साहि को माध्यम बनाया और एक साहित्यकार के लिए वास्तव में होता भी ऐसा ही है इस तथ्य की पुष्टि भी क्षेमेन्द्र के कथन से ही होती है :—

"जो लोग दम्भ (पाखण्ड) माया आदि दोषों से लिप्त हैं, उनके लिये यद्य मेरा कोई दूसरा प्रयत्न नहीं है, फिर भी उन दोषों को दूर करने के लिए मैंने उपह का बहाना लेकर इस देशोपदेश की रचना की है।

(देशो० 1म उप श्लोक नं०

रचना परिचय :

देशोपदेश तथा नर्ममाला ये दो अलग पुस्तकाकार नहीं है बल्कि एक ही ग्रंथ दो हिस्से हैं, जिन के नाम ही केवल अलग-अलग हैं। पुस्तक का पहला भाग देशोप है और दूसरा नर्ममाला। देशोपदेश के परिच्छेद या अध्याय के रूप में आठ उपदे हैं जो क्रमश: 1. दुर्जन, 2. कदर्य 3. वेश्या, 4. कुट्टनी 5. विट, 6. छा 7. वृद्धभार्या तथा प्रकीर्ण, 8. विचारों पर प्रकाश डालते हैं। ये उपदेश प्रत्ये सन्दर्भ के साथ हास्य रस का पुट लेकर अत्यधिक आकर्षक एवं रुचिकर बन पड़े है इन वर्णनों में केवल हास्य ही नहीं अपितु अन्य वर्णनीय वस्तुओं का वास्तविक चरि एवं स्वभाव भी इस रूप में चित्रित किया गया है, जिस की असली तस्वीर पाठक सामने आ जाती है। अब हम इन्हीं आठ उपदेशों का क्षेमेन्द्र के अनुसार संक्षि परिचय देंगे।

दुर्जन का अर्थ क्षेमेन्द्र ने दुष्ट आदमी के रूप में लिया है। एक दुर्जन व्यकि किस चरित्र का होता है, लेखक ने इस उपदेश में उसी का वर्णन किया है। पिण्डार्थी (रोटी का इच्छुक) लड़ाकू और गन्दा रह कर कुत्ते की भांति दीखता है निस्तेज, पापी क्रूर दूसरों की बुराई करने वाला शुभ कर्मों से दूर और चुगलखोर कर शनि ग्रह के समान भयंकर है तथापि आश्चर्य होता है जब उसे अशनि वज्र ए प्रकार का भयंकर शस्त्र कहा जाता है। अशनि और शनि इन दो शब्दों में क्षेमेन्द्र कैसा सुन्दर कौतूहल भरा है। शनि भी भयंकर और अशनि भी वैसा ही किन्तु

---

1. बुरा आदमी, 2. कंजूस, 3. कंजरी, 4. वेश्या का दला 5. विद्यार्थी, 6. जिस बूढे की जवान स्त्री ही, 7. बिखरे हुए।

अशनि न हो उसे शनि कहा जाएगा। इस रूप में शनि का अर्थ भयंकर नहीं होना चाहिये लेकिन शनि ग्रह का अर्थ होने के कारण वह भी भयंकर हो जाता है। लेखक ने पहले अर्थ को लक्ष्य रख कर बीच में हास्य को उत्पन्न करने के लिए ही कह दिया कि आश्चर्य है कि शनि (शनि-ग्रह भयंकर) शनि के समान होता हुआ भी दुर्जन अशनि (शनि नहीं-अशनि वज्र) कहा जाता है।

इन आठ प्रकरणों में जो विचार प्रस्तुत किए गए हैं, उनमें से कुछेक ही यहां दर्शाए जाएंगे क्योंकि स्थानाभाव के कारण पूरे के पूरे वर्णनों का संक्षिप्त ब्यौरा उपस्थित तो किया नहीं जा सकता। इसी सन्दर्भ में अब हम आगे भी दुर्जन से सम्बन्धित क्षेमेन्द्र के मुख्य-मुख्य विचार रखते हैं :—

दुष्ट के बारे में आगे यहां कहा गया है—ओहो दुष्ट भी पूर्वजन्मों के पुण्यों द्वारा महाविद्वान है। वह अपने गुण वर्णन में साक्षात् भगवान् शेषनाग के हज़ार मुख है। वह एक विषय का हज़ारों प्रकार से विश्लेषण कर सकता है। जो मनुष्य बहुत विद्वान् हो, उसे या तो शेषनाग की उपमा दी जा सकती है या बृहस्पति की। जो विद्या में देवताओं का गुरु माना गया है। हास्य विनोद के सन्दर्भ में लेखक ने दुष्ट को भी इस ढंग से शेषनाग तथा बृहस्पति कह दिया।

निकट रह कर यह चुगलखोर अपने पराए भाव को भूल कर स्वामी के कानों में ब्रह्मविद्या (गुरु मन्त्र) की भांति मन्त्र पढ़ता रहता है। यह दुष्ट पुरुष सब में दोष निकालता है। सच तो यह है कि मैले कपड़े पहने हुए वह दोषों पर कोई क्यों विचार करेगा। दुष्ट पुरुष की लज्जा व्यसन और दूसरों को चकमे देने की कला ऐसी है, जिसके मोह में आदमी फंस कर अपने को ऐसे भूल जाता है जैसे स्त्री की सुन्दर कमर देखकर कामी।

दुष्ट का दूसरा नाम है 'खल' ख आकाश और ल छोटा, दोनों अक्षर मिलकर 'खल' शब्द बना। इसका अर्थ है कि 'ल' (छोटा) होकर भी खल ख (आकाश) में अपना जाल रच कर बड़ों-बड़ों को फंसा लेता है। इसीलिए उसे खल कहा गया है। क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार खल का अर्थ प्रकट करते हुए हास्य-रस का अच्छा चमत्कार उभारा है।

ऐसे खल से न केवल व्यक्ति का बल्कि समष्टि का भी अहित होता है इस भाव को लेकर ही लेखक ने आगे कहा—धन के लिप्सु नीचे महत्वाकांक्षी चुगल खोर एवं पद पर आसीन होते हुए खल से बच कर हे प्रजा तूं कहां जाएगी।

नीच पुरुष ऊंचे पद पर रह कर प्रचार के लिए और भी खतरा बन जाता है।

ऐसी स्थिति में प्रजा की रक्षा कैसे होगी यही क्षेमेन्द्र की चिन्ता थी, जिसे उसने उपयुक्त ढंग से व्यक्त किया।

क्षेमेन्द्र की दृष्टि में मूर्ख खल पढ़े लिखे खल की अपेक्षा कहीं अच्छा होता है। जाहिल होने के कारण बड़ों को नुकसान पहुंचाने का षड्यन्त्र रचने की उसमें शक्ति नहीं होती। वह अपने ढंग की साजिश रच कर अपने स्तर के लोगों को ही हानि पहुंचा सकता है। लेकिन पढ़ा लिखा खल इस से अधिक उड़ान भर सकता है। इसी लिए लेखक ने खूब कहा है—टूटे हुए दांत वाले सांप के समान खल पंडित (पढ़ा लिखा खल) अच्छा नहीं होता है।

इस प्रसंग में आगे यह भी लेखक ने कह दिया है कि यदि भाग्यवश खल किसी की अच्छाई भी करने लगता है तो ऐसा समझो कि जंगल में ऊंची भुजाएं उठा कर बन्दर तपस्या कर रहा है। मानो जैसे कि बन्दर की तपस्या असम्भव है वैसे ही खल द्वारा भलाई भी असम्भव है।

द्वितीय उपदेश में कन्जूस का चरित्र चित्रित किया गया है। सर्वप्रथम कंजूस को एक मुनि की उपमा दी गई है। वह इन्द्रिय-जेता है, मिट्टी में सोता है निस्संग (वे लगाव) और अपने हाथों पका कर खाता है। मुनि भी तो यही करता है। किन्तु मुनि ईश्वर-प्राप्ति के लिये ऐसा त्याग करता है, किन्तु कंजूस धन-संग्रह के लिए। उस की तृष्णा बढ़ती रहती है। क्षेमेन्द्र कंजूस का सामाजिक जीवन वर्णन करते हुए आगे कहते हैं—लुब्ध (लोभी) सव के लिये अनिष्टकारी और कष्ट का घर है। जैसे लोग श्मशान से डरते हैं वैसे ही लोग उस पर थूकते हैं। वह धन- प्राप्ति की चिन्ता में रात को नींद नहीं ले सकता और उल्लू की भांति उस का दर्शन अनिष्टकारी होता है।

आगे कंजूस को पुन: इन्द्र की उपमा दी गई है। इन्द्र की जैसे हजार आंखें हैं, उसी प्रकार अपने स्वार्थों को देखने के लिए कंजूस के पास हज़ार आंखें हैं। शत्रु-हनन के लिए इन्द्र के हाथ में भयंकर वज्र रहता है किन्तु कंजूस भी घर के खर्चों को मारने के लिए हाथ में वज्र लिए हुए जैसा रहता है।

वह नीरस (सूखे स्वभाव का) है, उसकी बातों में मधुरता कहां हो सकती है। जिनके घर में नमक नहीं उसके शरीर में भी नमकीनपन कैसे मिलेगा ?

हंसी के प्रसंग में आकर लेखक ने कहा कंजूस के समान कौन दाता हो सकता है, जो बिना दिये खाता नहीं और घर आए को गलहस्त (गले से पकड़ कर बाहर निकालना) का दान देता है।

उस व्यक्ति ने जो धोती पहन रखी है, वह भी बाप-दादों से चली आ रही है। कमीज इससे भी पहले की है। श्राद्ध के दिन कुछ खर्च न करना पड़े इसके लिए वह उस दिन मातमदारी या ज्वर (बुखार) का बहाना बना लेता है।

कंजूस का लक्षण भी क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार दे दिया है—कंजूस स्वभाव से कठोर, निरपेक्ष्य (किसी से कोई सम्बन्ध न रखने वाला) धूर्त, क्रूर, टेढ़ा और की हुई नेकी को भुला देने वाला होता है। इसीलिए उसकी पाचन शक्ति कमज़ोर है, पांडु रोगी रहता है, मुंह से लार निकलती रहती है, आंखों से पानी बहता है और मुंह से दुर्गन्ध आती है।

तीसरे उपदेश में :

लेखक ने वेश्या जीवन का चित्र उतारा है। शुरू में गणिका (वेश्या) के गुणों को दर्शाते हुए उसे लेखक ने इस प्रकार प्रणाम की है—धन की लोभी, अति प्रौढ़, वेशभूषा की चकमक से मोहित करने वाली और प्रौढ़ उस वेश्या को वाग्देवी (सरस्वती) की तरह प्रणाम करता हूं। वह वेश्या योगिनी के समान है, जो मोह प्रेम आदि से रहित, निष्काम (किसी से व्यक्तिगत रूप से सम्बन्ध न रखने वाली) इच्छा-नुसार घूमने वाली और अपने ही ध्यान में लीन रहती है। ये सब लक्षण योगिनी (तपस्विनी) में भी होते हैं, क्षेमेन्द्र ने हंसी उड़ाते हुए वेश्या को किस प्रकार गुणसाम्य द्वारा योगिनी कह कर उस पर व्यंग्य कटाक्ष किया है।

आगे उसी पर कहते हुए लेखक हंसी करता है, वह वेश्या तो बुढ़ापे में भी कामशांति नहीं प्राप्त करती, उस समय भी लोगों का सर्वस्व हरण करती है। हमेशा काम कला और धन की प्यासी उसे कौन तृप्त कर पाएगा। किसी के पास सौ साल रह कर भी उसे जब असमर्थ देखती है, तो भाग जाती है। वह चंचल कटाक्षों द्वारा अनेक हाव-भाव रच कर उनकी कीमत के रूप में लोगों का सर्वस्व हरती है। वह तो इन्द्रजाल की माया है जो धूर्तों को भी मोह लेती है। सूत्र में पिरोई गई चंचल यन्त्र-पुतली के समान वेश्या जो भी कुछ हाव-भाव दिखाती है वे सब बनावटी होते हैं।

बड़े लोगों की भांति वेश्या भी दैनिक जीवन में बड़े व्यस्त कार्यक्रम में रहती है। कोई आ रहा है, कोई जा रहा है, और कई दरवाजे पर खड़े-खड़े प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। उसकी वाणी में शहद की धार और चित्त पर उस्तरे की धार है। ऐसी वेश्या कामियों के मूल पर ही कुठाराघात करती है। वह भोलेपन में लड़की काम क्रीड़ा में प्रौढ़ा (बुलन्द) और सैंकड़ों दांव पेच रचने में बूढ़ी है। ऐसी कामरु-पिणी यह वेश्या खून और मांस से कभी तृप्त नहीं होती।

कामी नई ताज़ी वेश्या लड़की जो हृष्ट-पुष्ट कामुक की अभिलाषा रखती है, के प्राप्त करने के बाद सवेरा होते ही कहने लगता है—"ओफ लुट चुका हूं ।" अभी काम के योग्य उसमें जवानी नहीं फूटी है किन्तु थोड़े से उभरे हुए स्तनों वाली वेश्या छोकरी प्रौढ़ा जैसी हरकत करती हुई केवल चुम्बन मात्र से ही कामुक को ठग लेती है ।

इस वर्णन द्वारा क्षेमेन्द्र वेश्या का स्वाभाविक चित्रण करते हुए हास्य रस की पूर्वागत धारा को उसी गति से नहीं निभा पाया है, किन्तु उसके इस वर्णन में वेश्या-वृत्ति की वास्तविकता और शृंगार रसाभास दोनों अच्छे उभरे हैं ।

आगे के प्रसंग में लेखक ने वेश्या के अन्तिम जीवन का चित्र भी बड़ा स्वाभाविक खींचा है । यौवन के मुरझाए जाने पर वेश्या सफेद बालों को संवारने में लगी रहती है, और वशीकरण मन्त्र प्राप्ति के लिये द्वार-द्वार पहुंचती है । फिर यौवन लाने के लिये मछली यूषरस, घी, दूध और प्याज का अधिक प्रयोग करने लगती है, और साठ वर्षों की होकर भी बालक की भांति चेहरे को संवार कर चमका लेती है । ऐसी दशा में भी वह बिखरे बाल लेकर और ढले हुए स्तनों को उभार कर लोगों को यौवन का आभास देकर उन्हें आकृष्ट करती है ।

चतुर उपदेश :

में क्षेमेन्द्र ने कुट्टनी (वेश्या की दलाल) के जीवन की झलक प्रस्तुत की है । कुट्टनी अपनी कूट-रचना द्वारा इन्द्र से भी राज्य छीन सकती है । वह तो ब्रह्महत्या की भांति शिवजी के लिए भी भय-कारिणी है । वह राहु को छाया की भांति भयंकर है, जो सुन्दर कलाकार और शूरवीर को भी सहन नहीं करती । सदा उलटी चलती है, और भयंकर होती है । कुट्टनी से तो यमराज भी डरता है क्योंकि हड्डियों आंतों का ढांचा बन कर भी वह माया की भांति कभी क्षीण नहीं होती । उस का काम इतना प्रबल है, जिसे कोई भी शांत नहीं कर पाता । क्षीण, व्यसनी तथा दुर्दशा ग्रस्त व्यक्ति को भी कुट्टनी बन्धुओं से झगड़ा करने की प्रेरणा देती है । सर्वस्व देने पर भी असन्तुष्ट और सैंकड़ों स्नेह देने पर भी रुखी बनी हुई कुट्टनी किस ने बनाई थी ।

कुट्टनी का यह स्वाभाविक स्वरूप दिखा कर क्षेमेन्द्र ने जहाँ हंसी की धारा बहानी थी, वहां वह ऐसा नहीं कर पाया । क्योंकि इस समय विरोधी तत्त्व की स्वरूपता दिखाने में ही वह उतना खो गया कि उसकी लेखनी से खुल कर हंसी नहीं फूट पाई । इसके स्थान पर गम्भीरता टपक पड़ी । फिर भी इन वर्णनों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि उसके हृदय में समाज सुधार की कितनी तड़प थी ।

पंचम उपदेश में :

बिट (वेश्या का दलाल धूर्त मनुष्य) का चित्र उपस्थित किया गया है। शुरू में ही बिट को नमस्कार करते हुए लेखक ने उसे चांद के समान टेढ़ा कह कर हास्य की सृष्टि की है।

क्षीण, गुणहीन, दोषी तथा कलायुक्त होकर कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की भांति लगने वाले विट को नमस्कार है। वह सब उत्तेजित चेष्टाओं के साथ धूर्त्त विलासी तथा अनेक जिह्वाएं रखता है। उपद्रवी, क्रोधी प्रमादी और चंचल होने के कारण वह बन्दर के समान लगता है। योगी (महात्मा) की भांति विट भी अन्तर्लीन, ध्यान युक्त (शिकार पाने के लिए अन्दर ही अन्दर अन्तर्ध्यान लगाए हुए) है। वेश्या उस पर थूकती है, सज्जन उससे अलग रहते हैं और खुद वह अमंगल शकल लेकर इधर-उधर घूमता है।

विट का स्वाभाविक स्वरूप दिखाते हुए क्षेमेन्द्र उस पर और भी अनेक कला बाजियां कसते हैं, जिन में से कुछ प्रधान इस प्रकार हैं :—वेश्याओं से अपमानित होकर भी विट ढीठ बनकर दूसरे दिन फिर उसी के द्वार पर जा टिकता है। चाहे वहाँ डण्डे की ही मार उसे मिले। वेश्या उस पर पान की पीक फैंकती है पर उससे उसे क्या ? उसके सिर पर लम्बे-लम्बे रूखे केश बिखरे हैं, किन्तु वह उन्हें तेल लगा कर बनावटी ढँग से गूंथ लेता है उसके सिर पर गंज पड़ा है। अधरों पर लालगी लगाकर विट बार-बार वेश्या के आगे पीछे मंडराता रहता है। कभी-कभी जूओं से भरी बालों की लटें लटका और गन्दे कपड़े पहने वेश्या के घर से निकल कर वृद्ध बिट बाहर आता है तो बड़ा विचित्र लगता है।

बिट का यह स्वरूप उपस्थित करने के पश्चात् अब क्षेमेन्द्र विद्यार्थी की समाज विरोधी जीवन चर्या का दिग्दर्शन षष्ट उपदेश में रखने लगते हैं।

क्षेमेन्द्र के युग में भी संस्कृत विद्यार्थी का जीवन कुछ ऐसा ही था। उसे क्षेत्रों या धर्मार्थ भोजनालयों में मुफ्त भोजन पाकर संस्कृत अध्ययन करना पड़ता था और आज भी कहीं-कहीं पुरानी परम्परा जीवित है। भोजन के लिए उस की कैसी गतिविधियां चलती थीं उसका क्षेमेन्द्र ने शुरू से ही विवरण दे दिया है—वह अन्न का अभिलाषी है, इसीलिए दोपहर तक जप करता है। जब दूसरे प्रतिष्ठान में आकर उसे भर पेट भोजन मिलने लगता है तो केंचुली उतारे हुए सांप की भांति उसके शरीर में नया तेज़ भर जाता है।

किन्तु वह संस्कृत छात्र केवल इतने में ही रह कर अपना पवित्र और सादा जीवन बिताता है, ऐसी बात नहीं। वह छिपे-छिपे वेश्याओं की फीस का पता लगाता

है द्यूत कर्म (जुआ) के बारे में पूछता है, और किस भोजनालय में मांस पकता है, इसका भी पता लगाता है ताकि वह भी मांस खा सके।

वैसे वह छात्र शास्त्रार्थों से बूढ़े पंडितों को हराने से पांडित्य प्राप्त करना चाहता है, तथापि ओंकार तक का उच्चारण नहीं जानता। स्वस्ति ज्ञान की तो बात ही दूर रही। लिपि ज्ञान तक न रहने पर और न्याय पढ़ना शुरू कर देता है। इस से क्षेमेन्द्र ने प्रथम संस्कृत छात्र की तीन बुराईयों को प्रकट किया है, भोजन प्रिय मांस भक्षी द्यूत सेवी तथा वह व्यर्थ का घमंड और आडम्बर लेकर अपना बड़प्पन दिखाता है। वह छुआछूत के विचार के कारण संकुचित होकर चलता है, जैसे आडम्बर के भार से दब रहा हो। उसे कामुकता की आग भीतर ही भीतर जलाती है। इस सम्बन्ध में लेखक आगे कहता है—वह मज़दूरों पर नाराज़ होकर (वे अछूत होने के कारण कहीं उसे छू न लें) उन पर डंडा तक चला देता है, परन्तु जिस मज़दूर की स्त्री सुन्दर है, उस का सब कुछ सह लेता है। हाथों में शृंगारिक चेष्टाएं लेकर तथा आंख मुंह पर प्रेम सम्बन्धी अदाएं दिखाते हुए छात्र सायंकाल वेश्या के आसपास घूमता है। जुआरी, कुट्टनी, वेश्या, चामार और नाई ये पांच उस की जेब खाली करते हैं।

ऐसा है विद्यार्थी जिस के संध्या तर्पण में पूरी नदी भी आवश्यकता पूरी नहीं कर सकती। वही जाकर वेश्या की जूठी मिठाई तक खाने लगता है। वह काम-पूर्ति के लिए विधवा या पर स्त्री की तलाश में रह कर घर-घर जाकर पिता के नाम से परिचय करता है। स्त्री वश करने की उसकी चाल तो देखिए। क्षेत्र-भोजन के हंसी युक्त वर्णन द्वारा उन्हें हंसा कर फंसा लेता है।

परन्तु भोजन में उस की रुचि का भी वर्णन करते हुए लेखक ने इस प्रकार कटाक्ष किया है—श्राद्ध-पक्ष में श्रेष्टि के घर भोजन पाकर छात्र की आंखें धरती पर नहीं टिकतीं, जैसे सूली पर चढ़ा हुआ ऊपर ही ऊपर देख रहा हो। छात्र के सम्बन्ध में इसी तरह की अन्य हास्स-व्यंग्यपूर्ण उक्तियों का लेखक ने इसी प्रकरण में प्रयोग किया है, जिससे विदित होता है कि अपने युग के छात्रों की ऐसी गर्हित परिचर्या देख कर उसे अधिक पीड़ा पहुंची होगी।

सप्तम उपदेश में वृद्ध युवती विवाह की वीभत्सता का वर्णन किया गया है। यह वृद्ध विवाह की कुप्रथा आज भी हमारे समाज को घुन जैसी लगी है क्षेमेन्द्र ने ऐसे वृद्ध का जो नई विकसित कली के समान उद्दाम-यौवना कन्या से विवाह कर लेता है, का स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है। वृद्ध की दशा के वर्णन में स्वयं हास्य रस फूट निकला है। बूढ़ा अविद्या रूपी वृद्धावस्था तथा इच्छा दोनों से मूढ होकर कुमारी से विवाह कर लेता है। उस की शादी पर लोग कहने लगते हैं :—"इसने तो

पर लोक के लिए विवाह कर लिया है।" भरी हुई इच्छाओं वाला, ऊंचे उछ्वास लेकर विरक्तिपूर्ण बूढ़ा साक्षात् ज्वर बन कर कन्या विवाहने जाता है।

वृद्ध जीवन-संगी देखकर कन्या आंसू बहाती है। परन्तु पिता कहने लगता है—पुत्रि ? यह तो धनाढ्य है। असमय में ही वृद्धता का शिकार बन गया है।

मेरे इन यौवन-उभार युक्त स्तनों का स्पर्श वृद्ध के हाथ करेंगे सोच कर कन्या उच्छ्वासों को छोड़ती हुई अपने यौवन पर खेद मानती है। आगे क्षेमेन्द्र ने विवाह वेदि में वृद्ध की विद्रूप आकृति का वर्णन बड़ा हास्य रस पूर्ण कर किया है—कन्या रूपी मंजरी का हाथ रूपी पन्ना अपने हाथ में लेते हुए तथा उसके कुच-फलों पर मुंह सटाये हुए बूढ़ा बन्दर की भांति लगता है।

सुहागरात के समय कन्या तरुण के चिन्तन में पड़ कर बूढ़े की शय्या पर नहीं जाती है। ऐसे डरती है जैसे बध्य-शिला पर चढ़ना हो। जब बूढ़ा लार युक्त मुख से चुम्बन करने लगता है तभी कन्या कह उठती है—"बुद्धि नष्ट हो गई है क्या ? धिक्कार है तुम्हें" मेरे दादा की आयु के हो। दुष्ट पति, किस लिए लाए हो मुझे लाज नहीं आती ? अभी बालिका ज्यों कह रही होती है तो बूढ़ा दांत गिरने से लार बाहर बहने वाले मुंह से लड़खड़ाते वाक्यों द्वारा कन्या को शयन पर ले आना चाहता है। बूढ़े भुजंग द्वारा डसी गई बालिका रक्षा हेतु घर-घर भागती है, जब बन्धु लोग उसे खींच कर फिर शय्या पर धकेल देते हैं तो वृद्ध का स्पर्श चांडाल की भांति प्रतीत होने लगता है। शक्ति हीन बूढ़ा, उसके अंग तो छूने लगता है। किन्तु उस में श्रृंगार की उमंग नहीं उमड़ती। जीर्ण वीणा की भांति मुरझाई अंग-यष्टि वाला बूढ़ा उभरते यौवन के अंगों का स्पर्श पाकर और भी सूखने लगता है।

कुलवधु घर पर पति के रहने पर भी वधु सजधज कर दीक्षा गुरु के पास चली जाती है, घर के कामकाज से विमुख होकर दीक्षा गुरु के साथ रंगरलियाँ मना कर अपने को पवित्र करती है।

बनिए के जीवन पर लेखक ने इस प्रकार कटाक्ष किया है—वह इमानत पचा जाता है, वस्तुएं छिपा लेता है, और धन लोलुप इतना है कि गुरु-गृह में जाकर भी धन ही चाहेगा, मोक्ष नहीं।

झाड़ू जैसा निषिद्ध बना हुआ, गुड़, शहद, तेल आदि से लथपथ होकर ग्राहकों को फंसाने में बनिया दुकान का मूर्तिमान अभिशाप है।

कवि को आड़े हाथों लेते हुए लेखक व्यंग्य करता है—कवि कुछ थोड़ा-सा

संस्कार लेकर लिंग, वचन, विभक्ति बिना समझे ही मुंह बिचका कर एक अधकचरे श्लोक को भी कठिनता से प्राणों के साथ ही उगल सकता है। सूखी श्लोक रचना के ध्यान में ही दिन रात हृदय को ऊपर खींचता रहता है। मूर्ख बिना काव्य-रचना के दूसरी जीविका स्वीकार ही नहीं कर सकता।

जुआरी का चित्र क्षेमेन्द्र ने ज्यों खींचा है मूत्र निरोध के कारण कुछ रोगी और लगातार उपवास व्रत लिये एवं पराजित द्यूतकार तपस्वी बन कर भी लोगों को ठगता है। शरीर पर मिट्टी रमाये, नंगा और खोपड़ी हाथ में लिये द्यूतकार शिव रूप होकर भी दरिद्रता का घर बना हुआ है।

वैद्य को भी लेखक ने अच्छी खबर ली है। उसके लिए अपने कटु शब्दों में जो खेद प्रकट किया गया है, उससे प्रतीत होता है कि क्षेमेन्द्र को वैद्यों से विशेष चिढ़ थी। एक श्लोक में इस भावना को अधिक तीखे शब्दों में व्यक्त किया गया है जैसे रोगियों का सम्पूर्ण धन हरण कर लेने वाला केवल 'चूर्ण' श्लोक पाठी वैद्य शिष्य धन के अपहर्ता गुरु के घर प्रविष्ट होता है।

उसने देवता ब्राह्मण, ग्राम नगर सब लूट लिए हैं, फिर भी लूटना ही चाहता है, ऐसा करते सब का दीक्षा गुरु बनता है।

उत्सव में नाचती हुई स्त्रियां नव-विवाहित वृद्ध की ओर इंगित करके कहने लगती है:—"घुन द्वारा खाये गये इस जीर्ण पेड़ पर नया अंकुर फूट पड़ा है।

ऐसा है वृद्ध—युवती विवाह जिस का विश्लेषन क्षेमेन्द्र ने बड़ी चुलबुली कलाबाजी के साथ किया है।

वृद्ध-विवाह सम्बन्धी उस युग की सामाजिक कुरीति से लेखक खिन्न ही नहीं था, अपितु इसके समूल नाश के लिए अपना विद्रोही स्वर रखता था, यह तथ्य इसी उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है।

अष्टम उपदेश में उस युग की प्रकीर्ण (फुटकल) बुराईयों का विवरण है, जिसके अन्तर्गत संक्षिप्त रूप में गुरु, कुलवधु, भट्ट, वणिया, कवि, स्वर्णकार, जुआरी, मूर्ख, गुरुभक्त, वीणावादी, वैद्य, पंडित, लेखक, जटाधारी, और रण्डे पर व्यंग्यबाण कसे गए हैं।

इन सब वर्णनों में हास्य-रस की पुट अच्छी निखरी है। गुरु के बारे में वे लिखते हैं—वह रुपयों का संहारक, गुण रहित, बहुत बातें करने वाला तथा शिष्यों की स्त्रियों को गुरु मन्त्र देता रहता है।

चरक भी नहीं जानता। वह वैद्य केवल शब्द जाल रचना जानता है, इसी से वह खुद सन्निपत होकर लोगों के घरों में बिजली के धमाके के समान आ धमकता है।

ऊपर जितना भी विवरण दिया गया है इससे स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र के हृदय में समाज सुधार की एक बलवती तृषा थी, उसने समाज के कुछ तत्वों में जो जो दोष देखें, उन्हें सुधारने के लिए प्रस्तुत प्रक्रिया अपनाई। उसे पूर्ण विश्वास था कि हास्य प्रसंग में जो कुछ कहा गया है, उस का प्रभाव दूषित तत्वों पर पड़ कर उन का कुछ सुधार ही करेगा और साथ ही आगामी पीढ़ी इन दोषों से दूर रहने का प्रयास करेगी।

इसी विचार को आगे ले जाते हुए लेखक ने नर्ममाला भाग का निर्माण किया जिस में देशोपदेश का विषय ही प्रतिपादित है। केवल पात्रों का ही नया उपन्यास किया गया है।

नर्म माला :

इस पुस्तक के प्रस्तुत भाग में हास्य-शैली द्वारा कुछ भ्रष्ट व्यक्तियों का चित्र उतारा गया है। इस भाग के तीन अध्याय हैं, जिन्हें लेखक ने 'परिहास' का नाम दिया है।

प्रथम परिहास में सर्वप्रथम कायस्थ के दुर्गुणों का वर्णन किया गया है। सरकारी नौकरी पाकर कायस्थ कितना क्रूर और भ्रष्ट हो जाता है, इस अवस्था में उस की धनाढ्यता जनित शान-शौकत जनता पर कैसा आतंक मचाती है, इन बातों का हंसी के माध्यम से अच्छा स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

क्षेमेन्द्र के युग (990—1065 AD) में ऐसा था समाज का चित्र जिस में राजकर्मचारी, वेश्याएं, छात्र विधवाएं, बनिये, पटवारी, तहसीलदार, आदि कुछ लोग भ्रष्ट मार्ग की ओर जा रहे थे। लेखक को समाज की इस विद्रूपता को देख कर अवश्य चोट आई। उसने सुधार की दृष्टि से ही इस विषय को अपने लेखन का विषय चुना। इसके अतिरिक्त उसके पास और कोई साधन था नहीं, जिस के द्वारा वह अपना स्वप्न पूरा कर पाता।

इस विवरण द्वारा दो बातें तो कुछ स्पष्ट हो ही गई होंगी कि एक तो, क्षेमेन्द्र के अन्दर अपनी सामाजिक बुराईयों को देखकर कितनी पीड़ा थी उसे उन्हें मिटाने की कितनी बड़ी तड़प रही होगी, जिससे राज तथा उच्च अधिकारियों के रोष की परवाह भी न करते हुए उसने निडरतापूर्वक इन सब का दोष दर्शन किया।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र ने कश्मीर की दशम शताब्दी के अन्तर्गत तत्कालीन स्थानीय समाज के कुछ विवाद ग्रस्त तत्वों पर हास्य व्यङ्ग्यात्मक कटाक्ष किये हैं, जिन का सम्बन्ध सार्वदेशिकता के साथ न होकर क्षेत्रीयता के साथ ही समझना चाहिये। जैसे विद्यार्थी, वैद्य, वृद्ध, गुरु (अध्यापक) आदि पर जो व्यङ्ग्योक्तियां कसी गई हैं, इनके लक्ष्य स्वरूप व्यक्ति कश्मीर के ही थे। कवि का लक्ष्य अपने प्रादेशिक समाज की विद्रूपताओं पर ही व्यङ्गोक्तियों का सृजन करना था।

इस वर्णन द्वारा दशम शताब्दी की काश्मीर की सामाजिक और प्रशासनिक परिस्थितियों का एक सजीव चित्र हमारे सामने उभर आता है। इस में कवि की पैनी दृष्टि, वर्णन-कौशल, भाषाधिकार तथा हास्य रस की कला की प्रखरता अच्छी प्रकार निखरी है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की कवित्व शैली कम ही मिलेगी, जिस में इस प्रकार के सामाजिक तथ्य निडरता से अभिव्यक्त किए गए हों। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक में प्रशासन तथा समाज के बहुत से तत्वों पर ऐसे व्यङ्ग्य कसे गए हैं, जो उनके विवाद ग्रस्त जीवन का स्पष्टीकरण करते हैं, तथापि यहां स्थानाभाव तथा अन्य कई कारणों के कारण उन्हें यहां छोड़ दिया गया। ०००

आचार्य—मम्मट

कश्मीर की संस्कृत आचार्य परम्परा में मम्मट का स्थान सर्वमान्य है। लगभग आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के अन्त तक कश्मीर में काव्य सम्बन्धी क्षेत्र में सब से अधिक कार्य हुआ। ध्वनि, रीति, रस अलंकार तथा औचित्य सम्प्रदाय यहीं आकर पुष्ट हुए । इनकी पृथक्-पृथक् आचार्य परम्परा हुई जिसने अपने-अपने सम्प्रदाय को वर्षों तक पुष्टि दी। ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्धन ने यह मार्ग अग्रसर करते हुए साहित्य क्षेत्र में घोषित किया कि काव्य की आत्मा ध्वनि है। काव्य के पद की गहराई में जो चमत्कार पूर्ण गहरी आवाज़ मुखरित हो उठती है उसी का नाम है ध्वनि। इस ध्वनि के अभाव में काव्य निष्प्राण है अर्थात् उस में कोई आनन्द नहीं । आनन्दवर्धन के पूर्व भी इस ध्वनि के अनुयायी अनेक विद्वान् हुए थे जैसा कि उन्होंने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में लिखा है, परन्तु इस मार्ग को जागृत करते हुए ख्याति की ओर ले जाने का काम आचार्य आनन्दवर्धन ने ही किया। इसी कारण ध्वनि के क्षेत्र में इन्हें प्रधानता मिली। रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने घोषणा की कि काव्य की आत्मा रीति है रीति का अर्थ है शैली (Style) जिसमें काव्य की बाहरी वेषभूषा को अलंकृत करने में जोर दिया गया । वीरता का वर्णन करते समय प्रचण्ड शब्दों का प्रयोग, कोमल भावनाओं को व्यक्त करते हुए तदनुरूप कोमल शब्दों का प्रयोग और आसान काव्य की सृष्टि के लिये आसान शब्दों का समावेश जो किया जाता है यही रीति कहलाती है। काव्य के अन्दर इस रीति का विशेष स्थान निर्धारित करते हुए वामन ने इसी को काव्य के प्राण की संज्ञा दी। यह रीति उपर्युक्त तीन स्थानों पर भिन्न-भिन्न तीन नामों से आती है। जैसे पाञ्चाली, वैदर्भी और गौड़ी इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य अभिनव गुप्त या कविराज विश्वनाथ थे। इनके मत में काव्य की आत्मा रस है। काव्य पढ़ने से जो विशेष चमत्कार या आनन्द की अनुभूति होती है, वह रस है। श्री विश्वनाथ ने काव्य का लक्षण लिखते हुए कहा था—"वाक्य रसात्मक काव्यम्" (रस से परिपूर्ण वाक्य का नाम काव्य है) अलंकार संप्रदाय के प्रवर्तन आचार्य भामह थे। भामह के बहुत पहले भरत मुनि ने भी अपने नाटय शास्त्र में चार अलंकारों का उल्लेख नाटक की उपयोगिता के लिये किया था किन्तु तब अलंकार सम्प्रदाय (School) के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुये थे। भरत

के एक हज़ार वर्षों बाद भामह ने अलंकार (काव्य की सजावट) को काव्य की आत्मा मान कर इस मार्ग को परिपुष्ट किया तथा सौ के ऊपर अलंकारों की सृष्टि की जिन में उपमा, अनुप्रास, श्लेष, वक्रोक्ति अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि-आदि प्रधान हैं। इनका कहना था कि जिस प्रकार सुन्दर स्त्री वस्त्र-भूषण तथा अलंकरण आदि के बिना पूर्ण सौन्दर्य से सुसज्जित नहीं हो पाती इसी प्रकार कविता रूपी कामिनी भी अलंकारों के बिना शोभा नहीं देती। इसलिए काव्य की आत्मा अलंकार हैं। अलंकार दो प्रकार के हैं जिससे काव्य शब्दों की शोभा बढ़ती हो वे शब्दालंकार कहलाते हैं और जो अर्थ की शोभा बढ़ाते हों अर्थात् जिनके द्वारा काव्य के अर्थ में विशेष चमत्कार आ जाता हो उन्हें अर्थालंकार कहते हैं। इन दोनों के उदाहरण भी प्रस्तुत किये जाते हैं :—

शब्दालंकार :—मनरसा **रमणो रमणीयता** मिल गई यदि यह विधि योग से पर
मिली कविता न सुधा जिसे **रसिकता सिकता** सम है उसे।

अर्थलंकार :—अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में दूध आंखों में पानी।

उपर्युक्त दोनों पद्यों में, पहले के पद्य में शब्दों का चमत्कार है और दूसरे में अर्थ का। आचार्य भामह का यह दावा था कि अलंकारों के अभाव में रस रहते हुए भी कविता निष्प्राण होती है। भामह के पश्चात् अलंकार संप्रदाय को अनेक प्रसिद्ध आचार्यों ने मान्यता दी। वामन विश्वनाथ, जगन्नाथ, मम्मट आदि सब ने अपने-अपने ग्रन्थों में अलंकारों को विशेष स्थान दिया। वास्तव में अलंकार संप्रदाय जैसा कोई वाद न रहने पर भी सफल कविता में अलंकारों का रूप स्वयं प्रस्फुटित हो उठता है। कबीर जैसे संत की वाणी में भी अलंकार स्वतः फूट पड़े जबकि वे इन वादों को न जानते थे और न कविता के आग्रह से कविता लिखते थे। आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी औचित्य सम्प्रदाय चलाया। औचित्य का अर्थ है उचित वर्णन। अर्थात् काव्य में उचित वर्णन ही प्रधान होने के कारण काव्य की आत्मा उचित हो सकती है। अनुचित वर्णन या अनुचित कल्पना के द्वारा कवि स्वयं भी निन्दित होता है और समाज भी उस काव्य से कुप्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

आचार्य मम्मट के पूर्व कश्मीर में मूल संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में इन वादों के बड़े-बड़े दंगल जमे थे। आनन्दवर्धन और अभिनव ने ध्वनि को अग्रसर किया। इसी प्रकार भामह, उव्वट, रुद्रट, कल्लट भट्ट नायक शंकुक आदि अनेकों काश्मीर के आचार्य साहित्य की इन दिशाओं की अभिवृद्धि करने में लगे थे। जब एक युग का उत्थान होकर उसकी चरमोन्नति हो जाती है, उससे असन्तुष्ट होकर कई व्यक्ति अपना अलग मार्ग कायम कर लेते हैं। साहित्य का सामान्य इतिहास इस तथ्य की साक्षी देता आया है। इस युग के संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ। अनेक संप्रदायों की

अलग-अलग खिचड़ी जब शताब्दियों तक पकती चली गई और उससे विद्वानों का ऐकमत्य स्थापित नहीं रह सका, तभी इस की प्रतिक्रिया के रूप में इस क्षेत्र के अन्दर एक नई क्रान्ति ने जन्म पाया। वह क्रान्ति इन सम्प्रदायों का समन्वयात्मक रूप लेकर अग्रसर हुई। परिणामस्वरूप दो दलों की स्थापना हो चली एक प्राचीन और दूसरा नवीन।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि प्राचीन दल के अन्दर साहित्यिक विधाओं को लेकर भिन्न-भिन्न संप्रदाय देर से प्रचार पा रहे थे और इन की आचार्य परम्परा ढेरों के ढेर शास्त्रार्थ ग्रन्थ लिख रही थी। फिर भी कोई समन्वयात्मक या एकमत पूर्ण मार्ग नहीं निकाला गया जोकि संस्कृत आलोचना के क्षेत्र में एक भारी समस्या थी। इसी समस्या को सुलझाने के लिये नव्य दल आचार्य मम्मट के नेतृत्व में अग्रसर हुआ जिस ने प्राचीन परम्परा की आवाज़ अपनी बुलन्द लेखनी तथा वाणी से मूक बना दी।

इस युग के संस्कृत साहित्य में यद्यपि अभिनव गुप्त, क्षेमेन्द्र आदि अनेक प्रखर प्रतिभाएं हुईं फिर भी आचार्य मम्मट का स्थान इन सब में सर्वोपरि क्यों रहा, यह एक विचारणीय प्रश्न है, जिस का संकेत ऊपर भी दिया जा चुका है। साहित्य के प्राचीन खण्डहरों पर नई मान्यताओं का भवन खड़ा करने वाले कुशल कारीगर मम्मट इसी कारण इस क्षेत्र में अद्वितीय समझे जाने लगे कि उन्होंने उस युग की एक समस्या को सुन्दर रीति से सुलझाया। उनकी केवल मात्र उपलब्ध एक ही रचना 'काव्य प्रकाश' पचासों ग्रन्थों के लेखक आचार्यों की ख्याति को दबा कर संसार में प्रख्यात हो चली। इसलिये कि यह रचना युग-परिवर्तन के शंखनाद को मुखरित कर रही थी और इससे साहित्य क्षेत्र को एक नई दिशा का प्रकाश मिल रहा था।

मम्मट के युग में जब नव्य (नए) दल ने सपना शंख फूंक दिया तो प्राचीन सब सम्प्रदाय एकरूपता में आकर साहित्य को सर्वसम्मत मान्यता बन गए। अब ध्वनि, रस, अलंकार औचित्य, गुण, दोष (काव्य के गुण दोष) आदि सब मिल कर एक ही झरने में बहने लगे। काव्य निर्माण में इन सब को आवश्यक तो समझा गया किन्तु किसी विशेष मान्यता को काव्य की आत्मा जैसा प्रधान स्थान नहीं दिया गया। इस नवीन चेतना के प्रतीक रूप में आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश की रचना की जिस में सर्व सम्मत इस नई विधा का पूर्ण व्याख्यान किया गया। इस नए आन्दोलन की झंकार काव्य प्रकाश में मुखरित हो उठी। इस ग्रन्थ के आदि में ही कविता का लक्षण करते समय लेखक ने न रस को आत्मा की पदवी दी न ध्वनि को केवल समन्वयात्मक लक्षण इस प्रकार कर दिया :—तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणौ अनलंकृतो पुनः क्वापि" अर्थ :— दोषहीन शब्द और अर्थ, जिन में गुण तो हों परन्तु अलंकार कहीं रहे या न रहे, उसे काव्य कहते हैं। इस लक्षण में इन्होंने रस, ध्वनि, दोनों संप्रदायों को तो छोड़ा किन्तु

अलंकार सम्प्रदाय की आवश्यकता को भी अनिवार्य नहीं माना। आगे चलकर यद्यपि इन्होंने ध्वनि, रस तथा अलंकारों को स्थान दिया परन्तु सम्प्रदाय के रूप में नहीं केवल काव्य के उपकरण के रूप में। इन से इसी लक्षण से पिछले सम्प्रदायवाद की इति श्री के दर्शन होते हैं। शेष नवीन आचार्य इन के नेतृत्व में रह कर काव्य की इसी विधा पर ग्रन्थ लिखने लगे। यह कश्मीर में संस्कृत साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में एक नये अध्याय का उद्घाटन था। काव्य प्रकाश की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि इस पर लगभग 60 टीकाएं हो गईं और समस्त भारत में इसका पठन-पाठन होने लगा। यहां तक कि साहित्य के अतिरिक्त विषयों के विद्वानों ने भी काव्य प्रकाश पर टीकाएं लिखकर अपनी योग्यता को इस कसौटी पर कसने के स्वप्न पूर्ण किये। उनमें से कुछ विद्वान् टीका कार है जैसे—नैयायिक जगदीश, वैयाकरण नागेश, मीमांसक कमलाकर तान्त्रिक गोकुलनाथ। इन विद्वानों ने भी काव्य प्रकाश पर टीका रच का अपने को गौरवान्वित समझा। साहित्य के इस दौर में ध्वनि, अलंकार आदि का काव्य में उपकरण के रूप में पर्याप्त होता गया, इन आचार्यों ने इन विषयों का नवीन ढंग से विश्लेषण तो किया परन्तु पिछले प्रभाव से भी ये नहीं बच पाये। मम्मट के काव्य लक्षण में ही वामन आदि का प्रभाव दिखाई देता है। फिर भी साहित्य क्षेत्र में सब से बड़ा कार्य जो मम्मट तथा उनके अनुयायियों ने किया वह था सब विधाओं या मार्गों का समन्वय करते हुए साहित्य की सर्व सामान्य थ्यूरी को जन्म देना, जिसमें सब साहित्यिक सम्प्रदाय या वाद एक होकर 'काव्य प्रकाश' में मुखरित होने लगे।

किन्तु मम्मट के सर्वतोमुखी आचार्यत्व में भी तात्कालीन कुछ साहित्य महारथी जैसे कविराज विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ किन्हीं एक बातों में मम्मट से सहमत न थे। रस से परिपूर्ण वाक्य को काव्य मानने वाले विश्वनाथ ने मम्मट के काव्य लक्षण का खण्डन किया इसलिये कि उन्होंने इस लक्षण के अन्दर रस को स्थान नहीं दिया था। रस के स्थान पर उन्होंने अलग व्यञ्जन, का स्थान निर्धारित करते हुए यह सिद्ध किया कि जो चमत्कार रस में है वही व्यञ्जन में भी है इसलिए उत्तम काव्य का व्यञ्जनात्मक होना आवश्यक है। यद्यपि मम्मट ने काव्य प्रकाश में जगह-जगह रस को भी विशेष स्थान दिया है, किन्तु काव्य का सर्वस्व एकमात्र रस ही है, यह उन्होंने नहीं माना। रस व्यञ्जना या ध्वनि उनके मत में ये सब काव्य का एक ही आवश्यकता को पूर्ण करते हैं वह है चमत्कार किन्तु गुण दोष, शब्द, अर्थ आदि का भी काव्य में विशेष स्थान है। इसी कारण उन्होंने शब्द दोष अर्थ दोष और रस दोष इन पर खूब लिखा है।

रचनाएं :

आचार्य मम्मट की एक ही रचना काव्य प्रकाश आज हमें मिलती है। यद्यपि

इतने बड़े धुरन्धर साहित्यकार होते हुए उन्होंने अपने जीवन में अन्य कई रचनाओं को जन्म दिया होगा किन्तु दुर्भाग्यवश आज उनमें से अभी तक एक भी हस्तगत नहीं हुई। इनका अपूर्व ग्रन्थ काव्य प्रकाश ही केवल इनको अमर रखने में पर्याप्त है। इसे साहित्य संसार का बड़ा न्यायालय समझा जाता है। साहित्य क्षेत्र की सर्व सम्मत मान्यताओं का एक प्रकार से यह ग्रन्थ राजमुद्रा (Royal Stamp) का काम करता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के आदि में काव्य लक्षण लिखा गया है उसमें दिखलाए गये काव्य के उपकरणों का विस्तृत व्याख्यान इस ग्रन्थ के आदि से अन्त तक मिलेगा। या ज्यों समझना चाहिए कि मम्मट के काव्य लक्षण के विस्तार पर ही सारा काव्य प्रकाश लिखा गया। इसके दस उल्लासों (Chapters) में एक-एक उपकरण की विषद् व्याख्या की गई है नीचे लिखी विषय सूची से इस तथ्य की स्पष्टता मिल जायेगी :—

1म उल्लास में :—काव्य प्रयोजन, काव्य स्वरूप तथा विशेष ज्ञातव्य बातें।

2म उल्लास में :—शब्द और अर्थ पर विस्तृत व्याख्यान अभिधा-लक्षण-व्यञ्जना इन शब्दों की तीन शक्तियों पर विस्तार से व्याख्यान।

3म उल्लास में :—अर्थ के सम्बन्ध में समस्त बातें।

4र्थ उल्लास में :—रस विषय पर विस्तृत व्याख्यान, रस के स्वरूप, कथन के प्रसंग में भट्ट लोलट्ट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनव गुप्त के मतों का उद्धरण।

5म उल्लास में :—रसाभासों के लक्षण तथा स्वरूप आदि।

6म उल्लास में :—अधम काव्य का वर्णन।

7म उल्लास में :—काव्य दोषों का वर्णन।

8म उल्लास में :—काव्य गुणों का वर्णन।

9म उल्लास में :—शब्दालंकारों का वर्णन।

10म उल्लास में :—अलंकारों का वर्णन।

इस उपलब्ध रचना के अतिरिक्त इन की एक अन्य पुस्तक का कहीं पर उद्धरण (Reference) मिलता है, जिस का नाम है शब्द व्यापार परिचय परन्तु दुर्भाग्य से अभी तक वह उपलब्ध नहीं हुई।

समय :—आचार्य मम्मट ने अपने समय के बारे में कहीं कुछ संकेत नहीं दिया

किन्तु उनकी रचना में आए हुए आचार्यों के संस्मरणों द्वारा उनके समय के बारे में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। मम्मट ने श्री अभिनव गुप्त का काव्य प्रकाश में "इति अभिनव गुप्त पादाः" कह कर स्मरण किया है। अभिनव का समय उनकी रचना 'वृहती वृत्ति' के अनुसार 1015 A.D. पड़ता है इस से स्पष्ट है कि मम्मट इनके पश्चात् ही हुए थे किन्तु कब, अभी यह प्रश्न शेष रह जाता है मम्मट ने परमार वंशीय धारापति राजा भोज का भी संस्मरण दिया है। राजा भोज 1055 A.D. तक रहे थे इसलिये, मम्मट का समय ग्यारहवीं शताब्दी का अन्त या बारहवीं शताब्दी का आदि सिद्ध होता है। मि० वेबर तथा हाग के अनुसार मम्मट नैषध चरित के रचयिता हर्ष के चचेरे भाई थे। इनके पिता का नाम जयंत तथा दो भाइयों के नाम क्रमशः उव्वट और कल्लट थे। दोनों धुरन्धर विद्वान थे। उव्वट विशेष कर वेदों का विद्वान था। राजानक पदवी धारी मम्मट कश्मीरी थे इस में सब से बड़ा प्रमाण उनकी यह पदवी ही है। कश्मीर का किस दिशा में इनका निवास स्थान था, इस सम्बन्ध में अभी कोई सप्रमाण संकेत नहीं मिला किन्तु कश्मीरी लोक-वार्ता के अनुसार इन का घर पाम्पुर के कुछ आगे था। इस समय कश्मीर में राजानक (रैणा) घराने बहुत हैं, वे भी इन्हीं में किसी घराने के होंगे। वह राजानक घराना शायद अब भी चलता होगा किन्तु किसी को पता नहीं कि मम्मट उनके पूर्वज थे। कई पण्डितों का यह भी विचार है कि कश्मीर के उथल-पुथल के काल में शायद उनका धर्म परिवर्तित किया गया हो, परन्तु इस सम्बन्ध में जब तक हमें कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता तब तक इस कथन पर विश्वास करना असम्भव है। पाम्पुर के आस-पास के रैणा खानदानों में से ही किसी के वे पूर्वज होंगे और वह रैना खानदान अब भी चलता होगा किन्तु इस में भी प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाणों की बड़ी आवश्यकता है। ०००

आचार्य–उद्भट

कविता के क्षेत्र में अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। अलंकार का अर्थ है शोभा या भूषण-जेवर। जिस प्रकार स्त्री की सुन्दरता जेवर पहनने से निखर आती है, उसी प्रकार अलंकारों द्वारा कविता का स्वरूप भी चमक उठता है। ये अलंकार साहित्य-क्षेत्र में क्या हैं और इन से कैसे शोभा बढ़ती है, इस विषय पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। स्पष्ट है कि चमत्कार पूर्ण अर्थ ही काव्य की साज-सज्जा या शोभा सम्पादित करता है। जिस अर्थ में कथन की वक्रता या टेढ़ापन हो उसी को चमत्कार पूर्ण माना जाता है। या सीधे-साधे अर्थ को कविता प्रकार (poetical method) द्वारा व्यक्त करने से ही उस में अर्थ का चमत्कार भी आता है। इस प्रकार की उक्तियों के कई ढंग होते हैं। "वह सावधान है" न कह कर 'वह चौकन्ना है' कहने में अर्थ की सुन्दरता अधिक बढ़ जाती है। 'बुढ़ापा आ गया' यह कहने की अपेक्षा 'भौंरे छिप गए और हंस प्रकट हो गए' यों कहना अधिक चमत्कार पूर्ण उक्ति है। इस प्रकार उक्ति की शोभा उत्पन्न करने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया जाता है कुछ अलंकार शब्दों की शोभा बढ़ाते हैं और कुछ अर्थ की। पहले को शब्दालंकार और दूसरे को अर्थालंकार कहा जाता है। पहले का उदाहरण है—"मन रमा रमणी रमणीयता"...इस में रमणी-रमणी आदि शब्दों की आवृत्ति से शब्दालंकार की सुन्दरता निखर आई है। इसी प्रकार अर्थालंकार का उदाहरण है—"उदित उदय गिरि-मंच पर रघुवर बाल पतंग"। अर्थात् उदयांचल पहाड़ के स्टेज पर रामचन्द्र रूपी बाल सूर्य उदित हुए।

अलंकारों का स्वरूप तथा उनका कविता में स्थान संक्षिप्त शब्दों द्वारा प्रकट करने के अनन्तर अब हम इस सम्बन्ध में विशेष बात यह भी दिखला देना चाहते हैं कि काव्य साहित्य के इतिहास में कविता की आत्मा के बारे में भिन्न-भिन्न मत के अनुयायी आचार्य हो चुके, जो अपना-अपना सम्प्रदाय कायम कर गये थे। जैसे कविराज विश्वनाथ आदि आचार्य रस को कविता की आत्मा मानते थे, आनंद वर्धनाचार्य का दल "काव्य की आत्मा ध्वनि है" ऐसा माना गया था। इसी प्रकार वामन 'रिति' (style) को काव्य की आतमा मानते थे और शंकुक आदि आचार्य

वक्रोक्ति (टेढ़ी-बात) को काव्य की आत्मा स्वीकार कर गये। इन में कुछ आचार्य ऐसे भी थे जी अलंकारों को ही काव्य की आत्मा मानते थे। उनमें प्रसिद्ध थे भामह, रूद्रट और उद्भट। प्रस्तुत लेख में अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायी इन्हीं उद्भट का परिचय दिया जाएगा।

जहां आचार्य भामह ने इस अलंकार सम्प्रदाय को जन्म दिया। वहां आचार्य उद्भट ने इसे पुष्टि दी। भामह की पुस्तक काव्यालंकार पर व्याख्या लिखते हुए उद्भट ने भामह के सम्प्रदाय को अत्यधिक स्पष्ट कर दिया था। इस के अनुसार काव्य की आत्मा या जीवन अलंकार ही है। जिस प्रकार आग को तपन से हीन मानना या चन्द्रमा को प्रकाश हीन समझना जैसे हंसी का विषय है, उसी प्रकार अलंकार से हीन कविता को कविता मानना भी बड़ी हास्यास्पद बात है। यद्यपि काव्य में रस का भी विशेष स्थान होने के कारण उसे इसकी आत्मा माना जा सकता है, परन्तु अलंकार सम्प्रदाय वालों ने रस को अलंकारों के अन्तर्गत ही मान लिया है। कविता क्षेत्र में इन अलंकारों का विकास धीरे-धीरे होता चला गया। सर्वप्रथम भरत मुनि ने केवल चार अलंकार चमक, उपमा, रूपक और दीपक माने थे परन्तु इन्हीं का विकास होते-होते 'कुवलया नंद' पुस्तक में 125 अलंकार आ गए।

अलंकारों के प्रधान आचार्य उद्भट जब काश्मीर में थे, उसी समय रीति (Style) को काव्य की आत्मा मानने वाले वामन भी यहीं विराजमान थे। दोनों की खूब टक्कर होती रही होगी। वामन के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यलंकार सूत्र' में काव्य की आत्मा रीति का व्याख्यान विस्तार से किया गया है 'रीतित्मा काव्यस्य' लिखते हुए इन्होंने सूत्रों के द्वारा अलंकार थ्यूरी को समझा कर उन्हीं सूत्रों की स्वयं व्याख्या भी की है। इस ग्रन्थ के कुल पांच परिच्छेद हैं पहले में काव्य के प्रयोजन, तथा रीति का विस्तार से वर्णन है, दूसरे में काव्य दोषों का, तीसरे में काव्य गुणों का चौथे में अलंकारों का और पांचवें में शब्दों की शुद्धि और उनके प्रयोगों का वर्णन है।

वामन काश्मीर नरेश जयापीड़ (8वीं शताब्दी के अन्त में) के समय हुए थे। ये उक्त महाराज के दरबारी साहित्यकार थे। इसी समय अलंकार सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य श्री उद्भट भी काश्मीर भूमि को ही शोभायमान कर रहे थे। ये भी उक्त महाराज के दरबारी साहित्यकार थे। इसलिये दोनों का स्थान-समय और आश्रय एक ही थे। दोनों अपने समय के चोटी के आचार्य थे तथा भिन्न-भिन्न मत होने के कारण दोनों की टक्कर होनी भी स्वाभाविक थी, किन्तु बामन की अपेक्षा उद्भट का प्रभाव यहां अधिक था। इसका प्रथम कारण यह था कि उद्भट का अलंकार सम्प्रदाय कहीं अधिक व्यापक था। क्योंकि भामह, दण्डी, रुद्रट, मम्मट आनन्दवर्धन आदि प्रसिद्ध आचार्य भी काव्य में अलंकारों का विशेष स्थान मान चुके थे। इसके अतिरिक्त

अभिनव गुप्त, विश्वनाथ, रुय्यक आदि आचार्यों ने भी अलंकारों का कभी विरोध नहीं किया बल्कि सब ने जिस किसी रूप में इन्हें स्वीकार किया ही था। अलंकारों की बात ज्यों भी एक व्यावहारिक तथा वास्तविक सत्य था। कविता अलंकारों के बिना वास्तव में ही नीरस जैसी दीखती है। इस कारण अपने मत के द्वारा उद्भट वामन से आगे बढ़ गए तथा उनके सहयोगी भी अधिक थे। दूसरा कारण था उद्भट का ऊंचा व्यक्तित्व, जिस के साथ वामन का व्यक्तित्व टक्कर नहीं ले सका। राजतरंगिणी के अनुसार उद्भट जयापीड़ की सभा में प्रतिदिन का वेतन एक लाख मोहर के रूप में लेते थे ; जैसे—

विद्वान दीनार लक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः ।
भट्टोऽभूदुद्भट स्तस्य भूमि भर्तुः सभापतिः ॥

इस श्लोक के अनुसार उद्भट राजसभा के केवल एक लाख मोहरों का प्रतिदिन का वेतन ही नहीं पाते थे बल्कि राजसभा में प्रधान भी थे। जिस में वामन, शंखदत्त चटक आदि आचार्य भी थे। विद्वानों की सभा का सभापतित्व (Presidentship) उसी को प्राप्त होता है, जिसका स्थान योग्यता के अनुसार सब से ऊंचा हो। इनकी सर्वोपरि योग्यता एक दूसरा श्लोक भी प्रमाण उपस्थित करता है।

क्षीर स्वामि मनोरथे शचटक श्री सन्धि मच्छंखक
श्री दामोदर ढक्य वामन महोपाध्याय मुख्यान् कवीन् ।
अष्टावप्यमिभूय दुर्जयतया भट्टोद्भटः प्रत्यहं ।
यो दीनारक लक्ष वेतनवहः कोऽस्याग्रतस्सोऽप्यभूत् ॥

अर्थ :—क्षौर स्वामि, मनोरथ, ईश, चटक, श्री सन्धिमत, शंखक, श्री दामोदर, ढक्य तथा वामन महोपाध्याय जैसे कवियों को आच्छादित करते हुए उद्भट महोदय एक लाख मोहरों का प्रतिदिन का वेतन पाया करते थे। इन की समानता कौन कर सकता है ?

इन के आश्रय दाता कश्मीर नरेश जयापीड़ के सम्बन्ध में महाकवि कल्हण लिखते हैं कि एक बार जयापीड़ घूमते-घूमते पुण्ड्रवर्धन (गौड़ देश, जो राजा जयन्त द्वारा शासित था) राजधानी में पहुंचे। वहां, इन्होंने भारतीय नाट्य का अभिनय, वहां के कार्तिकेय मन्दिर में होते हुए देखा। महाराज इस अद्वितीय कला पर इतने मोहित हो गए कि इस समारोह के नृत्य कार्य में भाग लेने वाली प्रधान नर्तिका उतकासा कमला को अपनी महारानी के रूप में अपना कर कश्मीर पहुंचे। राजतरंगिनी के (412-434) अनुसार जयापीड़ की प्रार्थना के अनुसार उद्भट ने लेखन कार्य प्रारम्भ किया था। उद्भट की उस समय की अपूर्व धाक तथा योग्यता का प्रभाव सर्वोपरि

था। आन्दवर्धनाचार्य भी इन की अपूर्व योग्यता का एक स्थान पर स्मरण किये बिना नहीं रह पाते।

रचना :

उद्भट की इस समय अलंकार विषय पर लिखी हुई एक मात्र रचना 'काव्यालंकार सार संग्रह' ही प्राप्त हो पाई है, जिस में काव्य सम्बन्धी अलंकारों का वर्णन है। इस के छः अध्याय (वर्ग) हैं, जिन में 89 कारिकाओं (श्लोक) द्वारा 41 अलंकारों का वर्णन किया गया है। इस की टीका मुकुल भट्ट के शिष्य प्रतिहारेन्दु राज (950 ई०) ने की है। भामह के समान अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायी होते हुए भी ये किन्हीं एक बातों में उससे भिन्नता रखते हैं। अलंकारों के सम्बन्ध में इनके कुछ अपने सिद्धान्त इस प्रकार हैं : (1) अर्थ भेद द्वारा शब्द भेद की कल्पना, (2) अर्थ श्लेष और शब्द श्लेष-भेद से श्लेष अलंकार के दो भेद तथा दोनों का अर्थलंकार के भीतर मान लेना, (2) अन्य अलंकारों की अपेक्षा श्लेष अलंकार की प्रधानता इत्यादि।

काव्यलंकार सार संग्रह पर दो टीकाएं उपलब्ध होती हैं, एक प्रति हारेन्दु राज की और दूसरी 'वृत्ति' जिस के रचयिता का कोई पता नहीं। शायद यह वृत्ति राजानक तिलक की लिखी हुई 'उद्भट विवेक' ही हो जिस का उद्धरण (Reference) कहीं मिलता तो है, परन्तु ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक के अतिरिक्त आचार्य उद्भट ने एक काव्य भी लिखा जिसका नाम था कुमारसम्भव (कालिदास के कुमार सम्भव से अलग) इसी के उदाहरण लेकर आचार्य ने अपने इस ग्रन्थ (काव्यालंकार सार संग्रह) में रखे हैं। इन श्लोकों की रमणीय शैली तथा भाषा के द्वारा हम कवि को अद्भुत कवित्व शक्ति का चमत्कार देख पाते हैं। इन की वर्णन कला तथा सजीव चित्रण करने की योग्यता महाकवि कालिदास की समता तक पहुंचती है। यदि कवि के नाते इनका एक आध काव्य इस समय उपलब्ध होता तो निश्चित ही हमें दूसरे कश्मीरी कालिदास मिल जाते। आचार्य उद्भट अब तो हमारे सामने संस्कृत के सफल आलोचक के रूप में ही अवतीर्ण हैं। किन्तु उपर्युक्त कुमार संभव के श्लोकों के सौन्दर्य को देख कर हम निस्सन्देह कह सकते हैं, कि अपने युग में ये न केवल कश्मीर के बल्कि भारत के बेजोड़ कवि रहे होंगे। इसी उभय पक्षीय (Two Sided) महती योग्यता के कारण ही तत्कालीन कश्मीर नरेश ने एक लाख मोहर प्रतिदिन का इनका वेतन निश्चित किया होगा। यह थी इन के गुणों की कीमत।

समय :—कश्मीर नरेश जयापीड़ कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार ई० सन् 779-813 तक कश्मीर का शासन करते रहे। आचार्य उद्भट इन के दरबारी विद्वत्सभा के प्रधान थे। इस कारण यही समय इन का भी है।

आचार्य उद्भट की एक अन्य पुस्तक का संस्मरण मिलता है, जिस का नाम था 'भामह विवरण'। पुस्तक के नाम करण से ही स्पष्ट है कि इस में भामह की अलंकार सम्बन्धी थ्यूरी पर विचार किया होगा। आलोचना की दृष्टि से यह पुस्तक न मालूम कितनी सुन्दर होगी। प्रतिहारेन्दुराज ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में इस प्रकार संस्मरण दिया है—"विशेषोक्ति लक्षेण च भामह विवरणे भट्टोद्भटेन एक देश शब्द एष व्याख्याव:"। काव्य प्रकाश के टीकाकार भट्ट गोपाल भी उद्भट के बारे में ज्यों लिखते हैं :—

उद्भटेनापि नम्रेण नायकेनोपलालित: ।
....मल्पारम्भोऽपि भामह: ॥

इस प्रकार अलंकार सम्प्रदाय के आचार्यों में उद्भट का नाम विशेष आदरणीय समझा जाता है। संस्कृत के प्रसिद्ध समालोचक होने के साथ-साथ आप में कविता की स्वाभाविक कला थी। जिसका एक नमूना नीचे दिया जाता है :—

केलि लोलालि मालानां कलै: कोलाहलै: क्वचित् ।
कुर्वती काननारुढ श्री नूपुर इव भ्रमम् ॥ ०००

संस्कृत भाषा और भारतीय एकता

विश्व की भाषाओं में संस्कृत भाषा का विशेष स्थान है। भारत की अति प्राचीन एवं साहित्यिक तथा सांस्कृतिक भाषा तो यह है ही, योरोप तथा एशिया की भाषाओं पर भी इस का गहरा प्रभाव रहा है। जब हम रशियन, अंग्रेजी, जर्मनी, लैटिन, हिब्रु, मितानी, अरबी आदि भाषाओं की शब्दावली का पर्यालोचन करने लगते हैं तो हमारे सामने यह तथ्य और अधिक स्पष्ट होने लगता है कि किसी युग में इन भाषाओं की संस्कृत के साथ कितनी बड़ी सन्निकटता थी। अंग्रेजी और संस्कृत शब्दों की समता के सम्बन्ध में कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—पितर (संस्कृत) फादर (इंग्लिश) दुहितर (संस्कृत) डाटर (इंग्लिश), ज्यामिति (संस्कृत) ज्यामेंट्री (इंग्लिश), जर्मनी में घोड़े को उतको और संस्कृत में अश्व कहते हैं। दोनों शब्दों की समानता स्पष्ट है। सप्त (संस्कृत) सिबुन (गोथिक); असुर (संस्कृत) अहुर (इरानी)। इस प्रकार संस्कृत को शब्दावली योरोप तथा एशिया की सब भाषाओं की शब्दावलियों के साथ समानता का सम्बन्ध रखती है। श्री राहुल सांकृत्यायन की खोज के अनुसार रशिया भाषा सब से अधिक संस्कृत के सन्निकट है। इस सम्बन्ध में उन्होंने मुझे एक बार एक लम्बी चौड़ी संस्कृत रशियन शब्दों की सूची दिखाई थी, जिस में दोनों भाषाओं की शब्दों समानता देखकर मैं आश्चर्य चकित रह गया।

धीरे-धीरे संस्कृत का कार्यक्षेत्र सार्वभौमिक न रह कर केवल भारत भूमि ही रह गया किन्तु इसका संसार की भाषाओं पर जो प्रभाव है, वह अब भी वैसे का वैसा है।

वास्तव में दुनियां के देशों की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि अनेक प्रकार की नवीन समस्याओं उग्रता के कारण वहां की जनता जन-जीवन के संघर्ष में ऐसी जुट गई कि भाषा सम्बन्धी इस एकरूपता का उसे ध्यान ही नहीं रहा। इसी से संस्कृत अन्य भाषाओं के साथ संबन्ध की बातों के चिन्तन की कड़ियां टूटती चली गई जहां तक कि संस्कृत अपने देश में ही अप्रासंगिक बनती चली गई। फिर भी इसका सार्वभौमिक महत्व अब भी बना हुआ है। दुनियां के किसी भी कोने में चले जाइये, संस्कृत का अवश्य कहीं न कहीं पठन-पाठन दिखाई पड़ ही जाएगा। दुनियां के सौ

विश्व विद्यालयों में अब भी संस्कृत पढ़ाई जा रही है। भारत में इस समय लगभग पांच हज़ार संस्कृत शिक्षा संस्थाएं तथा तीन-चार विश्वविद्यालय चल रहे हैं। इसी से संस्कृत भाषा के विस्तार क्षेत्र का पता चल जाता है।

प्राचीनता :

यह सर्वविदित है कि संस्कृत की प्रथम रचना ऋग्वेद दुनियां की प्रथम रचना है। वेद काल के सम्बन्ध में पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों में मतभेद है तथापि सामूहिक सम्मति के सन्दर्भ में वेदों की रचना आज से लगभग दस हज़ार वर्षों के पूर्व हुई थी, ऐसा कहा जा सकता है। वेद रचना के अनंतर 8वीं शताब्दी ईसवी पूर्व इसके निरन्तर साहित्य-लेखन की श्रृंखला और अधिक उत्तेजित हुई। साहित्य या कलासिकल की आधार स्वरूप संस्कृत का राज भाषात्व तथा जन-सम्पर्क भाषात्व भी साथ-साथ चलता रहा। इसीलिए इस जन-भाषा को और अधिक सुरक्षित तथा सुदृढ़ बनाने के लिए 5वीं शताब्दी ई० पू० आचार्य पाणिनि ने संस्कृत व्याकरण की रचना की। इसके पूर्व भी अनेक व्याकरण रचे जा चुके थे जैसे शाकटायन व्याकरण, शाकल्य व्याकरण, गालब व्याकरण इत्यादि किन्तु प्रस्तुत व्याकरण सब से अधिक प्रामाणिक और उपयोगी सिद्ध हुआ। और संस्कृत भाषा इसी व्याकरण में ऐसी सुरक्षित बन गई कि शताब्दियों से चल कर आज तक यह परिवर्तन रहित होकर वैसी की वैसी चलती आ रही है। पाणिनी व्याकरण इतना वैज्ञानिक है जिसकी कोई तुलना नहीं। प्रमाणों द्वारा यही सिद्ध होता है कि इस युग में अभी और कोई भाषा समानान्तर रूप से नहीं जन्मी थी इसलिए संस्कृत ही हमारे देश की व्यावहारिक और साहित्यिक भाषा थी। संस्कृत शब्द का अर्थ ही शुद्ध साफ है। उस समय असंस्कृत यानी प्राकृत अपभ्रंश तथा अन्य बोलियों ने अभी जन्म नहीं लिया था। एक ही शुद्ध भाषा थी संस्कृत। संस्कृत से बिगड़ कर सर्वप्रथम पाली भाषा ने जन्म लिया। जब संस्कृत में बिगाड़ दिखने लगा, पण्डितों ने इसे व्याकरण में बांध दिया जिससे इस का रूप पूर्ववत् बना रहा। मि० हर्नली तथा मि० ग्रियर्सन संस्कृत को जन भाषा नहीं मानते किन्तु श्री भण्डारकर तथा श्री गुण महोदय ने भाषा विज्ञान के आधार पर इसे उस युग की बोलचाल की भाषा सिद्ध कर दिया है। अन्य भारतीय विद्वान् भी अधिकतर इसी मत के अनुयायी हैं। योरोप में जो स्थिति लैटिन की रही भारत में वही स्थिति संस्कृत की भी रही। भारत की सभी भाषाओं ने संस्कृत से अनगिनत शब्द लिये हैं। तिब्बती, अफगानिस्तानी, चीनी, जापानी, कोरियायी और पूर्वी, द्वीप समूहों की भाषाओं ने तथा अरबी आदि ने भी संस्कृत के अत्याधिक शब्दों को अपनाया है। संस्कृत साहित्य विश्व के समृद्धतम साहित्यों में मूर्धन्य है और कालिदास विश्व के कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है।

साहित्य :

संस्कृत साहित्य इतना विशाल है, जिसकी पुस्तकों की गणना करना भी असम्भव हो जाता है। भारत पर कई आक्रमणों के कारग तक्षशिला और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों में सुरक्षित संस्कृत पुस्तकालय नष्ट हो गए। जिन में संस्कृत के लाखों ग्रन्थ थे। ऐसी लोक-श्रुति है कि इन्हें छ: मास तक जलाया जाता रहा। फिर भी आज संस्कृत का जितना साहित्य उपलब्ध है वह भी अन्य साहित्यों की तुलना में बहुत आगे बढ़ा हुआ है। वेद, पुराण, दर्शन, स्मृतियां, चौसठ कलाओं पर पुस्तकें, राजनीति, अर्थ शास्त्र, विज्ञान, कला, ज्योतिष, चिकित्सा, अश्व शास्त्र, हस्ति शास्त्र, धार्मिक साहित्य, काव्य, नाटक, तथा आख्यायिका (उपन्यास) एकांकी, निबन्ध, आलोचना, इतिहास, रामायग, महाभारत, गीता, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ सूत्र, आख्यक आदि-आदि दुनियां का कोई विषय नहीं बचा जो संस्कृत में न हो। इतना विशाल संस्कृत साहित्य आज भी हमारे पास है, जो अतुलित ज्ञान का भण्डार है। तभी मनु ने कहा था कि इस देश के बालक से दुनिया के देश शिक्षा पाकर अपने अपने आचार और चरित्र सीखते थे। इस प्रकाशित साहित्य के अतिरिक्त अब भी भारत तथा विदेशों के पुस्तकालयों में संस्कृत पाण्डुलिपियां लाखों की संख्या में पड़ी हुई हैं। यदि उन सब का प्रकाशन हो जाये तो एक अन्य विशाल संस्कृत साहित्य का भाग वर्तमान साहित्य के साथ जुड़कर इस की श्रीवृद्धि कर सकता है।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त, जीव, आत्मा, मन, बुद्धि, लोक, परलोक, मोक्ष, ब्रह्म चिन्तन, यज्ञानुष्ठान, पुरश्चरण, स्वर्ग, नर्क आदि अनेक तत्वों का विशद् वर्णन इसी साहित्य में मिलेगा। भौतिक सुखों की निस्सारता तथा सच्ची शांति का उद्‌गम कहां है इत्यादि विषयों को भी संस्कृत ग्रन्थों में विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

भारतीय एकता की प्रतीक :

देखा गया है कि केवल राजनैतिक माध्यम से ही भारतीय अनेकता में एकता स्थापित होना तब तक सम्भव नहीं जब तक संस्कृत साहित्य द्वारा प्रदर्शित एकता के मार्ग का अनुसरण न किया जाये। राजनीति तो प्रशासकीय ढांचे का आधार बन सकती है किन्तु साधारण जनता के गले में एकता का सन्देश भारतीय प्राचीन संस्कृति, धर्म और मर्यादा का सम्पुट लेकर उतर सकता है। भारतीय संस्कृति, धर्म, मर्यादा आदि तथा नैतिक मूल्यों की शिक्षा का स्रोत संस्कृत ही है। इसी संस्कृत भाषा ने इन तत्वों को आदि काल में प्रदर्शित किया था, जिस के अनुवाद अन्य भाषाओं में होकर जन-जन में प्रचारित हुए तथापि जो संस्कृत नहीं जानते उनके लिए भारतीय धर्म, मर्यादा, संस्कृति, आचार तथा नैतिकता समझने में अवश्य कठिनाई पड़ती है।

भारत भिन्न-भिन्न भाषाओं, सम्प्रदायों और प्रान्तों का देश है। एक भारतीयता की स्थापना का जो सम्बन्ध सूत्र सदियों से चलता आ रहा है, उसका मुख्य कारण संस्कृत भाषा ही है। संस्कृत द्वारा प्रदर्शित नियम आज भी सारे भारत के घर-घर में भारतीयों द्वारा अनुसृत किये जा रहे हैं। कश्मीर से कन्या कुमारी तक सर्वत्र वैदिक अनुष्ठान पौराणिक देवता तथा रामायण, महाभारतीय महापुरुष और ऋषि-महर्षि अब भी भारतीय जनता के लिए पूज्य और अनुकरणीय बने हुए हैं। उन्हीं के आदर्शों पर हमारे सब धार्मिक कृत्य अथवा संस्कार सम्पन्न किये जा रहे हैं चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य या अन्य जाति के लोग हों, सब के आराध्य ये ग्रन्थ हैं और ये ऋषि मुनि हैं, जिसने सारे भारत को एक लड़ी में पिरो रखा है। समाज की राजनैतिक उथल-पुथल, पृथकतत्वाद तथा संघर्षों के रहते हुए भी कोई एक ऐसा मौलिक तत्व है जिसने हम सब को फिर भी एकता तथा एक भारतीयता के आदर्श में बांध रखा है। वही यह संस्कृत भाषा है। मद्रास, बंगाल, गुजरात, पंजाब, आसाम, कश्मीर, महाराष्ट्र, मणिपुर, नागालैण्ड, मिज़ोरम आदि-आदि जितने भी भारतीय प्रान्त हैं, सब में यही एक निष्ठा और भारतीयता का कार्य कर रही है। सब के घरों में जो धार्मिक उत्सव, पर्व और संस्कार मनाए जाते हैं वे सारे भारत के समान रूप में हैं और उनका उद्गम भी एक ही है। वह है संस्कृत भाषा। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा आज हमारे देश के लिए कितनी उपकारक है इस पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिये। इतनी सार्वभौमिक, समृद्ध तथा देशोपकारक भाषा को हम केवल कर्मकाण्डी पण्डितों की भाषा मान कर अपने को अन्धकार में नहीं रख सकते। इस सम्बन्ध में हमें वस्तु-स्थिति और वास्तविकता की पहचान करनी ही होगी। संस्कृत के महत्त्व को देखकर ही योरोप के कई विद्वानों ने भी इसके प्रति अपने को समर्पित कर दिया। मेकसमूलर, विलसन, हांग, कोलब्रुक, मैकडानल आदि अनेक विदेशी संस्कृत विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन करके गहरे अनुसन्धानात्मक ग्रन्थ लिखे।

विदेशों में संस्कृत का प्रचार :

जापान के एक प्रतिष्ठित विद्वान तकाकसू का कहना है कि जापानी भाषा संस्कृत के आधार पर है और भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत संस्कृत है।

ऐसे भी संकेत मिलते हैं कि 467-369 ई० पू० के लगभग कुछ भारतीय विद्वान् यूनान गये थे। श्री योकान ने "इण्डिया इन पीस" पुस्तक में लिखा है कि यूनान के निवासियों की भाषा संस्कृत थी। गार्डन चाइल्ड ने न्यूलाईट आन दी मोस्ट एन्सीएण्ट इण्डिया (New light on the most Ancient India) में लिखा है कि रोम भाषा पर सिन्धु घाटी की भाषा का प्रभाव है। उस युग में सिन्धु घाटी की भाषा संस्कृत ही

हो सकती है। ईरानियों की धर्म पुस्तक जिनविस्ता के सभी मन्त्र और देवता, वेदों के मन्त्रों और देवताओं के समान हैं।

सुश्री सारा लैटन ने लिखा है कि अफ्रीका की दल-दल और जंगलों वाली भूमि में जाकर पता चला कि संस्कृत भाषा के अधिक शब्द अफ्रीकी भाषा में रूपान्तरित हैं। अफ्रीका की पूजा पद्धति में प्रयुक्त किये गये मन्त्रों पर वेद मन्त्रों का स्पष्ट प्रभाव है। साईबेरिया और मंगोलिया के मन्दिरों में शिव का स्तवन अब भी संस्कृत श्लोकों में होता है।

जर्मनी में संस्कृत के प्रचार का वृत्तान्त तो सर्वविदित है ही किन्तु जर्मन भाषा में संस्कृत के हज़ारों शब्द तद्भव रूप में पाए जाते हैं। श्रीमती बोल कोवा ने रशियन भाषा पर संस्कृत के प्रभाव को माना है। अमेरिका के प्रसिद्ध तत्वज्ञ विल्ड शरेष्टा ने कहा है, भारत भूमि हमारी जाति की माता है और संस्कृत हमारे दर्शनों (शास्त्रों) की माता है। इसी प्रकार मलाया, जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियों आदि देशों में अब भी संस्कृत का प्रचार ही नहीं अपितु वहां का कर्मकाण्ड भी संस्कृत के अनुसार सम्पन्न किया जाता है। वहां के मन्दिर, पूजा पद्धति और चिन्तन सब कुछ संस्कृत के आधार पर है।

संस्कृत की इस प्रकार की सार्वभौमिक गरिमा के रहते हुए भी यदि हम भारतीय इस के महत्व को न समझें तो यह बड़े खेद का विषय होगा। जैसा कि पहले कहा ही जा चुका है कि हमारे देश को एकता सूत्र में पिरो रखने वाली संस्कृत भाषा ही है, जिसका इस कार्य में योगदान सदियों से चलता आ रहा है और अब भी चल रहा है। यही नहीं हमारे देश का पुराना इतिहास, संस्कृति, शिक्षा, जीवन पद्धति, धर्म-कर्म, पूर्व महापुरुष सब कुछ इसी भाषा में है। इसलिए कहना होगा कि भारत का रूप संस्कृत और संस्कृत का रूप भारत। ०००

सौन्दर्यबोध

सौन्दर्यबोध प्राणी की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसमें उत्तेजना भरा आकर्षण है, जो बरबस अपनी ओर खींच लेता है। जड़ प्रकृति तो नहीं चेतन प्रकृति में मनुष्य से लेकर पक्षी तक इस आकर्षण का शिकार हैं। यह प्रवृत्ति कोई अपने से दूर कर ले, ऐसा होना असम्भव क्या आज तक इस का कोई उदाहरण भी नहीं देखा गया। वीत राग और योगियों की बात इस तथ्य का अपवाद हो सकती है, किन्तु सांसारिक प्राणी इस सरस एवं रागात्मक मनोभाव से दूर रहें ऐसा असम्भव है। प्राणी के अन्तर्मन में सौन्दर्यानुभूति की वासना बीज रूप में अवस्थित रहती है। यह विभाव और अनुभाव के अवतीर्ण होने पर अवश्य उद्‌बुद्ध होता है। चेतन प्राणियों में यह वासना रहती ही है किन्तु कभी-कभी अचेतनों में भी इसके दर्शन किये जाते हैं। सूर्य के उदय पर कमल खिल उठता है। रात की रानी लता रात के सौन्दर्य में विकसित होती है और स्त्री के पाद प्रहार से अशोक वृक्ष भी पुष्पित हो उठता है। क्या यह जड़ पदार्थों में सौन्दर्यानुभूति नहीं? समुद्र पूर्ण चन्द्र के सौन्दर्य पर ज्वार भाटे के रूप में उद्वेलित हो उठता है, यह भी जड़ प्राणियों का सौन्दर्य पर विमुग्ध होने का एक उदाहरण है। यह सौन्दर्य-लहरी जगत पदार्थों में विविध रूप लेकर अवस्थित रहती है। प्रकृति और मानव दोनों में इसका निवास भिन्न रूप लेकर विद्यमान रहता है। प्रकृति के सौंदर्य में वासना का संचार नहीं होकर उसमें दैवी आभा या ईश्वरीय कलाकृति का आभास मिलता है। मानव का सौन्दर्य दोनों प्रकार का है। उसमें मनुष्य हृदय की निजी प्रकार की सम्वेदनाओं के कारण उसके दो रूप बन जाते हैं। मांसल सौन्दर्य और महान् व्यक्तित्व का सौन्दर्य। मांसल में वासना का पुट रहता है और दूसरे में गुणों के प्रति आस्था-जन्य श्रद्धा प्रयुक्त आकर्षण किन्तु अधिकतर मानवीय चारुता में वासना और अंगों के लावण्य के कारण बाह्य और स्थूल सौन्दर्य बोध की प्रवृत्ति रहती है। रूप, तारुण्य, अंगों के सुन्दर गठन, तीखे नक्ष, चमकीले और घुंघराले समृद्ध केश, मोटी आंखें, रंग गोरा इत्यादि कुछ शारीरिक सुषमा के प्रकाश-कण दर्शक पर अपना जादू-सा काम कर जाते हैं। उस मादक प्रभाव द्वारा दर्शक का अन्तस्तल विमूढ़ होकर उसी में खो जाता है। यह प्रभाव एक ऐसा सुख है, जिस का नशा मानव की ऐन्द्रिय चेतना को तिरोहित करता हुआ स्वयं उस पर हावी ही जाता है। सौन्दर्यबोध की यह ऐन्द्रिय

और स्थूल प्रवृत्ति एक साधारण व्यक्ति से लेकर चोटी के व्यक्ति तक पहुंची हुई है। शूरवीर, देशभक्त, कलाकार, समाज सेवी, योगी, पंडित, मज़दूर, किसान, किशोर, युवक, बूढ़े आदि सब प्रकार के मनुष्यों के हृदय पर इसका प्रच्छन्न राज्य है। यह बोध इतना प्रबल है, जो राजनीति का चक्र बदल सकता है, साम्राज्य का दौर परिवर्तित कर सकता है और संसार में अपने ढंग की क्रांति करता हुआ दुनिया के भविष्य को अपना मोड़ दे सकता है। बड़े-बड़े राष्ट्र के कर्णधारों पर जब इस का प्रभाव पड़ता है तो सर्वव्यापी नीति निर्धारण में जो होना था, उस से कुछ नया हो जाता है। ध्यानस्थ योगी के समक्ष इस सौन्दर्य प्रकाश पुंज के आविर्भाव पर नई उथल-पुथल होने लगती है। कभी तो यह विजय पा लेती है कभी योगी इस पर चढ़ बैठता है किन्तु अधिकतर इसी की जीत के उदाहरण संसार में प्रचलित हैं। यह क्या जादू है, इन्द्र जाल है, इसका निर्णय नए काम शास्त्र के आचार्य फ्रायड भी नहीं कर पाए। प्राचीन आचार्यों ने इस मांसल-प्रकाश को काम का अग्रदूत कह कर इसे मत्त हस्ती की उपमा दी है। विषधर सांप भी कहा है। सांप के डसने पर शरीर में विष फैल जाता है, काम रूपी सांप का विष भी इसी प्रकार मनुष्य की चेतना को बिमूढ़ कर देता है। नारी-सौन्दर्य इसी रूप में पुराने युग में देखा जा रहा है, जिसमें सौन्दर्यानुभूति तो थी लेकिन वासना प्रवृत्ति से पूरित ऐन्द्रिय सुखों की बलबती पिपासा भी इसमें कम न थी। कवि लोगों ने इस ललित अनुभूति के उद्‌गार शब्दों में बहाए अवश्य हैं किन्तु उनकी दृष्टि भी नारी लावण्य के विषय में पूर्ण आदर्श और दिव्य रही हो, ऐसा कहा नहीं जा सकता। हां उनमें इस लावण्य सम्बन्धी अंग प्रत्यंगों के वर्णन में नारी का वासनापूर्ण रूप जहां उभरा है, वहां इस ईश्वर प्रदत्त कलात्मक सौभाग्य के मूल में प्रशंसा के भाव भी छिपे हुए हैं। किन्तु नारी को मानवी की सीमित परिधि से बाहर नहीं लाया गया। वास्तव में मध्यकालीन साहित्य से चल कर रीति काल तक नारी के प्रति कवियों का यही दृष्टिकोण रहा है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह सौन्दर्यबोध नहीं है। कालिदास इन्हीं कवियों की श्रेणी का प्रेम और सौन्दर्य कवि के रूप में विख्यात है। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल के शृंगारिक कवि केशव, मतिराम आदि भी परम सौन्दर्यबोधी कवि माने जाते हैं। किन्तु वे इसी क्षेत्र के हैं, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

दूसरा सौन्दर्य बोध प्रकृति के सम्बन्ध में है। प्रकृति की सुन्दरता में वासना और मांसल लावण्य के उपयोग की तृषा नहीं है। जब कभी कवि प्रकृति की सुरम्य छटा अपने में लहराती हुई देखता है, उसके अन्तस्तल से अनुराग मिश्रित आत्म-विभोरता भावुकता की स्थिति में उमड़ आती है। वन प्रदेश के हरे भरे पर्वतों से चांदी के घोल सा पानी लेकर कल-कल करते झरने शिशु की भांति जब उछलते-कूदते नीचे आते हैं, उधर सुगन्धित वायु के झोंके, पक्षियों के कलरव, सूर्य की किरणों का

पर्वतीय हरियाली में प्रतिबिम्बित, अलौकिक आभा और सौन्दर्य की छटा आदि देखकर कवि वासना और संसार के सुख भोग तथा विषम परिस्थितियां सब भूल कर सौन्दर्य विमूढ़ हो जाता है। न केवल प्रकृति का सुरम्य कलेवर ही अपितु उसके अन्तस्तल पर स्वर्गीय सौंदर्य की छटा का चित्र उभरने लगता है। वह प्रकृति को अनुपम सुन्दरी का रूप देकर उसके नख-शिख चित्रण अथवा शारीरिक सौंदर्य पर अलंकारिक भाषा में कल्पनापूर्ण चित्र सजाने लगता है। कालिदास ने इसी आत्म विभोरता में कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग में हिमालय का चित्रण किया है। मेघदूत में भी कवि का ऐसा ही सुन्दर वर्णन है। संस्कृत के अन्य कवियों ने प्रकृति के गहरे और भावुक चित्रण किए हैं। वाण, माघ, हर्ष, भवभूति आदि ने ऐसा अधिकतर किया है।

हिन्दी कवियों के प्रकृति चित्रण शुरू से चलते आए हैं किन्तु इस युग में निराला, पन्त, महादेवी वर्मा आदि का नाम इस दिशा में विशेष रूप से लिया जा सकता है। पन्त जी तो मुख्य रूप में हैं ही प्रकृति के सुकुमार कवि। इन्होंने इस सौंदर्य का कोमल पक्ष ही लिया है। अधिकांश छायावादी कवि। सौंदर्य बोध के कुशल कलाकार रहे हैं। सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद प्रकृति के सच्चे प्रेमी थे। इन्होंने सम्वेदनात्मक चित्रण तथा चित्रात्मक वर्णन अधिक किया है। पन्त जी ने प्रकृति को आलम्बन मान कर उसके चित्रण में अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय दिया। प्रकृति का विराट्रूप देख उसमें अभिसार सम्बन्धी संकेतों के भरने में कवि का अद्‌भुत सौंदर्य बोध उद्‌भासित हुआ है। उसे तारों से, लहरों से, समुद्र के घोर गर्जन से तथा बिजली की चमक से प्रेमी के संकेत मिलते हैं।

निराला जी ने तो सायंकाल की लालगी को ही स्वर्गीय सुन्दरी का रूप दे डाला। जिसकी लाल साड़ी है, अन्धकार के केश कलाप में तारे रूपी फूल जड़े हुए हैं। वह धीर, गम्भीर और सौन्दर्य की गरिमा से बोझिल होकर आकाश से धीरे-धीरे उतर रही है। सौन्दर्योपासना और ललित पदार्थों के प्रति पिघल जाना मानव हृदय का गुण समझ लीजिए या कमज़ोरी किन्तु यह तत्व सब प्राणियों में पाया जाता है। साँप और हिरण नाद सौंदर्य से विमूढ़ होकर दूसरों की पकड़ में आ जाते हैं या जीवन खो देते हैं। पतंगा दीपक की सुन्दरता पर मर मिटता है, चकोरी चन्द्रमा समझ कर अंगारे को चबा जाती है। ऐसा कोई तो तत्व है इन सुन्दर वस्तुओं में, जो पाषाण हृदय को भी पिघला देता है। यह सौन्दर्य चित्र में, नाद में, प्रतिमा में नारी में, युवक में और कई एक सुन्दर पशु-पक्षियों में भी निवास करता है। प्रकृति तो इसका घर है और फूल ही अपने सौन्दर्य से बड़ों-बड़ों को विमूढ़ कर देने में पर्याप्त है, तो फिर कविता के सुन्दर पद और भी मानव हृदय को झकझोर देते हैं। प्राणी के अन्दर वासना की लहर जब उछलती है तो वह सौन्दर्य-विह्वल होकर हृदय की सब जटिलताएं भूल

जाता है। नेपोलियन जैसा वीर नारी-लावण्य के आगे झुक गया, प्रभावित नहीं हुआ यह अलग बात है किन्तु उस समय वीरता के प्रचंड उफान को संभाल कर कुछ नर्म मुलायम और भावुक अवश्य बना। दिन-रात शत्रु सैन्य पर टूट पड़ने वाले शिवाजी शत्रुओं की ललनाओं के सौन्दर्यपूर्ण कोमल भार पर करुणापूर्ण बन गए। तो यह नहीं कहा जा सकता कि सौन्दर्य केवल वासना का भोजन है बल्कि दैवी भावना का उन्मेष प्रकट करने वाला कोमल फूल है, जो दूसरों के हृदयों पर वासना करुणा, मुग्धता, भावुकता आदि के अनेक इन्द्रधनुषी आकार प्रकट करता है। इस ललित भावना की अनुभूति भी सांसारिक जीवन की कठोरता में मरुभूमि पर बहती शीतल जलधारा के समान सामयिक सौन्दर्य उद्बोधन और दैवी आनन्द विभोरता की शीतल बयार की लहर पैदा करने वाली है। जीवन की कुण्ठाओं और विविध वेदनाओं से थकित मानव हृदय के लिये यदि सौन्दर्य बोध के शीतल प्रकाश-कण समय पर न मिले, तो उसकी क्या दशा होगी, यह अनुभव का विषय है। आज क्यों सिनेमा इतना व्यापक रूप ले रहा है? आज नगरों और महानगरों का भड़कीला जीवन तो सर्व-विदित ही है। मनोविनोद और सौन्दर्य मुक्ति के सहस्त्रों साधन वैज्ञानिक तरीके से निकाल रखे हैं। टी० वी०, क्लब, होटल, नृत्यगृह, चित्रगृह, संगीत, रेडियो, चित्रपट, भ्रमण, मधुशाला आदि अनेक आधुनिक मनोविनोदगृह संसार में अधिक व्यापक होते जा रहे हैं। लाखों ओर करोड़ों रुपये आज का मानव इसी में खर्च कर रहा है। क्योंकि इस समस्या ग्रस्त युग में ज्यों-ज्यों मनुष्य घुटता जाता है, त्यों-त्यों वह मनोविनोद के सौन्दर्यपूर्ण साधन ढूंढने लगता है। कभी-कभी व्यथित मनुष्य सुन्दरता से मन बहलाता हुआ इस प्रकार उसी का बन जाता है कि फिर पुराने वातावरण में न आकर अपनी एक नई छोटी-सी श्रृंगारिक दुनिया ही बसा लेता है। सुन्दरता सब को प्यारी है। उस पर कैसा भी व्यक्ति हो कभी-कभी मर मिटने को तैयार हो जाता है। घर बाहर छोड़ देता है, सम्बन्धियों और मित्रों को तिलांजलि दे देता है।

सौन्दर्यबोध हृदय के विकास का परिणाम है। मनुष्य जितना पठित, बुद्धिवान् एवं सभ्य होगा, उतना ही सौन्दर्योपासक तथा सौन्दर्यपूजक होगा। शिक्षित हृदय ही सुन्दरता की गहराईयां, चिन्तन की गहराईयों द्वारा पहचान कर उस का मूल्यांकन कर सकता है। मनुष्य जीवन और समाज में सुन्दरता का क्या स्थान है, क्या उपयोगिता तथा गुण है इस सम्बन्ध में पठित, शिक्षित तथा अभिजात कुल का व्यक्ति ही निर्णय कर पाता है, अन्यथा अशिक्षित और अज्ञानी के हाथ कोई सुन्दर और कोमल बस्तु दीजिए देखिये उस की क्या दशा बनती है। यह नहीं कि उसमें सुन्दरता के प्रति आकर्षण नहीं है, यह होते हुए भी वह इसकी प्राप्ति होने पर उसका प्रयोग ठीक प्रकार से नहीं कर पाता क्योंकि उसके अन्दर मूल्यांकन की वह तीव्रता नहीं जो पहले प्रकार के मनुष्य में होती है। किसी सुन्दर वस्तु के रख रखाव में मनुष्य

की अपनी कला होती है और यह कला जितनी सूक्ष्म होगी उतनी ही उसमें सौन्दर्य बोध की मात्रा भी रहेगी। बहुत से लोगों का स्वभाव शुचिता और स्वच्छता में रहने का होता है। वे अपना अधिक समय घर के प्रकोष्ठों को सजाने-बनाने में ही व्यतीत करते हैं। बैठक के कमरे अलंकृत एवं विविध सौन्दर्य-सामग्री से विभूषित रखते हैं। उनकी हर प्रकार की क्रिया इसी प्रकार की रहती है। किस भावना से प्रेरित होकर वे इस कार्य में प्रवृत्त रहते हैं, सोचने पर उनके अन्दर प्रसुप्त सौन्दर्यबोध का ही अनुमान लगाया जा सकता है।

सौन्दर्य के प्रति आग्रह मनुष्य के हृदय में बैठी कोमल भावना का द्योतक होता है। दया, सहानुभूति, मधुर व्यवहार ये गुण भी सौन्दर्योपासना के फल हैं। इन गुणों की जितनी मात्रा मनुष्य में रहेगी उतना ही उसमें सौन्दर्यबोध भी रहेगा।

सौन्दर्यबोध मनुष्य के अन्दर रहने वाली संस्कृति, आभिजात्य और सभ्यता का प्रतीक है। यह उच्चस्तरीय होने की निशानी है। कर्कशता उन्हीं लोगों में रहती है, जिनमें कोमल भावना का संस्कार नहीं है, जो जीवन को कुरूपताओं का शिकार हो कर अपने को ऊंचा उठाने की अपेक्षा निम्नस्तरीय बना देते हैं। जरा-ज़रा सी बात के लिए चिड़चिड़ा बन कर दूसरों का व्यर्थ तिरस्कार कर देना, बच्चों को डांटना, स्त्रियों के साथ विवाद, उन का अपमान तथा षड्यन्त्री प्रवृत्ति रखना आदि दुर्गुण मनुष्य को निम्नस्तरीय बना देते हैं। ऐसे व्यक्ति क्रोधी, बाल की खाल उतारने वाले, झगड़ालू, कंजूस और निष्कारण परद्वेषी होते हैं। चापलूसी, निन्दा, दूसरे को हानि पहुंचाने की भावना आदि तुच्छ प्रवृत्तियां इनमें बलवती होती हैं। ऐसे स्वभाव के पुरुषों में सौन्दर्यबोध की थोड़ी-सी मात्रा ही हृदय के किसी कोने में प्रसुप्त रहती है, जो कभी ही जग पाती है और जगने की स्थिति में उनमें थोड़ी-सी ही नर्मी या कोमलता आ सकती है, जो सौन्दर्यबोध की दशा में अपर्याप्त है। भावुकता सौंदर्यबोध का मुख्य स्रोत है। मनुष्य भावुकता में आकर ही करुणापूर्ण हृदय से कोमलता के प्रति आग्रहवान बनता है। कोमलता का अनुयायी होना ही सौंदर्योपासकता का चिन्ह बन जाता है। कवि लोग भावुक होते हैं। इसी कारण वे सौंदर्यबोध द्वारा वस्तु-जगत् का सुन्दर चित्र उतारते हैं। इन कवियों की श्रेणी में भी छायावादी और प्रकृति प्रेमी कवि सौंदर्य भावना में अधिक लीन रहते हैं, छायावादी कवियों के कण्ठ से अधिकतर प्रकृति सौंदर्य और सुकुमारता तथा उसमें स्वर्ग सुन्दरी की रमणीय कल्पना का स्वर फूटा है। छायावादी मांसल सौंदर्य के चितेरे न होकर प्रकृति और नारी की दैवी रम्यता के द्रष्टा और प्रवक्ता रहे हैं। किन्तु आज की हिन्दी नई कविता में सौंदर्यबोध का यह तत्व कम पड़ता जा रहा है और भौतिक आस्था अधिक उभर रही है। जो आज की दूषित राजनीति का ही फल है।

वास्तव में एकांत सेवन, समस्याओं से बचाव तथा मानसिक प्रफुल्लता इन तीन साधनों द्वारा मनुष्य के हृदयाकाश में प्रसुप्त सौंदर्यानुभूति के बीज प्रस्फुटित होते हैं। आध्यात्मिक भावना, भोग लिप्सा तथा अर्थ संचय-भावना से चित्त की स्वतन्त्रता ही इस अनुभूति को जगाती है। आज के यांत्रिक युग में जब मानव के चारों ओर समस्याओं का जाल बिछा है, राजनीति का प्रबल दौर, राजनीतिज्ञों का पद लोलुपता के लिये जोड़ तोड़, उस का जन-मानस पर कुरूप प्रभाव और उससे पैदा होने वाली विषम परिस्थितियों से देश का वातावरण ही जब विषम हो चला है तब सौंदर्यबोध की भावना मानव मात्र के मानस पटल पर कैसे उद्भूत हो सकती है। इस भीड़, बेकारी, महंगाई और आस्था हीनता के वातावरण में प्रत्येक मनुष्य उड़ा-उड़ा, व्यस्त और आत्मनिष्ठ है। उसे जीने की सर्वप्रथम चिन्ता है। ऐसी स्थिति में यह सौंदर्यबोध इस युग में आकर कुछ दब-सा गया है। फिर भी इसे जागृत किया जा सकता है, इसको जगाने की ओर विशेष ध्यान देकर। ०००

डॉ० कर्ण सिंह

संसार में बड़े-बड़े व्यक्तित्व जन्म लेते रहते हैं, जिनकी बुद्धि व मस्तिष्क मानव को आश्चर्य में डाल देते हैं। ऐसे व्यक्तित्व पूर्व जन्म की तपस्या का फल पाकर आते हैं और संसार के इतिहास में अपना स्थायी चिह्न अङ्कित कर जाते हैं।

महान् पुरुष बनना एक उत्तम भाग्यवत्ता की निशानी है। यह गौरव मनुष्य की जाति-पाति, जन्म, वंश, वातावरण आदि किसी पर भी निर्भर नहीं होता। छोटे से छोटे कुल में पैदा होकर मानव उन्नति की चोटी पर चढ़ सकता है। इसी प्रकार बड़े या मध्यम कुल में पैदा होकर भी जिसे पूर्व जन्म की तपस्या के कारण ऊपर उठना होता है; उठ ही जाता है। इस ऊंची कोटि पर पहुंचने के लिए आभिजात्य कुल, धन, सम्पत्ति, सहायक आदि कुछ की भी सहायता न रहते हुए भी मनुष्य असहाय व एकांकी संघर्ष करता हुआ अपना गन्तव्य स्थान प्राप्त कर ही लेता है। जिन्होंने महापुरुष नहीं बनना होता वे अथाह सम्पत्ति, सुख, साधन, सत्ता, उच्च माता-पिता आदि प्राप्त करके भी सामान्य पुरुष बनकर ही जीवन यापन करते हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त साधन सम्पत्ति प्राप्त करके जिसने ऊंचे उठकर सारे देश का मस्तक ऊंचा करना होता है वह ऐसा कर ही लेता है, उसमें साधनों की सहायता उसके लिए गौण हो जाती है। अन्त में उसकी महानता के आगे ये साधन अत्यन्त बौने पड़ जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि महापुरुष बनने के लिए न उच्च सम्पन्नता कारण बनती है, न साधनहीनता बाधक बनती है। जिसने महापुरुष बनना है उसे हर हालत में बनना ही है।

पं० जवाहरलाल नेहरू जिस साधन सम्पन्न घराने में पैदा हुए, इस प्रकार के हजारों घरानों में लोग पैदा होकर भी कुछ नहीं बने परन्तु पण्डित जी अपने पूर्व जन्म के सुकृत्यों व तपश्चर्या के कारण इतने महान् बने कि न केवल भारत पर अपितु विश्व पर छा गए। उनकी इस महानता का कारण उनका साधन सम्पन्न परिवार ही नहीं था अपितु पण्डित जी के अपने पूर्व सुकृत व संस्कार ही इसमें मुख्य थे। मैं यह सब कुछ भारत के प्राचीन चिन्तन के आधार पर लिख रहा हूं जिसे मैं पूर्ण सत्य ही नहीं मानता अपितु इसमें मेरी पूर्ण आस्था भी है।

अब यह सब कुछ लिखने का मेरा प्रयोजन केवल एक ही मुख्य विषय पर अपने विचार प्रकट करना मात्र है ; जो मेरे लिए अनुभूत विषय है। इस विषय के नायक है, डॉ० कर्णसिंह । इसमें सन्देह नहीं कि डॉ० कर्ण सिंह भी महापुरुषों की श्रेणी में ही गिने जा सकते हैं । किन्तु किस श्रेणी के ? मोटे हिसाब से वर्तमान शताब्दी के महापुरुषों की भी दो श्रेणियां हैं। जो इस शताब्दी के प्रारम्भ से मध्यकाल तक रहे वे प्रथम श्रेणी के महापुरुष हैं, जिनके जीवन के साथ त्याग, तपस्या, देश-प्रेम, देश के लिए यातना सहन करना, सादगी, चरित्र, निस्वार्थता व आदर्शों पर राजनीति का संचालन इत्यादि महान् तत्त्व जुड़े हुए हैं। इन महापुरुषों का लगभग सारा जीवन भारत की परतन्त्रता के युग में ही बीता। इसी कारण स्वतन्त्रता के लिए इनके जीवन समर्पित रहे। ऐसे महापुरुषों में दादा भाई नारोजी, लोकमान्य तिलक, गोखले, महात्मा गान्धी, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, रवीन्द्र नाथ टैगोर, डॉ० राधा कृष्णन, सुभाष चन्द्र बोस, पं० जवाहर लाल नेहरू, पं० मदन मोहन मालवीय, मौलाना अबुल कलाम आजाद, वल्लभभाई पटेल, लाल बहादुर शास्त्री जैसे नेता आ जाते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर नेहरू, पटेल, आजाद, डॉ० राधाकृष्णन, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद आदि कुछ नेता ही इस प्रथम पीढ़ी के बचे थे। जिन्होंने अनेक भयंकर तूफानों के बीच भी इस नव स्वतन्त्रता को संभालकर, देश को एक नई दिशा दी, किन्तु दुर्भाग्य से पं० नेहरू व शास्त्री जी को छोड़कर ये महापुरुष भी स्वतन्त्रता काल में थोड़ी देर तक ही जी सके। अन्त में देश के प्रशासन का सारा भार पं० नेहरू के कन्धों पर आ पड़ा। इन प्रथम श्रेणी के नेताओं में पं० नेहरू अभी कम उम्र के थे तथा कर्मठ व सबल भी थे। इस कारण वे 1964 तक देश को अपना सबल नेतृत्व देते रहे। उनके जीवन काल में ही नेहरू जी के बाद कौन ? यह प्रश्न उठने लगा था। उनके देहावसान के पश्चात् श्री लाल-बहादुर शास्त्री ने प्रधानमन्त्री का पद संभाला। उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ इसे चलाना शुरू ही किया था कि वे डेढ़ वर्ष के भीतर ही महाप्रयाण कर गए। तभी से प्रथम श्रेणी के महापुरुषों की पीढ़ी समाप्त हो गई। अब आई नई पीढ़ी जिन्हें मैं नेता कह सकता हूं। महापुरुष तो उपर्युक्त स्वतन्त्रता पूर्व की कार्य पद्धति और विशेषताओं से अलंकृत थे। अब के नेता केवल राजनीति में पड़कर कुर्सी या सत्ता प्राप्त करने की ललक रखने वाले हैं। इनमें वे गुण व विशेषताएं नहीं दीखतीं जो प्रथम पीढ़ी के महापुरुषों में थीं। वे महापुरुष भी थे व महान् नेता भी थे। अब की पीढ़ी के केवल नेता हैं और कुछ नहीं। किन्तु नेता भी केवल सत्ता के प्रत्याशी और कुछ नहीं। इससे स्पष्ट है कि आज महापुरुषों का युग तो गया किन्तु सत्ता के लोभी, तिकड़म व उठा-पटक की राजनीति खेलने वाले नेताओं की कमी इस युग में नहीं है।

डॉ० कर्ण सिंह भी इसी युग में नेता के रूप में वर्तमान हैं किन्तु उनका स्वर अलग ही है। वे प्रथम पंक्ति के महापुरुष नेताओं का संस्कार व चरित्र लेकर ही इस युग की राजनीति में चल रहे हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमारी नयी राष्ट्रीय सरकार के सामने कश्मीर का मामला अन्तर्राष्ट्रीय रूप लेकर उपस्थित हुआ उसके मुख्य सूत्रधार थे प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू और उप-प्रधानमन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल, जिनके सहायक शेख अब्दुल्ला भी थे। किन्तु वैधानिक रूप में इन्हें जम्मू-कश्मीर के भूतपूर्व शासक वंश की सहायता की भी अपेक्षा थी। अत: उस समय युवराज श्री कर्ण सिंह को इन्होंने अपने सम्पर्क में लेना ही उचित समझा, पं० नेहरू व सरदार पटेल के सम्पर्क में रहकर अठारह वर्ष के युवा युवराज कर्ण सिंह ने इनसे उच्च राजनैतिक दिशा निर्देश व प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा में संस्कार के रूप में ग्रहण किया था। आगे चलकर इसी स्वल्पायु में इन्हें जम्मू-कश्मीर के राजमुख्य (Head of the State) का पद भी संभालना पड़ा। एक अठारह वर्ष का युवराज और इतना बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकार फिर भी इन्होंने काफी योग्यता से उसका संचालन किया। तदनन्तर राज्य के सदरे रियासत बने उम्र केवल चौबीस वर्ष की होगी। किन्तु इस पद पर रहकर भी उन्होंने अपूर्व शासन कुशलता का परिचय दिया। जैसा कि पहले कहा गया है कि महापुरुषों की प्रथम पंक्ति के पं० नेहरू, पटेल, शास्त्री जैसे कुछ नेताओं ने स्वतन्त्रता के समय देश का शासन चलाया। इस बीच श्रीमती इन्दिरा गान्धी का प्रसंग भी आवश्यक ही है। उन्होंने पं० नेहरू की पुत्री होने के कारण स्वतन्त्रता युग को बड़ी नज़दीकी से देखा, उसमें भाग लिया और अपने पिता की गोद में खेलकर महापुरुषता के संस्कार लम्बे समय तक प्राप्त किए थे। श्री लाल बहादुर शास्त्री जी की दु:खद मृत्यु के पश्चात् उन्होंने ही प्रधान-मन्त्री के रूप में देश की बागडोर संभाली और सत्रह वर्षों तक योग्यता से शासन किया। उपर्युक्त कारणों से वे भी महापुरुषों की प्रथम पंक्ति में आ सकती हैं। श्री राजीव गान्धी भी नेहरू परिवार में जन्मे और बाल्यावस्था से युवावस्था तक उसी संस्कार में पले। इस दृष्टि से उनमें भी प्रथम पंक्ति की महापुरुषता के संस्कार थे। इन्दिरा जी के बाद उन्होंने भी प्रधानमन्त्री के पद पर रहकर पांच वर्षों तक देश के शासन की बागडोर योग्यता पूर्वक संभाली, दुर्भाग्य से उनकी हत्या ऐसे समय पर हुई जब सारे भारत की आशापूर्ण आंखें उन्हीं पर टिकी हुई थीं।

प्रथम पंक्ति के महापुरुषों के सम्पर्क व संस्कार में रहने वाले दूसरी पंक्ति के उपर्युक्त दो चार महापुरुषों में ही डॉ० कर्णसिंह भी आ जाते हैं किन्तु इनके जीवन के साथ निजी विशेषताएं भी जुड़ी हुई हैं। सदरे रियासत के समय इनका प्रशासन बड़ा

सुन्दर ही नहीं रहा अपितु भारत सरकार की कश्मीर के सम्बन्ध में पैदा हुई एक गम्भीर समस्या को भी इन्होंने सुलझाया। वह थी सन् 1953 की घटना जब इन्हें शेख अब्दुल्ला के मन्त्री मण्डल को बर्खास्त करके नए मुख्यमन्त्री (बख्शी गुलाम मोहम्मद) की नियुक्ति करते हुए नई सरकार का गठन करना पड़ा था। यह कार्य अत्यन्त गठिन व गम्भीर था जब शेख जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व को हटाकर विधान सभा भंग करके नए मुख्यमन्त्री के साथ सरकार की स्थापना की और शेख को गिरफ्तार करना कोई कम हिम्मत की बात न थी। यह कार्य भी पच्चीस वर्ष की आयु के इस महापुरुष ने साहस के साथ किया। तदनन्तर ये राज्य के गवर्नर भी वर्षों तक बने रहे। बेदाग व स्वच्छ छवि से जनता के हृदय में अपनी श्रद्धापूर्ण छाप छोड़कर ही ये शासन के बाहर आए। इनकी इस प्रकार की महापौरुषीय स्वच्छ छवि और सुचरित्र देखकर ही श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने इन्हें अपने केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में ले लिया। पहले नागरिक उड्डयन मन्त्री, फिर स्वास्थ्यमन्त्री व तत्पश्चात् शिक्षा-मन्त्री भी रहे (केन्द्र में), वहां भी इनके प्रशासन की योग्यता, चरित्र की स्वच्छता, नि:स्वार्थ भावना व सच्ची लगन ने सबका मन मोह लिया। सत्ता पाकर अच्छे से अच्छे पुरुषों की भी आलोचना हो जाती है, कोई दोषारोपण भी लगता है परन्तु डॉ० कर्ण सिंह के इतने लम्बे भिन्न-भिन्न उच्च पदों पर रहकर, प्रशासन की कभी कोई कटु आलोचना नहीं सुनी गई। एक बार इन्दिरा जी ने भी उनके सुशासन की प्रशंसा की थी।

डॉ० कर्ण सिंह को स्वार्थपूर्ति व कुर्सी की महत्त्वाकांक्षा से कुछ लेना देना नहीं। ये तो जब देश को इनकी आवश्यकता पड़ती तो तभी कुर्सी लेकर निर्लोभता तथा स्वार्थहीनता से देश के प्रति अपना कर्त्तव्य समझकर कार्य करते हैं। वेतन तक नहीं लेते। मन्त्री की सरकारी सुविधाएं भी नहीं लेते। यह इनका आभिजात्य संस्कार व महानता ही है कि समय-समय पर आवश्यकता पड़ने पर दिया गया कोई भी कार्य, पद लेकर देश की सेवा करते हैं, कुछ देते ही हैं, लेते नहीं। इनके चरित्र द्वारा ये महापुरुषों की प्रथम पंक्ति में आ सकते हैं।

डॉ० कर्ण सिंह इतनी विशेषताओं के धनी होकर भी दो और विशेषताएं रखते हैं, जो महापुरुषों में अनिवार्य होती हैं। प्रथम तो ये उत्तम वक्ता हैं। वक्तृत्व कला मनुष्य को छोटे-से-छोटे स्तर से उठाकर ऊंचे स्तर पर ले जाती है। जितने भी साधारण घराने में पैदा हुए लोगों ने राजनीति में अपना उच्च स्थान बनाया है, उसमें उनकी सुचारू वक्तृता ही कारण रही है। शेख अब्दुल्ला, बख्शी गुलाम मोहम्मद, पं० मदन मोहन मालवीय जैसे लोग वक्तृत्व कला द्वारा ही साधारण घरानों में पैदा

होकर राजनीति के शिखर पर जा पहुंचे। यद्यपि डॉ० कर्ण सिंह जम्मू-कश्मीर नरेश के घर में पैदा हुए थे तथापि इनमें जो जादू वहा देने वाली वक्तृत्व कला है, वह इन्हें पूर्व संस्कारों से मिली हुई है। हिन्दी व अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं के इनके भाषण लाखों की जनता को मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं। यह भी इनकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का मुख्य कारण है। राजकुलीय गौरव का अहम छोड़कर जनता से हिल मिल जाना सबके साथ मधुर व्यवहार करना, सबको समान समझना, यथाशक्ति सहायतार्थियों की सहायता करना आदि-आदि इनकी विशेषताएं इनके राजवंशीय होने के अतिरिक्त हैं, जो ईश्वर प्रदत्त हैं।

स्वतन्त्रता पूर्व श्रीमती इन्दिरा गान्धी आनन्द भवन के इन्द्रधनुषीय वातावरण में रहकर भी स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलनों में भाग लेकर गिरफ्तार होती थीं। देश की आजादी के लिए अपने पिता के साथ यातनाएं भी सहती थीं। उसी समय डॉ० कर्ण सिंह एक राजकुमार के रूप में अपना बचपन बिता रहे थे किन्तु राजनैतिक गतिविधियों की जो सूचनाएं दरबार में जातीं थीं उनसे परिचित रहते ही होंगे। इसी से इनके हृदय में राजनीति का अंकुर फूटने लगा होगा। जिसमें सारे भारत की दशा का प्रतिबिम्ब रहता था। राजकुल में पलकर प्रशासन का संस्कार तो साथ ही चलता है। उस समय की राजकुमार की एक झांकी मैंने भी जम्मू में देखी। राजकुमार कर्ण सिंह को देव दर्शनार्थ रघुनाथ मन्दिर में जाना था। आगे-आगे घुड़सवारों की लम्बी टोली बीच में झण्डी लगी इनकी कार और उसके पीछे घुड़सवारों की कतार बीच में इनकी कार धीरे-धीरे चल रही थी। बाजार बन्द थे, वन्दनवार लगे थे और जयकारों से पुष्पवर्षा हो रही थी। देखकर मेरे हृदय में विचार उठा—यही है पूर्वजन्म की तपस्या का फल। कौन जानता था कि सामन्तीय इन्द्रधनुषीय वातावरण में फूलों की शय्या पर कल्लोल करने वाला यह राजकुमार एक दिन राष्ट्रीय नेता बनकर जन-जन पर अपने जन नेतृत्व की सफल छाप छोड़ेगा। यदि सच्ची बात कहनी है तो यही कहूंगा कि राजतन्त्र के वैभवपूर्ण वातावरण में जन्म लेकर राष्ट्रीय नेता बनने का सौभाग्य सबको नहीं मिलता।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही राजसिंहासन पर बैठे राजे-महाराजे राजकुमार युवराज सब समय की लपेट में आकर अप्रासंगिक हो गए किन्तु जम्मू-कश्मीर के राजवंश का यह दीपक स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की राजनीति के क्षेत्र में अत्यधिक चमक-दमक के साथ प्रज्वलित हो उठा। इस समय तो डॉ० कर्ण सिंह दिल्ली में रहकर भी राजनीति से दूर रहकर ही समय बिता रहे हैं। किन्तु समय आएगा जब ये पुन: राजनैतिक क्षितिज पर अकस्मात् चमक उठेंगे और शासन के क्षेत्र में उच्च पद पर जाकर देश की सेवा करेंगे किन्तु देश सेवा तो अब भी वे कर ही रहे हैं।

लेख समाप्त करने के पूर्व डॉ० कर्ण सिंह जी की एक और विशेषता बता दूं कि प्रथम पीढ़ी के बहुत से महापुरुष लेखक भी थे। डॉ० कर्ण सिंह भी उत्तम वक्ता व उच्च कोटि के विद्वान् होने के साथ-साथ सफल लेखक भी हैं। इस दिशा में इनके अंग्रेज़ी, हिन्दी दोनों मिलाकर कुल दस-बारह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इनका जीवन बड़ा सादा है, सिगरेट तक का व्यसन नहीं है। महान् पूजा पाठी भी हैं। भारतीय संस्कृति के प्रतीक भी। इनके परिचित होने का गौरव मुझे भी प्राप्त है। परिचित ही नहीं कुछ समय तक इनके सम्पर्क में रहकर मैंने बहुत कुछ सीखा भी। बड़ों के सम्पर्क से छोटों को भी जो जन-सम्मान मिलता है, वह मुझे भी मिला। ०००

हरियाणा की संस्कृत-प्रतिभा महाकवि चण्डीदास

संस्कृत-काव्य क्षेत्र में अनेक प्रतिभाएं पैदा होकर रोचक रचनाओं द्वारा इसे सुसज्जित कर गई हैं। सर्वप्रथम महाकवि कालिदास का नाम लिया जा सकता है, जिसके कारण न केवल संस्कृत-साहित्य ही बल्कि भारतवर्ष का मस्तक ऊंचा है। दुनियां के सब देशों में आज कालिदास की धूम है।

हरियाणा के महाकवि चण्डीदास भी कालिदास के पद-चिन्हों पर चलने वाले अमर महाकवि हुए हैं, जिनकी रचनाओं में वही आनन्द स्रोत हैं, जो कालिदास की रचनाओं में मिलता है। हृदय के तारों को आंदोलित कर देने वाली भावावलि के प्रकाशक कवि चण्डीदास इस युग के नव्य कालिदास का रूप थे। इन्होंने हरियाणा प्रांत में जन्म लेकर अपने युग में संस्कृत-साहित्य को ऐसे ही ललित, सरस एवं भाव-पूर्ण ग्रंथ रत्न प्रदान किए जैसे महाकवि कालिदास ने दिये थे किन्तु इतनी महत्ता होते हुए भी कवि चण्डीदास के सम्बन्ध में हमारा देश अधिक परिचित नहीं। कवि चण्डी-दास का नाम लेते ही बंगाल के चण्डीदास पर स्मृति जा टिकती है। किन्तु ये चण्डी-दास उन्नीसवीं शताब्दी में पैदा होकर हरियाणा प्रान्त को सुशोभित कर रहे थे। जब तक यह बात न कही जाए तब तक श्रोता के हृदय में इस महाकवि के सम्बन्ध का परिचय नहीं बैठता। इस अप्रसिद्धि का मुख्य कारण कवि की रचनाओं का पांडुलिपि भण्डारों में अब तक दबे रहना ही है। अपने युग में इन्होंने भिन्न-भिन्न राज-दरबारों का आश्रय लेकर राज-प्रेरणा तथा स्वांत: सुखाय जो कुछ संस्कृत माध्यम द्वारा साहित्य के रूप में लिखा, उसकी जो कुछ भी उपलब्धि मुझे हुई है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि यह साहित्य संस्कृत के लिए अमर तथा विशाल भण्डार है इसके प्रकाशन की ही केवल मात्र आवश्यकता है। अपने युग के इस महाकवि ने काशी, राजस्थान, पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर के विशाल भूभाग की संस्कृत सम्बन्धी गतिविधियों पर अपना गहरा प्रभाव डाला हुआ था और इन गतिविधियों में मुख्य सूत्रधार यदि इन्हें कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। उन दिनों सामन्तीय युग का प्रभाव अपने यौवन पर था। योरोपीय प्रभाव तथा ठाट-बाट एवं भोग-विलास का सामंतीय चित्र इतना उभर चुका था, जिस से किसी भी संस्कृत साहित्यकार को उससे अस्पृष्ट होकर

रहने में कठिनाई का अनुभव होता था। इस आश्रय में आकर भी ये साहित्यकार अपनी मर्यादा और परम्परा का पालन करते हुए दूसरों पर अपनी छाप छोड़ते थे। कवि चण्डीदास ने लगभग तीन चार राज-दरबारों में इन्द्रधनुषी जीवन केवल देखे ही न थे, उनमें उन्हें वर्षों तक कार्य भी करना पड़ा किन्तु इस वैभव की भुक्ति में भी इन्होंने संस्कृत पण्डितों जैसी सरलता, सादगी, धर्म-निष्ठा, मर्यादा, पवित्रता को कायम रखा और महलों से चलकर झोंपड़ियों तक संस्कृत वाणी का प्रचार-प्रसार किया। महाकवि संस्कृत के सभी विषयों के पारांगत विद्वान् होकर एक महाकवि के रूप में अत्यन्त सफल थे। आशु कवि इतने थे कि राज-दरबार में प्रश्न होने पर तत्काल उस का उत्तर श्लोकबद्ध भाषा में दे डालते। उनकी उपलब्धि "पार्वत्यापाद मूर्द्धजांग-वर्णन" पुस्तक से इस तथ्य की पुष्टि होती है। पुराण, षड्दर्शन एवं व्याकरण के धुरन्धर विद्वान् होकर ज्योतिष, कला तथा राजनीति में भी कवि उन दिनों अद्वितीय था। इस सर्वतोमुखी पांडित्य के साथ कविता कला की सांस्कारिक प्रतिभा कवि के व्यक्तित्व को बहुत ऊंचा उठा लेती है।

परिचय :

कवि चण्डीदास का जन्म सन् 1805 में हरियाणा के पुण्डरी नामक ग्राम में पण्डित दुर्गादत्त सवाल के घर हुआ। बचपन में ही कवि की अद्भुत-प्रतिभा के उन्मेष प्रकट होने लगे। पिता घाट, शाला और चत्वर में खेलते हुए इस बालक को ताड़ना-पूर्वक बुलाकर पढ़ाई में लगाते थे और माता बालक से वाग्वैभव के लिए सरस्वती का व्रत करती थी। इस सम्बन्ध में कवि ने अपनी रचना रघुनाथ गुणोदय के एक श्लोक में संकेत भी दिया है—

अद्यापि कारयत्यैव वध्वा देव्या व्रतं हठात्।
उपात्तं मैऽक्षरारंभै नौमि तां मातरं पुनः॥ र० गु० 13—6

कवि की नीतिसंग्रह पुस्तक में तो इस सम्बन्ध में और विस्तृत प्रकाश डाला गया है। तीसरी रचना "राधा सुन्दर भक्तिबोध" के अन्त में भी इसी प्रकार इनके जीवन की एक घटना का विस्तृत वृत्तांत है। उसके अनुसार कवि चण्डीदास शुरू में महाराजा पटियाला के दरबार में थे। किसी कारणवश वहां से त्यागपत्र देकर हिसार पहुंचे। जनता ने उनका भरसक स्वागत किया। श्रीमद्भागवत् का सप्ताह करने के पश्चात् अब वे किस दरबार का आश्रय पाने कहां जाएं, एकाएक यह प्रश्न उनके सामने उपस्थित हुआ। रात को सरस्वती ने स्वप्न में आकर उन्हें जयपुर जाकर भक्त सुन्दर दास से मिलने को कहा। उन्होंने ब्रज भाषा में, राधा-कृष्ण-भक्ति विषयक पद्य प्रबन्ध लिखा था, उसका संस्कृत अनुवाद कराना चाहते थे। भगवती सरस्वती

की ओर से ही कवि की यह नियुक्ति हो चुकी थी। प्रातः कवि जयपुर की ओर चल दिए। पुष्कर तीर्थ में स्नान करने के पश्चात् उन्होंने भक्त सुन्दरदास से भेंट की। वहीं कुछ मास रह कर उन्होंने उस ब्रज-काव्य का संस्कृत अनुवाद किया। जिस का नाम 'राधा सुन्दर भक्ति बोध' रखा गया यह ललित एवं अनूदित संस्कृत रचना अब सम्पूर्ण रूप में ही मेरे हाथ लगी है। इसका पर्यालोचन करने पर ऐसा लगा जैसे कि प्रस्तुत रचना में शब्दानुवाद के स्थान पर भावानुवाद के अंचल में कवि ने अपनी स्वच्छन्द कल्पना कला बढ़ाई है। काव्य अत्यधिक सरस है, जिसमें प्रकृति, रमणीयता, शृंगार, सुन्दर रूप-सज्जा, सम्भोग तथा राधा कृष्ण की रंगीली जीवन झांकी उपस्थित की गई है। वृन्दावन की सुषमा, गो-दोहन ग्वाल-बालों से क्रीड़ा, सरस राग-रंग, झूला, षट्-ऋतु आदि का बड़ा सम्मोहित चित्र प्रस्तुत किया गया है।

पटियाला के राजा से कवि का वैमनस्य कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में हरियाणा के कुछ वृद्धों ने प्रकाश डाला। श्रुति-परम्परा के आधार पर कवि चण्डीदास पर तांत्रिक होने का सन्देह था। राज-दरबार में रहते हुए जब वहां एक बार अग्नि कांड हुआ तो महाराज ने कवि चण्डीदास को ही इसका कारण ठहराया। इसी बात पर कवि को दरबार छोड़ कर जयपुर जाना पड़ा। भक्त सुन्दर दास के प्रयास से वहां उन्हें राजसम्मान भी मिला।

पारिवारिक स्थिति :

कवि का एक भाई ईश्वरी दत्त था, जो ज्योतिष विद्या में अत्यन्त प्रवीण था। घर में वृत्तीश्वरी व्यवसाय चलता था। ज़मीन तथा लेन-देन भी था। उनके परिवार में परम्परा से चण्डी की उपासना चलती आ रही थी। कवि चण्डीदास भी न केवल चण्डी के उपासक ही थे अपितु उस के प्रत्यक्ष रूप में कृपापात्र भी थे। सरस्वती की कृपा तो उन पर प्रत्यक्ष थी ही। ईश्वरी दत्त के प्रभुदयाल तथा शिवप्रसाद दो लड़के थे। कवि चण्डीदास की कोई सन्तान न थी। श्री जयन्ती दास भी चण्डीदास के चचेरे भाई थे, जो पुण्डरी गांव की एक गुफा में योगाभ्यासी महात्मा के शिष्य थे। ये महात्मा योग की ऊंची सीढ़ी तक पहुंचे हुए थे। पुण्डरी के लोग आज भी कहते सुनाई पड़ते हैं कि एक बार महात्मा जी ने शरीर से प्राण खींच लिए। उन का शव कई दिनों तक गुफा में पड़ा रहा। अन्त में लोगों ने उसका दाह कर्म कर दिया। महात्मा की आत्मा ने एक जुलाहे के मृत शरीर में प्रवेश करके दाह कर्म पर लोगों को डांट सुनाई थी, जिसमें जयन्तीदास भी थे।

कवि चण्डीदास ने भिन्न-भिन्न राज-दरबारों में सम्मान पाकर घर में ऊंचा वैभव पैदा कर रखा था, जिसके अन्तर्गत तीन बड़ी-बड़ी हवेलियां, आठ नौ सौ बीघे

ज़मीन तथा सोना चांदी और हीरे जवाहरात इकट्ठे कर रखे थे। उन दिनों पुण्डरी भर में कवि का घर धनाढ्यता, राज-प्रतिष्ठा तथा विद्वत्ता के कारण अत्यधिक विख्यात था। कवि की ख्याति भारत के दूर-दूर प्रांतों तक फैली हुई थी तथा राज-प्रतिष्ठा जनित शक्ति भी अथाह थी।

जीवन संघर्ष :

जम्मू-कश्मीर दरबार में आने के पूर्व कवि चण्डीदास सर्वप्रथम कैथल नरेश उदयसिंह के दरबार में रहे, फिर पंजाब केसरी रणजीतसिंह, पटियाला नरेश एवं जयपुर नरेश के दरबारों में रहे। इन भिन्न-भिन्न राज-दरबारों में रह कर लगभग 49 वर्ष की उम्र में कवि जम्मू-कश्मीर नरेश के दरबारीय आश्रय में आए। उन दिनों में गुलाबसिंह राज्य का शासनतन्त्र अपने एक मात्र युवराज रणवीर सिंह के हाथों देकर श्रीनगर में आराम पा रहे थे। इसी समय सन् 1857 के स्वतन्त्रता-संग्राम की चिंगारी देश भर में फूट निकली किन्तु इस उथल-पुथल की विभिषिका का प्रभाव राज्य पर बहुत कम पड़ा था, जिससे जान पड़ता है कि कवि चण्डीदास का इन दिनों का जीवन शांति से ही बीता होगा। यहां आने पर सर्वप्रथम कवि को राज-दरबार की ओर से दो उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य मिले। युवराज प्रतापसिंह का अध्यापकत्व तथा राज-कवित्व दोनों कार्य इन्होंने कुशलता से निभाये और अपनी विद्वत्ता एवं कार्य-पटुता द्वारा म० रणवीर सिंह को ऐसा प्रभावित किया, जिससे राज पंडित का स्थान भी इन्हें मिला। यह स्थान उन दिनों प्रतिष्ठा तथा आय का मुख्य स्रोत माना जाता था, इसी पद-प्राप्ति द्वारा कवि ने राज्य में बड़े-बड़े राजकीय देवालयों की प्रतिष्ठाएं करवाई, जिनमें से एक विशाल मन्दिर प्रतिष्ठा के बाद इन्हीं को मिल गया। वह मन्दिर जम्मू की पश्चिम की ओर रामगढ़ के पास हकताल नाम गांव में म० रणवीर सिंह ने प्रतातेश्वर के नाम से निर्मित करवाया था। उसकी आमदनी छोटी ज़मींदारी के बराबर की थी।

धीरे-धीरे कवि राज्य की विद्वन्मण्डली जो राजाश्रित थी, का मूर्धन्य बन गया। अपने सर्वतोमुखी पांडित्य, गम्भीर ज्ञान, कवित्व के अद्भुत चमत्कार एवं कार्य-पटुता द्वारा कवि ने इस दरबार में सब तरह से ऊंची प्रतिष्ठा प्राप्त की और राज कृपा द्वारा धन, मान, यश एवं शक्ति सब कुछ प्राप्त किए।

कवि चण्डीदास का पत्र जो "विद्या विलास" सभा में पढ़ा गया था, साहित्यिक विषयक है, जिसमें मम्मट द्वारा दस गुणों को तीन गुणों में अन्तर्भूत करने के सिद्धांत का खण्डन किया गया है। पत्र के एक ही श्लोक में सम्पूर्ण विषय का संकेत इस प्रकार दे दिया गया है।

कुर्वन्त्यै हृदिगुणगणह्लादिनीं मम्मटोक्तिम्
नौ श्रद्धावानिह कविरसौ नव्य चण्डीसहायः
वृद्धैरुक्तानपि शुभगुणान योऽन्यथा हि प्रकुर्यात्
कः श्रद्ध्यादिह गुरू निगम सद्वृद्ध सेवी तदुक्तौ ।।

वास्तव्योऽयं श्री कुरुक्षेत्र मध्यरेखांतस्य सत्पुरे पुण्डीरीकै । श्री मद्भूप विद्या विलासे नव्य चण्डीदास शर्मा समक्षम् ।

पत्र के आदि के इस लेख में सारगर्भित उपक्रम के पश्चात् लेखक ने शास्त्रार्थ प्रणाली के संस्कृत गद्य में अपनी विचारधारा बहाई है, जिस की कुछ पंक्तियां उदाहरण स्वरूप नीचे दी जा रही हैं :—

अथ दोष गुणालंकाक्षराः वक्ष्यन्ते इति भारत सूत्रोक्त क्रमेण दोषानुक्त्वा गुणालंकारौ विविच्येते । तत्र काव्य शोभायाः कर्तारोगुणाः शोभातिशय वारिणोऽलंकारा इति विवेकः अय कियन्तो गुणाः इत्यपेक्षाथामाह माधुर्य्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दशेति काव्य प्रकाशे मम्मटोवित :—

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न शास्त्रार्थ जन्य विश्लेषण भरे आठ पत्र कवि के अब उपलब्ध हुए, जो एक-एक करके विद्या विलास सभा में पढ़े गए होंगे । विद्या विलास सभा की इन गतिविधियों का समय सन् 1850-75 के लगभग रहा था । उन्हीं दिनों के कवि के हाथों लिखे ये अमूल्य पत्र आज संस्कृत-साहित्य की निधि हैं ।

काव्य एवं कविता की उठान के प्रसंग में कवि की ऊंची उड़ान किसी प्राचीन संस्कृत कवि से कम नहीं । भाषा ओजस्वी, कल्पना चमत्कारी तथा छन्द अलंकार गुण रीति का सुन्दर सन्निवेश कवि चण्डीदास की अपनी विशेषता है—जैसे देखिए एक कल्पना :—

उपयाति महीपतौ पुरः शुशुभे सा सुतरां स्व नायके ।
ललनैव कृत प्रसाधना धृत पुष्पाभरणा वनस्थली ।। र० गु० 2-28 ।

इस श्लोक में वनस्थली को सुन्दर ललना का रूप दिया गया है । उसका स्वामी राजा जब वहां पहुंचा तो वनस्थली ने रूप-सज्जा संवार कर अपने कांत का पुष्पाभरणों द्वारा स्वागत किया ।

आगे राजा ने नदियों को पार किया । उन पर भी कवि ने कैसे सुन्दर कल्पना द्वारा युवतियों के सौन्दर्यपूर्ण यौवन का आरोप किया है :—

भ्रमिताभिःसुफेन सुस्मिता कमलास्याः शफरी विलोचनाः
कमठौरसिजः कृतान्हिका अतितीर्षत्स सरितः पुरस्सराः ॥ रु० गु० 2-29

उन नदियों में उछलते हुए कच्छप स्तन, जलवर्त, तरंग आदि मुस्कराहट, कमल मुख तथा मछलियां आंखें थी। ऐसा लगता था कि वे स्नान करके सुस्वरूप बन रही थीं जब राजा ने उन्हें पार किया। कवि का रूपक-विधान तथा जड़ चेतन का समन्वय स्थापित करने की कला यहां कितनी सुन्दर बन पड़ी है।

कवि चण्डीदास प्रत्येक रस के वर्णन में सफल रहे हैं। किन्तु कोमल कविता के सुकुमार कवि होने के नाते वे श्रृंगार, प्रेम तथा सौन्दर्य वर्णन में विशेष सफल रहे हैं। रघुनाथ गुणोदय का छटा और सातवां सर्ग इसी सौन्दर्य वर्णन से भरपूर हैं। राम तथा सीता के अंग-प्रत्यंगों की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उन्होंने अद्भुत कला का प्रदर्शन किया है। नई-नई कल्पनाओं, अनुभूतियों तथा उपमानों का वहां प्रवाह जैसा वह निकला है।

सन् 1857 के अन्त तक चण्डीदास जम्मू-कश्मीर नरेश के दरबार में आए। उनके ठहरने का प्रबन्ध सर्वप्रथम स्थानीय रघुनाथ मन्दिर में किया गया। सम्वत् 1919 (1863 ई०) के कवि द्वारा घर को लिखे गए एक पत्र द्वारा इस तथ्य की उपलब्धि हुई है। कवि के उपलब्ध समस्त साहित्य का पर्यालोचन करने पर ऐसा संकेत कहीं नहीं मिला कि उन्हें रघुनाथ मन्दिर का निवास बदल कर कहीं अन्यत्र रहना पड़ा हो। उन दिनों राजा की ओर से बुलाए गए विद्वानों के ठहरने का स्थान वही देवालय था चाहे वे स्थायी रूप से रहें या अस्थायी रूप से। उन दिनों इस राजकीय विद्वन्मण्डली का एकमात्र अखाड़ा यही मन्दिर था और यह परम्परा स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व तक लगातार चलती रही। सम्वत् 1917 में कवि को हवताल में राजमन्दिर 'प्रतापेश्वर' की उपलब्धि हुई और लगभग इसी समय के कुछेक वर्ष पूर्व उन्हें राजकुमाराध्यापकत्व भी मिला। इसी के उपरांत राजकवित्व राजपांडित्य का पद भी मिला। इस कवि की प्रतापख्याति इस दरबार में दिनोंदिन बढ़ती ही गई। इस सुखमय राज-सम्मान की प्राप्ति द्वारा कवि जीवन के सांध्यकाल तक इस राज्य में सुखमय जीवन बताते रहे। म० रणवीर सिंह की मृत्यु (सन् 1885) के पश्चात् उनके यहां रहने का कोई प्रमाण नहीं मिल पाया। यह बात तो स्पष्ट है कि ये यहां की स्थायी नौकरी पाकर भी भवन निर्माण द्वारा स्थायी रूप से यहां नहीं बसे। उन्होंने अपने शेष दिन पुण्डरी में ही बिताये इतना तो उनकी वर्तमान पीढ़ी जानती ही है किन्तु उनके जीवन की शेष झांकी के सम्बन्ध में वह बिल्कुल अनजान दिखाई दी।

मेरी खोज ने इस सम्बन्ध में जो कुछ खोज निकाला है, वह 'निबन्ध' लिखना पड़ा है।

अपने इस लम्बे जीवन-काल में जीवन को स्थिर बनाने के लिए प्रारम्भ में कवि को पर्याप्त संघर्ष भी करना पड़ा। जम्मू-कश्मीर दरबार में आने से पूर्व जिन-जिन दरबारों में वे रहे, वहां स्थायी रूप से उनके पैर नहीं जम सके। उनके व्यक्तिगत पत्र, डायरियां तथा हिसाब-किताब के पत्रों को पढ़ने से पता चलता है कि उन दिनों राज-प्रदत्त विभूति के साथ-साथ कवि को व्यक्तिगत रूप में भी वृत्तीश्वरी आदि का कार्य करना पड़ता था। पुण्डरी के सेठों के घर जप, पूजन और कथा-वाचन का कार्य भी उन्हें करना पड़ता। किन्तु जम्मू-कश्मीर दरबार में आने के पश्चात् उनका जीवन एक सामन्तीय सज-धज में परिपूर्ण हो गया था। इस उच्च स्तरीय जीवन में आकर भी कवि अपनी स्वाभाविक सादगी और धर्म-निष्ठा में तत्पर रहा। इसी धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण में कवि के बचपन ने अठखेलियां की थीं। युवावस्था में आकर वे संस्कार अधिक रूप में विकसित हुए, जिन्होंने उन्हें पांडित्य प्राप्ति के लिए घोर परिश्रम की ओर प्रवृत्त किया। तदनन्तर उनका दरबारी जीवन शुरू हुआ, जिसके निमित्त उतार-चढ़ावों में उन्हें जीवन के उत्थान-पतन देखने पड़े। राज-दरबारों की कठिनता साध्य वृत्ति तथा प्रतिस्पर्धियों की उलझनें उन्हे भी तंग करती रही। इसी प्रकार अन्य आपात् घटनाओं ने भी कवि को क्षुब्ध अवश्य किया था। जैसे महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् कुछ वर्षों तक पंजाब की राजनैतिक परिस्थितियों की अस्त-व्यस्तता, पटियाला नरेश के दरबार में विरोधी षड्यन्त्र, नई जीविका-प्राप्ति के लिए हिसार और तत्पश्चात् जयपुर पहुंचना और वहां संघर्षपूर्वक अपना स्थान बनाना आदि, जम्मू-कश्मीर दरबार में आकर कवि को शुरू-शुरू में कुछ संघर्ष करना पड़ा होगा किन्तु बाद का जीवन उत्तरोत्तर ऊंचा ही होता गया। इस प्रकार सन् 1857 से लगभग 1885 तक कवि चण्डीदास जी ने जम्मू-कश्मीर दरबार में रहकर काफी वैभव, सम्मान और यश कमाया। इसी के फलस्वरूप वे पुण्डरी में तीन हवेलियां और सात आठ सौ बीघे ज़मीन अर्जित कर पाए। सन् 1885 के बाद कवि की मृत्यु हुई। मृत्यु के निश्चित समय का पता तो नहीं चल पाया किन्तु उपर्युक्त समय के आस-पास ही कहीं उनके देहांत होने का अनुमान है। इस समय कवि की उन हवेलियों में केवल एक शेष बची है और लगभग एक सौ बीघा ज़मीन भी है जिस पर उन की वर्तमान पीढ़ी निर्वाह कर रही है। इस पीढ़ी के पंडित मामराज सवाल हैं जो लगभग 80 वर्ष तक पहुंच गए थे यह बात आज से सन् 1968 की है। ये कवि की तीसरी पीढ़ी के व्यक्ति हैं। इनके दो पुत्र नाथराम और बालकृष्ण अभी बिल्कुल युवा हैं। पुण्डरी में अब भी कवि चण्डीदास की बातें वृद्धों की रसना पर नाच रही हैं।

सन् 1968 में पं० मामराज लगभग 80 वर्ष के थे। लेखक 14-4-91

युग और परिस्थितियां :

महाराजा रणवीरसिंह (1857-85) का युग ही ऐसा था जिसे मुगल साम्राज्य के अन्त तथा अंग्रेज़ी साम्राज्य के उदय का सन्धिकाल कहा जा सकता है। अस्त होता हुआ युग अपनी जो कुछ विशेषताएं कई दशकों के लिए छोड़ जाता है, उदीयमान युग उससे समझौता कर लेता है। मुगलों के रंगीन साम्राज्य गे साहित्य क्षेत्र पर जो भड़कीली, एवं रंगीली छाप छोड़ी, जो श्रृंगार, माधुर्य तथा लालित्य की छटा बहाई और जिस राजसी वातावरण एवं रंगीन भावों की छाप उस युग के साहित्य पर छोड़ी थी, उसी का दौर हिन्दी तथा संस्कृत-साहित्य पर पड़ा। जो कवि चण्डीदास तक भी चलता चला आ रहा था। अंग्रेज़ों की छत्र-छाया में पोषित रजवाड़ों के दरबारों में भी वही ठाठ-बाठ की परम्परा थी और वही था श्रृंगार भरा साहित्यिक वातावरण। दरबारी कवि अब भी मुगलकालीन बिहारी, केशव, परमाकर जैसा वैभव पाकर राजसी बने हुए थे। सब की बात नहीं, जिन्हें राजाश्रय मिल चुका था उनकी यही दशा थी। राजसी जीवन पाकर उनके कण्ठों से श्रृंगार की रागिणी ही अधिकतर फूट रही थी। नई चेतना और नई जागृति ने अभी हल्की-सी अंगड़ाई ली थी किन्तु वह इने-गिने अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों तक ही सीमित थी। युद्धोत्तर एवं साम्राज्य परिवर्तन के बाद भी इस नई साम्राज्यवादी पीढ़ी में अभी सामन्तीय धरातल पर राष्ट्र की नींव रखी गई थी। अंग्रेज़ों ने भारत में आकर एक केन्द्र की स्थापना करते हुए समग्र भारत को संयुक्त रूप दिया। छोटे-छोटे जो राज्य कभी पूर्ण स्वतन्त्र थे, अब इस केन्द्र की प्रशासनिक इकाइयां मात्र बन कर रह गए। फिर राजाओं के हाथों राज्यों के आंतरिक प्रशासन की पर्याप्त शक्ति थी, जिनके बल पर वे ऊंचे भोग-विलासों के जीवन व्यतीत करते और दण्डनीति का भी स्वेच्छा से प्रयोग करते। फिर भी इन राजाओं को पूर्ण रूप से केन्द्र की साम्राज्यवादी नीतियों को अपना आदर्श मान कर ही चलना पड़ता। इस रूप में ये सब भारत में विदेशी राज्य के दास ही तो थे। भारत में एक साम्राज्य गया और दूसरा आया। दोनों ही राजतांत्रिक थे, भेद केवल इतना था कि जहां मुगल सम्राट भारतीयता के माध्यम से राजनैतिक पहलुओं पर सोचते, वहां अंग्रेज़ शासक अपनी ही वैदेशिक रीति-नीति द्वारा शासन चलाते थे, साम्राज्यवादिता दोनों की समान थी।

कवि चण्डीदास इसी युग के प्रतिनिधि कवि थे। उन का व्यक्तिगत जीवन सुखी और सम्पन्न था। स्वयं विभिन्न राज-दरबारों में रहकर इन्द्रधनुषी जीवन का लम्बा उपभोग कर चुके थे। राजाज्ञा और राजभक्ति उन का आदर्श था तथा प्राचीन साहित्यिक रूढ़ियां उनकी उपास्य थीं। इसी कारण उनमें नई जागृति और नई क्रांति का स्वर नहीं फूट पाया किन्तु सूखती हुई साहित्यिक रूढ़ियों की सरिता में नया

प्रवाह अवश्य ला पाए थे। विशेष रूप से संस्कृत की राम काव्य धारा, जो कालिदास की कलात्मक लेखनी का आलिंगन पाकर सदियों पहले उत्तेजित और तरंगित हुई थी, अब कालांतर में अन्तर्गामिनी होती जा रही थी, अब नव्य कालिदास कवि चण्डीदास की लेखनी का स्पर्श पाकर फिर कल्लोलित हो उठी। इस रूप में कवि चण्डीदास संस्कृत साहित्य को अपने युग की अद्भुत देन दे पाए। लगभग 100 सालों से अज्ञात इस कवि-रत्न की इस नए युग में अकस्मात् उपलब्धि हो पाई है, उसमें संस्कृत-साहित्य का स्वर्णमय भविष्य छिपा हुआ है। हरियाणा प्रांत का बड़ा सौभाग्य और महत्त्व है, जिसमें उन्नीसवीं शताब्दी में चण्डीदास जैसा महाकवि पैदा हुआ। कवि काव्य-प्रतिभा के क्षेत्र में कितना महान् है, रघुनाथ गुणोदय आदि रचनाओं के प्रकाशन द्वारा संसार को परिचय मिल जाएगा।

रचनाएं :

कवि चण्डीदास ने जीवन में पर्याप्त लिखा था, ऐसा उनके द्वारा लिखित फुटकल सामग्री से प्रतीत होता है। किन्तु उस व्यक्तिगत लिखित सामग्री के टटोलने से मुझे उनकी जो हस्तलिखित (कवि के हस्ताक्षरों में) रचनाएं मिली थीं उन्हें मैंने अलग से चण्डीदास ग्रंथावली[1] के नाम से सम्पादन द्वारा प्रकाशित किया था। किन्तु इस संग्रह में उनकी केवल ग्यारह रचनाएं ही आ पाईं। कुछ अपूर्ण और लघु रचनाओं की पाण्डुलिपियां अभी मेरे पास अप्रकाशावस्था में ही पड़ी हुई है।

इस के अतिरिक्त ऐसे विभिन्न विषयों पर लिखे लेख हैं, जो इसी सामग्री के साथ मैंने सुरक्षित रखे हैं। यह सब कवि के अपने हाथों लिखे हुए हैं। इसके अतिरिक्त भी कवि द्वारा लिखी गई व्यक्तिगत पत्र, हिसाब-किताब, पत्राचार आदि पर्याप्त सामग्री मेरे पास सुरक्षित पड़ी है। एक विशेषता यह भी है कि इस महाकवि को सर्वप्रथम मैंने ही खोज निकाला था तथा कवि द्वारा लिखित साहित्य का विपुल भंडार भी साथ ही खोज लिया। अब प्रस्तुत कवि के सम्बन्ध में जहां कहीं भी अनुसंधानीया कार्य अपेक्षित होगा। यही सामग्री केवल मात्र जो मेरे पास है उपलब्ध हो सकेगी।

सन् 1972 में मैंने इसी कवि पर सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध लिखकर Ph. D. की उपाधि प्राप्त की थी और तत्पश्चात् चण्डीदास ग्रंथावली का प्रकाशन भी किया। जो रचनाएं उपयुक्त मुझे मिली हैं कुछ तो चण्डीदास ग्रंथावली के रूप में प्रकाशित कर दी गई हैं। इसके अतिरिक्त कवि का "रघुनाथ गुणोदय[2]" 13 सर्गों का महाकाव्य

---

1. चण्डीदास ग्रंथावली—प्राप्ति स्थान—सीमांत प्रकाशन 922 गली रोहिल्ला खान दरियागंज नई दिल्ली।
2. प्राप्ति स्थान—केन्द्रीय श्री रणबीर संस्कृत विद्यापीठ शास्त्रीनगर जम्मू तवी।

भी है जिस पर आलोचनात्मक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने पर मुझे Ph D. की उपाधि मिली थी। यह महाकाव्य शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार द्वारा दी गई पूर्ण आर्थिक सहायता द्वारा मैंने सम्पादित करके प्रकाशित किया था। इस प्रकार अब तक उपलब्ध कवि की पांडुलिपियों में से 12 की संख्या में मैंने प्रकाशित कर दी है। आशा है कि शेष बची हुई भी समयानुसार प्रकाशित करने सफल हो जाऊंगा।

इसके अतिरिक्त कवि पर लगभग खोजपूर्ण लेख भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही यहां यह भी लिख देना उचित होगा कि अब तक इस महाकवि पर इन महानुभावों ने मेरी प्रकाशित और अप्रकाशित प्रस्तुत कवि सम्बन्धी रचनाओं पर कार्य किया है।

1. श्री राधारमण जी शास्त्री एम० ए० जी ने मेरी उपर्युक्त चण्डीदासीय लेख सामग्री का अध्ययन करके एक शोध प्रबन्ध तैयार किया है। जिसका वे प्रकाशन अवश्य करेंगे ही। इस शोध प्रबन्ध पर उन्हें पंजाब विश्वविद्यालय ने पी० एच० डी० की उपाधि-प्रदान की है।

2. प्रो० आनन्द बिहारी (संस्कृत प्रोफेसर राजकीय स्नातक विलासपुर) जी ने मेरे द्वारा सम्पादित "चण्डीदास ग्रन्थावली" पर शोध प्रबन्ध लिखकर M. Phil (एम० फिल) की उपाधि प्राप्त की थी।

इतना सब कुछ होते हुए भी एक बात पर मुझे अधिक आश्चर्य है। वह यह कि जैसा कि प्रारम्भ में ही लिखा जा चुका है कि इस महाकवि ने हरियाणा प्रांत के पुण्डरी नामक कसबे में सन् 1805 ई० के लगभग जन्म ग्रहण किया था एवञ्च विद्वान् बन कर बहुत देर तक इन्होंने अपनी गतिविधियों का केन्द्र भी हरियाणा ही बना रखा था। वास्तव में ऐसी महान् प्रतिभा से सर्वप्रथम हरियाणा ही गौरवान्वित है, किन्तु मेरी इस प्रकार कवि-सम्बन्धी नवीन खोज तथा इसके विशाल साहित्य का प्रकाशन आदि सब कुछ रहने पर भी अब तक हरियाणा सरकार इस महाकवि के सम्बन्ध में मौन ही रहती आई है। यह नहीं कि मैंने सरकार को सूचित नहीं किया मैंने बहुत बार समय-समय पर हरियाणा के माननीय मुख्य मन्त्री तथा हरियाणा अकादमी को अपने इस चण्डीदासीय गवेषणा द्वारा सूचित भी किया किन्तु कोई उत्तर तक नहीं मिला। जहां ऐसी अलौकिक प्रतिभा पैदा करने पर कोई भी प्रांत अपने को गौरवान्वित होने के लिए लालायित रहता है, वहां हरियाणा प्रांत के भाग्य हैं कि मैंने स्वत: ऐसी चामत्कारिक कवि विभूति, कवि तार्किक तथा अपने युग के सर्वतोमुखी पांडित्य से अलंकृत महापुरुष को उसके विशाल साहित्य के साथ खोज निकाला है, हरियाणा प्रांत को इसका अत्याधिक गौरव होना चाहिए और महाकवि के नाम से एक अनुसंधान

कार्यालय तथा स्मारक अवश्य बनाना चाहिए। मुझे आशा है कि देर सवेर कभी अवश्य ही हरियाणा सरकार द्वारा ऐसा होगा।

अब मैं पुनः प्रस्तुत प्रकरण को प्रारम्भ करते हुए कवि की प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार की उपलब्ध रचनाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने जा रहा हूं।

1. राधा-सुन्दर भक्ति बोध-राधा कृष्ण की ललित लीलाओं तथा उन की चौबीस घण्टों की सरस मधुर परिचर्या का सुन्दर काव्यात्मक चित्रण।

(चण्डीदास ग्रंथावली में प्रकाशित)

2. रघुनाथ गुणोदय महाकाव्य—13 सर्गों के इस रामकाव्य में भगवान् राम की सम्पूर्ण कथा उपनिषद्ध की गई है। इसमें काव्योपकरणों तथा विविध छन्दों का अनूठा चित्रण तथा शैली, भाषा, रस रीति अलंकारों की दृष्टि से यह रचना अधिक रमणीक बन पड़ी है यह रचना प्रकाशित है।

3. राम प्रतापोदय महाकाव्य (इस महाकाव्य में भी रघुनाथ गुणोदय जैसी भाषा, शैली और कथा उपनिबद्ध है। काव्य नवम सर्गों तक चला है लेकिन खण्डित है।

(चण्डीदास ग्रन्थावली में प्रकाशित)

3. अन्योक्ति जलादी—एक अन्योक्तियों का लघुकाव्य।

4. सस्मृत सम्बिधानकम् जम्मू काश्मीर नरेश महाराजा रणवीर सिंह (1830-1885 ई०) की पुत्री के विवाह का भीना और भावुक इन्द्रधनुषी चित्रण जो सुन्दर छन्दों में निबद्ध है।

(चण्डीदास ग्रन्थावली में प्रकाशित)

5. समाजोत्सव—महाराजा रणवीरसिंह के दरबार में अंग्रेज अतिथियों के आने पर आकर्षक उत्सव का कवित्व शैली में वर्णन।

(चण्डीदास ग्रंथावली में प्रकाशित)

6. हरिहर स्तोत्रम्—भगवान् हरि और हर का स्तुतिगान जो अत्यन्त भक्ति रस पूर्ण तथा कवित्व कला से ओत-प्रोत है।

(चण्डीदास ग्रन्थावली में प्रकाशित)

7. पार्वत्यापाद मूर्धजाङ्ग वर्णना—पार्वती के नख-शिख सौन्दर्य का कवित्वमय वर्णन।

(चण्डीदास ग्रंथावली में प्रकाशित)

8. देविका लहरी-जम्मू नगर के एक कस्बे में प्रवाहमान देविका नदी जो तीर्थ के रूप में मानी जाती है ऐसी पवित्र नदी की छन्दोबद्ध स्तुति।

(चण्डीदास ग्रंथावली में प्रकाशित)

9. श्री गदाधराष्टक—जम्मू कश्मीर राज्य के संस्थापक वीर योद्धा और इस राज्य के महाराजा गुलाब सिंह (1790-1858 ई०) के इष्टदेव श्री भगवान् गदाधर की छन्दोबद्ध स्तुति।

(चण्डीदास ग्रन्थावली में प्रकाशित)

10. त्रिकुटाष्टक—जम्मू के कटड़ा नगर के पर्वत गुफा में विराजमान जगत् प्रसिद्ध भगवती (वैष्णीदेवी) जिसे त्रिकूट पर्वत की गुफा में होने के कारण त्रिकुटा भी कहा जाता है, की भाव भीनी छन्दोबद्ध स्तुति।

(चण्डीदास ग्रन्थावली में प्रकाशित)

11. वाक्तत्वविवेश—अपूर्ण और अनुपलब्ध (अप्रकाशित)

12. गंगालहरी—पूर्ण (अप्रकाशित)

13. आन्हिकपद्धति—जम्मू-कश्मीर राज्य द्वारा प्रकाशित

14. लगभग विभिन्न विषयों पर लिखे 10 निबन्ध

15. छब्दमुक्तावली पब्लिक लाईब्रेरी पटियाला में पांडुलिपि के रूप में सुरक्षित।

16. परदारामिमर्शन
प्रायश्चित दण्डविधान ,, ,,
(निबन्ध)

—o—

चिर-यौवन : एक चिंतन

यौवन सब को प्यारा होता है। इसके चले जाने पर मनुष्य टूट जाता है। संसार की अन्य विभूतियों के समाप्त होने पर भी मनुष्य टूटते हैं किन्तु उनके पुनः मिलने पर जुड़ भी जाते हैं। धन हो या सत्ता हो इनके समाप्त होने पर टूटन होती है किन्तु इनके पुनः मिलने पर टूटन जुड़ भी जाती है। किन्तु यौवन एक ऐसी सम्पत्ति है, जिसके न रहने पर मनुष्य भी न रहने के समान बन जाता है। और जीवन के बचे शेष दिन घुटन, कुंठा और पीड़ा के साथ एक-एक करके बिताने लगता है। कुछ तो इसे जीवन ही नहीं समझते बल्कि यमराज के भवन की दहलीज पर खड़े अपने को समझने लगते हैं।

यौवन जाता तो है यदि देर से जाए तो मानव इससे और कुछ वर्ष लाभ उठा सकता है। महाकवि कालिदास ने जीवन की व्याख्या करते हुए कहा है :

मरना प्रकृति है, जीवन विकृति। यदि मनुष्य कुछ दिन और जी ले तो उसे अपने को लाभान्वित ही समझना चाहिए। इसी प्रकार यौवन जीवन का विकसित और लहलहाता बसन्त है, जिसमें सुषमा, उन्माद, उमंग और विचित्र प्रकार की मस्ती की अंगड़ाईयां तथा सशक्त आत्म विश्वास के साथ उत्साह की आंधी झूलती रहती है। इस प्रकार के जीवन का एक-एक क्षण भी मूल्यवान होता है यदि कुछ वर्ष इसी अवस्था में और मिल गए तो महान लाभ ही समझना चाहिये।

आश्चर्य है कि इस मधुर लहलहाते विकसित उपवन में बुढापे की पतझर आ जाती है। रूप भ्रष्ट हो जाता है बल को व्यसन लग जाता है। स्मृति नष्ट हो जाती है और इंद्रियां शिथिल होकर टूटने लगती हैं। सब ओर अपमान तथा उपेक्षा के अतिरिक्त और कुछ मिलता ही नहीं।

प्रश्न पैदा होता है कि शाश्वत यौवन मिलेगा नहीं किन्तु इसकी अवधि तो बढ़ सकती है। वह कैसे ? इसी पर कुछ विचार रखे जा सकते हैं सर्वप्रथम यह बात उठा कर चिर यौवन कैसे मिल सकता है ?

उत्तर में सुनिए—चिर यौवन प्राप्त करना कोई इतना कठिन विषय नहीं है।

केवल कुछ आदर्शों पर ध्यान देने की तथा उन पर चलने की आवश्यकता है। जो विषय भोग यौवन का अवरोधक है उसे दूर कर देना भी चिर यौवन की प्राप्ति तक पहुंचने के समान है।

यौवन को शीघ्र नष्ट करने वाले या अल्पस्थायी बनाने वाले कुछ तत्व इस प्रकार हैं—

1. अधिक धन की इच्छा और उसे प्राप्त करने के लिए दिन रात चिन्तित रहना तथा भटकते रहना यौवन को शीघ्र नष्ट करता है। इस भौतिक जड़ चिन्तन के कारण इसमें सरसता के स्थान पर शुष्कता, क्रूरता, जड़ता, स्थूल चिन्तन निर्दयता निर्ममता ओर स्वार्थ की भावनाएं पैदा होकर उसे राष्ट्रीयता से दूर ले जाकर प्रबल आत्मनिष्ठ बना देती है। जिस जीवन में आत्मतुष्टि नहीं, सन्तोष नहीं, प्रफुल्लता नहीं, कोमलता नहीं राष्ट्रीयता नहीं और दूसरों के प्रति सद्भावना नहीं उसमें पुष्प प्रकृति का सुमधुर और भावुक यौवन कैसे देर तक रह सकता है? यौवन की उत्तेजना और शक्ति न रहने पर मनुष्य का जीवन घिसने लगता है।

2. अध्ययन में मित्रमण्डली में अध्यात्म चिन्तन में परोपकार में सभा सोसायटियों में भाग लेने में अरुचि भी मनुष्य को शीघ्र वृद्ध बना देती है। आलस्य, निद्रा, तन्द्रा ओर दीर्घसूत्रता (हर एक कार्य को टालते चलना) के कारण भी मनुष्य का यौवन शीघ्रता से प्रस्थान कर जाता है।

3. भावुकता, खुलकर हंसना, सन्मार्गीय मनोविनोद, देव विषयक प्रेम, पारिवारिक वातावरण में हिलमिल जाना, पौष्टिक वस्तुओं के सेवन में, कंजूसी न करना, लोगों के शुभ अशुभ कार्यों में भाग लेना, सहानुभूति, मेल मिलाप इत्यादि तत्वों का अभाव रहने पर भी मनुष्य जीवन में अकेला कटा-कटा और विचित्र जैसा बन कर चिता की आग में मोम जैसा घुल कर शीघ्र ही जीवन की संध्या तक पहुंचने लगता है।

4. देशभक्ति का अभाव, साम्प्रदायिकता की जलन, मिथ्या अभिमान, प्रतिस्पर्द्धा, द्वेष, वैर शत्रुता, चिड़चिड़ापन व्यसनों के प्रति लगाव, मांस भक्षण, सुरा पान तथा अनुचित श्रृंगार भी मनुष्य को शीघ्र बूढ़ा बना देते हैं।

इन दोषों से दूर रहने से चिर यौवन की प्राप्ति होती है।

अब इन दोषों के अतिरिक्त कौन से ऐसे उपाय हैं जिनसे यौवन चिरस्थायी रह सकता है। इस सम्बंध में कुछ उपाय नीचे दिए जा रहे हैं :—

5. नया-नया साहित्य पढ़ना, कविता में रुचि अथवा स्वयं भी कविता लिखना। कविता, कहानी, उपन्यास और निबंधों का पढ़ना तथा लिखना। साहित्यिक अभिरुचि।

चेहरे पर सदा उदारता और प्रफुल्लता के भाव पैदा करते रहना जिनका प्रभाव हृदय पर भी रहता है।

राष्ट्रीय और सामाजिक चिन्तन, सुधारवादी प्रवृत्तियां मनोविनोद कवि तथा साहित्यकारों की मण्डली में समय देते रहना । साहित्यिक गोष्टियों में भाग लेना युक्ताहार विहार इत्यादि नियमों का पालन करना भी चिर यौवन का कारण बन जाता है ।

जिस चेहरे पर रंगत नहीं, सुकुमारता नहीं, भावुकता नहीं, प्रफुल्लता नहीं, खिलखिलाहट नहीं, निश्चिन्तता नहीं, आत्म सन्तुष्टि तथा निर्भयता नहीं उसका यौवन कैसे स्थायी रह सकता है ?

धन ही यौवन का कारण नहीं बन सकता । वह तो यौवन को कम करता है । उदाहरण के रूप में किसी धनवान के बारे में कहा जा सकता है । मैंने ऐसे व्यापारी देखे हैं जिनके यौवनकाल में ही तोंद निकल आई है । शरीर पर अत्यधिक चर्बी तथा मोटापन छा गया है । सिर के बाल झर गए हैं तथा गंजापन उभर आया है । उसकी खुराक बड़ी उच्चस्तर की है, सुख सुविधाएं भी हैं । अगाध पैसे की खुशी भी है । फिर असमय में ही शरीर फूहड़ क्यों बन गया । सौन्दर्य की चमक क्यों जाती रही । यौवन के लालित्य का आकर्षण क्यों नहीं रहा । यह सब कुछ स्पष्ट ही है । इससे यह तथ्य तो भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि पैसे तथा सुख सुविधाएं यौवन को चिर स्थायी नहीं बना सकती तो फिर कौन से अनुष्ठान इसे चिरस्थायी बना सकते हैं ? वे हैं सात्विक भोजन, उच्च विचार, सच्चरित्रता, सामाजिकता राष्ट्रोन्नति के बारे में चिन्तन, लक्ष्मी से उदासीनता खान-पान के सम्बंध में नियमित व्यवहार इस सम्बंध में मन की इच्छाओं को दमित नहीं रखना । इच्छानुसार फल, दूध, चाय, काफी आदि का प्रयोग कर लेना किन्तु सीमा के अन्तर्गत ही । थोड़ा भोजन करना भी चिर यौवन का कारण है । अधिक भोजन से कई प्रकार की बीमारीयां पैदा हो जाती हैं । बीमार रहने वाला व्यक्ति भी जल्दी बूढ़ा हो जाता है ।

जीवन का दैनिक कार्यक्रम ऐसा बना लेना जिसमें सब पक्ष आ जाएं जैसे—प्रातःकाल उठना, शौच स्नान के अनन्तर प्रातः कालीन विहार, आकर कुछ समय तक आत्म चिन्तन करने बैठ जाना । आत्मचिन्तन ही एक ऐसी ईश्वरोपासना की पद्धति है, जिससे मनुष्य का मानसिक तनाव घटता है । शरीर के स्नायु तथा नसों में स्पन्दन से नये खून का संचालन होता है । दैवी प्रकाश के उन्मेष सारे शरीर में फूटने लगते हैं । चिर यौवन मिलता है और मिलता है प्रबल आत्म विश्वास और दैवी शान्ति तथा धीरज । ईश्वर भी इस वास्तविक तथा वैदिक उपासना को सहर्ष स्वीकार कर लेते

हैं। और दैवी सिद्धियां तथा दैवी फल मिलते हैं। सन्तोष भी चिर यौवन का फल है। इससे सुख और शान्ति मिलती है। आक्रोश घुटन और तनाव दूर होते हैं। एक नीति शास्त्रकार का कथन है—सन्तोष रूपी अमृत पीकर शान्त चित्त को जो सुख मिलता है वह धन के लालच में इधर उधर भटकने वालों को कहां मिलेगा ?

साहित्यिक बनने से भी चिर यौवन मिलता है सर्व प्रथम साहित्य पढ़ने की रुचि पैदा की जाती है। उसके अध्ययन में जब रस मिलने लगता है तो धन लिप्सा तथा भोग कामना के प्रति उदासीनता होने लगती है। यहीं से मानसिक शान्ति का प्रारम्भ होने लगता है। साहित्य अध्ययन के पश्चात् स्थापित साहित्य लेखकों तथा लेखन के प्रति रुचि होने लगती है। इसके पश्चात् मनुष्य जब स्वान्त: सुखाय लिखने में तल्लीन हो जाता है तो सब प्रकार की सांसारिक उन्नति, धन का प्रश्न, राजनीति की चौधराहट, नाम और यश की अभिलाषा आदि सब हृदयपटल से दूर होने लगते हैं। आत्मा लिखने में रम जाती है। सादगी, जैसे कैसे गुज़ारा, मन ही मन सन्तुष्टि, स्वाभिमान, निर्लोभता, अवसरवादिता, चाटुकारी आदि दुर्गुणों के प्रति घृणा तथा अपने को किसी से कम न समझने की भावना उत्पन्न होने लगती है। इस स्थिति में पहुंच कर मनुष्य की भावनाएं चिर युवा हो जाती हैं।

युवकों का नेतृत्व उन्हें समार्ग और शिक्षा के क्षेत्र में ले जाने का अभियान और तत्सम्बंधी गतिविधियां भी मनुष्य को युवा वातावरण में ले जाकर युवकों जैसा बना देती हैं। जिसके विचार युवकों जैसे हों, जिसका कार्यकलाप उत्साही और उमंगपूर्ण हो वही देर तक युवक जैसा बना रहता है।

आत्मा की उपासना भी चिरयुवा बना देती है। इस उपासना के अन्तर्गत मनुष्य अपने को शरीर न मान कर जब आत्मा मानने लगता है तभी वह सोचता है कि आत्मा अजर, अमर, सर्वव्यापक और सब में है। मैं शरीर से भले ही बूढ़ा हूं किन्तु आत्मा से जवान हूं। शरीर तो नश्वर है। मैं आत्मा हूं और अनश्वर हूं, मैं बूढ़ा कैसे। सब मानव मेरे ही रूप हैं कोई जाति, सम्प्रदाय, नस्ल का प्रश्न नहीं। आत्मा के रूप में हम सब एक हैं। यह मान्यता ही मनुष्य को चिर युवा बना देती है।

शारीरिक स्खलन जो बुढ़ापे के कारण होता है, सोचते-सोचते भी मनुष्य चिन्तावश ज्यादा टूटने लगता है। जब वह इसकी परवाह छोड़ कर अपने को अनन्त शक्तिमान का रूप (आत्मा) मान लेता है तो उससे बुढ़ापे की सब चिन्ताएं दूर हो जाती हैं। इसी कारण वह चिर-युवा लगने लगता है। आत्मा की सतत् उपासना के कारण उसमें दैवी सौन्दर्य और यौवन के उन्मेष फूटने लगते हैं।

अपनी चिन्ता छोड़कर राष्ट्र चिन्ता और समाज चिन्ता करते हुए राष्ट्र तथा

समाज के प्रति अपने को समर्पित कर देना भी चिर यौवन का कारण बन जाता है। इस अवस्था में मनुष्य को एक अभूतपूर्व आत्मिक सन्तोष मिलता है। वह अनुभव करने लगता है कि जो कुछ वह कर रहा है वह अतीव सुचारू कार्य है। उससे लाखों का भला हो रहा है। यह उसकी असीमित कमाई है, जो उसे इतिहास में अमर कर देगी। उसका यश शरीर सदा जीवित रहेगा। यही सोच-सोच कर वह प्रसन्नता से चिर युवा बना रहता है। महात्मा गांधी, नेहरू, इन्दिरा जी, सर राधाकृष्णन, पटेल आदि महापुरुष जब तक जीवित रहे एक युवा जैसी मानसिक और शारीरिक स्थिति में रहे। वे अनन्य उत्साह, आशा की शारीरिक स्थिति में रहे। उनमें अनन्य उत्साह आशा और उमंग थी।

एक नीतिकार ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य को अजर, अमर अपने को समझकर विधा और निर्वाह योग्य धन कमाना चाहिए। मौत ने मुझे चोटी से पकड़ा है, यह समझ कर धर्म कमाना चाहिये। इसी सिद्धांत का विस्तार ऊपर की पंक्तियों में किया गया है। धर्म का अर्थ इतना विशाल है, जिसमें राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रसेवा मुख्य रूप में है। इसके बिना कोई धर्म पूर्ण नहीं हो सकता। स्वार्थ साधन कोई धर्म नहीं होता अथवा व्यक्ति विशेष या देवता विशेष की प्रसन्नता में लगे रहना भी पूर्ण धर्म नहीं हो पाता। जब तक उसमें जनता जनार्दन और राष्ट्रदेव को मुख्य स्थान न दिया जाए। वेद शास्त्र और स्मृतियों का यही अभिप्राय है। ०००

राजनीति के दो रूप

वर्तमान युग में भारतीय राजनीति का नया रूप देखने में आ रहा है, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर पैदा हुआ। इस से पूर्व भारतीय राजनीति का रूप कुछ और था। दोनों में पर्याप्त अन्तर है। स्वतंत्रता पूर्व का राजनैतिक रूप स्वार्थहीनता देश कल्याण और स्वतंत्रता प्राप्ति जैसे आदर्श लेकर चला था। जिसके अन्तर्गत सैकड़ों देश भक्तों ने देश की स्वतंत्रता के लिए बलिदान दिये थे। वह युग गरीबी गुलामी और संघर्ष का युग था। प्रत्येक भारतीय कुछ इने गिने पूंजीपतियों, सरकार के चहेतों राजाओं और रईसों और जमींदारों को छोड़ कर, अभाव का जीवन जी रहा था। उस युग में नेता तपे तपाए, सरलवृत्ति के तथा देश के प्रति समर्पित होते थे। उन की व्यक्तिगत जिन्दगी अभाव ग्रस्त रहती थी। तथापि वे देश के लिये सदा यन्त्रणाएं भोगते रहते थे। क्रूर शासकों की गोलियां खाकर और जेलों में जाकर वे अपनी जिन्दगी दे देते थे, केवल कर्त्तव्य भावना लेकर। उन दिनों गुलामी के युग और वैदेशिक सत्ता से पीड़ित जनता कराह रही थी फिर भी उसके अन्दर देश प्रेम की सच्ची आग धधक रही थी इसी कारण उन्नीसवीं शताब्दी ने सच्चे देश भक्त और देश के प्रति पूर्ण समर्पित जितने अधिक संख्या में महापुरुष पैदा किये इतने किसी अन्य शताब्दी ने नहीं। उन लोगों की अपने देश के प्रति की गई कुर्बानियों का विपुल साहित्य मिलता है। यद्यपि देश भक्ति राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य लेकर उस समय भी अनेक पार्टियां थीं तथापि सब का उद्देश्य अन्त में एक ही था कि विदेशी शासन से मुक्ति और अपने देश को दुनिया के देशों में गौरवान्वित रखना। गरीबी अभाव, भुखमरी यन्त्रनाएं ये सब उनके लिए वरदान थे। किन्तु मातृभूमि उन्हें प्राणों से भी प्यारी थी

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इस उक्ति को जैसे उन्होंने आत्मसात कर लिया था। इस युग के महापुरुषों की संख्या कितनी अधिक रही इसे गिनाने की आवश्यकता नहीं। दादा भाई नारोजी, गोखले, लोकमान्य तिलक, पं० मदनमोहन मालवीय, अरविन्द घोष, पटेल, रवीन्द्र नाथ टैगोर, महातमा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस पं० मोती लाल नेहरू, पं० जवाहर लाल नेहरू, लाला लाजपत राय, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सर्वपल्ली डा० राधा कृष्णा, लाल बहादुर शास्त्री इत्यादि उच्चस्तर के गण्यमान्य

नेताओं की पंक्ति में आते हैं जिन का सम्बन्ध कांग्रेस पार्टी से रहा था उसके ये कर्णधार थे, देश की स्वतंत्रता के लिए इनके योगदान दुनिया जानती है।

यह राजनीति देश के लिए थी व्यवसाय के लिये नहीं। स्वतंत्रता पूर्व की राजनीति का यही स्वरूप था। यह बड़े-बड़े महापुरुष पैदा करने में सफल रही। इस का प्रभाव युवकों पर ऐसा पड़ा कि वे भी देश सेवाव्रत लेकर आदर्शमय जीवन के द्वारा देश के लिए अपने जीवन कुर्बान करने लगे। क्रान्तिकारी संगठन में अधिक संख्या उन युवकों की थी जिन की आयु तीस वर्ष के अन्दर-अन्दर की थी। चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद विस्मिल, सान्याल, भगत सिंह वटुकेश्वर दत्त मन्मथ नाथ धन्वन्तरी आदि सैकड़ों क्रान्तिकारी युवक इसी आयु के थे। उनकी देश के लिए सही गई यन्त्रणाओं का इतिहास पढ़ कर रौंगटे खड़े हो जाते हैं। ये भी तो इसी भारत माता के सपूत थे। इन्होंने एक शानदार इतिहास गढ़ा था।

किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीति का दूसरा ही रूप चल पड़ा। अब की राजनीति के कई लाभान्वित रूप पैदा हो गए है। मुख्यरूप में यह अधिक व्यवसायोमुखी बन गई है। इस का मुख्य आधार है चुनाव, वोट, नोट, कुर्सी और नाम या प्रसिद्धि।

जहां राजनीति इतने लाभ देती हो क्यों नहीं उसे अधिक संख्या में लोग अपनाए। आज की दुनिया में इसे कामधेनुओं की उपमा देनी चाहिये जो राजनीतिज्ञ की हर एक कामना पूरी करती है।

आराम उपभोग और साधन सम्पन्नता का जीवन, व्यतीत करना आज की राजनीति के मुख्य पहलू हैं। पुरानी राजनीति मे राष्ट्रीयता और देश भावना थी किन्तु आज की राजनीति में राष्ट्रीयता कम और स्वार्थ सिद्धि अमीरी और कुर्सी की भावना प्रबल हो गई है।

मैंने ऊपर स्वतंत्रता पूर्व की युवकों तथा साधारण जनता के त्याग और बलिदान की जो बातें लिखी हैं। उस युग के छात्र जीवन में रह कर मैं भी उस के चक्कर में पड़ा था। बात 1942 के भारत छोड़ो की है जब मैं हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस का (Hindu University Banaras) छात्र था। इस आन्दोलन का उद्गम स्थान यही विश्व विद्यालय था। हम लोग सब एकत्रित होकर आन्दोलन में भाग लेते थे। यह देखकर अंग्रेज़ सरकार ने हमें तीन घण्टों के अन्दर विश्वविद्यालय खाली करने को कहा और चारों ओर से गोरी सेना ने विश्वविद्यालय को घेर कर अपने कब्जे में ले लिया। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। दूसरी और हमें सब होस्टल खाली करने का शाही आदेश मिल चुका था। आन्दोलन के कारण सारे भारत में रेल पटरियां उखाड़

दी गई थीं। यातायात और पत्राचार वन्द था। जैसे कैसे लगभग दस हजार छात्रों तथा चार पांच हजार प्रोफेसरों अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों को इस समय के भीतर होस्टल बंगले और क्वार्टर खाली करने पड़े थे।

हम सब ने तीन महीनों तक (जब तक विश्वविद्यालय वन्द रहा) क्या-क्या कठिनाइयां झेली आज भी जब मुझे स्मरण आता है तो कांप उठता हूं। अंग्रेजी सरकार का दमनचक्र चालू था हम लोगों के पीछे गुप्तचर लगे रहते थे। जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं था। यह अवस्था भी उस युग के स्वतन्त्रता संग्राम की थी जिसमें भारत जनता पिस रही थी। उस समय यद्यपि मैं किशोर ही था किन्तु इस दमन चक्र और कठिनाई की जिन्दगी में मुझे जो गुजरना पड़ा आज भी वह युग मेरी आंखों के सामने नाच रहा है। किन्तु आज के और उस युग की राजनीति में मैं बहुत अन्तर देखता हूं। जैसा कि मैं पीछे कह चुका हूं उस युग की राजनीति त्याग और तपस्या की थी। आज के युग की राजनीति व्यावसायिक तथा धन सुख और भोग लिप्सा की यही है दोनों में अन्तर। एक अन्तर और भी विशेष है। उस राजनीति के अन्तर्गत युवा वर्ग अपने नेताओं की सच्ची महानता के आदर्शों पर चल कर अनुशासित तथा एक लक्ष्य पर अग्रसर, था। अब ऐसा कोई प्रभावशाली नेता जिस का अपने देश के प्रति पूर्ण समर्पित जीवन रहा हो नहीं है, अतः युवावर्ग दिशा निर्देशन के अभाव में कोई मार्गदर्शन या लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पा रहा है। यह एक भारी समस्या है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व के नेताओं के स्तर में कोई दो चार नेता भी इस समय हो तो देश तथा देश के युवा वर्ग का पर्याप्त हित हो सकता है।

फिर भी आज की राजनीति की एक बड़ी महत्वशाली विशेषता यह है कि वर्तमान युग की भयंकर समस्याओं और परिस्थितियों का सामना करते हुए भी एक विशाल जनसंख्या वाले विशाल देश का शासन यह चला रही है तथा सफलता पूर्वक अन्य प्रगतिशील देशों का मुकाबला करती हुई देश को उन्नति के पथ पर भी ले जा रही हैं।

०००

सिद्धान्तवाद और अवसरवाद

इस युग में दोनों वादों का परस्पर विवाद और वैपरीत्य है। दोनों की प्रासंगिता चल रही है। सिद्धांतवादी सदाचरण और आचार संहिता को महत्व देकर व्यर्थ में किसी की चाटुकारी, झूठ धोखाधड़ी और छल-कपट की दुनिया से परे रह कर सात्विक एवं सत्यमय जीवन की यथार्थता को विशेषता देते हैं। भले ही उन्हें भारी से भारी हानियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़े। ऐसा होना इस युग में उन के लिए अनिवार्य है। फिर भी आदर्शमय जीवन के लिए सदा त्याग करते रहना तथा जीवन को संघर्षमय बना देना उनका पावन अनुष्ठान बन जाता है, जिसके अन्तर्गत वे आत्मदर्शी और आत्म सन्तुष्ट होकर अनन्त शक्ति का बल प्राप्त कर लेते हैं। जिससे क्षणिक सुख और गरिमा के मोह में पड़कर चापलूसी चाटुकारी तथा दासवृत्ति में लीन लोगों के प्रति उनके मन में स्वाभाविक घृणा और उपेक्षा पैदा हो जाती है। सिद्धांतों के अन्तर्गत रह कर सिद्धांतवादी सब के प्रति सद्व्यवहार तो करते ही हैं तथापि यदि उनके सिद्धांतों और आदर्शों पर किसी प्रकार की चोट पहुंचने लगे तो ऐसी अवस्था में वे स्वामी हो या अधिकारी गण्यमाण्य हों या साधारण सब के आगे विरोध के लिए खड़े हो जाते हैं। सिद्धांतों के बल पर वे किसी की न परवाह करते हैं न डरते हैं। क्योंकि मानव की आचार संहिता के पालन से उनमें चारित्रिक बल की शक्ति पैदा हो जाती है। चरित्र और सिद्धांत पालन में बड़ी शक्ति है। इसके उपासक में वाणी की बुलंदी व्यक्तित्व की उच्चता और शब्दों में ओज और बल भर जाता है। ऐसा व्यक्ति सहज में ही जनमानस का प्रिय होकर जीवन का वास्तविक सम्मान पाता है। यद्यपि अधिकारी वर्ग और सरकार के व्यक्ति उस पर नाराज़ हो रहेंगे किन्तु जनमत उसके साथ रहता है। ऐसे व्यक्ति में सात्विक और स्वच्छ जीवन के कारण निडरता तथा आत्मविश्वास स्वतः पैदा हो जाते हैं। सन्तोष रूपी अमृत पीकर सदाचारी मनुष्य अपने सिद्धांतों के बल पर जनता पर छा जाता है। अपने प्रभाव से सब के हृदयों में सम्मानपूर्वक निवास करने लगता है। यही उस का धन है। इस आदर्श पर चल कर उसे सांसारिक निराशाओं और असफलताओं का सामना करते हुए अभाव की जिन्दगी भी व्यतीत करनी पड़ती है। अधिकारी और अफसरशाही तथा राजनीतिज्ञ एवं बुद्धिजीवी सब उस पर नाराज़ रहते हैं किन्तु साधारण

जनता उस का हृदय से सम्मान करती हुई उसके प्रति सर्वदा सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करती है। चाटुकारों, चापलूसों चिमचापरस्तों की राजकीय उन्नति भी जनता को अपनी ओर नहीं खींच सकती बल्कि ऐसे लोग अन्दर-अन्दर से सब के घृणा के पात्र बने रहते हैं। यदि कोई धन, बल सत्ता और बनावटी प्रभाव के कारण अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए उन की चिमचागिरि तथा असत्य प्रशंसा भी करता है, वह केवल कुछ समय के लिए ही होती है बाहर से प्रशंसा और अन्दर से अपशब्द ही उसके प्रति प्रयुक्त किए जाते हैं। इधर सिद्धांतवादी यद्यपि सत्ता के दलालों तथा नौकरशाही का कोप भाजन बन कर जीवन में कठिनाईयों और असुविधाओं में पड़ कर भी घुटन आक्रोश और दैन्य को कुछ नहीं समझ कर सिंह की भांति पराक्रमयुक्त जीवन जीता है और ऐसे लोगों की पूर्ण उपेक्षा करता हुआ आत्मबल पर निडर और शांत जीवन व्यतीत करता है। उसके द्वारा किसी के स्वार्थ का हनन नहीं होता अपितु वह सब के लिए प्रेरणाप्रद और लाभकारी हो जाता है इसके विपरीत अवसरवादी दूसरों का शोषण करके अपने को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं और किसी सीमा तक सफल भी हो जाते हैं।

अवसरवादिता से यद्यपि कुछ समय के लिए सुख की सांस मिल जाती है किन्तु चोर दरवाजे से जाकर अनैतिक लाभ उठाने से उसका जो घृणित प्रभाव समाज पर पड़ता है, जो आत्मग्लानि उसे होती है जो परपिण्डभोजिता की अल्पता और हीनता उसे मिलती है ऐसे जीवन यापन से कहीं मरना श्रेयस्कर हो सकता है। शास्त्र में लिखा है, "कीर्तिर्यस्य स जीवति" अर्थात् जिसका यश है वही जीवित है। इस स्थिति में उस चाटुकार अवसरवादी की अन्तरात्मा जिस हीन भावना जन विरोध और घुटन के कारण अन्दर ही अन्दर सिसकती रहती है, इस की अनुभूति वही जान पाता है।

गुलामी और क्रीतदासता के परिवेश में पल कर अवसरवादी की आत्मा उसी को बार-बार धिक्कारती है। उसे प्रति क्षण अपने स्वामी में सेवक बन कर उसी की हां में हां मिलानी पड़ती है। अनैतिकता का समर्थन करना पड़ता है तथा अन्याय अत्याचारों को होते देख कर भी उनका विरोध नहीं किया जा सकता। ऐसे स्वामी की झूठी प्रशंसा और बनावटी योग्यता की प्रशस्ति का गान करना पड़ता है।

ऐसे चाटुकार और अवसरवादी लोग लाभ तो प्राप्त करते ही हैं। चापलूसी द्वारा नौकरी, प्रमोशन स्थानांतरण-स्थगन अपनों को लाभ, प्रत्याशियों पर अपना रौब जमाना, चौधराहट करनी, अधिकारों के बल पर कईयों को घूरना और कईयों को अपना कृपा कटाक्ष दिखाना आदि सब कुछ उन्हें कुछ समय के लिए मिलता ही है किन्तु जन निन्दा और जन विरोध जो उनके लिए अनिवार्य

अभिशाप है वह तो नहीं रुक सकता। वही उनके अन्तिम जीवन की कुण्ठा का कारण बन जाता है। अवसरवादिता सदा नहीं चल पाती। इस का भी एक युग होता है। सिद्धांतवादी व्यक्ति सेवा कार्य में सफल नहीं हो पाते। नित्य स्थानांतरण का भूत उनके सिर पर नाचता रहता है। प्रमोशन में अड़चनें आती हैं। नौकरशाही उसके आदर्शवाद और शुद्ध चरित्र से भरसक तंग पड़ी रहती है। वह उस को हानि पहुंचाने और अपने स्वार्थ की बाधा को दूर करने की ही सोचती रहती है। हर प्रकार का अन्याय इस सिद्धांतवादी को सहन करना पड़ जाता है। किन्तु उसकी आत्मशक्ति उसे इस अवस्था में भी विचलित नहीं होने देती।

चापलूसी और चाटुगिरि से यद्यपि थोड़े दिन सुख की साँस मिल जाती है किन्तु इस अवसरवादिता के कारण मनुष्य का समाज पर जैसा घृणित प्रभाव पड़ता है तथा स्वयं में भी जो आत्म-ग्लानि का भाव जगता है, उससे अन्तरात्मा कितनी अन्दर ही अन्दर हीनता का अनुभव करने लगती है, उसे एक अवसरवादी ही जान सकता है। वास्तव में ऐसे अवसरवादी स्वार्थी लोगों का अपना सब कुछ अपने स्वामी पर न्यौछावर हो जाता है। गुलामी की यह स्थिति मनुष्य का अपनापन ही निगल लेती है। उसे क्रीतदास और टुकड़ों का दास बना देती है। स्वाभिमान शान और आत्मसम्मान सब चौपट हो जाते हैं। कई ऐसे लोग देखे गए हैं जो इस अवसरवाद के गुलाम होकर अधिकारियों के चरण चुम्बन करते रह कर जीवन भर अपनी नौकरी अपने ही शहर में करते हैं। कोई स्थानांतरण नहीं। हो भी जाए तो झट मिली भगत से कैंसल करवा दिया जाता है। वे अपने ही शहर में या देहात में रहने के लिए किस प्रकार के घृणित और निकृष्ट हथकण्डे छिपे-छिपे अपनाते रहते हैं यदि इस सम्बन्ध में थोड़ा भी पता चले तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहेगा। सिद्धांतवादी जीवन भर कष्ट सहेंगे किन्तु इस गिरावट से दूर ही रहेंगे। सिद्धांतवादी सपरिवार कष्ट में रह कर भी चाटुगिरि चापलूसी और अनैतिक कार्यों द्वारा लाभ ग्रहण नहीं करेंगे। वे उस सिंह की भांति हैं जो भूखा रहेगा किन्तु घास नहीं खाएगा न किसी का शिकार लेगा। स्वयं शिकार करके पेट पूर्ति करेगा। सच्चे शूरवीर ही सिद्धांतों और नैतिकता की रक्षार्थ अपना सर्वस्व त्याग देते हैं किन्तु किसी के आगे झुकते नहीं।

एक भिखारी किसी अधिकारी के पास आकर पैसा मांगने लगा। अधिकारी बातों-बातों में गर्म हो गया। यह देखकर उसके चपरासी ने उसे दो चपत लगाकर नीचे धकेल दिया। वह चपरासी का न वैरी था न उसने उसे कोई हानि कभी पहुंचाई थी। केवल अपने स्वामी को खुश रखने के लिए उसने एक दीन भिखारी का अपमान किया। यही है चाटुगिरि और अवसरवादिता जिसके अन्तर्गत मनुष्य दूसरों के शोषण द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। मनुष्य की यह तुष्टीकरण की कमज़ोरी उसे

कहां तक नीचे स्तर पर उतार देती है आज की राजनीति में ऐसे-ऐसे लाखों उदाहरण मिलेंगे। इसी तुष्टीकरण के बल पर राजनैतिक पार्टियां वोट की राजनीति करती हैं। साधारण लोग अफसरों और मंत्रियों की चापलूसी से नौकरियां तरक्कियां, तबादले रुकवाना, रिश्वत खाना, मिलीभगत करना अपनों को लाभ पहुंचाना नालायक होकर भी लायकों को चुनौतियां देकर उनके अधिकारों को ले लेना और उन्हें असफल कर देना यह सब कुछ आज अवसरवादिता के अन्तर्गत हो रहा है। सिद्धांतवादी तो सब जगह मार खा जाते हैं किन्तु जैसा कि पीछे लिख चुका हूं वे फिर भी लाभ में ही रहते हैं।।

अन्त में निष्कर्ष यह निकला कि वास्तव में सिद्धांतवाद ही श्रेयस्कर है। अवसरवाद का सुख क्षणिक होता है किन्तु सिद्धांतवाद का सुख शाश्वत है।

—o—

स्वामी राम तीर्थ का कवि हृदय

स्वामी रामतीर्थ की जीवनी भी बड़ी मधुर और आध्यात्मयी है। बचपन और किशोरावस्था स्कूल की शिक्षा में बीती। बाद में सन् 1890 में लगभग सत्रह वर्षों की अवस्था में लाहौर के कालेज में प्रविष्ट होकर इन्होंने सन् 1895 में एम० ए० (गणित में) पास किया। बड़ी छोटी उम्र में ही एम० ए० करके प्रोफेसर लगे किन्तु भीतरी ईश्वरीय लगन की मस्ती इन्हें सांसारिक सुख भोग में कहां रहने देती। यह एक अपने ढंग के विचित्र स्वामी के रूप में प्रसिद्ध हुए। विचित्रता का कारण था भगवान के प्रति इनकी शराब के नशे के समान की मस्ती और उसी की लय में कभी भगवद् गीतों में भूल जाना कभी गाते-गाते झूमने लगना कभी अपने प्यारे के वियोग में जोर-जोर से रो-रो कर आंसू बहाना और भक्त मण्डली के बीच मस्ती में आकर भक्तिरसपूर्ण उपदेश देते-देते बीच में ही भाग जाना आदि-आदि इनके भगवत् प्रेम की विभोरता का उन्माद सब पर छा जाता था। इसी मस्ती और प्रेम विभोरता में राम 25 वर्षों की उम्र में ही घर छोड़ कर हिमालय के जंगलों में भाग गए थे किन्तु इनका वहां भागना भी भारत के लिए रंग लाया। टिहरी के जंगल में स्वामी जी ने अपनी कुटिया रमाई टिहरी के युवक राजा ने उनका सम्मान किया और उपदेश सुना। उनके जादू भरे उपदेश पर मोहित होकर राजा ने उन्हें सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने जापान भेजा। किन्तु वहां पहुंच कर स्वामी जी को पता चला कि सम्मेलन स्थगित हो गया है। स्वामी जी कुछ समय वहीं रम कर वेदान्त पर भाषण देते रहे फिर अमेरिका में तीन वर्ष रह कर वेदान्त का प्रचार करते रहे। उनके मार्मिक और सारगर्भित भाषणों से मोहित होकर वहां की जनता बोल उठी भारत तू धन्य हैं जिसने ऐसे ज्ञानी विद्वान योग्य महात्मा पैदा किये हैं। स्वामी राम ने इस प्रकार विदेशों में भारत का मस्तक ऊंचा किया। सुना जाता है कि स्वामी जी के भाषणों से मुग्ध होकर एक दो महिला स्वामी जी के जन्म स्थान मुरारी वाला जिला गुजरांवाला (अब पाकिस्तान में) पंजाब की मिट्टी को मस्तक में लगाने के लिये भारत पहुंची थी)।

ऐसे थे स्वामी राम। उन्होंने भगवान् के प्रेम में आत्म विभोर होकर उर्दू-हिन्दी कविता में जो कुछ गुन गुनाया है, उसमें उनकी कवि प्रतिभा की ऊंची उड़ान के दर्शन

होते हैं। मस्त और भावुक वेदान्ती सन्यासी राम के पदों में कितनी ऊंचे दर्जे की कल्पनाएं अलंकार और रस भरे हैं, पढ़ कर आश्चर्य होने लगता है कि यह कवि हृदय कैसे भगवद् भक्ति, वेदान्त और आध्यात्मा की सरिता में बह गया, जिस से उस परम सत्ता के विषय का स्पर्श पाकर कविता भी परम पवित्र बन गई।

अब स्वामी जी की कविता के कुछ ऐसी उदाहरण यहां प्रस्तुत कर रहा हूं। एक बार स्वामी जी श्रीनगर (कश्मीर) पधारे थे। वहीं से अमरनाथ जी की यात्रा पर भी गये। मार्ग की प्राकृतिक छटा देख कर स्वामी जी की कवि प्रतिभा उमड़ पड़ी—

पहाड़ों का वह लम्बी तानें सोना
वह गुञ्जा दरख्तों का दो शाला होना
वह दामन में सब्जे का मखमल बिछौना
नदी का बिछौने की झालर पिरोना।
अर्थ-पहाड़ गहरी नींद में सोए हैं
घने पेड़ दोशाले का काम कर रहे हैं
हरे भरे खेतों की हरियाली का मखमली बिछौना है
और नदी बिछौने की झालर पिरो रही है।

इस कविता में कितना सुन्दर रूपक अलंकार निखरा है और कवि की प्रकृति सम्बन्धी कल्पनात्मक उड़ान भी कितनी ऊंची गई है, जिससे अमरनाथ के मार्ग की प्रकृति का चित्र साकार हो उठता है।

पहाड़ों से बादल कैसे टकरा रहे हैं, इस दृश्य का चित्रण स्वामी राम इस प्रकार करते हैं—

यह पर्वत की छाती पै बादल का फिरना।
यह दम भर में अब्रों से पर्वत का घिरना।
गर्जना चमकना कड़कना निखरना
छमाछम छमाछम यह बूंदों का गिरना
अरूसे फलक का वह हंसना यह रोना
मेरे ही लिये है फकत जान खोना।

इस कविता का अर्थ स्पष्ट ही है केवल अरूसे फलका का अर्थ है बिजली। यहां पर अमरनाथ जी के मार्ग में पर्वतों के साथ बादलों के टकराने का चित्रण कैसा सुन्दर बन पड़ा है।

स्वामी राम ने प्रकृति के सौन्दर्य को उस परम सत्ता के सौन्दर्य के रूप में ही सर्वत्र देखा है। प्रकृति और अनन्त सत्ता का सुन्दर सामन्जस्य इनकी कविताओं पर छाया हुआ है। राम स्वयं प्रकृति को देख कर मस्त और आत्म विभोर हो जाते थे। उनकी एक प्राकृतिक कविता का भाव इस प्रकार है—आकाश के नीले थाल में सितारे रूपी मोती भरे हुए हैं बीच में चन्द्र रूपी लाल कमल का फूल है। बादलों की चादर ने उस थाल को ढांप लिया है। जब वायु के झौंकों से पर्दा हटा तो सम्पदा का स्रोत जगमगाने लगा।

कश्मीर की सुन्दरता का वर्णन स्वामी राम ने नीचे लिखे पदों में बड़ा अच्छा किया है।

जैसे—

यह वादी का रंगी गुलों से लहकना।
फिजा का यह बू से सरापा महकना।
यह बुलबुल सा खदां लवो का चहकना
वह आबाजें ने का वहरसू लपकना।
गुलों की यह कसरत ड्रम रूबरू है।
यह मेरी ही रंगत है मेरी ही बू है।

अर्थ—यह घाटी रंग बिरंगे फूलों से महक रही है। यह खुला मैदान कोयल के समान हंसते हुए होंठों से चहचहा रहा है। बांसुरी की आवाजें सब ओर गूंज रही हैं। यानी झरनों और पक्षियों के कल-कल रूपी बांसुरी के नाद चारों ओर गूंज रहे हैं। ये पुष्पों की हरकतें मानों स्वर्ग का बाग है यह सब कुछ मेरा ही रंग है और मेरी ही खुशबू है।

सब जानते हैं कि स्वामी राम 'अहं ब्रह्मास्मि' यानि मैं ही ब्रह्म हूं इस सिद्धान्त को आत्मसात किये हुए थे इसीलिये उन्होंने इस कविता के अन्त में कहा है कि यह पुष्पों का हंसना, पक्षियों का चहचहाना, हरे भरे मैदानों का लहलहाना सब मेरा ही रूप है।

जब स्वामी राम श्रीनगर से किश्ती द्वारा अनन्तनाग को जा रहे थे उसी समय वितस्ता नदी का लहराना, नाव का तैरना, चारों ओर की प्रकृति सुन्दरता को देखकर इतने भावुक हो उठे कि उनके हृदय से नीचे लिखी कविता फूट निकली—

रवां आवे दरिया किश्ती दवां है सवा नुजहत आगी सुवहदम वजां है।

अर्थात् पानी में किश्ती दौड़ रही है। सुबह की हवा तरो-ताजगी से भरी हुई शुद्ध पवित्र हवा चल रही है।

आगे देखिये—

'यह लहरों पै सूरज का जलवा आया है।
बुलन्दी पै बर्फ दक तजल्ली पिद शां है—

अर्थ—लहरों पर सूर्य का प्रकाश प्रकट है ऊंचाई पर बर्फ का प्रकाश प्रकट है। इत्यादि।

स्वामी राम जहां मस्ताने ईश्वर भगत और अध्यात्मक रस के रसिक महात्मा थे वहां उनका कवि हृदय भी अपनी ही भावुकता में आकर प्रकृति ओर ईश्वर के सौन्दर्य पर गुनगुनाने लगता था। संसार की अनित्यता पर उनकी अनेकों कविताए प्रकाशित हैं ही।

स्वामी जी संस्कृत, हिन्दी और फारसी के भी विद्वान थे। अंग्रेजी उनकी अपनी थी ही। उनकी कविताओं पर फारसी की शब्दावली की कहीं-कहीं प्रधानता दिखाई पड़ने लगती है, उपयुक्त कविताएं इसका उदाहरण हैं। ०००

आवश्यकता है भारतीय चिन्तन की

वैदेशिक प्रभाव के कारण आज भारतीय चिन्तन में विशेष परिवर्तन हुए हैं जिनके कारण भारतीय विचार धीरे-धीरे अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। जो देश के लिए शुभ सम्वाद नहीं है। किसी भी देश का अपना चिन्तन, अपना रहन-सहन, अपना साहित्य और अपनी संस्कृति, उसके अस्तित्व और पहचान का मूल कारण होती है। उसका सदा जीवित रहना देश के गौरव और उन्नति के स्रोत को स्थायी रखना होता है। दूसरे देश भी उसकी इस पहचान में विशेषता देखकर उसके प्रति आकृष्ट होते हैं। प्रत्येक देश का अपने वातावरण परम्परा और प्राचीन साहित्य तथा भाषा के कारण निजी चिन्तन और व्यवहार होता है। योरोपीय चिन्तन में प्रधानता, भोगवाद और भौतिकी की है। इसके परे भी कोई अध्यात्म या अदृष्ट शक्ति है, इस सम्बन्ध में उन की कोई अधिक रुचि नहीं है। इस का यह अर्थ नहीं कि विदेशी लोग अदृष्ट या अध्यात्म शक्ति को जानते ही नहीं। काण्ट, रसेल आदि बड़े-बड़े विदेशी दार्शनिक हुए हैं। शैले, कीट्स, बर्डसवर्थ आदि इंगलिश कवियों ने भी अपनी कविताओं में आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत किए हैं। इसी प्रकार मैक्सूलर, विलसन, विटरनिक्त आदि विद्वानों ने भी भारतीय चिन्तन पर खूब लिखा और पढ़ा है। तथापि अध्यात्म ज्ञान आदर्श और नैतिकता के नाम पर भौतिक संसार की उपेक्षा करते हुए परम सत्ता की ही सर्व व्यापकता में आस्था रखना भारतीय चिन्तन की अति प्राचीन प्रणाली है, जो हमारी परम्परागत धरोहर है। इसमें भौतिकवाद तो है किन्तु आज के वैदेशिक और अनन्त उग्र भौतिकवाद के अति दूर गया साधारण और आदर्श भौतिकवाद, जिससे संसार चक्र चले। इसलिए भारतीय चिन्तन में भौतिकवाद को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। इसके अन्तर्गत केवल इतना ही था कि आदर्श तथा धर्म के अविरुद्ध होकर संसार की यात्रा करते रहना। हमारे ऋषियों का चिन्तन इतना महान् था जिसने इस भारत भूमि में सदियों तक रामराज्य का वातावरण जीवित रखा। विदेशियों के भारत पर जब से आक्रमण शुरू हुए तभी से हमारी यह धरोहर ज्योतिमंद पड़ती गई और भारत एक धार्मिक विवाद का केन्द्र भी साथ ही बनता चला गया। आज हमारे देश में जो वैदेशिक सभ्यता फैली है, उस के कारण कितनी अशांति और समस्या जाल ने देश को अपने चंगुल में कस लिया है, सब देख ही रहे हैं। आज जाति, धर्म, नस्ल,

सम्प्रदाय आदि को लक्ष्य बनाकर हम सब भारतीय आपस में ही गुत्थमगुत्था हो रहे हैं। यह भारतीय चिन्तन नहीं कुछ और ही चिन्तन यहाँ आ पहुंचा है। महंगाई, आबादी, आतंक, हत्याएं, लूटपाट, गुण्डागर्दी, हेराफेरी, लड़ाई झगड़े, खून खराबे, रिश्वत, भाई भतीजावाद, कुर्सी की भूख, रात में लखपति बनने की आकांक्षा, जाति, धर्म और सम्प्रदाय वश आपस में विरोध आदि सैंकड़ों समस्याओं से ग्रस्त इस देश की जनता कराह उठी है। किन्तु राजनीतिज्ञ फिर भी कुर्सी और वोट बैंक की दौड़ में व्यस्त हैं। उन्हें देश की इन समस्याओं पर विचार करने का समय ही कहां।

आज ऐसे दुर्दिनों में भारतीय चिन्तन की बड़ी आवश्यकता है, जिससे हमारे में पुनः वे आर्ष गुण जागृत हों। जिनके द्वारा हमारा देश सुख, शांति, एकता, भाईचारा, परस्पर प्रेम सद्भावना, राष्ट्रीयता, देश प्रेम आदि से अपनी सार्वभौमिकता अक्षुण्णता और एकता को अतीतकाल की भांति सुरक्षित रख पाए। यह भारतीय चिन्तन से ही हो सकता है। भारतीय चिन्तन तो अगाध और अनन्त है। तथापि उसके कुछ बिंदू मैं नीचे दे रहा हूं जो इस समय हमारे देश को उपर्युक्त स्थिति में लाने में सक्षम हैं।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि जो व्यवहार तुम्हें बुरा लगता है वह दूसरों से मत करो। परोपकार पुण्य के लिए और दूसरे का पीड़न करना पाप के लिए है सारा संसार ही अपना परिवार है। हमें मित्र दृष्टि से ही सब को देखना चाहिए। ईश्वर ने जो कुछ दिया है उसी से काम चलाओ दूसरे के धन को मत लो। संसार का कार्य निर्लिप्त और फल की कामना, छोड़ कर करो। स्वार्थ त्याग करो। अपना देश हमारा अपना प्राण है। सच्ची मुक्ति का अधिकारी वही है जिसने भेदभाव को जीत लिया है। पंडित (बुद्धिमान) लोग सब को एक समान समझते हैं। जो व्यक्ति संसार की नारियों को माता के समान, दूसरे धन की मिट्टी के ढेले के समान और सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता है वास्तव में वही देवता है। सब के शरीरों में एक ही आत्मा बैठी है इसलिए सब प्राणी एक रूप हैं। यानी अपना ही रूप हैं। किसी के प्रति द्वेष, ईर्ष्या और वैर भाव रखना महापाप है। शरीर अनित्य है, धन सदा नहीं रहता इसलिए धर्म का संग्रह करना चाहिए। जिस प्रकार सब नदियाँ एक ही समुद्र में जाकर मिलती हैं, उसी प्रकार सब धर्म अन्त में एक ही लक्ष्य (ईश्वर प्राप्ति) तक पहुंचते हैं। सब एक हैं और एकरूप हैं। इतना पाप करते सम्पत्ति का विस्तार करते हो किन्तु आंख मूंदने पर कुछ नहीं रहेगा अपना। किसी पर अत्याचार करना किसी की आत्मा दुखाना बहुत बड़ा पाप है। हम सब एक हों। हमारी एक ही सभा हो। हमारा एक विचार हो। हम इकट्ठे खाएं इकट्ठे वीरता के कार्य करें। कभी आपस में द्वेष भाव न रखें। जितने से पेट भर जाए उतना ही धन अपना है। जो अधिक चाहता हो वह चोर है और दण्ड का अधि-

कारी है। भारतीय चिन्तन सागर से कुछ बिंदू निकाल कर मैंने ऊपर प्रदर्शित किए हैं यदि इन को प्रत्येक भारतीय आत्मसात कर ले तभी हमारा देश अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करते हुए सुख और शांति प्राप्त कर सकता है। शेष आधुनिक उपाय करके देख लिए गए हैं किन्तु अशांति और संघर्ष दोनों चरमसीमा तक ही पहुंच रहे हैं। अब समय है हम सब भेदभाव और पैसे का अंधा मोह छोड़ कर ठंडे दिल से अपने देश की वर्तमान दशा पर ध्यान दें। देश है तो हम हैं। देश नहीं होगा तो हम भी न होंगे। उस समय न पैसा काम आएगा न कुर्सी और न वोट बैंक। आज आवश्यकता है कि हमारे युवकों को एक ऐसा सुन्दर दिशा निर्देशन मिले कि वे अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग करने को तैयार हो जाएं यही है भारतीय चिन्तन। हमें सब कार्य इस चिन्तन के माध्यम से ही करने चाहिए। इसके लिए भारतीय प्राचीन साहित्य की शरण लेना आवश्यक है। अपनी भाषा, अपना देश अपने सब भारतवासी एक ही जाति पाति, सम्प्रदाय, नस्ल, रंग आदि सब भूल कर हम अपने को भारतमाता का सपूत समझें और इस कीं रक्षा की चिन्ता हमें रात दिन सताती रहे। हम वीर बनें, बुद्धिमान बनें एकता में पिरोकर अपने देश पर न्योच्छावर हों इसी से भारत की स्वतन्त्रता, अखंडता और चिर अस्तित्व की रक्षा हो सकेगी। हमारा देश महान् है।

०००

डोगरी गद्य का उद्भव

आजकल 'डुग्गर' शब्द पर भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार प्रकट किये जा रहे हैं। बहुतों की राय है कि प्रस्तुत शब्द संस्कृत के द्विगर्त से बना है। द्विगर्त का अर्थ है—दो गर्त (दो खाईयां—या दो सरोवर) डुग्गर प्रदेश में इस प्रकार के दो गर्त अर्थात् दो सरोवर सूर्य सर तथा मानसर जम्मू से लगभग चालीस मील की दूरी पर है। शायद इन्हीं के कारण इस प्रदेश का नाम द्विगर्त और इससे बिगड़ कर 'डुग्गर' पड़ गया हो। इस का एक कारण त्रिगर्त शब्द की विद्यमानता भी थी। त्रिगर्त शब्द का प्रयोग हिमाचल प्रदेश वर्त्ती किसी एक (मंडी-सुकेत आदि) भूभाग को कहा जाता था। त्रिगर्त शब्द को प्राचीनता पुराणों से ही प्रकट है। पुराणों में द्विगर्त शब्द के स्थान पर मद्र शब्द इस डुग्गर भूभाग का परिचायक था। यह बात महाभारत तथा मत्स्य-पुराण से भली-भांति स्पष्ट हो जाती है। हां तो समीपवर्ती प्रदेश त्रिगर्त के साम्य से इस प्रदेश (डुग्गर) का नाम भी द्विगर्त पड़ गया होगा, ऐसा भी प्रतीत होता है किन्तु अभी विगर्त शब्द के सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों को सन्देह है। वे डुग्गर शब्द की व्युत्पत्ति अन्य प्रकार से करते हुए देखे गए हैं। जैसे 'दुर्ग' शब्द मौलिकता खोकर दुर्गर बना और उससे डुग्गर बन गया। दुर्ग से ही डुग्गर बनने में क्या कारण था, इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस धरती पर त्रिकूट पर्वत की गुफा में विराजमान दुर्गा देवी के नाम से इस भूमि को दुर्ग-दुर्गर कहा जाने लगा था। उसी से 'डुग्गर' बना।

दूसरों का विचार है कि यहां पर्वतों की अधिकता के कारण यह भूमि दुर्गम्य थी (दुर्गम-दुःखेन गन्तु' योग्यम्) इसीलिए इसे दुर्ग कहा जाने लगा या पुराने राजाओं द्वारा बनाये गये पहाड़ों पर ऊंचे-ऊंचे किले यहां वर्तमान थे (संस्कृत में दुर्ग किले को कहा जाता है) इसीलिए इस प्रदेश को भी दुर्ग कहा जाने लगा जैसे राजस्थान में ऊंची पर्वतीय भूमि को 'डोगर' कहा जाता है।

अथवा दुर्गर शब्द से डुग्गर बना होगा—(गर-गॄनिगरणे धातु—निगलने के अर्थ में) जो प्रदेश शत्रुओं के द्वारा दुःख से निगला जाता है उसे दुर्गर कहते हैं। यहां के निवासियों का व्यवसाय अधिकतर खेती, नौकरी और युद्ध-कौशल था। वीरता

इन की जातीय परम्परा रही है। अतः कोई आश्चर्य नहीं यदि इस विचार से इस धरती का नाम 'दुगर' पड़ गया हो। प्राकृत भाषा के अनुसार बीच का 'र' अक्षर अपने पहले अक्षर के रूप में आ जाता है जैसे सूत्र का सुत्त, पुत्र का पुत्त। ऐसा डोगरी बोली में भी देखा गया है जैसे मूत्र से मूत्तर, गर्जना से गज्जना आदि। कुछ शब्द बिना कारण द्वित्व भी बन जाते हैं—जैसे लूटना से लुट्टना, कूटना से कुट्टना आदि। तो कोई आश्चर्य नहीं कि डोगरी में 'दुर्गर' शब्द जो संस्कृत का तत्सम है, तद्भव होकर डुग्गर बन गया हो। मुझे तो डुग्गर शब्द की उत्पत्ति से इस प्रकार का शब्द-निर्माण युक्ति-युक्त प्रतीत होता है। इसी मत की पुष्टि डॉ० किलहार्न के कथन से भी पुष्ट हो जाती है। उन्होंने कांगड़ा से प्राप्त प्राचीन ताम्र-पत्र में दुर्गर शब्द देखकर उसी के आधार पर 'डुग्गर' शब्द की उत्पत्ति मानी है। पौराणिक मद्र शब्द की अपेक्षा 'डुग्गर' शब्द नवीन एवं उत्तर पौराणिक है, जो अपने आप जनता में स्थान पर गया। आज हम जम्मू और जेहलम तथा रावी नदी के बीच के इस पर्वतीय प्रदेश को सदियों से इसी नाम से पुकार रहे हैं। इस घेरे के अन्दर अन्य छोटे-छोटे राज्य भी आ गए थे।

वही अपभ्रंश शब्द 'डुग्गर' घिसने-घिसते आज 'डोगरा' के रूप में आ गया है। डोगरी बोली इण्डो-आर्यन-भाषा परिवार की श्रेणी में आती है। अतः जिस प्रकार भारत की अन्य बोलियां हिंदी प्राकृतों से निकली हैं, यह भी शौरसैनी प्राकृत से निकली हुई मालूम पड़ती है। बौद्धों के युग में चारों प्राकृत मागधी, अर्धमागधी, शौरसैनी और अवन्ती काफी उन्नति कर चुके थे। इन का समय ईसा की पहली शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक था। तदनन्तर इन्हीं प्राकृतों से अपभ्रंश यानि कि पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिंदी, अवधि, बुन्देल, खंडी, राजधानी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि पैदा हुए। इन बोलियों का समय ईसा की सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के अन्त तक रहा। इसी समय रासो ग्रंथों का निर्माण भी हुआ था। आज की खड़ी बोली, पंजाबी और डोगरी का जन्म भी शौरसैनी प्राकृत के अपभ्रंश से माना जाता है। इसलिये कि शौरसैनी से ब्रज तथा राजस्थान डिंगल और पिंगल बोलियां निकली हैं। पंजाबी, डोगरी और राजस्थानी तीनों परस्पर अधिक समीप दीखती हैं और इन का घनिष्ट सम्बन्ध हैं ब्रजभाषा के साथ। प्रादेशिक जलवायु के कारण मनुष्यों के उच्चारणों में अन्तर आ जाने से उस का प्रभाव भाषा पर पड़े बिना नहीं रह सकता। किसी समय ब्रज-भाषा का गद्य भिन्न-भिन्न प्रदेशों पर उच्चरित होने का कारण भिन्न-भिन्न बोलियों के रूप में परिणत होता गया। पंजाबी और डोगरी गद्य मौलिक रूप से ब्रजभाषा के गद्य से ही निकला हुआ मालूम पड़ता है। महाराजा रणवीरसिंह के युग के जितने भी डोगरी के गद्य मिलते हैं, वे ब्रज के गद्य से अधिक मेल खाते हैं। उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा।

"ब्रज का गद्य—तिस को ब्रह्म मिलने का प्रभाव कहो कैसे है हरि। भ्रमते परे हैं—तिस शब्द विषे ज्योति है।...तहां मन लीन होता है और विष्णु का परम पद है। परम पद विषे ध्यान है...सो परमात्मा कैसा है? आदि मध्य अन्त ते रहि। है।"

महाराज रणवीर सिंह के युग का डोगरी गद्य जो उस समय के एक कार्ड से लिया गया है इस प्रकार है: ओं श्री माहा श्री वरषरदार रामानंदा जी की राम राम सम्हाली। बहौत करि इत्थें सब सुख है। आगे तुसें जि की गदाधर तुसाडी रक्ष्या करना तेरा पुज्जा। होर जि पराकडीआ रपैते 1 मोहल लाले की भेजी दितिहाना। होर गपालु दा विआ कि पुक्का क 1 रपैऐ—होर गोविंद की आश्रेया रपैऐ जितने लयन उतने बनाइ देने। होर जि तेरे आमने दी कदों मरजी है लिषि भेजना—

उपर्युक्त डोगरी गद्य का नमूना अपनी विकसित अवस्था का है। इसके पूर्व अर्थात् 150 वर्ष पहले का डोगरी गद्य ब्रज-गद्य के और भी समीप दिखाई देता है। उस समय के डोगरी गद्य का नमूना नीचे दिया जाता है:—

मणे पाणीए विच पचाणीयां जले विचि पकावे जा 'गुड़ पक्के तां' पिरपली सी तिस विच मुनका—तिस दा मोदक करना—अगस्त हरीत की सम रोग दूर को। शास्त्रै विच इस दा नाम रसायन है—बल पुष्ट करै पित्त सांत करै तिस की हरी करै।

इस गद्य में 'तिस' करे आदि शब्द ब्रजभाषा के अधिक समीप है इसी प्रकार ताई, विषे, होत आदि कई शब्द इस काल के डोगरी गद्य में देखे गए हैं। इससे स्पष्ट है कि ब्रजभाषा का गद्य प्रादेशिक वातावरण में घिसता-घिसता डोगरी गद्य बन गया और उस पर समीपस्थ प्रदेश पंजाब की पंजाबी भाषा के गद्य की भी गहरी छाप पड़ने के बाद उर्दू-फारसी के शब्द भी आ गए। तदनन्तर हिन्दोस्तानी या खड़ी बोली के इस युग में डोगरी गद्य पर इन दोनों का नवीन प्रभाव पड़ा। इसी कारण आज का डोगरी गद्य शहरों के वातावरण में अधिक मॉडर्न है परन्तु इसका शुद्ध प्राचीन रूप अभी देहातों के अंचल में सुरक्षित है। मुझ को के अर्थ में ब्रज में मोही और डोगरी में मिकी का प्रयोग होता है। तुझ को के अर्थ में ब्रज में तोही और डोगरी में तुकी। इस ह को क बने में डुग्गर प्रदेश में कई पीढ़ियां बीती होंगी। भाषा लोगों की रसना पर बैठ कर धीरे-धीरे अपना रूप बदलती रहती है इस में कारण है उच्चारण का लापरवाही या विशेष जलवायु।

आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व का डोगरी-गद्य तो सामने आ ही चुका है किन्तु इस का यह अर्थ नहीं कि प्रस्तुत गद्य की आयु भी इतनी ही होगी। वास्तव में इस गद्य

का जन्म कई शताब्दियों पहले ही चुका था। ईसा की 13वीं शताब्दी के अमीर खुसरो ने अपनी पुस्तक 'खुसरो नामा' में डोगरी गद्य का भी स्मरण किया है। खुसरो के पहले यह गद्य कब से चला था, कहा नहीं जा सकता। मगर इससे इस की अति प्राचीनता में संदेह नहीं रहा। इस उपर्युक्त विवरण से यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि अपभ्रंश के युग (ई० 700-1202) में ही डोगरी बोली का जन्म राजस्थानी, पंजाबी आदि के साथ हुआ। हां, इसकी कविता का प्रचलन इसके गद्य के साथ-साथ ही चलता रहा। कविता तो कभी पुस्तकाकार नहीं हुई मगर इसका अत्यधिक परिमाण केवल यहां की जनता की रसना पर सदा नाचता रहा और आज भी नाच रहा है। यह मौखिक साहित्य इसका किसी भी भाषा के लिखित कविता साहित्य से कम नहीं। इस बोली की एक बड़ी विशेषता यह है कि संस्कृत को छोड़कर शेष सब भाषाएं संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जा रही है अर्थात् उनके आगे कारक चिन्ह बनते जा रहे हैं। राम का...को के लिए इत्यादि हिन्दी को इस दिशा में लांघ कर आगे बढ़ गई है मगर डोगरी अभी तक अधिकतर इस संयोगावस्था में ही चल रही है। इसी से इसकी प्राचीनता हिन्दी गद्य की अपेक्षा अधिक मालूम पड़ती है। केवल इतनी ही बात है कि इस का प्राचीन लिखित साहित्य न होने के कारण यह अभी तक प्रगति की दौड़ में कुछ पीछे रही है मगर अब ऐसी बात भी नहीं रही। कारण कि पिछले 50 वर्षों से इसके गद्य-पद्य दोनों की दिशा में साहित्य की बाढ़-सी आ गई है। नवीन लेखकों की परम्परा स्व० पं० हरदत्त जी से लेकर आज तक सर्वतोमुखी होकर प्रवर्तित होती आ रही है। अब तो गीत, कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध अनुवाद आदि सब तैयार हो चुके हैं।

लिपि तथा प्रसार क्षेत्र :

डोगरी की प्राचीन लिपि 'टांकरी' कहलाती है। स्व० महाराजा रणवीर सिंह ने इसी लिपि को जीवित करते हुए एक प्रैस की स्थापना की थी और अनेक डोगरी ग्रंथों को मुद्रित भी करवाया। यहां तक कि राजकीय भाषा का स्थान भी उस समय डोगरी को ही दिया गया। प्रस्तुत लिपि की ध्वनियां देवनागरी जैसी ही हैं परन्तु एक दो स्थान पर भेद अवश्य दीखता है जैसे टाँकरी में 'ऋ' 'लृ' दो अक्षर नहीं पाए जातें तथा 'द' के स्थान पर 'दआ' लिखा जाता है फिर भी देवनागरी और डोगरी की ध्वनियों में विशेष भेद नहीं किन्तु अक्षर प्रकार में काफी भेद हैं।

जम्मू प्रदेश में बोली जाने वाली डोगरी के इस समय प्रधान रूप से चार रूप मिलते हैं—रामबनी, भद्रवाही, पोगली तथा जाम्बवी। कश्मीर के मार्ग में रामबन तथा आसपास के इलाकों में रामबनी डोगरी बोली जाती है जिस पर कश्मीरी बोली का कुछ प्रभाव दीखता है। इसी के आगे पहाड़ों की गोद में बसे हुए पोगल तथा

आसपास के देहातों में पोगली डोगरी का प्रसार है जिसे पहाड़ी भी कहते हैं। भद्रवाह में बोली जाने वाली डोगरी भद्रवाह में बोली जाने वाली डोगरी भद्रवाही पर भी कश्मीरी बोली का काफी प्रभाव है किन्तु चौथी जाम्बवी जो जम्मू तथा उसके उत्तर-पश्चिम तथा पूर्व के कस्बों और देहातों में बोली जाती है खालस डोगरी का रूप लिए हुए है। जम्मू शहर की डोगरी कुछ मॉडर्न तथा साहित्य का प्रभाव किए हुए है मगर देहातों में अभी भी डोगरी का प्राचीन शब्द रूप जीवित है। विशेषकर देहाती स्त्रियां इसका अधिक प्रयोग करती हैं। इसी प्रकार जम्मू के पूर्व की ओर चम्बा प्रदेश है जो आजकल हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत आ गया है किन्तु इस इलाके में भी डोगरी ही बोली जाती है। इस डोगरी के भी कुछ रूप हैं। जैसे—चम्बा में चमियाली। एक डोगरी-पंजाबी का मिश्रित रूप जो जम्मू के पश्चिमवर्ती भूभाग में बोली जाती है, भटियाली के नाम से प्रसिद्ध है। जो पंजाब की सीमा पर स्थित डोगरी इलाके के भूभाग हैं, उन्हीं में इस का प्रयोग होता है इसी प्रकार जम्मू के उत्तर-पूर्व में स्थित कांगड़ा प्रदेश में भी डोगरी ही बोली जाती है किन्तु यह डोगरी पंजाबी बोली से अधिक प्रभावित है। इसी प्रकार जम्मू के पश्चिम चनाब नदी के उस पार कुछ इलाकों तक डोगरी का प्रयोग हो चलता है किन्तु उसके आगे बोली में अधिक परिवर्तन होता चला गया है और वह लहदा भाषा का रूप लेती हुई दीखती है।

इस प्रकार डोगरी बोली का विस्तार-क्षेत्र उत्तर में बनिहाल पर्वत (जिसमें रामबन, भद्रवाह आदि आ जाते हैं) और उससे पूर्ववर्ती क्षेत्र जम्मू, चम्बा, कांगड़ा तथा होशियारपुर हैं। इस विशाल क्षेत्र में डोगरी बोली अपने भिन्न-भिन्न परिवर्तित रूप लेकर (पहाड़ी, जाम्बवी, रामबनी, भद्रवाही, भटियाली तथा चमियाली) प्रयोग का विषय बनी हुई है।

०००

छठा अध्याय

(साहित्येतिहास से सम्बन्धित)

"काश्मीर का प्रत्यभिज्ञा शास्त्र"

भारतीय दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में, जिस प्रकार अद्वैत (वेदांत) का स्थान सर्वोपरि है, उसी प्रकार काश्मीर-शैव शाखाभूत प्रत्यभिज्ञा शास्त्र का स्थान भी भारतीय दर्शन-साहित्य में गौरव पूर्ण है।

कहने में तो कहा जा सकता है कि प्रत्यभिज्ञा अद्वैत वेदान्त का ही कुछ परिवर्तित रूप है और इस की चिन्तन-शैली तथा सिद्धान्त भी इस दर्शन से विशेष पृथक् नहीं है, किन्तु जहाँ इस का अधिक व्यावहारिक रूप है, वहाँ इसकी स्थापना केवल एक ही परम तत्व तक आकर अवसित हो जाती है। वह परमतत्व है, परम शिव जिस का स्वरूप प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

"आत्मौव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृत चिद्विभु:"

—यह शिव (परम शिव—परम महेश) अप्रतिरुद्ध इच्छा तथा प्रभाव वाला है। इस की दृष्टि तथा कार्यकलाप विश्व के अणु-अणु में व्याप्त है। यही परम तत्व अर्थात् शिव तत्व वेदान्तियों के ब्रह्म के समान नित्य और अनन्त है। (शिव तत्वं नित्य मनन्तकम्) यह शिव तत्व शक्ति का अपूर्ण भण्डार है। यह शक्ति-संभार शिव का बाह्य व्यापार स्वरूप है। यद्यपि "परम शिवस्यैव इदमेकधन-मैश्वर्य" तथापि "तस्य यथा बाहिरौन्मुख्येन व्यापार: शक्ति तत्वम्" (ईश्वर प्रत्यभिज्ञा की टिप्पणी) इस शक्ति प्रवाह के द्वारा परम शिव निमेष और उन्मेष से सृष्टि की उत्पत्ति और विलय करने में क्षण भर की देर नहीं करता। शिव के अन्दर आकार बैठी हुई यह अनन्त शक्ति शिव-भाग से पृथक् प्रसारित होकर शिव से क्षित्यन्त तक 'दर्पण-नगर' की भान्ति विश्व रूपी विचित्र-चित्र चित्रित कर देती है। यही है परम शिव का शक्ति उन्मेष। जब इस विश्व-चित्र का भी निमेष द्वारा ऐसा हो जाता है यह भी प्रभु का क्षण भर का कार्य है—"निमेषेण पुन: शक्ति-भागस्य स्वान्त: संयोजनेन अवस्थिति" (ईश्वर प्रत्य० की टिप्पणी)।

वेदान्तियों का ब्रह्म नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव होकर इस चराचर प्रपंच से परे है। उसी का स्फुलिंग यह जीव माया जाल में लिपट कर अपनी विशालता, सर्वज्ञता

और सर्व व्यापकता को खोकर सीमित अवस्था में सांसारिक सुख-दुःखों का अनुभव करने लगता है। जीव और ब्रह्म के इस विभेद की नियामिका है एक मात्र माया। इसी माया के आवरण द्वारा ब्रह्म का पता चलता है।

जब ज्ञान द्वारा यह जीव अपने ब्रह्मभाव को पहचान लेता है, उस अवस्था में वह स्वयं भी ब्रह्मीभूत होकर 'अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा अनुभव करने लगता है। वस्तुतः वेदान्तियों की दृष्टि में इस संसार की स्थिति स्वप्नवत् मिथ्या है। वह केवल जीव की अविद्या या माया द्वारा कल्पित है। ज्ञान हो जाने पर जैसे बर्फ का टुकड़ा पिघल कर पानी का रूप ले लेता है वैसे ही जीव भी ब्रह्म के रूप में आ जाता है। बर्फ का पानी से वास्तविक भेद न होने पर भी अज्ञान से उसे भिन्न किया जाता है। जीव का भी ब्रह्म से भेद न था किन्तु अज्ञान वश जीव अपने को विभिन्न समझता रहा। इस सम्बन्ध में वेदान्तियों ने और भी कई दृष्टान्त दिये हैं, जैसे 'रज्जु-सर्प भ्रान्ति, जल तरंग न्याय' आदि। यह ब्रह्म अनादि, अनन्त, पर, महान् और ध्रुव है, जो संसार से अस्पृष्ट और निस्संग रह कर कुछ करता-धरता नहीं, केवल माया द्वारा 'सृष्टिचक्र' को ही चलाता है। उस (ब्रह्म) का स्वरूप क्या है, इस सम्बन्ध में निश्चित मानदण्ड निर्धारित नहीं किया जाता है। वह अणु भी है, महान् भी है। सूक्ष्म भी है, स्थूल भी है। अदृश्य भी दृश्य भी, अचक्षु भी, सचक्षु भी। सर्वशक्तिमान और सब कुछ करने में समर्थ भी है। उस की अपार महिमा है। तर्क-वाद-विवाद तथा वेद-शास्त्र भी रूप-निर्णय नहीं कर पाये। वह केवल अनुभव-गम्य है और गूंगे के गुड़ की भान्ति उसके अनुभव का आनन्द अवर्णनीय है। जो जीव उसे पा लेता है वह जन्म-मरण बुढ़ापे आदि दुःखों से छूट कर ब्रह्ममय हो जाता है। "अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं, निचाय्य तं मृत्यु-मुखात् प्रमुच्यते"।

वेदान्तियों की जैसी चिन्तन-शैली ऊपर दिखायी गयी है, वैसी ही प्रत्यभिज्ञा वालों का भी है। किन्तु कुछ एक बातों में दोनों में भेद भी दृष्टिगोचर होता है, जिससे प्रत्यभिज्ञा-शास्त्र का पृथक् अस्तित्व बन गया। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि—"परम शिवनि-रुद्धेच्छा प्रसर' है। वह उन्मेष-निमेष द्वारा सृष्टि का जन्म और विलोप कर देता है। उसमें अनन्त शक्ति का स्रोत लहरा रहा है, वही स्रोत सृष्टि को जन्म देता है और अन्त में यह व्यापक विश्व निमेष द्वारा परम शिव में विलीन हो जाता है। यह नाटक परम शिव की इच्छा शक्ति के अधीन है।

वेदान्त का ब्रह्म शिवतत्व की भान्ति सर्व-समर्थ होता हुआ भी माया द्वारा विश्व-नाटक का अभिनय कराता है और स्वयं निस्संग रहता है, किन्तु परम शिव अपने शक्ति उन्मेष से ऐसा करता है। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में विश्व-निर्माता माया का कोई स्थान नहीं। इसी प्रकार वेदान्तियों की स्वप्नवत् संसार की मिथ्या

कल्पना को भी यहां स्थान नहीं मिला। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार शिव-शक्ति से उत्पन्न यह जगत् भी परम शिव का बाह्य रूप है, जो शिव की भान्ति ही सत्य, अनादि तथा अनन्त है। दर्पण में जैसे मुख प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार इस शिव रूप दर्पण में संसार का रूप प्रतिबिम्बित है, जो शिव की सत्यता के साथ स्वयं भी सत्य है। "दर्पण नगर वत् विश्व वैचित्र्यचित्रमुन्मीलयति" इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा का सिद्धान्त एक प्रकार से स्वातन्त्र्यवाद कहा जायेगा, जिसमें परम शिव सब कुछ करने में स्वयं स्वतन्त्र है :—"तस्मात् अनपह्नवनीयः प्रकाश विमर्शात्मा संवित् स्वभावः परम शिवो भगवान् स्वातन्त्र्यादेव रुद्रा—दि स्थावरान्त प्रमातृ रूपतया नील-सुखादि प्रमेय रूपतया च...स्वातन्त्र्य महिम्ना प्रकाशते"।

—(ईश्वर प्रत्यभिज्ञा)

यह परम शिव भट्टारक भी वेदान्तियों के ब्रह्म जैसा अनादि, अनंत सर्व शक्तिमान् आदि गुणों से युक्त है इसी कारण प्रत्यभिज्ञा में कहीं-कहीं इसे ब्रह्म के रूप में भी कहा गया है :—

'तद्ब्रह्म परं शुद्धं शान्त भेदात्मकं समं सकलम्।
अमृतं सत्यं शक्तौ विश्राम्यति भा स्वरूपायाम्"॥

—(परमार्थ सार)

संसार के सग्र पदार्थों में इसी का रूप जगमगा रहा है। दूसरे शब्दों में समग्र संसार शिव का रूप है। शिव के अस्तित्व में यही बड़ा प्रमाण है—"रूपादिषु परिणामात् तत्सिद्धि" (कल्लट) शिव के अन्य दो पहलू हैं :—प्रकाश और विमर्श। प्रकाश उसका शुद्ध एवं वास्तविक रूप तथा विमर्श सांसारिक (बाह्य) रूप है। ब्रह्म की भान्ति इसे भी चित्तस्वरूप के रूप में अनुभूत किया जाता है। जैसे :—

"चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितिमिच्छा वशाद्वहिः।
योगीव निररूपादानमर्थं जातं प्रकाशयेत्"॥

—(नृत्यभिज्ञा कारिकावृत्ति)

यह नीति चिति परावान् (ब्रह्म सम्बन्धी वाणी) उस परमैश्वर्यवान् परम शिव का हृदय है दूसरे शब्दों में स्वयं भट्टारक शिव का रूप है। जैसे :—

"सा स्फुरत्ता महा सत्ता देश काल विशेषिणी।
सैव सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेकिनः"॥

—(प्रत्य० कारिका०)

इस परम सत्ता की प्रत्यभिज्ञा (पहचान) के बिना जीव का पशु भाव नहीं मिटता और यह पशुता संसार में सबसे बड़ा अभिशाप है। प्रत्यभिज्ञा के अनुसार

परमशिव के ज्ञान के अभाव में सांसारिक उन्नति, चाहे वह बौद्धिक हो या भौतिक पशुभाव का कारण है। परम शिव पा लेने पर जीव पशु से परमात्मा बन जाता है। किन्तु यह पशु जीव परम शिव का ही दूसरा है। जैसे—

"तत्रान्तर्विश्वमिदं विचित्र तनु करण भुवनं संतानम्।
भोक्ता च तत्र देही शिव एवं गृहीत पशुभावः" ॥

यह संसार चक्र जो वास्तविकतया शिव का रूप है कदापि स्वप्न या मिथ्या नहीं हो सकता क्योंकि परम शिव स्वयं उस रूप में परिणत होकर प्रत्यय हो रहा है। भेद केवल इतना ही है कि अपने शुद्ध रूप के विपरीत पशुभाव में आ गया है वह इसलिये कि जगत् का संचालन करना था। जैसे :—

"नाना विध वर्णानां रूपं धत्ते यथाऽमलः स्फटिक।
सुर मानुष पशु पादप रूपत्वं तद्वदीशोऽपि" ॥

—(परमार्थ सार)

जिस प्रकार पानी में प्रतिबिम्बित चन्द्रमण्डल पानी के हिलने पर हिलता है, स्थिर रहने पर स्थिर रहता है, उसी प्रकार परम शिव भी संसार की विभिन्न अवस्थाओं में अपने को तदनुरूपता प्रदान कर रहा है। ऐसे सर्व विकल्प हीन, शुद्ध, शान्त उदयास्त रहित, तथा परमतत्व स्वरूप इस शिव में छत्तीस तत्वों वाला जगत् प्रकट हो रहा है।

इस परमतत्व के पा लेने पर साधक कैसा तन्मय हो जाता है, उस सम्बन्ध में श्री अभिनव गुप्त का कथन है :—

"व्यापिन मभिहितमित्थं सर्वात्मानं विधुत नानात्वम्।
निरूपम परमानन्दं यो वेत्ति स तन्मयो भवति" ॥

इस तन्मयता में वह पशुभाव से विमुक्त होकर परम शिव के आवेश में उन्मत्त या दीवाना बन जाता है। यह आवेश सर्वोत्तम समाधि है, जिस में योगी अन्तर्लीन होकर ब्रह्माण्ड के दर्शन अपने में करने लगता है। उस अवस्था में वह स्वयं शम्भू (शिव) बना हुआ होता है। जैसा कि "मालिनी विजयोत्तर तन्त्र" में कहा गया है :—

"अकिंचिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिवोधितः।
उत्पद्यते य आवेशः शाम्भवोऽसावुदीरितः ॥

प्रत्यभिज्ञा दर्शन विशेषता :

ऊपर कहा जा चुका है कि वेदान्तियों का ब्रह्म शुद्ध-बुद्ध निस्संग और अकर्ता

होने के कारण माया द्वारा संसार की रचना करता है और उसका संसार भी स्वप्नवत् मिथ्या तथा अवास्तविक है। इस पर भी समग्र वेदान्त उपनिषद् तथा यत-तत्र वेद द्वारा ब्रह्म पर अत्यन्त विशाल व्याख्यान हो जाने पर भी शंका-सन्देह बने ही रहते हैं। कारण कि इतने लम्बे विवरण के रहते हुए भी वेदान्त ब्रह्म का निश्चित स्वरूप नहीं स्थिर कर पाया। यही स्थिति वेद तथा उपनिषदों की भी है। विवरण के साथ-साथ यह भी कहा गया है कि उस अनन्त शक्ति का कोई रूप नहीं कोई रंग नहीं। किसी ने उस को नहीं देखा। वह इन्द्रियों और मन का अगोचर है तर्क वेद पुराण स्मृतियों नहीं देखा। वह इन्द्रियों और मन का अगोचर है। तर्क वेद-पुराण स्मृतियां उसे प्रकट नहीं कर पाईं वेद ने भी नेति-नेति कह दिया है और वह परम योगियों की पहुँच के भी बाहर ही है। परन्तु उसका अस्तित्व है अवश्य। चिन्तन के इस गहरे अरण्य में भटकते हुए जिज्ञासु को अन्त तक सन्तोष नहीं मिलता जब कि अन्त में गीता पर आकर उसे कुछ समाधान अवश्य प्राप्त हो जाता है। इस के साथ-साथ वेदान्त ने जगत् की मिथ्या और स्वप्नवक्ता कह कर संसार को और भी उलझन में डाल दिया। भौतिक जगत् जो कुछ भी व्यवहार कर रहा है, संसार की सत्यता ही उस में उस की प्रेरक शक्ति है। इस प्रकार के मिथ्यात्व में कर्ता और कार्य भी मिथ्या बन जायेंगे। सांसारिक मनुष्यों की जीवन की मीठी आशा उन्हें कर्त्तव्य पथ एवं कर्म योग की ओर लगाती है, जिस में उन्हें उज्जवल भविष्य झांकता हुआ दीखता है, किन्तु वेदान्त का मिथ्यावाद उन्हें इस पथ से हटाकर अकर्मण्य और निराश बनाने में ही सहायक हो सकता है। पूर्ण ज्ञानियों की बात तो अलग रही। संसार में लाखों में से कोई एक ऐसा होगा। शेष सृष्टि तो संसार की वास्तविकता पर ही जीवित है। चिन्तन और मान्यता की इरा दुरूहता के कारण ही वेदान्त व्यावहारिक जगत् के साथ समझौता नहीं कर पाया। किन्तु प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में संसार की सत्यता और परम शिव का निश्चित स्वरूप स्थिर करते हुए व्यावहारिक जगत् के साथ मेल रखने में पूर्ण सफल रहा। उसका परम शिव जैसा सिद्ध किया गया, उस रूप में वह सर्वांगपूर्ण और सुव्यवस्थित है। परमशिव की परिभाषा उसका रूप तथा प्रकार समझा देने को संदेह के चक्कर की ओर घुमा दे। ब्रह्म के समान यद्यपि वह भी अत्यन्त अगम्य है परन्तु प्रत्यभिज्ञा द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल कर यह नहीं कि साधक उसे पा ही न सके या वह श्रुति स्मृति तथा तर्क के सर्वदा अगोचर ही बना रहे। उसके सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी निराशापूर्ण बातें यहां नहीं कही गई इसके अतिरिक्त प्रत्यभिज्ञा की सर्वप्रियता का एक और भी इसका शक्तिवाद की प्रधानता आधुनिक विज्ञान के साथ मेल खाती है। शिव अपनी शक्ति द्वारा जगत् का निर्माण करता है। प्रत्यभिज्ञा के अनुसार शिव-स्वरूप जगत् के अणु-अणु में अथाह शक्ति पुंज भरा हुआ है तो शक्तिमय भगवान् शिव से अनुप्राणित है। आधुनिक विज्ञान भी भौतिक जगत् में इसी शक्ति की खोज में था।

परिणाम स्वरूप उसने एटम-बम्ब और हाईड्रोजन बम्ब का आविष्कार कर लिया। सन् 1942 में आटो हैन और ट्रासमैन ने परमाणु को तोड़ कर उसके अन्दर छिपी विराट शक्ति के युक्त होने का पता लगाया। कहा जाता था कि अलादीन जब चिराग के घिसता था, उसी समय एक बड़ा दैत्य उत्पन्न हो जाता था, जो सारी दुनियाँ को निगल जाने में समर्थ था। परमाणु में भी इतनी अनन्तशक्ति का जिन्न छिपा हुआ था, जिसे उपर्युक्त वैज्ञानिकों ने खोज कर संसार को चकित कर दिया। जब कि 1945 में अमेरिकन बमबाज जहाज ने केवल एक बम गिरा कर जापान के हिरोशिमा नगर को समूल नष्ट करते हुए महायुद्ध की समाप्ति कर दी। प्रत्यभिज्ञा के आचार्य भी यह तथ्य जानते थे, उन्होंने परम शिव को शक्ति स्रोत मान कर उसी को प्रतिकृति इस जगत् को भी शक्ति भण्डार स्वीकार किया और आज के वैज्ञानिकों ने इस दार्शनिक तथ्य को आविष्कार द्वारा साकार कर डाला। जिस प्रकार हमारी दृष्टि में आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार स्वप्न या मिथ्या नहीं है उसी प्रकार प्रत्यभिज्ञा का यह जगत् भी शिव स्वरूप होने के लिये वास्तविक है। भ्रम नहीं। वेदान्त की अपेक्षा प्रत्यभिज्ञा-दर्शन की यही विशेषता है, जिसके कारण अद्वैत क्षेत्र में प्रत्यभिज्ञा का अधिक सम्मान है।

ऐसे उपयोगी शास्त्र को जन्म देने का गौरव कश्मीर को ही प्राप्त है। अति प्राचीन काल में कश्मीर भूमि संस्कृत विद्या का गढ़ थी। साहित्य, दर्शन, व्याकरण, ललित-कला, इतिहास आदि विषयों पर एक विस्तृत साहित्य लिख कर स्थानीय संस्कृत आचार्यों ने संस्कृत साहित्य को महान् उपहार दिया। उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती है। दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में भी कश्मीर अग्रसर रहा। उसके इस चिन्तन में अनोखी सूझ-बूझ और क्रान्तिकारी तथ्य भरे थे, इससे मौन व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता है जब कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन उसका जीता जागता उदाहरण हमारे सामने है। ०००

जम्मू-कश्मीर नरेश महाराजा रणवीरसिंह दरबार की संस्कृत विद्वन्मण्डली

(1857-1885)

जम्मू-कश्मीर राज्य में लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व संस्कृत साहित्य क्षेत्र में जो नवयुग या स्वर्णयुग चला था, उसके एकमात्र सूत्रधार थे तत्कालीन प्रस्तुत राज्य के योग्य शासक महाराजा श्री रणबीर सिंह जी। इसका जन्म सन् 1828 में जम्मू के रामगढ़ नामक स्थान पर हुआ था। म० गुलाब सिंह के छोटे भाई सुचेतसिंह ने इन्हें गोद लिया था। इसी कारण इन का बचपन उनकी जागीर में ही बीता। सन् 1843 में इनका प्रथम विवाह हुआ। 13 वर्षों की अवस्था में ये अपने पिता म० गुलाब सिंह जी के पास आ गए। महाराजा का राजदरबार संस्कृत विद्वानों व बौद्धिक चिन्तनों से व्याप्त होने के कारण उस पूरे वातावरण का प्रभाव इनके बाल-मानस पर पड़कर जीवन भर के लिए एक सुदृढ़ संस्कार बन गया जो आगे चलकर इनके जीवन में इस विशालता से उभरा कि पूरे राज्य को विद्वत्ता व धर्म की नगरी का रूप मिल गया। आज उनके शिक्षा के क्षेत्र में किए गए महान् कार्यों को देखकर आश्चर्य होने लगा है कि किस प्रकार उन्होंने चुन-चुन कर देश भर के मूर्धन्य संस्कृत विद्वानों को अपने राज्य में आश्रय देकर इसे दूसरी काशी बना दिया था।

म० रणवीर सिंह के धर्म, संस्कृत, साहित्य प्रशासन के बड़े-बड़े कार्यों पर भिन्न-भिन्न ऐतिहासिकों व संधित्सुओं में केवल उनकी आश्रित संस्कृत विद्वन्मण्डली पर ही प्रकाश डाला जाएगा। यदि महाराजा द्वारा पोषित संस्कृत समाज उस युग के संस्कृत समाज उस युग के संस्कृत सम्बन्धी स्वर्ण युग का नियामक या निर्माता है। प्रस्तुत समाज के संस्कृत विद्वानों को उपलब्ध हस्तलिपियों के आधार पर निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है।

1. ग्रन्थ लेखक संस्कृत विद्वान्
2. सम्पादक संस्कृत विद्वान्
3. अनुवादक संस्कृत विद्वान्

4. कर्मकांडी संस्कृत विद्वान्
5. शास्त्रार्थी संस्कृत विद्वान्

ग्रंथ लेखक संस्कृत विद्वानों ने उक्त महाराजा का आश्रय पाकर संस्कृत की मौलिक रचनाओं को जन्म दिया। वर्तमान समय में ऐसा कोई प्रामाणिक विवरण पत्र उस युग का हस्तगत नहीं हो सका है, जिससे इन सब विद्वानों का पूर्ण विवरण इनकी रचनाओं के साथ ही मिल पाए। तथापि उपलब्ध प्राचीन पत्रों द्वारा उनमें से कुछ संकेत मिले हैं, जिनके आधार पर नीचे लिखे कुछ संस्कृत विद्वानों व उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

1. पं० आशाराम :

ये महाराजा रणवीरसिंह के आश्रित विद्वानों में से एक थे, जिन्होंने राजाज्ञा पाकर सर्वप्रथम संस्कृत पांडुलिपियों का अन्वेषण करते हुए इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया और हजारों संस्कृत लेख उपलब्ध किए, जो आज भी रणवीर अनुसंधान पुस्तकालय जम्मू में सुरक्षित हैं। लेखन क्षेत्र में इन्होंने राजाज्ञा द्वारा शालग्राम चन्द्रिका पुस्तक का निर्माण किया। प्रस्तुत रचना में शालग्राम शिला की पूजा पद्धति का विस्तृत विवेचन किया गया है, जिसमें नाना निगमागम और पुराणों के भी प्रमाण उद्धृत किए गए हैं। किन्तु पुस्तक पर लेखक की अपनी मौलिक गवेषणा की छाप भी पड़ी है।

2. श्री महेश दैवज्ञ :

वे विद्वान् महाराजा रणवीर सिंह के दरबार में प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। कहा जाता है कि इनका ज्योतिष सम्बन्धी चमत्कार उस समय लोगों की श्रद्धा व आदर का विषय बना हुआ था। महाराजा को भी इन पर अत्यन्त श्रद्धा थी। ये अनेक ग्रंथों के लेखक थे, किन्तु इस समय इन का एक ही प्रसिद्ध ग्रंथ उपलब्ध है जिस का नाम है "रणवीर ज्योतिर्महानिबन्ध" इस वृहद्ग्रंथ में ज्योतिष शास्त्र के सब अंगों का सरल संस्कृत में विवेचन किया गया है। ज्योतिष के अन्य ग्रंथों के हज़ारों श्लोकों का भी इसमें संग्रह है। इस विषय का सर्वाङ्गपूर्ण व विवेचन अन्यत्र कहीं मिलना असम्भव है। आजकल यह ग्रन्थ एक प्रकार से अनुपलब्ध है तथापि प्राचीन पंडितों के घरों में कहीं-कहीं इसकी प्रति देखने को मिल ही जाती है। इस ग्रंथ का प्रकाशन सम्वत् 1925 विक्रमी में हुआ था।

3. श्री शिवशंकर शर्मा व कवि चण्डी दास :

"रणवीर रत्नाकर" इस ग्रंथ के रचयिता थे म० रणवीर सिंह जी के सभा

पंडित श्री शिवशंकर शर्मा व कवि चंडीदास। इस ग्रंथ में समग्र पौराणिक व्रतों के विधि-विधानों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। अठारह पुराणों में यत्र-तत्र बिखरे व्रतों के ब्यौरे लेखकों ने बड़े परिश्रम से एक ही स्थान पर एकत्रित करते हुए यह ग्रंथरत्न तैयार किया था। जिससे व्रत विधि के जिज्ञासुओं को विशाल पौराणिक अध्ययन की अपेक्षा स्वल्प परिश्रम से ही यह पूर्ण ज्ञान मिल जाता है। गागर में सागर की तरह लेखकों ने इस ग्रंथ में विशाल विषय को संक्षिप्त बना दिया है। ऐसा ग्रंथ संस्कृत साहित्य में अपना उदाहरण आप ही है। इसकी रचना सम्वत् 1942 विक्रमी में हुई थी।

4. प० गंगाराम शर्मा :

धर्मशास्त्र महानिबंध (प्रायश्चित प्रकरण) इस ग्रंथ में भिन्न-भिन्न संस्कृत ग्रंथों में बिखरे प्रायश्चित प्रकरणों को एकत्रित करते हुए लेखक ने विशाल विषय को एक स्थान पर पुस्तकाकार में प्रस्तुत कर दिया है। इस दृष्टि से इस ग्रंथ की भी अपनी विशेषता है। पाठकों के समग्र प्रायश्चित विषय को एक स्थान पर प्राप्त कर लेने की सुविधा की दृष्टि से इसकी रचना की गई थी। राज्य के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक पं० गंगाराम शर्मा ने इसकी रचना राजाज्ञा से की थी। रचनाकाल वि० स० 1930 है।

5. प्रद्युम्न भट्टाचार्य :

"रामानुजोक्तिध्वांत भास्कर" इस पुस्तक में शंकर अद्वैतवाद का अनुसरण करते हुए लेखक ने रामानुजाचार्य के मत का युक्ति प्रमाण द्वारा खण्डन किया है। इसमें लेखक की प्रबल दार्शनिकता प्रकट होती है। इस की रचना सम्वत् 1956 में हुई।

श्री साहिब राम :

अनेक ग्रंथों के रचयिता व म० रणवीर सिंह जी के प्रधान सभा लेखक श्री साहिबराम अपने युग के प्रसिद्ध संस्कृत लेखक थे। जिनकी मुख्य रचनाएं—पञ्च सायक विवरण, पूजा रहस्य, वीर वैद्य रत्नहार आदि पांडुलिपियां अब भी श्री रणवीर पांडुलिपि संग्रह जम्मू की शोभा बढ़ा रही हैं।

7, गणेश शास्त्री :

इनकी लिखी हुई एक ही पांडुलिपि उपलब्ध होती है, जो "विषहर तन्त्र" ने नाम से विख्यात है। श्रीगणेश शास्त्री महाराज रणवीर सिंह के दरबारी विद्वान्

तो थे ही इसके साथ महाराजा के व्यक्तिगत सलाहकार का कार्य भी करते थे। महाराज के मौखिक आदेशों को लिखित रूप में सम्बन्धित व्यक्तियों तक पहुंचाना इनका कार्य होता था। ऐसा ही एक इनका लिखा हुआ एक आदेश पत्र हस्तगत हुआ है, जिस की भाषा डोगरी मिश्रित हिन्दी व लिपि देवनागरी है।[1]

1. कवि चंडीदास :

ये महाराज रणवीर सिंह के सभा कवि होने के साथ-साथ राजाध्यापक, लेखक एवञ्च कर्मकांडी, ज्योतिषी तथा धर्मशास्त्री थे। इन सब कार्यों में ये दरबार की गतिविधियां सम्पादित करते थे तथा शास्त्रार्थ सभा के आयोजक भी थे। महाराजा की आज्ञा पाकर इन्होंने लगभग ढाई दर्जन भिन्न-भिन्न विषयों में संस्कृत ग्रंथ लिखे जिनमें मुख्य रचनाओं की तालिका निम्न प्रकार से है।

1.	अन्योक्ति जलधि	खण्ड काव्य
2.	रघुनाथ गुणोदय	महाकाव्य
3.	राधा सुन्दर भक्ति बोध	”
4.	समाजोत्सव	खण्ड काव्य
5.	पार्वत्यापादमूर्धजाङ्ग वर्णना	”
6.	सम्भृत संविधानकम्	अष्टक
7.	त्रिकुटाक्षकन्	”
8.	श्री गदाधराष्टकम्	”
9.	वर्ण संसृष्टि	भाषा विज्ञान
10.	हरिहर स्तोत्रम्	”
11.	मंगलाष्टकम्	”
12.	राम प्रतापोदय	अपूर्ण महाकाव्य
13.	वृत्त चिन्तामणि	छन्द सम्बन्धी
14.	वृत्त मुक्तावलि	”
15.	उर्दू संस्कृत शिक्षक	भाषा सम्बन्धी
16.	अरबी वर्णमाला	”
17.	वाक् तत्त्व वितेक	बाणी सम्बन्धी
18.	नीति संग्रह	नीति सम्बन्धी
19.	गंगा लहरी	अपूर्ण

1. देखिए “रघुनाथ गुणोदय एक समीक्षा” शोध प्रबन्ध।

20. अमरसिंह प्रशस्ति — प्रशस्ति काव्य
21. आन्हिक पद्धति — ,,

इसके अतिरिक्त भी कवि ने अनेक ग्रंथों की रचना की मालूम पड़ती है; जो अब उपलब्ध नहीं। कवि के अनेक शास्त्रार्थ सम्बन्धी संस्कृत गद्य में लिखे गए हस्तलेख भी उपलब्ध हुए हैं, जिनमें इनके प्रगाढ़ शास्त्रीय पांडित्य के दर्शन होते हैं। उन लेखों का ब्यौरा कुछ आगे विद्या-विलास सभा के वर्णन में यहां दिया जाएगा। कवि की कवित्व भाषा सरस व अलंकारिक होने के साथ लालित्यपूर्ण भी है। एक उदाहरण इस प्रकार है।

अमन्दं स्वच्छन्दं चलदलि कदम्बं सुमनसाम्,
रजो वृन्दं गन्धं वरमभि निकुञ्जं परिचयन्।
वितन्वन्नानन्दं विकचदरवृन्दं विलुलयनन्
मरून्मन्दं मन्दं दिशति मकरन्दं प्रतिदिशम्॥

(रामसिंह प्रशस्ति)

9. नीलकण्ठ :

ये महाराजा के सभा लेखक तथा संस्कृत ग्रंथों के हिन्दी अनुवादक थे। इनकी अनूदित तथा मौलिक रचनाएं अब भी मिलती हैं जैसे—वंशावली, कीर्ति-विलास, डुग्गर इतिहास, एवञ्च महाराजा द्वारा लिखवाया गया चिकित्सा[1] सम्बन्धी संस्कृत ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद।

यद्यपि इनकी उपलब्ध रचनाएं हिन्दी में ही लिखी मिली हैं, तथापि ये संस्कृत के विद्वान् अवश्य थे इसी कारण उन्हें संस्कृत ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद करने का कार्य सौंपा गया था।

उपर्युक्त विवरण में जिन संस्कृत ग्रंथ लेखक विद्वानों के नाम व विवरण दिए गए हैं ये सभी सम्पादक और अनुवादक की श्रेणियों में भी आ जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और विद्वान् भी इन दो श्रेणियों में आते हैं, किन्तु उन की रचनाएं अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। इनमें से कुछ मुख्य विद्वानों के नाम इस प्रकार से हैं।

प० गोपालराम, पं० दीनानाथ, पं० विश्वरूप, पं० महेश, पं० सर्वेश्वर, पं० गोकुलचन्द्र, पं० गदाधर, पं० निधिपति, पं० गोविन्द इत्यादि। कुछ ऐसे भी विद्वान थे जो काशी में बैठे-बैठे महाराजा के दरबार से सम्बन्धित होकर सामयिक कार्यों की पूर्ति करते थे। उनके नाम इस प्रकार से हैं—

---

1. रणवीर चिकित्सा सुधाकर।

1. सखाराम भट्ट
2. नृसिंह शास्त्री—महामहोपाध्याय श्री गंगाधर शास्त्री के पिता।
3. रामनाथ शर्मा
4. गौरीशंकर
5. चन्द्रशेखर शर्मा
6. भैरवदत्त विच्चे
7. हरिकृष्ण व्यास
8. वसतिराम शर्मा

कर्मकांडी संस्कृत विद्वान् :

महाराजा ने सनातनी पद्धति के अनुसार अपने दरबार में अनेक कर्मकांडी विद्वान् रखे हुए थे। वे केवल सूखे कर्मकांडी ही न थे अपितु इसके साथ-साथ शास्त्र पंडित और लेखक भी होते थे किन्तु उनका प्रधान व्यवसाय दरबार की पूजा, अर्चना, जप, तप, कृत्य, श्राद्ध, विवाह, मोक्ष, दान, दक्षिणा, तर्पण आदि कार्यों का सम्पादन करना होता था। कर्मकांड की ये गतिविधियां दरबार में प्रबल थीं। मन्दिरों की प्रतिष्ठा कार्य भी अधिक थे। इसी प्रकार यज्ञ याज्ञादि क्रियाएं भी चलती थीं। इन विशाल अनुष्ठान कार्यों के सम्पादनार्थ महाराजा ने देश भर के विद्वान् कर्मकांडी और और दैवज्ञ रखे थे। इस विद्वत्समाज के व्यक्तियों का वर्तमान समय में कोई लिखित ब्यौरा नहीं मिलता है, केवल श्रुति परम्परा द्वारा कुछ के नाम सुने जाते रहे हैं जो आज नई पीढ़ी व नए युग में कम सुनाई पड़ने लगे हैं। इस सम्बन्ध में उस युग की एक तालिका लिखी हुई मिली है, जिसमें उनके समुदाय के नाम अंकित हैं जैसे—काना सोनू—यजुर्वेदी, हीरानन्द, भीमसेन, शम्भू—सामवेदी। लहणु, लक्ष्मण, लक्ष्मी दयाल—ऋग्वेदी। वृन्दावन, मधुसुदन, घसीटू—यजुर्वेदी। इनके वैदिक विषयों से ही इनके कर्मकांडी होने का पता चलता है; क्योंकि प्रति कार्य के अन्तर्गत चार वेदपाठियों को बैठाने की परम्परा दरबार में चलती आई है और ये कहने को तो वे तत्तद् वेदपाठी थे किन्तु प्रबल कर्मकांडी भी होते थे।

इसी सन्दर्भ में पं० गंगाराम का नाम भी उल्लेखनीय है। ये संस्कृत साहित्य के प्रकांड पंडित होने के साथ-साथ कर्मकांडी भी थे; कथावाचक भी थे तथा दार्शनिक व कवि भी थे। म० रणवीर सिंह युग के एक उपलब्ध हस्तलेख से प्रतीत होता है कि कवि गंगाराम महाराज के दरबार में सायं कथा वांचते थे। तथा पारिश्रमिक रूप में एक रुपया प्रतिदिन लेते थे।[1] दूसरे पत्र से प्रतीत होता है कि इन्होंने ऐसे कठिन

1. चण्डीदास पत्रावली।

श्लोकों की रचना करके विद्वन्मण्डली को चक्कर में डाल दिया था कि जिस की व्याख्या करना भी कठिन पड़ गया था।

पांचवीं श्रेणी अर्थात् शास्त्रार्थी विद्वानों की श्रेणी में आने वाले संस्कृत मनीषियों के कुछ नाम उसी युग की उपलब्ध तालिका में इस प्रकार से दिए गए हैं। निधिपति, गंगाराम, वेंकट शास्त्री, मल्लिनाथ, चण्डीदास, गणेश पंडित, हरिश्चन्द्र शास्त्री, रघुनाथ, साहिबराम, गोविन्दाचार्य, सुखराम इत्यादि।

इन उपर्युक्त शास्त्रार्थी पंडितों का प्रखर वाग्वैभव प्रति मंगलवार[1] में होने वाली विद्याविलास सभा में प्रस्फुटित होता था। विद्या-विलास सभा सामूहिक रूप से सब क्षेत्रों के विद्वानों का एक सुव्यवस्थित संगठन था। इस का साप्ताहिक अधिवेशन मुबारक मण्डी के राजमहल में सम्पन्न होता था। ग्रंथ लेखक, सम्पादक, अनुवादक, कर्मकांडी, शास्त्रार्थी सब प्रकार के विद्वान् यहां एकत्रित होते थे, किन्तु शास्त्रार्थी विद्वानों का यहां बौद्धिक या शास्त्रीय विषयों पर विशेष रूप से लम्बा वाद-विवाद चलता था। इस सभा में किसी भी विषय पर आनुसंधानिक पत्र किसी एक विद्वान् द्वारा ही पढ़ा जाता था। तदनन्तर उस पर प्रश्नोत्तर चलते थे। इस प्रकार के लगभग तेरह आनुसंधानिक पत्र इस समय संस्कृत में लिखे हुए मिले हैं।[2] जिनका विवरण इस प्रकार से हैं—

1. प्रथम पत्र में विद्याविलास सभा का स्तुतिपरक श्लोक लिखा गया है। निर्माता सभा के वरिष्ठ विद्वान् श्री वेंकट शास्त्री थे। श्लोक में सभा के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

उदारा सद्द्वारा सुकृति परिवारा सुखकरा,
सुसारा सल्लेखा कविकृत विशेषा सगुहका।
हरीद्रा सद्वृन्दारक कुल कृताख्या च सुबुधा,
सुधर्मा साधर्म्यं समाभति सभा सम्प्रतिप्रियम्॥

यह सभा उदार है, सुन्दर द्वार वाली है, विद्वान् इस का परिवार है सुखकर है, सुन्दर सारयुक्त है, सुन्दर लेखने से परिपूर्ण है अर्थात् इसमें सफल लेखक हैं, इसमें कवि विशेषरूप में हैं, सज्जन तथा देवजनों से युक्त है एवञ्च सुन्दर विद्वानों से युक्त तथा सुन्दर धर्मवाली है।

सभा के इन विशेषणों द्वारा ही इसके सद्उद्देश्य, आकार-प्रकार तथा गतिवि-

1. यहां प्रति मंगलवार सभा होवे,
2. चण्डीदास हस्तलेख भण्डार।

धियां स्पष्ट हो जाती हैं । जो-जो गुण वहां थे वे कवि ने इस पद्य द्वारा ही स्पष्ट कर दिए हैं । यह श्लोक सभा के विशेष अधिवेशन के समय स्वागत गान के रूप में पढ़ा गया होगा । इस सभा में जो पेपर पढ़ा जाता था; उसे विद्या-विलास पत्रिका कहा जाता था । सभा की गोष्ठियों में प्रति मंगलवार को पढ़े गए इन पत्रों की संख्या ढेरों हो गई होगी किन्तु वे सब संरक्षण के अभाव से लुप्त हो गए केवल ये 13 पत्र, महाकवि चण्डीदास के व्यक्तिगत रिकार्ड से (हरियाणा में उनके घर से) अब मुझे मिले हैं, बचे रहे । इन पत्रों द्वारा ही महाराजा रणवीरसिंह की इस संस्कृत साहित्य सभा तथा इसके सम्मानित विद्वानों का तात्कालीन परिवेश में परिचय मिल पाया है । एवञ्च गोष्ठी की कार्यवाही की साक्षात् पद्धति के भी दर्शन होते हैं ।

प्रथम पत्र हरिश्चन्द्र शास्त्री ने सभा की गोष्ठी में पढ़ा था, जिसमें उन्होंने सभासदों से तीन प्रश्न पूछे थे—पहला प्रश्न इस प्रकार था—कार्य, कार्य यह जो कहा जाता है, यह सावस्थक है या निरावस्थक । स्पष्ट है कि प्रस्तुत सभा में गम्भीर दार्शनिक वैयाकरण, अलंकारिक आदि विषयों पर तथा इसके अतिरिक्त भाषा व लिपि पर भी खोज व चिन्तन होते थे ।

6. छठी विद्याविलास पत्रिका में महाराजा रणवीर सिंह के एक प्रश्न का उत्तर विद्वत्तापूर्ण पद्धति द्वारा दिया गया है । जिसमें चेतन प्रयुक्त अचेतन की कार्य निष्ठता पर ही प्रकाश डाला गया है । अर्थात् चेतन द्वारा प्रेरित होकर ही अचेतन में गति किस प्रकार होती है जैसे अचेतन प्रकृति चेतन का आभास पाकर गतिशील हो रही है । इस उत्तरमय लेख में नैयायिक भाषा का अधिक प्रयोग किया गया है किन्तु तात्त्विक वस्तु का आविष्करण कम ही प्रकट हुआ है । लेख अधूरा भी है और अक्षर भी सुवाच्य नहीं ।

7. सातवीं पत्रिका में माधुर्य आदि गुणों की रस व्यञ्जकता सिद्ध की गई है । लेखक हैं कवि चण्डीदास इस विषय पर अन्य चार-पांच पत्रिकाएं भी मिली हैं, किन्तु उन पर लेखकों के नाम नहीं हैं । विस्तार भय से उन का यहां ब्यौरा नहीं दिया जा सकता ।

8. अष्टम पत्रिका में एक श्लोक पर शास्त्रार्थ चला था । श्री मल्लिनाथ, वेंकटराम शास्त्री, गोविन्दाचार्य, रघुराथ, साहिब राम तथा चण्डीदास ने इसमें भाग लिया था । शास्त्रार्थ निम्न श्लोक पर चला था—

कश्चित्कांता रमण वसतिं प्रेषयन्ती स्वपत्रम्
चेटी हस्ते सभयमालिखद् कालमस्योपरिष्टात् ।

गौरीनाथं पवनतनयं चम्पक चात्र भावम्
पृच्छत्यार्यान् सदसि विदुषां मल्लिनाथ कवीन्द्रः ।।

सभा में कवीन्द्र मल्लिनाथ ने यह श्लोक लिखकर सभासदों से पूछा कि कोई चेटी के हाथ अपने प्रेमी को पत्र लिखकर भेजती है उस पत्र में ऊपर सांप का भगवान् शिव का, हनुमान् का तथा चम्पक फूल का चित्र खींच देती है। मल्लिनाथ कवीन्द्र इसका आशय सभासदों से पूछता है।

यह श्लोक एक पहेली है इस का जो उत्तर मिला होगा, उसका संकेत कहीं भी इस पत्र में नहीं है। तथापि कोई भी पाठक बुद्धि मंथन द्वारा अपनी योग्यतानुसार इसका उत्तर निकाल सकता है। सांप का संकेत है कि कठिन कार्य है, गौरीनाथ अर्थात् शिव का संकेत है कि प्रेमपत्र प्रकट होने पर घर वालों का क्रोध (शिव का तीसरा नेत्र), पवन तनय अर्थात् हनुमान का यह संकेत है कि हनुमान ने जैसा कठिन कार्य करते हुए (समुद्र तरण) सीता का पता लगाया था। वैसा ही पत्रवाहिका भी करे। चम्पक का अर्थ है कि सफलता मिलने पर चम्पक के फूल की सुगन्धि जैसा आनन्द मिल सकता है।

9. नवमीं पत्रिका में दरबार के किसी सुखराम पंडित की शिकायत तथा उनके द्वारा कवि चण्डीदास से किसी शास्त्रीय शंका का समाधान पूछा गया है। इसके पीछे की पृष्ठभूमि भी इस पत्र में लिखी गई है कि चण्डीदास के कहने पर पं० सुखराम का दरबार में आना बंद कर दिया गया था। पंडित जी राजकुमार श्री प्रतापसिंह जी से मिले उन्होंने पण्डित को सभा में आकर यह शिकायत रखने को कहा इत्यादि।

10. दसवीं पत्रिका में कुछ दुरूह प्रश्न व उनके उत्तर लिखे हुए हैं। जैसे राम ने लंका में किन-किन का वध किया था? कमल कहां से पैदा हुआ? सूर्य की हजार किरणों के नाम बताओ? चन्द्रमा की स्त्री कौन है? धरती के वस्त्र क्या हैं? हवा का घोड़ा कौन है? ब्रह्मा कहां से पैदा हुआ? हरि किस का प्रियतम है? यम व यमुना का पिता कौन है? अग्नि का वीर्य क्या है? इत्यादि। सावस्थक है तो अवस्था विशेष का क्या अर्थ है? विद्वानों को सोच समझकर उत्तर देना चाहिए इत्यादि। दूसरा प्रश्न इस प्रकार था—स कीचकैः मारुतपूर्ण रंध्रैः" रघुवंश के इस श्लोक में कोचकाः वेणवः ते स्वनन्ति अनिलोद्घातात् इस अमरकोश के वाक्य द्वारा कीचकों का स्वनन स्वतः सिद्ध है। फिर "मारुतपूर्ण रन्ध्रैः" यह वाक्य क्यों कहा? इसका उत्तर विद्वानों को सोच समझ कर देना चाहिए। तीसरा प्रश्न इस प्रकार था—"हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः" इस माघ के वाक्य में वर्तमान

क्रिया द्वारा ही वर्तमानकाल सिद्ध हो जाता है फिर सम्प्रति वाक्य का प्रयोग क्यों किया ? इसका भी उत्तर विद्वानों को सूझबूझ के द्वारा देना चाहिए। ये थे तीन प्रकार के प्रश्न जो हरिश्चन्द्र शास्त्री ने अपने रिसर्च पेपर में पूछे थे। इन प्रश्नों के उत्तर दिए अवश्य होंगे किन्तु उनके लेख अब उपलब्ध नहीं है। अथवा उत्तर मौखिक ही चलते होंगे।

1. दूसरा पेपर दूसरे अधिवेशन में पं० गंगाराम ने पढ़ा था। इसमें आचार्य मम्मट द्वारा स्वीकृत काव्य के दस गुणों का तीन गुणों में अन्तर्भाव सिद्ध किया गया है। भाषा अत्यधिक प्रौढ़ व नैयायिक है। यह तो स्पष्ट ही है कि विद्या विलास सभा की गोष्ठियों का माध्यम संस्कृत भाषा थी और उसी में ये पत्र लिखे जाते थे।

3. तीसरी गोष्टी में कवि चण्डीदास द्वारा पेपर पढ़ा गया था। जिस का विषय अद्वैत वेदांत के अध्यात्मवाद से सम्बन्धित था। पत्र पढ़ लेने के पश्चात् श्री गोविन्दाचार्य ने कोई प्रश्न उठाया, जब कवि चण्डीदास उत्तर देने लगे तो बीच में हरिश्चन्द्र जी बोल पड़े उन्होंने कवि चण्डीदास के स्थान पर उत्तर दे दिया। फिर भी कवि ने अपनी ओर से दूसरा उत्तर इस प्रकार दिया—परे ब्रह्मणि तादात्म्याध्यासोऽस्य जगत: कथम् इति पृष्टो यथा "शुक्तौ रजतस्येत्युत्तरं कवे:" यह एक संक्षिप्त उत्तर था, जिसमें सारा विस्तृत रहस्य अन्तर्भूत हो जाता है।

एक गोष्ठी में आगत विद्वानों के स्वागत में यह कहा गया था—"सभ्य विद्वद्वरेभ्यो नम:" इस स्वागत वाक्य के अनन्तर पेपर का पाठ प्रारम्भ हुआ। यह पत्र अधिक लम्बा है तथा अक्षर भी सुवाच्य नहीं हैं एवञ्च लेखक का नाम-निर्देश भी नहीं मिलता।

4. चौथी विद्याविलास पत्रिका में वर्णों की व्यञ्जकता पर गम्भीर विचार प्रस्तुत किया गया है। किन्तु इस पर किए गए प्रश्नों का उल्लेख नहीं मिलता है। पत्र के अन्त में लिखा है—अत्र मया महाराजाधिराज जम्बू कश्मीराधिपति श्री रणवीर सिंह वर्म प्रभुवर्याज्ञया वर्णमात्रैक योजना करिष्यते न तु भ्रांत्या विद्वद्भिरवधेयम्" इन वाक्यों से पता चलता है कि इस पत्रिका के लेखन में महाराजा की आज्ञा ही कारण थी और इससे यह भी प्रकट होता है कि महाराजा रणबीरसिंह उच्च दार्शनिक तथा भाषा विज्ञान से सम्बन्धित विषयों में बड़ी रुचि रखते थे। इस पत्र में लिपि (देवनागरी) व वर्णों के बारे में गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है और साथ ही लेखक ने लिख भी दिया है कि यदि इस पर विस्तार से जाना हो तो उनकी रचना "वाक्तत्त्व विचार" पुस्तक पढ़े। यह पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है तथापि अनुमान

होता है कि लेखक ने इसमें भाषा विज्ञान का गम्भीर विषय प्रतिपादित किया होगा। इस पत्र की कुछ पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार से है—"द्वितीय वर्ण के अक्षरों से प्राणादि पञ्च वायु उत्पन्न हुए। मध्यवर्गों से अन्तःकरण की वृत्तियां तथा 'प' 'क' इन दो वर्णों से प्रकृति व पुरुष पैदा हुए......।'

5. पांचवीं विद्याविलास पत्रिका में बौद्धों के क्षणिकवाद और परिणामवाद का खण्डन किया गया है तथा जगत् को मायामय सिद्ध करते हुए श्रुति प्रमाणों द्वारा आत्माभास द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार के सिद्धांत का समर्थन ही किया गया है। इस पत्र के लेखक का यहां नाम नहीं मिलता। इसी पत्रिका के एक ओर चौदह लिपियों के नाम लिखे गए हैं—जैसे—देवनागरी, शारदा, डुग्गर, प्रश्नकर्त्ता लेखक का इस पत्रिका में नाम निर्देश नहीं है। दूसरे पृष्ठ में क्रमशः इन प्रश्नों के उत्तर भी दिए गए हैं। जो स्थानाभाव के कारण यहां नहीं दिए जा रहे।

इन आनुसंधानिक पत्रों के अतिरिक्त कुछ उस समय की विद्वन्मण्डली द्वारा प्रस्तुत किए गए कुछ और भी पत्र उपलब्ध हुए हैं, जिनका सम्बन्ध लौकिक व्यवहार के साथ है।

11. एक पत्र ऐसा है जिसमें कवि गंगाराम ने अत्यन्त कठिन श्लोक बनाकर विद्वानों के समक्ष उपस्थित किए थे कि इन की व्याख्या की जाए। सबके सब विद्वान चक्कर में पड़ गए। उनमें से एक श्लोक निम्न प्रकार है—

कृतया विषया

भवया विषयांत भवन्तु वया

महाकवि चण्डीदास ने इन श्लोकों की व्याख्या कर डाली थी।

12. सम्वत् 1918 (1871 ई०) का एक पत्र मिला है, जिसमें महाराजा रणवीरसिंह की राजकुमारी के शुभ विवाह पर की गई दीपमाला का सुन्दर वर्णन है, इस पद्य में महाराजा रणवीर सिंह की स्तुति करते हुए कवि कहता है कि ज्योतिषी लोग झूठ कहते हैं कि अन्धेरे पक्ष में रात अन्धेरी होती है आप के प्रताप से प्रज्ज्वलित इस दीपमाला ने ज्योतिषियों की उक्ति को असत्य सिद्ध कर दिया है।

13. तेरहवीं पत्रिका में श्री सूरत सिंह, जोरावर सिंह, किशोर सिंह, गुलाब सिंह इन वीर पुरुषों की प्रचण्ड और फड़कती भाषा में इन की वीरता का गुणगान किया गया है। इसी पत्र में म० रणवीर सिंह की वीरता और विद्या का प्रेम प्रकट करते हुए कहा गया है कि इन्होंने जम्मू को दूसरी काशी ही बना दिया है। देश-देशांतरों से संस्कृत के प्रकांड पंडितों को बुलाकर अपने दरबार में रखा हुआ है,

एतत्सम्बन्धी एक श्लोक का यहां उद्धरण दिया जा रहा है—

विद्वद्भिः सर्वदेशीयैः सर्वशास्त्र विशारदैः ।
कृता काशी पुरी येन श्री जम्बू नगरोपमा ॥

अर्थात् महाराज रणवीर सिंह ने देश-देशांतरों से सर्वशास्त्र पारंगत विद्वानों को अपने राज्य में बुलाकर और आश्रय देकर काशी को जम्मू नगरी की उपमा योग्य बना दिया। यहां जम्मू को दूसरी काशी बनाने के स्थान पर कवि ने और आगे बढ़ते हुए काशी को ही जम्मू की उपमा कह दिया। इस उक्ति में कोई अतिशयोक्ति नहीं दीखती क्योंकि महाराज ने काशी की अपेक्षा भी अधिक यहां संस्कृत का विशाल क्षेत्र बना दिया था, जिसने यहां संस्कृत साहित्य का एक विपुल भण्डार विद्वानों द्वारा तैयार कराया गया, जो आज भी उनके इस महान् प्रयास की साक्षी दे रहा है।

जिन-जिन स्थानों से संस्कृत विद्वान् यहां लाए गाए थे उनके नाम भी इस पत्रिका में इस प्रकार गिना दिए गए हैं—सौराष्ट्र, द्राविड़, आंध्र, गुर्जर, गया, काशी, कुरुक्षेत्र, अंग, बंग तथा पांचाल।

शिक्षा की उन्नति के सम्बन्ध में महाराज रणवीर सिंह इस विद्वन्मण्डली को सम्बोधित करते हुए यों कहते थे—

नासंस्कृतः कोऽपि मदीय राष्ट्रे
भवेत् त्रिवर्णेष्विति भूरिदत्वा।
धनं चतुर्वेदविदोऽपि विप्राः
काशीपुरी येन सतापहूताः ॥

अर्थात् महाराज चाहते थे कि मेरे राष्ट्र में कोई निरक्षर न रहे इसी कारण पुष्कल धन देकर उन्होंने चारों वेदों के विद्वान् बुलाए गए थे एवञ्च काशी को ही यहां बुला लिया। महाराजा के बारे में उन विद्वानों ने उनकी धर्म, शिक्षा तथा भारतीय संस्कृति की परम प्रियता के बारे में अधिक उद्‌गार प्रकट किए हैं। जोकि विस्तार से यहां लिखे नहीं जा सकते तथापि एक विद्वान् का एक ही उद्‌गार यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—महाराज अक्सर कहते थे—

इह लोके परस्मिन् वा पुंसामात्म हितैषिणाम्।
सदसद् वस्तु विज्ञाने शास्त्रभेव विलोचनम् ॥

अर्थात् इस जन्म या परलोक में आत्म-हितैषी मनुष्य के लिए अच्छी बुरी वस्तु की पहचान में शास्त्र ही आंखों का काम करता है। सन् 1834 में श्री जोरावर सिंह के लद्दाख तथा तिब्बत के कुछ भाग की विजय की बड़ी धूम मची थी। इसी समय

होता है कि लेखक ने इसमें भाषा विज्ञान का गम्भीर विषय प्रतिपादित किया होगा। इस पत्र की कुछ पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार से है—"द्वितीय वर्ण के अक्षरों से प्राणादि पञ्च वायु उत्पन्न हुए। मध्यवर्गों से अन्तःकरण की वृत्तियां तथा 'प' 'क' इन दो वर्णों से प्रकृति व पुरुष पैदा हुए......।'

5. पांचवीं विद्याविलास पत्रिका में बौद्धों के क्षणिकवाद और परिणामवाद का खण्डन किया गया है तथा जगत् को मायामय सिद्ध करते हुए श्रुति प्रमाणों द्वारा आत्माभास द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार के सिद्धांत का समर्थन ही किया गया है। इस पत्र के लेखक का यहां नाम नहीं मिलता। इसी पत्रिका के एक ओर चौदह लिपियों के नाम लिखे गए हैं—जैसे—देवनागरी, शारदा, डुग्गर, प्रश्नकर्त्ता लेखक का इस पत्रिका में नाम निर्देश नहीं है। दूसरे पृष्ठ में क्रमशः इन प्रश्नों के उत्तर भी दिए गए हैं। जो स्थानाभाव के कारण यहां नहीं दिए जा रहे।

इन आनुसंधानिक पत्रों के अतिरिक्त कुछ उस समय की विद्वन्मण्डली द्वारा प्रस्तुत किए गए कुछ और भी पत्र उपलब्ध हुए हैं, जिनका सम्बन्ध लौकिक व्यवहार के साथ है।

11. एक पत्र ऐसा है जिसमें कवि गंगाराम ने अत्यन्त कठिन श्लोक बनाकर विद्वानों के समक्ष उपस्थित किए थे कि इन की व्याख्या की जाए। सबके सब विद्वान चक्कर में पड़ गए। उनमें से एक श्लोक निम्न प्रकार है—

कृतया विषया

भवया विषयांत भवन्तु वया

महाकवि चण्डीदास ने इन श्लोकों की व्याख्या कर डाली थी।

12. सम्वत् 1918 (1871 ई०) का एक पत्र मिला है, जिसमें महाराजा रणवीरसिंह की राजकुमारी के शुभ विवाह पर की गई दीपमाला का सुन्दर वर्णन है, इस 'पद्य में महाराजा रणवीर सिंह की स्तुति करते हुए कवि कहता है कि ज्योतिषी लोग झूठ कहते हैं कि अन्धेरे पक्ष में रात अन्धेरी होती है आप के प्रताप से प्रज्ज्वलित इस दीपमाला ने ज्योतिषियों की उक्ति को असत्य सिद्ध कर दिया है।

13. तेरहवीं पत्रिका में श्री सूरत सिंह, जोरावर सिंह, किशोर सिंह, गुलाब सिंह इन वीर पुरुषों की प्रचण्ड और फड़कती भाषा में इन की वीरता का गुणगान किया गया है। इसी पत्र में म० रणवीर सिंह की वीरता और विद्या का प्रेम प्रकट करते हुए कहा गया है कि इन्होंने जम्मू को दूसरी काशी ही बना दिया है। देश-देशांतरों से संस्कृत के प्रकांड पंडितों को बुलाकर अपने दरबार में रखा हुआ है,

एतत्सम्बन्धी एक श्लोक का यहां उद्धरण दिया जा रहा है—

विद्वद्भिः सर्वदेशीयैः सर्वशास्त्र विशारदैः ।
कृता काशी पुरी येन श्री जम्बू नगरोपमा ।।

अर्थात् महाराज रणवीर सिंह ने देश-देशांतरों से सर्वशास्त्र पारंगत विद्वानों को अपने राज्य में बुलाकर और आश्रय देकर काशी को जम्मू नगरी की उपमा योग्य बना दिया। यहां जम्मू को दूसरी काशी बनाने के स्थान पर कवि ने और आगे बढ़ते हुए काशी को ही जम्मू की उपमा कह दिया। इस उक्ति में कोई अतिशयोक्ति नहीं दीखती क्योंकि महाराज ने काशी की अपेक्षा भी अधिक यहां संस्कृत का विशाल क्षेत्र बना दिया था, जिसने यहां संस्कृत साहित्य का एक विपुल भण्डार विद्वानों द्वारा तैयार कराया गया, जो आज भी उनके इस महान् प्रयास की साक्षी दे रहा है।

जिन-जिन स्थानों से संस्कृत विद्वान् यहां लाए गाए थे उनके नाम भी इस पत्रिका में इस प्रकार गिना दिए गए हैं—सौराष्ट्र, द्राविड़, आंध्र, गुर्जर, गया, काशी, कुरुक्षेत्र, अंग, बंग तथा पांचाल।

शिक्षा की उन्नति के सम्बन्ध में महाराज रणवीर सिंह इस विद्वन्मण्डली को सम्बोधित करते हुए यों कहते थे—

नासंस्कृतः कोऽपि मदीय राष्ट्रे
भवेत् त्रिवर्णेष्विति भूरिदत्वा ।
धनं चतुर्वेदविदोऽपि विप्राः
काशीपुरी येन सतापहूताः ।।

अर्थात् महाराज चाहते थे कि मेरे राष्ट्र में कोई निरक्षर न रहे इसी कारण पुष्कल धन देकर उन्होंने चारों वेदों के विद्वान् बुलाए गए थे एवञ्च काशी को ही यहां बुला लिया। महाराजा के बारे में उन विद्वानों ने उनकी धर्म, शिक्षा तथा भारतीय संस्कृति की परम प्रियता के बारे में अधिक उद्गार प्रकट किए हैं। जोकि विस्तार से यहां लिखे नहीं जा सकते तथापि एक विद्वान् का एक ही उद्गार यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—महाराज अक्सर कहते थे—

इह लोके परस्मिन् वा पुंसामात्म हितैषिणाम् ।
सदसद् वस्तु विज्ञाने शास्त्रमेव विलोचनम् ।।

अर्थात् इस जन्म या परलोक में आत्म-हितैषी मनुष्य के लिए अच्छी बुरी वस्तु की पहचान में शास्त्र ही आंखों का काम करता है। सन् 1834 में श्री जोरावर सिंह के लद्दाख तथा तिब्बत के कुछ भाग की विजय की बड़ी धूम मची थी। इसी समय

विद्याविलास सभा की ओर से सब संस्कृत विद्वानों ने संस्कृत प्रशस्ति द्वारा उनका अभिनन्दन किया था। प्रशस्ति का एक पद्य इस प्रकार है—

समानं सन्मानप्रद मधिबलं विश्वविदितम्
कवीनामानन्द प्रथन रूचिमुद्गीथ यशसम्।
महोदारं शूरं निजपति परप्रेम निलयम्
रमा श्रीमज्जोरावर सचिवर्य समवतात्॥

अर्थात् जो सम्मानित है, जिसने इस धरती को सम्मान दिया है, अधिक बलवान, विश्वविदित, कवियों को आनन्द देने वाला, प्रख्यात यशस्वी, महान् उदार तथा अपने स्वामी का प्रेमपात्र ऐसे सचिव जोरावर की लक्ष्मी भगवती रक्षा करे। उस समय के एक विद्वान् द्वारा लिखित एक पद्य से विदित होता है कि चार संस्कृत विद्वानों ने महाराजा की आज्ञा पाकर श्री रणवीर दण्ड विधान की रचना की थी। ये विद्वान् थे—गणेश, वेंकट शास्त्री, गोविन्द दास तथा कवि चण्डीदास।

जैसे—श्री गणेशोऽपरो वेंकटादिसुशास्त्री गोविन्ददासोऽपरोऽपि कविनव्यचण्डी सहायस्तदुक्तौको निशम्योद्गिरं तां यथापादयन्ति॥

इन पूर्वलिखित राजाश्रित संस्कृत विद्वानों द्वारा लिखित व सम्पादित अन्य ग्रंथ भी हैं जो अब तक पांडुलिपियों के रूप में ही कहीं पड़े हैं। उन की उपलब्ध एक तालिका के अनुसार उनकी नामावली इस प्रकार से है—

1. अमर कोश—हिन्दी टीका
2. अमर कोश नाममाला—हिन्दी लद्दाखी भाषानुवाद
3. कल्प सागर
4. चित्त प्रदीप
5. जातक गणित संग्रह
6. जातक फल स्कन्ध
7. जातक संग्रह
8. तर्क संग्रह व्याख्या
9. दुर्गाक्रमण रीति
10. धनञ्जय विजय—डोगरी अनुवाद
11. नीति कल्पलता
12. पूजा रहस्य

13. श्रीमद्भागवत टीका विंशति
14. भाव प्रकाश टीका
15. भाषा कोश
16. रणवीर संगीत महोदधि
17. वीर रत्न शेखर
18. संक्षिप्ताह्निक पद्धति
19. स्त्रीधर्म निर्णय
20. फौज के लड़ने की किताब

कुछ उपलब्ध ग्रंथ ऐसे हैं जो म० रणवीर सिंह द्वारा स्थापित विद्याविलास सभा के प्रैस में छापे थे। ये ग्रंथ महाराज के दरबारी विद्वानों द्वारा लिखाए गए थे। उनमें मुख्य इस प्रकार से हैं—श्री गीता पञ्चरत्न, धातु रूपावली, नाचिकेतोपाख्यान, रणवीर चिकित्सा सुधाकर, मन्त्र रामायण, रणवीर चिकित्सा प्रकाश, रणवीर ज्योतिर्महानिबन्ध, रणवीर प्रायश्चित प्रकरण, वर्णमाला, सेना शिक्षा, रणवीर दण्ड विधान और कुछ धर्मशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें।

महाराज रणवीर सिंह के युग के संस्कृत विद्वत्समाज के सन्दर्भ में ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह एक आनुसन्धानिक स्वल्प निबन्ध के रूप में ही समझना चाहिये समय की सीमा को देखते हुए मैंने प्रस्तुत निबन्ध को अति संक्षिप्त रखने का ही प्रयत्न किया है किन्तु इस स्थिति में सम्बन्धित कुछ आवश्यक बातें भी विषय विस्तार के भय से मैंने छोड़ दी हैं, जिन्हें किसी दूसरे अवसर पर लिखने का सौभाग्य कभी न कभी मिलेगा ही। ०००

भारतेन्दु युग से द्विवेदी युग तक के जम्मू के प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग 1850-1885 तक रहा। इस युग में हिन्दी कविता ने जो नया क्षितिज प्राप्त किया, उसी के समानान्तर जम्मू कश्मीर राज्य में भी हिन्दी-कविता का एक मंच स्थापित हुआ। आश्चर्य होगा पढ़कर कि अहिन्दी भाषी प्रान्त में इस प्रकार भारतेन्दु की साहित्यिक गतिविधियों का साथ देते हुए तात्कालीन ब्रज भाषा में प्रौढ कविताएँ लिखी जाने लगीं एवञ्च इस क्षेत्र के पके पकाए तथा तपे तपाए हिन्दी कवि रगमंच पर उतर कर भारतेन्दु दल का साथ देते हुए आगे बढ़ने लगे, भले ही किसी कारणवश वे अखिल भारतीय स्तर पर उस पंक्ति में नहीं आ पाए किन्तु उनका उस युग का प्रकाशित साहित्य जिस की दौड़ केवल राज्यान्तर्गत ही रही, आज हमारे सामने है। उनकी भाषा, भाव, छन्द, कल्पना एवं रस सब उच्च कोटि के होकर उनके अहिन्दी भाषीपन को प्रकट नहीं होने देते। इस प्रकार के अनेक कवि ऐसे भी होंगे जिन की कोई रचना आज नहीं मिलने के कारण साहित्य क्षेत्र में अज्ञात रह गए। सौभाग्य से आज के अनुसन्धान द्वारा जिन कवियों की रचनाएं उपलब्ध हुई हैं, उनका संक्षिप्त वृत्तान्त यहां दे देना ही इस लेख का मुख्य लक्ष्य है।

1. कवि दत्त :

कवि दत्त जम्मू प्रान्तर्गत 'भड्डु विल्लौर' नामक गांव के निवासी थे, जिनका समय सम्वत् 1780 से 1840 के लगभग पड़ता है। ये वहां के शासक म० ब्रजराजदेव के सभा कवि थे। सर्वप्रथम उनकी आज्ञा पाकर कवि ने संस्कृत छन्दोबद्ध कृष्ण महिम्न स्तोत्र की सटीक रचना की। तत्पश्चात् हिन्दी-काव्य सृजन में जुट गए। इनका प्रथम हिन्दी खण्डकाव्य "वीर विलास" है जो महाभारत के द्रोण पर्व का ब्रज छन्दों में भावानुवाद है। दूसरी रचना "ब्रजराज-पंचाशिका" है जो अपने आश्रयदाता की वीरतापूर्ण प्रशस्ति हिन्दी के ब्रज पद्यों में लिखी गई है। तीसरी रचना "बारहमासा" है, जिस में वसन्त आदि ऋतुओं का सुमधुर चित्रण ब्रज पद्यों में हुआ है।

कवि दत्त की मातृभाषा डोगरी थी किन्तु संस्कृत एवं हिन्दी पर इनका प्रगाढ़

अधिकार था, जिसके फलस्वरूप इन्होंने दोनों भाषाओं में अमर रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इन की उपर्युक्त तीनों हिन्दी रचनाएँ "कवि दत्त ग्रन्थावली" के नाम से जम्मू कश्मीर राज्य की साहित्य अकादमी द्वारा हाल में ही प्रकाशित की गई हैं तथा संस्कृत रचना कृष्ण महिम्न स्तोत्र जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है। कवि दत्त भारतेन्दु से भी कुछ पहले के हैं।

2. कवि नील कण्ठ :

भारतेन्दु युग के समानान्तर राज्य कवियों में इनका नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। जम्मू कश्मीर नरेश महाराज श्रीरणवीर सिंह का राज्य काल (सन् 1856-85) भारतेन्दु काल की समाप्ति की सीमा तक पहुंचता है। कवि नीलकण्ठ इन्हीं के आश्रित कवि थे। महाराज रणवीर सिंह जैसा विद्या प्रेमी एवं हिन्दी संस्कृत भाषोद्धारक महाराजा अपना उदाहरण आप ही है। इन की दोनों भाषाओं की सेवा का प्रमाण जम्मू कश्मीर के अनुसन्धानालयों में उस युग का नव-निर्मित एवं प्रकाशित साहित्य है। इन्होंने 'विद्या-विलास' प्रैस की स्थापना इसीलिए की कि दरबारीय पण्डित मण्डली से हिन्दी संस्कृत में जो साहित्य लिखाया जाये, उसका प्रकाशन यहीं से हो और लगभग 35 वर्षों तक इस प्रकार का सृजन और प्रकाशन चलता रहा, जिस के मुख्य स्तम्भों में कवि नीलकण्ठ का नाम आता है। इनका जन्म जम्मू शहर से 20 किलोमीटर की दूरी पर 'काना चक्क' नामक एक गांव में हुआ किन्तु विद्वान् लेखक बन कर इन्हें जब महाराजा के दरबार में प्रतिष्ठित स्थान मिल गया तो ये जम्मू शहर के मोहल्ला 'मस्तगढ़' में आकर रहने लगे। साहित्य की दिशा में इनकी गतिविधियाँ तीन भागों में बंटी हुई थीं—1. पुस्तक सृजन, 2. संस्कृत पुस्तकों का हिन्दी गद्य में अनुवाद, 3. अन्य विद्वानों की लिखी गई संस्कृत पुस्तकों पर हिन्दी टीका और उनके प्रकाशन की व्यवस्था।

इनकी प्रथम रचना 'वंशावली' है, जिस में डोगरा राजवंश का महाभारत काल से महाराजा गुलाब सिंह काल तक का इतिहास हिन्दी गद्य में लिखा हुआ है। इस समय यह पुस्तक अनुपलब्ध है। इस अप्रकाशित रचना की मौलिक पाण्डुलिपि आज से 30 वर्ष पहले लेखक ने श्रीनगर के किसी कश्मीरी विद्वान् के पास देखी थी। उस समय इतनी जीर्ण शीर्ण थी कि ऐसा मालूम पड़ा यदि वैज्ञानिक ढंग से इसकी सुरक्षा का प्रबन्ध न किया गया तो इसके शीघ्र समाप्त प्राय: होने में कोई सन्देह नहीं और हुआ भी शायद ऐसा ही हो। इसकी भाषा का नमूना नीचे दिया जा रहा है :—

"शल्य ने स्यालकोट बसाया। यह चन्द्रवंशी भया, जिनसे इस नगरी को राजधानी बनाया। अर्जुन का पुत्र वसुवाहन भाईयों से बिगड़ कर दल बल कन्ने जम्मू दे बावर गढ़ में सरुईसर से बलौर तक नगर बसा कर उत्थें राज करता भया"।

1. श्री रामनाथ शास्त्री द्वारा उपलब्ध और भूमि का सहित सम्पादित।

कवि की दूसरी रचना "कीर्ति विलास" है, यह उसी युग के विद्या-विलास प्रेस में सन् 1886 में छपी। इस में महाराजा रणवीर सिंह की पिछली थोड़ी सी पीढियों का भावना और कल्पना पूर्ण हिन्दी पद्यों में चित्रण किया गया है किन्तु अधिकतर वर्णन महाराजा रणवीर सिंह के गुणों और विद्यानुराग का ही है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

बन्दे श्री जगदीस को गुरु चरणन धर ध्यान।
गज मुख गौरी पूज कै पाछे करौं बखान॥
कुण्डली रघुकुल मांहि विचारिये रक्षक श्री कुलदेव।
पदों श्रीपद ताहु के वरणों रघुकुल मेव॥
वरणों रघुकुल मेव सेव सेवक वरदाई।
त्रिकुटा श्री परमेश्वरी भेड़ कालिका माई॥
नील कण्ठ कवि ज्यों कहै श्री रघुनाथ सहाई।
मिल पांचों रक्षक भए केवल रघुकुल मांहि॥

यह सर्व सामान्य तथ्य है कि पिछले हिन्दी संस्कृत कवि अधिकतर राजाश्रय पाकर लिखते रहे। उनकी रचनाओं में यदि संस्कृतियां आ गई हैं तो आज के चिन्तन के मानदण्डों पर परख कर उनकी उपादेयता को इसलिये नकारा नहीं जा सकता क्योंकि उनके साथ आज के साहित्योद्गम का इतिहास जुड़ा हुआ है, बल्कि यह कहना होगा कि इस युग की आधारशिला भी वही युग है। इस सन्दर्भ में उनका साहित्यिक और ऐतिहासिक मूल्य और भी बढ़ जाता है। साहित्य के अति प्राचीन युग के बिखरे हुए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जुडाने में ये रचनाएँ ही एकमात्र कारगर बन सकती हैं।

उपर्युक्त कुण्डलियों में कवि द्वारा पुस्तक के उपक्रम की भावना मङ्गलाचरण के रूप में प्रस्फुटित हुई है। कवि का कथ्य तो आगे चलने लगता है। देखिए एक पद्य (कवित्त) में—

हरि देव जम्बू पत गजे सिंग आगे सुत ध्रुवदेव ताको सूर्त सिंह साज हैं।
आगे श्री जरावर सिंह श्री किशोर सिंह ताको आगे श्री गुलाब सिंह पदवी महाराज है।
अब श्री रणवीर सिंह गुलाब सिंह जू की अंश युग-युग को
राज जाहू सो काज है। धन्य श्री किशोर सिंह श्री गुलाब सिंह
अन्य-अन्य रणवीर सिंहहिन्दू पत लाज है।

---

1. भगवती वैष्णवी शक्ति जो जम्मू के त्रिकूट पर्वत में विराजमान होकर इस समय भारत भर के यात्रियों का आकर्षण केन्द्र बनी हुई है।

इसके अतिरिक्त रणवीर रत्नमाला, रणवीर भाषा प्रकाश, सार संग्रह, कीर्ति विलास, त्रिकुटा रहस्य ये इनकी प्रधान रचनाएं हैं, जो उसी युग में विद्या विलास प्रैस से छपी थीं। ये कृतियाँ यद्यपि अब अनुपलब्ध हैं तथापि जम्मू कश्मीर के प्राचीन पुस्तकालयों अथवा संस्कृत विद्वानों के घरों में पड़े पुराने बस्तों में अब भी कहीं-कहीं मिल जाती है। इन पर अनुसन्धान की आवश्यकता है।

3. छन्नु लाल :

भारतेन्दु समकालीन जम्मू कश्मीर राज्य के हिन्दी साहित्यकारों की तीसरी पंक्ति में कवि छन्नुलाल आते हैं। इन्होंने कंचनाचार्य के लिखे धनंजय विजय नाटक (व्यायोग) का हिन्दी के व्रज पद्यों में अनुवाद किया। यह पुस्तक संवत् 1932 श्रावण तिथि 22 को महाराज रणवीर सिंह की आज्ञा द्वारा प्रकाशित की गई[2] (देखिए पृष्ठ 4, फुट नोट नं० 2)

पं० छन्नु लाल का जन्म सन् 1808 ई० के लगभग जम्मू से 42 मील दूर उधमपुर शहर के आसपास कहीं हुआ था। हिन्दी कवि होने के नाते महाराजा रणवीर सिंह ने इन्हें अपने दरबार में बुला लिया एवं हिन्दी काव्य नाटक सम्बन्धी साहित्य प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। दरबार में रह कर इन्होंने कितना लिखा होगा जब तक अन्य साहित्य इनका उपलब्ध नहीं होता इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त यही एक रचना इनकी कीर्ति कौमुदी की उद्घोषिका है।

कवि छन्नु लाल की कविता की भाषा चुस्त तथा शैली परम्परागत है। इन की ब्रजभाषा में इनके अहिन्दी भाषी होने का प्रभाव कहीं भी दिखाई नहीं देता। धनंजय विजय के अनुवाद का एक पद्य उदाहरणार्थ नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

भोर भए कमला जु के आंगन भौंरन के घनघोर परे हैं।
मंगल गायन गावत हैं तहाँ ताल मृदङ्ग विहोत धरे हैं॥
ताहि समे उडवे के लिए सब टौरहि ठौर से केल करे हैं,
पंखन के घन घोरन सों मानो वाजे वजावत इंस खरे हैं॥

महाराजा रणवीर सिंह का जन्म सन् 1834 और मृत्यु सन् 1885 में हुई।

---

2. श्री रघुनाथो जयति। श्री मन्हाराजाधिराज जम्मू कश्मीर आदि अनेक देशाधीश ...श्रीयुत महाराज साहब बहादुर जी की आज्ञानुसार पंडत छन्नु लाल जी ने धनंजय विजय नाटक संस्कृत से भाषा में बनाया। विद्या विलास नामक यन्त्रालय में श्री पण्डित शंकर नाथ के अधिकार में मुद्रित भया। पंडत निधि पति ने शोधा। पोथी प्रप्ते मुल्ल 11)

सन् 1857 में आप को महाराजा गुलाब सिंह (पिता) ने अपने जीवन में ही राज-गद्दी पर अभिषिक्त कर दिया। यहीं से इस राज्य में हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग चला। महाराजा रणवीर सिंह का साहित्य प्रेम अद्वितीय था। हिन्दी संस्कृत का विपुल भण्डार तो इसके साथ राज्य के अन्दर चुन-चुन कर प्राचीन पाण्डुलिपियों का संग्रह भी भरा जाने लगा राज्य के बाहर से भी हजारों पाण्डुलिपियां प्राप्त की गई। सब मिला कर लगभग छः हज़ार पाण्डुलिपियाँ एकत्रित रूप में एक विशेष पुस्तकालय की स्थापना कर उस में सुरक्षित रखी गईं। वहीं भण्डार एक सौ वर्षों से अधिक तक बस्तों में सुरक्षित होकर अब डा० कर्ण सिंह, जो महाराजा के वंश की चौथी पीढ़ी के हैं, के हाथों की छत्रछाया में आकर सुरक्षा के वैज्ञानिक उपकरणों में समाया हुआ है। डा० महोदय ने विशेष दिलचस्पी लेकर इस भण्डार की महत्ता सर्वजन हिताय कर दी है। प्रस्तुत भण्डार का कैटलाग मि० स्टाईन ने सन् 1890 के आस-पास बनाया जो अन्तर्देशीय ख्याति प्राप्त कर चला।

महाराजा रणवीर सिंह ने हिन्दी के साहित्योत्थान में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ताल-मेल स्थापित किया हुआ था। उस युग के एक दरबारीय संस्कृत कवि की भारतेन्दु के स्वागत में लिखी गई प्रशस्ति[1] से यह भी विदित होता है कि भारतेन्दु जी महाराजा के निमन्त्रण पर एक बार जम्मू भी गए थे। इस सम्बन्ध में भारतेन्दु महाराजा के पत्र-व्यवहार की खोज की जा रही है। यदि सफलता मिल गई तो हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नई उपलब्धि जुड़ जाएगी।

भारतेन्दु युग के समानान्तर जम्मू कश्मीर राज्य के हिन्दी साहित्य-युग के साहित्यकारों में चौथा नाम डा० मीहा सिंह का आता है, जिन की एक मात्र हिन्दी कविता रचना 'भक्ति विनोद' उस युग की छपी हुई अनुसन्धान विभाग, श्रीनगर के पुस्तकालय में पड़ी है। यह वृहद् ग्रन्थ अपने रूप में मौलिक और भक्ति रसोद्गार से ओतप्रोत है।

इस परम्परा में पांचवां नाम श्री राजेन्द्र प्रसाद का आता है। इन की एक मात्र रचना "नाग लीला" हिन्दी के व्रज पद्यों में अब मिली है जो पाण्डुलिपि के रूप में है। कागज़ तथा लिपिकार दोनों कश्मीरी लगते हैं। इनके जन्म समय की रचना द्वारा कोई पता नहीं चल पाया किन्तु भाषा, भाव, शैली पर उस युग का पूरा प्रभाव पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। पद्यों में कृष्ण लीला की सुमधुर सरसता एवं किशोरावस्था का साकार चित्र प्रस्फुटित हो उठा है। उदाहरणार्थ एक पद्य नीचे दिया

---

1. सदा हरिमतश्चचन्द्रः, हरिश्चन्द्र मतः सदा।
सदा हि मतश्चन्द्रः हरिश्चन्द्रमतः सदा (नव्य चण्डीदास)।

जा रहा है—

अटल पदवी ध्रुव को दीनी प्रल्हाद भगत उधारियो ।
गर्व कियो बलि दानव राजा पाताल को सिधारो,
इतना गर्व न कीजै पद्मिनी जिन गर्व किया सोई हारियो
गर्व किया चकवा चकवी रैन बिछोड़ कर डारियो
इतना गर्व न कीजै पद्मिनी जिन गर्व कियो सो हारियो ॥
... ...
एक ग्वाल करी चतुराई तांते औघट नाव छिपाई
एक जाय कृषा को भाषा प्रभु नाव कहाँ कोऊ राखा,
तब कृष्ण सबै समजावै अब नाव कहाँ कोऊ पावै ॥

इसी युग की परम्परा में छठा नाम आता है पं० दुर्गा प्रसाद मिश्र का। जम्मू से लगभग तीस किलोमीटर की दूरी पर बसे 'साम्बा' नामक शहर में मिश्र जी का जन्म सन् 1860 ई० में हुआ था। दिसम्बर मास तथा शारदीय नव-दुर्गाओं में नवमी का दिन था जब इनका जन्म हुआ। इन के पिता शहर के एक कर्मकाण्डी तथा संस्कृत विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध थे। वे सपरिवार तीर्थ यात्रा के लिए गए और आती बार पंजाबी खत्रियों के अनुरोध से कलकत्ता में ही बस गए। वहीं पं० दुर्गा प्रसाद का जन्म हुआ। बचपन में डोगरी, हिन्दी और बंगला का घर पर ही अभ्यास किया। बनारस में आकर संस्कृत पढ़ी। तदनन्तर कलकत्ता के नार्मल स्कूल में अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। घर के लोग व्यापार करते थे तो इन्होंने भी पढ़-लिख कर दलाली का कार्य शुरू किया। परन्तु यहां रुचि न होने के कारण इस व्यवसाय को छोड़कर ये पुन: काशी आए और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा चलाई गई हिन्दी पत्रिका 'कवि वचन सुधा' में सम्वाददाता बन गए। आगे चलकर पटने के "बिहारबन्धु" के सहायक सम्पादक बने। कुछ वर्ष कार्य करने के पश्चात् सन् 1878 ई० में इन्होंने अपना हिन्दी साप्ताहिक 'भारत मित्र' पत्र निकाला किन्तु चन्दा न आने पर इन्होंने यह पत्र भारत मिश्र सभा को दे दिया। इसके अनन्तर इन्होंने 'सार सुधा निधि' हिन्दी पत्र निकाला, परन्तु एक वर्ष के बाद इसके बन्द हो जाने पर सन् 1980 ई० में 'उचित वक्ता' हिन्दी पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र में राजनैतिक विषयों पर हास्य-व्यङ्ग्य भरे लेख छपते थे।

उस समय जम्मू-कश्मीर नरेश महाराजा रणवीर सिंह की इन पर विशेष कृपा रहती थी। इसी कारण एक बार महाराज ने इन्हें जम्मू आकर 'जम्बू प्रकाश' नाम से हिन्दी पत्र निकालने का आदेश भेजा परन्तु अस्वस्थता के कारण ये नहीं आ पाए।

फिर भी बाद में जम्मू आकर जल्दी ही कलकत्ता चले गए, वहां पर अपना "उचित वक्ता" पत्र चलाते रहे। सन् 1890 ई० के लगभग जम्मू कश्मीर नरेश प्रताप सिंह ने इन्हें कलकत्ता से बुला कर अपने राज्य के शिक्षा विभाग के सर्वोच्च पद पर नियुक्त किया किन्तु कुछ समय बाद राज्य-प्रबन्ध में विषम परिस्थितियों के पैदा हो जाने के कारण इन्होंने त्याग पत्र देकर पुन: कलकत्ता का मार्ग पकड़ा। यहाँ आकर इन्होंने बिहार प्रान्त के लिये हिन्दी पाठ्य पुस्तकों की रचना की, जो स्कूल कक्षाओं में चलती रही। इन्होंने जम्मू-कश्मीर के प्रशासन में जिन उथल-पुथल की घटनाओं को देखा था, उनका रहस्यपूर्ण विवरण उचित वक्ता के अङ्कों में कुछेक किश्तों में छापा, जिस के फलस्वरूप एक डेपूटेशन पार्लियामेण्ट के मेम्बर मि० ब्रेडले से मिला, जिस ने जम्मू कश्मीर राज्य के शासन में सुधार लाने की प्रार्थना की। इस डेपूटेशन की मुख्य भूमिका दुर्गा प्रसाद मिश्र जी ने ही निभाई। इससे उक्त प्रशासन में सुधार हुआ।

अन्त में इन्होंने 'मारवाडी बन्धु' एक साप्ताहिक हिन्दी पत्र चलाया किन्तु बाद में वह भी बन्द हो गया। उस समय 'अमृत बाजार पत्रिका' के प्रवर्तक बाबू शिशिर कुमार इनके मार्ग दर्शक या गुरुवत् थे। मिश्र जी ने हिन्दी में छोटी बड़ी सब मिलाकर 20-22 पुस्तकें लिखीं। इन्हें उस समय बंगला में हिन्दी पत्रों के जन्मदाता माना जाता था। बात भी ठीक है। आज भी ये हिन्दी साहित्य क्षेत्र में इन्हें साहित्यकार होने के साथ-साथ प्रथम हिन्दी पत्रकार माने जाते हैं, जिन्होंने अपनी इस पत्रिकारिता का केन्द्र अन्त तक बंगाल को ही रखा। दूसरे रूप में ये हिन्दी के अपने समय के प्रबल प्रचारकों में से एक थे। डोगरा भूमि ने उस समय उपर्युक्त हिन्दी महारथियों को पैदा करके हिन्दी को कितना नया योगदान दिया था, जब कि अभी हिन्दी का नया रंगमंच तैयार होने जा रहा था और उसे ऐसे ही कर्मठ साहित्यकारों और प्रचारकों की आवश्यकता थी, तो जम्मू ने एक साथ ही ऐसे व्यक्तियों की एक लम्बी शृंखला इस क्षेत्र को प्रदान की। इस तथ्य को आज लोग कम ही जानते हैं और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद डोगरी के नए आन्दोलन के कारण वह तथ्य और भी हिन्दी वालों के ध्यान से पीछे हट गया।

जम्मू के प्राचीन हिन्दी साहित्यकारों की परम्परा में सातवां नाम स्वर्गीय श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री का आता है।

इनकी जीवनी के साथ एक चित्रित घटना जुड़ी हुई है। सन् 1895 ई० के लगभग जम्मू से करीब पैंतीस किलोमीटर की दूरी पर बसे नगरोटा (उत्तरवाहिनी) के पास नामक गांव से एक ब्राह्मण परिवार तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में काशी पहुंचा। किश्ती में सवार यात्रियों का झुण्ड गंगा पार रामनगर देखने जा रहा था, उसी किश्ती

में दैव वश यह परिवार भी था। किश्ती पानी की धारा में बह गई। इस परिवार की एक महिला ने डूबने पर अपने तीन वर्ष के बच्चे को एक लकड़ी के फलक पर ले कर गंगा में डालते हुए कहा--"गंगा मैया यह बालकतेरे अर्पण" किश्ती डूब गई परन्तु फलक पर बहते बालक को एक माँझी ने उठा कर तट पर पहुँचा दिया। बच्चे का एक युवक भाई विनायक धर्मशाला में नौकरी करता था ले गया। दूसरे दिन शहर में डोंडी पिट गई कि वह बच्चा जिस का हो ले जा सकता है, युवक भाई पुरुषोत्तम जाकर बच्चे को लाया और अपने पास रखकर उसने उसका पालन-पोषण किया, चार-पांच वर्षों का हुआ तो वहीं संस्कृत पाठशाला में भर्ती कर दिया गया। धर्मशाला के सेठ ने बच्चे की मासिक छात्रवृत्ति तीन रुपए लगा दी। यही बच्चा आगे चल कर कलकत्ते का प्रसिद्ध रईस और विद्वान् तथा कवि के रूप में गांगेय नरोत्तम शास्त्री की संज्ञा लेकर समाज में अवतीर्ण हुआ। इसका गौरवपूर्ण उदय इस रूप में कैसे हुआ, इस में भाग्य प्रेरित अनुकूल घटना चक्र ही कारण है। तीन रुपए मासिक वृत्ति लेकर बालक ने परिश्रम पूर्वक अध्ययन करके शास्त्री परीक्षा पास की। इधर धर्मशाला के सेठ विनायक मिश्र का लड़का श्री मदनमोहन था, वह तो बालिका सन्तानें छोड़ कर पिता के सामने ही दिवंगत हो गया। घर में लड़का उत्तराधिकारी नहीं रहा, पर्याप्त चल और अचल सम्पत्ति थी। इधर गांगेय जी ने शास्त्री कर लिया था, देखने में अत्यन्त सुन्दर युवक थे। व्यक्तित्व आकर्षक और योग्यता विशेष थी। सेठ जी ने उन से श्री मद्भागवत का पारायण सुना। पारायण बड़ा आकर्षक रहा। सेठ जी ने एक लाख रुपयों की दक्षिणा के साथ अपनी पोती (मदन मोहन की लड़की) सप्ताह पर चढ़ा दी यानी गांगेय शास्त्री जी के साथ उसका शुभ पाणि पीड़न कर दिया। अनन्तर सेठ जी की कलकत्ता में जो चल अचल सम्पत्ति थी उसके उत्तराधिकारी भी गांगेय नरोत्तम शास्त्री ही बने। सुन्दर व्यक्तित्व, लक्ष्मी, विद्या और कार्यकुशलता अपने इन तीन गुणों द्वारा शास्त्री जी ने जीवन में काफी प्रतिष्ठा और नाम कमाया।

इन में कविवर के संस्कार जन्म जात ही थे। युवावस्था के प्रथम चरण में ही हिन्दी छन्दों में गुनगुनाने लगे थे। शास्त्री परीक्षा काशी से और पंजाब विश्वविद्यालय दोनों के पास करने के बाद आपने व्याकरणाचार्य के दो खण्ड भी पास किये तथा कलकत्ता से काव्यतीर्थ परीक्षा भी पास की।

श्री गाँगेय नरोत्तम शास्त्री का जन्म सन् 1894 के लगभग जम्मू से तीस किलोमीटर की दूरी पर बसे नगरोटा नामक गांव में हुआ था, काशी और कलकत्ते के जीवन में कैसे आ पहुंचे, यह ऊपर दिखाया जा चुका है, सन् 1920 में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। किन्तु जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि श्रीमद्भागवत के पारायण ने इन्हें नया जीवन प्रदान किया,

इसी से उपर्युक्त पद छोड़ कर कलकत्ता को श्वसुर जायदाद के अधिकारी बन कर वहाँ रहने लगे । श्वसुर पक्ष का ऊंचा व्यापार था, उसे भी इन्होंने योग्यता पूर्वक संभाल लिया ।

साहित्य साधना

श्री गांगेय नरोत्तम शास्त्री मूल रूप में कवि थे किन्तु इन की गद्य-पद्य दोनों प्रकार की रचनाएं मिला कर संख्या में 36 रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

1. रघुनाथ स्तव राज, 2. गांगेय वाग्बाण, 3. प्रणय पूरण (उपन्यास) 4. अन्योक्ति रत्नावली, 5. आचरण-दर्शन, 6. श्री काशीराज पद्य पुष्पांजलि, 7. समस्यापूर्ति चन्द्रिका, 8. कर्म में धर्म (कर्मकाण्ड सम्बन्धी), 9. श्री संकट मोचन स्वराज, 10. भारतीय महिला महत्व, 11. वैश्य समाज, (सामाजिक निबन्ध) 12. गांगेय पद्य माला, 13. श्री काश्मीरेश प्रशस्ति, 14. स्पृश्यास्पृश्य व्यवस्था, 15. भारतीयोद्बोधन---(राष्ट्रीय कविताएं), 16. अमन सभा नाटक, 17. गाङ्गेय दोहावली, 18. श्री वामन विजय, 19. निर्वेद वेदन, 20. हनुमज्जन्म वर्णन, 21. साहस समालम्बन, 22. सपन घोटक धावन (ऐतिहासिक), 23. श्री तिलकस्तोत्र, 24. गाँगेय गीत गुच्छक, 25. आर्य साम्राज्य में नमक कर, 26. वेदों में बिजली, 27. श्री गंगा गुणमाला, 28. श्री लण्डन स्तोत्र (व्यंग्यात्मक हास्यपूर्ण), 29. भारतीय वायुयान (वैज्ञानिक), 30. ब्राह्मण सम्राट् पुष्पमित्र शुङ्ग (ऐतिहासिक), 31. गाँगेय तरङ्ग, 32. चारों वेदों में आयुर्वेद, 33. आत्मानन्द (आध्यात्मिक), 34. नूतन निकुंज, 35. करुण तरंगिणी, 36. मालिनी मन्दिर ।

उपर्युक्त ग्रन्थों में अधिक संख्या पद्यमय रचनाओं की है । शास्त्री जी की ये सब कृतियां हिन्दी में है । अपने पूरे जीवन में ये हिन्दी के अत्यधिक अनुरागी और समर्थक रहे हैं । इसका प्रमाण इनकी उपर्युक्त हिन्दी रचनाएं ही हैं । संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होकर भी इन्होंने अपनी रचनाओं का माध्यम हिन्दी रखा ।

प्रशस्तियां

शास्त्री जी की मालिनी मन्दिर और करुण तरंगिणी इन दो पद्यमयी कृतियों के आदि में जिन प्रबल हिन्दी साहित्यकारों की सम्मतियाँ जोड़ी गई हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :—

मालिनी मन्दिर :

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी

2. पं० पद्म सिंह शर्मा
3. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध
4. केशव प्रसाद, मिश्र
5. कृष्णदास
6. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
7. सीता राम चतुर्वेदी,
8. नन्द दुलारे बाजपेयी
9. वेढव बनारसी, पं० कमलापति त्रिपाठी ।

करुण तरंगणी :

1. पं० मदन मोहन मालवीय
2. पं० रामचन्द्र शुक्ल
3. पं० पद्म सिंह शर्मा
4. डा० गंगानाथ झा
5. डा० भगवान दास
6. श्री मैथिली शरण गुप्त
7. माधव शुक्ल
8. श्री सुमित्रानन्दन पन्त
9. श्री विद्यु शेखर भट्टाचार्य
10. श्री वियोगी हरि

उपर्युक्त हिन्दी साहित्य के महारथियों ने शास्त्री जी की कृतियों तथा कला के सम्बन्ध में बड़े प्रशंसात्मक एवं भावुक उद्गार प्रकट किये हैं, जिन से इन की साहित्यिक प्रामाणिकता तथा बुलन्द व्यक्तित्व का पता चलता है । शास्त्री जी की कविताएं भिन्न-भिन्न स्थितियों में उठने वाले धार्मिक विचारों की विविधताएं लिए हुए हैं । वीर, भक्ति, संस्कृति, आदर्श, उत्साह, करुण, श्रृंगार तथा राजनीति—ये हैं इनकी रचनाओं के प्रधान विषय । फूलों पर जो मृदु और कोमल उद्गारों की अभिव्यंजना की है, वह हिन्दी साहित्य में एक नयी विधा का आविर्भाव किया गया है । कवि ने फूलों की प्रत्येक किस्म पर उसका स्वभाव वर्णन किया है । इस सम्बन्ध में एक-दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा :

गेंदा :

यह प्रिय 'वसन्त' कला हृदय सा
गुरु, गठित गेंदा खिला ।

उस गगन-प्रियतम से धारिणी को
गेंद का गेंदा मिला ।[1]

केवड़ा :

तुम विभूतिमय जटा जूट धर ।
चन्द्र कला धर ? गौरी प्रिय ।
लम्बित भुज उद्धत पद चालक ।
तुम कैतक तरु ताण्डव-प्रिय[2] ।

देशभक्ति और करुणा के भावों की अभिव्यक्ति करने में भी गांगेय जी कुशल कलाकार के रूप में अवतीर्ण होते हुए दिखाई देते हैं । उनकी पुस्तक करुण तरंगिणी में देश-पीर के वातावरण में जन-जन की समस्याओं और कुण्ठाओं का मार्मिक चित्र भिन्न-भिन्न कविताओं में उतारे गए हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि राजसी वैभव में पले इस कवि की अन्तरात्मा गरीबों, दलितों तथा देश की परतन्त्रता के साथ कितनी आत्मसात हो गई है । जैसे इन की इन कविताओं में व्यंग्यात्मकता अधिक उभर पाई है, जिस की चोट विदेशी शासकों पर की गई है । जैसे—

दिन बीत गए गिनते कितने
नहीं आयी बहार यहां फिर से ।
यह बाग जो सूना हुआ सो हुआ
पनपा, न फला न सजा चिर से ।।
उन व्यर्थों की टोली से लुण्ठित हो,
इसके तरु वृक्ष रहे गिर से ।
यह घायल कोकिल देख रहा,
युग नैन हुए अब अस्थिर से[3] ।

गांगेय जी ने द्विवेदी युग से लिखना शुरू किया था । 1921 का स्वतन्त्रता सत्याग्रह इन्होंने प्रत्यक्षदर्शी होकर देखा ही नहीं था बल्कि उस में भाग भी लिया था । महात्मा गाँधी की पुकार सुन कर जब सम्पूर्ण भारत देश आजादी के लिए कटिबद्ध हो चला तो गांगेय जी भी इस आंधी से दूर कैसे रह सकते थे । जब काशी जैसे स्थल पर बैठ कर आजादी के मुख्य परिप्रेक्ष्य विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे थे ।

---

1. मालिनी मन्दिर पृ० 15,2
2. मालिनी मन्दिर, पृ० 47
3. करुण तरंगिणी, पृ० 22

उस समय महामना मालवीय की यह पुण्य कृति देश भक्ति और स्वतन्त्रता संग्राम की केन्द्र भूमि बनी हुई थी और महामना के जाज्वल्यमान देश भक्ति पूर्ण व्यक्तित्व की प्रेरणा कोने-कोने में व्याप्त थी। इसी प्ररिप्रेक्ष्य ने गांगेय जी की कविता पर देश प्रेम का उत्ताप आरोपित किया। द्विवेदी युग के हिन्दी साहित्यकारों की श्रेणी में मान्य स्थान पाकर गांगेय जी की साधना लहर निरन्तर आगे बढ़ती गई। यह युग चला भी गया परन्तु कवि सन् 1950 तक अपनी निर्धारित शैली और साहित्यिक मानदण्ड के अन्तर्गत लिखता रहा। एक बात गांगेय जी में बड़ी विशेष देखी गई है कि इन्होंने अपने को किसी वाद या आन्दोलन से नहीं जोड़ा। ये स्वतन्त्र चेता बन कर अपनी ही लहर में लिखते चले गए। हिन्दी साहित्य जगत् में इन की ऊंचे साहित्यकारों जैसी प्रतिष्ठा बनी रही और अन्त तक चलती रही। सारांश में गांगेय जी द्विवेदी युग और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का युग इन दोनों युगों में अपना एक जैसा प्रतिनिधित्व कर गए। किन्तु इनकी निजी लेखन-शैली पर हिन्दी साहित्य के किसी नए वाद ने कम ही प्रभाव डाला। संस्कृत के विद्वान और उसी वातावरण में आजीवन रह कर भी गांगेय जी हिन्दी के अपने लगते थे। हिन्दी वातावरण का पूर्ण प्रभाव उन पर परिलक्षित होता था।

महाराजा रणवीर सिंह के युग में जम्मू-काश्मीर राज्य में हिन्दी साहित्य का जो दीपक प्रज्ज्वलित हुआ था, उसका प्रकाश उत्तरोत्तर फैलता गया। यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रकाश अपने रूप में यथापूर्व रहा हो किन्तु इस राज्य में हिन्दी की साधना सदा चलती रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनन्तर क्षेत्रीय भाषाओं के उन्नयन की बात चली तो एक ओर डोगरी (जम्मू की बोली) तथा दूसरी ओर कश्मीरी बोलियां आगे आईं। हिन्दी की बात कुछ पीछे रह गई तथापि राष्ट्र भाषा के आकर्षण ने हिन्दी साहित्यकारों को निराश नहीं होने दिया। परिणाम यह हुआ कि पिछले तीन दशकों के भीतर ही यहां जितने नए हिन्दी साहित्यकार तथा हिन्दी संस्थाएं उभरी हैं, इतनी पीछे कभी नहीं। जिस युग का वृत्तांत ऊपर दिया गया है, उसके छः महारथी हो इस लेख में आ पाए हैं। अन्य कवियों के सम्बन्ध में अभी और अनुसन्धान की आवश्यकता है। वस्तुत: उपर्युक्त छः महारथियों के साहित्य को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि इन में से एक-एक पर शोध कार्य सम्पन्न हो सकता है। किन्तु अभी तक इस दिशा की ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। इन पर एक विहङ्गम दृष्टि डालने का कार्य मात्र ही प्रस्तुत लेख में हुआ है। विस्तार की ओर जाना हो तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। ०००

जम्मू क्षेत्र का हिन्दी साहित्य को योगदान

जम्मू प्रदेश सुदूर पूर्व से ही विद्या का गढ़ रहा है। इसमें किसी को भी विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती। मैंने अपने एक लेख में यहां की संस्कृत गतिविधियों का पूरा ब्यौरा दिया था। अब उस प्रसंग को यहां न उठाकर विषय के अन्तर्गत मुझे केवल हिन्दी के क्षेत्र में इस प्रदेश का योगदान, कब से व कैसा रहता चला आया है, पर प्रकाश डालना है।

इस योगदान का एक ऐतिहासिक विवरण है। जिसके अन्तर्गत तीन युग निश्चित किए जा सकते हैं। दत्तू युग, रणवीर सिंह युग व आधुनिक युग। इन तीन युगों में यहां का हिन्दी साहित्य मोड़ काटता हुआ अब के रंगमञ्च पर उतरा है। इन तीन युगों को मिलाकर लगभग तीन सौ साल का समय यहां के हिन्दी साहित्य का इतिहास है जोकि क्रमपूर्वक उपलब्ध हो रहा है, इसके पीछे के इतिहास की लड़ियां बिखरी हुई हैं। जिन पर विश्वासपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

1. दत्तू युग (1735 से 85 तक) :

इस युग में जहां भारत के हिन्दी भाषी प्रान्तों में रीति विषयक रचनाओं की सृष्टि हो रही थी, वहां डुग्गर प्रदेश में पौराणिक गाथाएं लेकर उन्हें हिन्दी साहित्य निर्माण का साधन बनाया जा रहा था। हिन्दी के डुग्गर देशीय हिन्दी कवि दत्त का नाम इसी शृंखला के अन्दर आ सकता है। एक प्रकार से इस युग में अभी भक्ति तथा वीरकाल ही चल रहा था, वह धर्म की पृष्ठभूमि पर स्थित था। महाकवि दत्त ने इसी कारण युगधारा का अनुसरण करते हुए महाभारत के द्रोणपर्व का हिन्दी पद्यानुवाद किया जिसमें वीररस अंगी तथा शेषरस अंग हैं। डुग्गर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य का इतिहास इसी विशाल ग्रन्थ से शुरू होता है। इसमें भीम-कर्ण युद्ध, सात्यकि एवं अभिमन्यु का वध, चक्रव्यूह भेदन आदि कई वीरोचित प्रसंगों का ब्रजभाषा के पद्यों में रोमाञ्चक वर्णन किया गया है। अन्त में द्रोणाचार्य की समाप्ति के बाद शतरुद्रीय का पाठ है। जिसमें भगवान शिव के शतनाम तथा प्रधान-प्रधान अनुष्ठानों का वर्णन है। अतः प्रस्तुत काव्य में वीर व भक्ति दोनों का समन्वय बन पड़ा है। वीररस का एक

वर्णन कितना सुन्दर बन पड़ा है—

कटे सरासन दुहिन के, षट बानन सो द्रोन।
सारथि तुरग समेत ही वृक पठ्यो सुर भौन ॥
कुञ्जर तुरंगन के परत अनेक वीर,
तीर सित लागे नेक माँगत न नीर ॥

इसी काव्य के अन्त में रखे गए भक्ति रसपूर्ण पद्य भी अत्यन्त बेजोड़ हैं। उनमें देवविषयकरति एवं हृदय की भक्तिरस प्रवणता साकार होकर उमड़ पड़ी है। जैसे—

तीन नयन ते कहत हैं, त्र्यम्बक ताको नाम,
चाहत हैं शिव सबनि को, ताते शिव अभिराम।

अपने युग में कवि दत्त एक मंजे हुए सिद्ध हस्त कवि थे। जो किसी भी सफल हिन्दी कवि की तुलना में कम नहीं बैठते थे। उनकी उक्तियों में चमत्कार एवं सारगर्भिता उच्चकोटि तक जा पहुंची है। एक उक्ति देखिए :—

है हंकार कलंक गुनीन को, पहाड़ के पंथ कलंक है थोड़ा,
सूर को आप सराहि कलंक जु नीर के साथ कलंक है पोरा।
धीर के साथ है मूढ़ कलंक रू साध के साथ कलंक है चोरा,
दत्तहि भात के साथ मखीर अरू खीर के साथ कबंक भठोरा॥

कविदत्त जम्मूपति म० रणजीत देव के पुत्र महाराज ब्रजराज देव के दरबारी कवि थे। ब्रजराज देव भड्डु बलौर के राजा थे, किन्तु रणजीत देव की मृत्यु के बाद वे जम्मू की राजगद्दी पर बैठे। इनका समय सन् 1735 से 81 तक का पड़ता है। यही समय दत्त कवि का भी माना जाएगा। कवि भड़वाल पुरोहित जाति का था और बिलौर का ही निवासी था। दत्त के पश्चात् यहां के हिन्दी साहित्यिक इतिहास की धारा थोड़े समय के लिए अन्तर्गामिनी जैसी हो गई किन्तु एक सौ वर्ष के बाद जब महाराज रणवीर सिंह जम्मू की राजगद्दी पर बैठे तो यह धारा अकस्मात् पुनः तीव्र गति से होकर बह निकली।

2. महाराजा रणवीर सिंह युग (1856-85) :

दत्त युग की समाप्ति के बाद का यह दूसरा युग महाराज रणवीर सिंह युग कहलाता है जो सन् 1856 से 85 तक चलता है। इस युग में हिन्दी का विस्तृत विकास हुआ। हिन्दी साहित्य विकास की दिशा में यहां भी दो धाराएं निश्चित की जा सकती हैं। (क) गद्य विकास, (ख) कविता विकास।

गद्य विकास के क्षेत्र में उस युग में यहां हिन्दी के गद्य का पर्याप्त विकास हुआ। महाराजा रणवीर सिंह द्वारा संस्कृत के ग्रन्थों का निर्माण व प्रकाशन होकर स्थानीय विद्या विलास प्रेस में उनका प्रकाशन होता था। जिनकी टीकाएं उस युग के प्रचलित साहित्यिक गद्य में की जाती थीं। इस क्षेत्र में कवि नीलकण्ठ का नाम लिया जा सकता है। "रणवीर प्रायश्चित प्रकरण" नामक संस्कृत ग्रन्थ पर इनकी हिन्दी गद्य में टीका छपी जिसकी भाषा की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :—"जो पुरुष पाप करके प्रायश्चित को करे, तो सम्पूर्ण पापों से रहित होता है और निर्मल होकर शोभता है।"

दूसरी पुस्तक "रणवीर प्रकाश" पर भी इन्हीं नीलकण्ठ की टीका मिलती है। जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :—

पिसे हुए माष जू खावें अमल अवर अति गुड़ भुगतावै।
शाक ऊवर अति लवण जु कोय पावै इन वस्तु को जोय॥

टीका हिन्दी पद्यों में की गई है। किन्तु भाषा कितनी मंजी हुई है, यह उपर्युक्त पद्य से ही स्पष्ट है। इसी प्रकार रणवीर ज्योतिष महानिबन्ध तथा रणवीर दण्ड विधान एवं कुछ धर्मशास्त्र-संग्रह सम्बन्धी पुस्तकों पर इसी गद्य में टीकाए लिखीं गईं हैं। अब यत्र तत्र मिलती हैं। इससे हम जान सकते हैं कि महाराजा रणवीर सिंह के युग में इस प्रदेश में हिन्दी गद्य का पर्याप्त प्रचलन था और वह ग्रन्थों की टीका का माध्यम बना हुआ था।

(ख) हिन्दी कविता की धारा में उस युग के अनेक कवियों के दर्शन होते हैं। जिनमें मुख्य इस प्रकार से हैं :—

1. श्री नीलकण्ठ :

ये ब्रजभाषा में लिखते थे ; इनका समय सन् (1850-88) तक पड़ता है। ये गद्य व पद्य दोनों के ही सिद्ध हस्त कवि थे। इस युग में संस्कृत तथा हिन्दी का जितना भी साहित्य निर्माण हुआ उसमें नीलकण्ठ का विशेष योगदान है। गद्य की दिशा में इन्होंने रणवीर वृत्त रत्नाकर रणवीर प्रायश्चित्त प्रकरण आदि संस्कृत के वृहद् ग्रन्थों पर हिन्दी गद्य की टीकाएं लिखीं तथा जम्मू का इतिहास भी लिखा। कविता के क्षेत्र में इनकी कई कविता सवैये के रूप में फुटकल रचनाएं मिलती हैं तथा पुस्तिका के रूप में इनकी कीर्ति विलास रचना प्रसिद्ध है। कविता की भाषा मंजी हुई माधुर्यपूर्ण एवं भावपूर्ण है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए :—

सप्तद्वीप नवखण्ड में भारत खण्ड अनूप
तामहिं पुर जम्बू लसै सभ देशन को भूप॥

अतिश्रेष्ठ जम्बू नगर द्विपऊजागर राज
वर्तत श्री पुर सों अधिक इन्द्रपुरि द्युतिसाज ।।

कवि ने अपना परिचय भी ब्रज दोहों में इस प्रकार निबद्ध किया है।

जम्बूपुरवासी भए विद्वज्जन सिरमौर,
कमलनैन पंडित यहां जा सम दूज न और।
तिनके देवीदत्त सुत जिनको श्री भवनाथ,
नीलकण्ठ तिनको भयो सो नित नावत माथ ।।

इससे स्पष्ट है कि नीलकण्ठ जम्मू के निवासी पं० कमलनयन के प्रपौत्र श्री देवीदत्त के पौत्र एवं श्री भवनाथ के पुत्र थे। अब इनकी पीढ़ी के लोग काने-चक्क में रहते हैं। श्री अर्यमा मित्र जो इस समय यहां है कवि की तीसरी पीढ़ी के हैं।

2. श्री छन्नू लाल :

इस युग के दूसरे हिन्दी कवि श्री छन्नू लाल हमारे सामने आते हैं। ये नीलकण्ठ के ही समकालीन थे। इनकी प्रसिद्ध रचना "धनञ्जय विजय" का हिन्दी पद्यानुवाद है। इसका प्रकाशन सम्वत् 1932 ई० में विद्याविलास प्रेस में हुआ, जिसका संशोधन उस युग के प्रसिद्ध संस्कृत एवं हिन्दी लेखक निधिपति ने किया था। यह ग्रन्थ दोहा, सोरठा, तथा कवित्त जैसे प्रसिद्ध छन्दों में लिखा गया है। भाषा शुद्ध ब्रज व शैली मंजी हुई है। एक उदाहरण देखिए :—

भौर भए कमला जु के आँगन, भौरन के घनघोर परे है,
मंगल गायन गावत है वहां ताल मृदंग विहोत धरे हैं।
ताहि समय उठने के लिए सभ ठौरहि ठौर में केल करे हैं,
पंखन के घन घोरन सो बाजे बजावत हंस खरे हैं ।।

इसके अतिरिक्त इस युग में "रणवीर प्रकाश चिकित्सा" ग्रन्थ के लेखक श्री जगद्धर तथा जवाहर दोनों वैद्य तथा हिन्दी कवि थे। इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ ब्रज पद्यों में ही निबद्ध किया है, जिसका एक उदाहरण इस प्रकार से है :—

जिस नर पूरब जन्म में सीसक लियो चुराय।
शीर्ष रोग तिस होतहि दियो जु ग्रन्थ बताय ।।

डुग्गर प्रदेश की ब्रज कविता का यह दौर पिछले अनेक शतकों का मोड़ खाता हुआ सन् 1900 तक पहुंचकर नए संक्रान्ति काल में पदार्पण करता है। अब यह भाषा भाव एवं शैली की नई वेशभूषा अपनाकर अपने नए ही रूप में अवतीर्ण हुआ।

3. आधुनिक युग :

इस समय तक सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियां बदल चुकी थीं। अंग्रेजी भाषा व साहित्य का सर्वतोमुखी प्रभाव देश के कोने-कोने में विस्तृत होकर भारतीय जनता के हृदय पटल पर नए नए प्रभावों का निर्माण कर रहा था। इधर वैदेशिक शासन की कुण्ठाओं से ग्रस्त जनजीवन के हृदय में नई क्रान्ति उमड़ रही थी। जिसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ रहा था। यह प्रभाव भारतेन्दु काल से ही प्रारम्भ हो चुका था और अब देशव्यापी होकर साहित्य में अपनी अक्षुण्ण छाप छोड़ चला था। डुग्गर प्रदेश के हिन्दी लेखकों में भी नई क्रान्ति व विचारधारा की लहर दौड़ गई। सन् 1900 से लगभग 1936 तक यहां हिन्दी लेखन का जो प्रवाह बहा, उसमें निर्माण कार्य तथा गद्य लेखन अधिक हुआ।

गद्य पर भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता अधिक छा गई, इसी कारण इस युग में कवियों के स्थान पर हिन्दी पत्रकार एवं गद्यकार ही अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु उस समय हिन्दी में जो कुछ लिखा गया वह साहित्य की स्थायी सम्पत्ति नहीं बन पाया। सन् 1900 से 1930 तक यही दशा चलती रही। इसके अनन्तर कुछ हिन्दी लेखक अवश्य ही उभरे जिनकी रचनाएं प्रकाशित होकर साहित्य में स्थान लेने लगीं। सन् 1936 में, जम्मू में स्व० श्री बंसीलाल सूरी ने 'वसुधा' नामक हिन्दी मासिक पत्रिका चलाई, जिसमें मुख्य रूप में श्री सन्तराम विचित्र, पं० रघुनाथ शास्त्री, पं० रमाकान्त शास्त्री, पं० लब्ध राम शास्त्री, आदि स्थानीय लेखकों की रचनाएं छपतीं थी, जो कि विचारात्मक लेख होते थे। कविताएं और एकांकी भी छपते थे। उन दिनों स्थानीय हिन्दी लेखकों में भगवत्प्रसाद साठे, शंकर शर्मा पिपासु, श्री रमाकान्त शास्त्री आदि उभरते हुए युवक थे, जिनके लेखन कार्य का अभी श्री गणेश ही हुआ था। तब सन् 1936 के बाद "रत्न" पत्रिका भी कुछ देर तक चली तथा इसके अनन्तर "भारती" नामक हिन्दी मासिक का प्रचलन श्री शान्ता भारती के द्वारा हुआ दूसरी ओर इस प्रकार की "उषा" पत्रिका भी कु० शकुन्तला सेठ ने निकाली। ये दोनों हिन्दी मासिक पत्रिकाएं अपने छः सात वर्षों की आयु तक देश भर में अपना विशेष स्थान बना चलीं।

अब हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में नए लेखकों का एक दल बन चुका था, जिसमें श्री प्रशांत, रामनाथ शास्त्री, पिपासु दुर्गादत्त गंगादत्त विनोद, रमाकान्त शास्त्री जीवानन्द शास्त्री तथा मान्य युवक लेखक थे। इन दो पत्रिकाओं ने डुग्गर प्रदेश में हिन्दी का एक नवोदित रङ्गमञ्च तैयार कर डाला। कुछ मान्य स्वतन्त्र लेखक भी थे जैसे पं० राजाराम शर्मा जिन्होंने "हमारी भूलें" तथा "महाराजा गुलाब सिंह" नामक दो पुस्तकें हिन्दी में लिखीं महाराजा गुलाब सिंह अंग्रेजी पुस्तक हिन्दी का अनुवाद था। पं० हरदत्त शास्त्री भी हिन्दी में फुटकल लेख और कविताएं डोगरी के साथ साथ

लिखते थे। श्री भगवतप्रसाद साठे ने 1939 में पहली हिन्दी कहानी लिखी थी जिसका डोगरी में "कुड़में दा लामा" शीर्षक के अन्तर्गत रूपान्तर हुआ। यह हिन्दी कहानी उस समय स्थानीय "दीपक" पत्रिका में छपी थी। इसी समय हिन्दी साहित्य मण्डल की स्थापना हुई, जिसमें उपर्युक्त लेखकों का दल एकत्रित होकर साहित्यिक गोष्ठियां करता था। यह दौर 1947 तक चला।

इसी समय स्वतन्त्रता प्राप्ति के कारण भारतीय रंगमंच पर एक नए सूर्य का उदय हुआ। साहित्य ने भी अपनी पिछली दिशा को बदला और जन-जीवन की नई लहर ने साहित्यिक जीवन के नए मानदण्ड व मान्यताओं को जन्म दिया। नई राष्ट्रीय सरकार को नई समस्याओं से जूझना पड़ा तथा देश के नव निर्माण में संलग्न हमारी सरकार ने जहां प्रत्येक दिशा में अपनी जनतांत्रिक नीतियों से परिवर्तन किया, वहां साहित्य की अभिवृद्धि के लिये भी नए मार्ग खोल दिए। रेडियो स्टेशन की स्थापना, साहित्य अकादमी इन दो स्रोतों ने जहां डोगरी लेखकों को उभारा वहां हिन्दी लेखक भी इनसे प्रोत्साहन पाकर स्वयं उभरने लगे। हिन्दी साहित्य के लिए यह एक स्वर्णकाल चल रहा है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित होने के कारण भी हिन्दी लेखकों का नया प्रवाह बहने लगा। अब जहां पुरानी पीढ़ी के लेखकों की श्रृंखला चली आ रही है, वहां नए लेखक भी सैंकड़ों की संख्या में कार्यक्षेत्र में उतरे हैं और अनेक हिन्दी संस्थाएं भी स्थापित हो चुकी हैं। वास्तव में इस प्रदेश की युवा पीढ़ी ही अधिक संख्या में इस क्षेत्र में उतरी है और इसी पीढ़ी ने उपर्युक्त हिन्दी संस्थाओं की स्थापनाएं की हैं। यद्यपि इनमें निम्नलिखित लेखक बंट गए हैं, तथापि उनका लक्ष्य एक है और इससे एक ही वस्तु की प्राप्ति हो रही है। वह है हिन्दी साहित्य। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जो नई-नई प्रतिभाएं इस क्षेत्र में उतरीं उनमें सर्व श्री डा० गंगादत्त विनोद, दुर्गादत्त शास्त्री आदि हैं। इनका युग तब से अब तक चल रहा है।

श्री मनसा राम चञ्चल की कविताओं में अधिकतर जीवन का संगीत ही मुखरित हो रहा है। कविता के गठन में संगीतात्मकता भरी रहती है। जैसे—

मैं पिपासित से रहा नौका सलिल में,
वीचि गानों में छुपी है आह मेरी।

मेरी कविताओं में अधिकतर हृदय की कुण्ठा को ही स्थान मिला है। जैसे—

शून्य जीवन क्षितिज के उस पार चलता जा रहा हूं,
छा गया पथ पर अंधेरा मिट गया मधुमास मेरा।
क्या करूं किस ओर जाऊं नीढ भी कैसे बनाऊं,
विकल भूले पथिक सा पथ भूलता ही जा रहा हूं॥

प्रो० देवरत्न शास्त्री अधिकतर संस्कृत कविता को हिन्दी के पद्यों में अनूदित करने में सिद्धहस्त हैं। इस सन्दर्भ में इनके अनूदित ग्रंथ ऋतुविहार का उदाहरण पर्याप्त होगा। पीताम्बर पारखी शास्त्री की कविताओं में जीवन का स्वर मुखरित हो रहा है। दुर्गादत्त शास्त्री की कविताओं में अधिकतर कल्पना से मंजी हुई करुण एवं यथार्थ दोनों मुखरित हो रहे हैं। सन् 1947 से 65 के लगभग पुरानी व नई पीढ़ी के बीच का उपर्युक्त कवि समूह अब तक साहित्य क्षेत्र में अपनी साधना का प्रकाश बिखेर रहा है। इस समय के पश्चात् युवा पीढ़ी के हिन्दी लेखकों का एक नया समूह कार्य क्षेत्र में उतरा। इसी युवा लेखक पीढ़ी के साथ यहां हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित कुछ संस्थाएं भी स्थापित हुई और उन कई एक की ओर से वार्षिक हिन्दी पत्रिकाओं का भी प्रसारण चला। इन संस्थाओं के नाम इस प्रकार से हैं, जो अब तक सफलतापूर्वक चल रही है। (1) हिन्दी साहित्य मण्डल (रजि०) (2) युवा हिन्दी लेखक संघ (रजि०) (3) तरुण संगम इत्यादि। इन सब संस्थाओं में नयी व पुरानी पीढ़ी के हिन्दी लेखक बंटे हुए हैं और इन्हीं की साहित्यिक गोष्ठियों के माध्यम से कविता, कहानी, एकांकी, नाटक आदि साहित्यिक विधाओं का सृजन कर रहे हैं। कल्चरल एकेडमी, रेडियो स्टेशन जैसी स्थानीय संस्थाएं इस बढ़ते हुए हिन्दी साहित्य के प्रवाह को उत्तेजित करने में पर्याप्त योगदान दे रही है।

हिन्दी पत्रिकाएं :

उपर्युक्त संस्थाओं में से कुछ की ओर से हिन्दी मासिक, साप्ताहिक एवं वार्षिक हिन्दी पत्रिकाएं भी निकाली जा रही हैं। हिन्दी साहित्य मण्डल की ओर से "मधुरिमा" युवा हिन्दी लेखक संघ की ओर से "घोषवती" तरुण संगम की ओर से "निस्तन्द्र तथा "फील्ड सर्वे आर्गनाईजेशन" की ओर से "डुग्गर समाचार" नाम से पत्रिकाएं चलाई जा रही थीं। ये सब साहित्यिक थीं। इससे क्षेत्रीय हिन्दी साहित्य के प्रचार प्रसार को काफी सहयोग मिल।

उपर्युक्त आधुनिक संक्रांति काल से अब तक के आधुनिक काल तक जो हिन्दी रचनाएं प्रकाशित हुई हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है—

पुस्तक	लेखक	प्रकाशक
कविदत्त ग्रन्थावलि	प्रो० गौरीशंकर	कल्चरल एकेडमी जम्मू काश्मीर राज्य
ताण्डव (कविता संग्रह)	सुभाष भारद्वाज	लेखक द्वारा
बालगीत, अश्रुमाला, सुषमा	श्री मनसाराम चञ्चल	लेखक ही

वैष्णवी पीठ तथा फुटकल

हिन्दी लेख	स्व० पं० काका राम जी शास्त्री	
वैदिक तथा दार्शनिक शोधपत्र (हिन्दी में)	लेखक—डॉ० राम प्रताप जी की साधना निरन्तर चल रही है। डॉ० राजकुमार की हिन्दी कविताएं तथा निबन्ध दोनों प्रकाश में आते रहते हैं।	
मालिनी मन्दिर (कविता)	पं० गांगेय नरोत्तम शास्त्री	मकरन्द साहित्य मन्दिर कलकत्ता।
करुणा तरङ्गिणी (कविता)	,,	,,
ऋतु बिहार (अनूदित)	प्रो० देवरत्न शास्त्री	लेखक
उल्लोल (कविता)	डॉ० गंगादत्त शास्त्री	राधाकृष्ण आनन्द जम्मू
सीमा का पंछी (कविता)	शंकर शर्मा पिपासु	लेखक ही
तिनके और तिनके	सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्	लेखक ही
दो चांद	शंकर शर्मा पिपासु	लेखक ही
रुनझुन	ज्योतीश्वर पथिक	लेखक ही
मति-मन्थन (निबन्ध)	डॉ० गंगा दत्त शास्त्री	अजय प्रैस दिल्ली
रघुनाथ गुणोदय (एक समीक्षा)	डॉ० गंगा दत्त शास्त्री	जम्मू विश्वविद्यालय
कश्मीर दर्शन	डॉ० गंगा दत्त शास्त्री	कपूर ब्रदर्ज श्रीनगर
खुले कमरे बन्द द्वार (कविता संग्रह)	रमेश मेहता	लेखक ही
लहर लहर नैया नाचे (कहानी संग्रह)	डॉ० ओम गुप्त	

डॉ० महेश जम्मू के हिन्दी क्षेत्र में एक उदीयमान लेखक व कवि के रूप में चर्चित हैं। इनकी कविता सम्बन्धी प्रसिद्ध रचना अंशुक अभी-अभी प्रकाशित हुई है।

शोध शिक्षा	डॉ० गंगादत्त शास्त्री विनोद
तरलतरङ्ग	डॉ० गंगादत्त शास्त्री विनोद
निर्वासित	श्री ओम गोस्वामी
आर्यों का उद्गम स्थान व मूल भाषा	श्री जगदीश चन्द्र शास्त्री
वैष्णो देवी सिद्ध पीठ	श्री जगदीश चन्द्र शास्त्री
अमरनाथ-कश्मीर यात्रा	स्व० श्री मदन मोहन शास्त्री एम० ए० वेदाचार्य

ये तस्वीरें	राज भल्ला
मेरे गीत तुम्हारे गीत	डॉ० वेद घई व डॉ० रामप्रताप
पद्याञ्जलि (कविता संग्रह)	सम्पादक—सुभाष भारद्वाज, चन्द्रकान्त जोशी
सागर के तीर	डॉ० ओम गुप्त

श्री ओम गोस्वामी ने भी हिन्दी में पर्याप्त लिखा है तथा "शीराज़ा" हिन्दी पत्रिका का सम्पादन भी किया है।

कुछ हिन्दी शोध पत्र लेखन और प्रकाशन	श्री श्याम लाल शर्मा तथा श्रीमती शक्ति शर्मा।
साक्षात्कार के क्षण (लघुकाव्य) तथा अनेक फुटकल लेख व कविताएं	श्री भुवनपति शर्मा
हिन्दी गद्य-पद्य तथा नाटक लेखक	श्री चन्द्रोदय शर्मा
देवदार की छाया तले (कहानी संग्रह)	सम्पादक अशोक जेरथ
तुम नहीं आए (कविता संग्रह)	स्व० सपनमाला
नागमगी की आंच (कविता संग्रह)	स्व० सपनमाला
धूप की तरह खिला वर्तमान	श्री बलनील देवम्
आग जल रही है	श्री बलनील देवम्
नौका का इतिहास	श्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्
हिन्दी गज़लें	श्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्
डुग्गर की लोक गाथाएं	प्रो० शिव निर्मोही
डुग्गर का लोक साहित्य	,, ,,
डुग्गर की संस्कृति	,, ,,
डुग्गर के देव स्थान	,, ,,
डुग्गर का भाषायी परिचय	,, ,,
डुग्गर के अमर सेनानी	,, ,,
डुग्गर के लोक देवता	,, ,,

श्री श्याम रैणा की फुटकल हिन्दी कविताएं पर्याप्त मात्रा में कवि सम्मेलनों में पढ़ी गई हैं और बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

सुश्री शकुन्तला सेठ हिन्दी की सफल कवयित्री हैं, जिनकी तीन कविता पुस्तकें छप चुकी हैं। प्रसिद्ध कविता संग्रह का नाम है—"सरसिज"। कविताएं छायावाद की शैली पर हैं तथा कुछ भारतीय संस्कृति व इतिहास को लेकर चली हैं। इनके तीन कविता संग्रहों के नाम हैं सरसिज संवीत कथाएं और समय की धारा।

डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स का एक हिन्दी कविता संग्रह प्रकाशित है। कविताएं सरस व अनुभूतिपूर्ण हैं। एक आलोचनात्मक पुस्तक विचार और विश्लेषण भी छप चुकी है।

डॉ० वेद घई के कई हिन्दी शोध पत्र छप चुके हैं एक कविता संग्रह तथा एक वृहत् पुस्तक—'कश्मीर का संस्कृत को योगदान' (हिन्दी में) भी छप चुकी है।

स्व० श्री बंसी लाल सूरी हिन्दी के प्रचारक प्रसारक तथा कवि थे। मरणोपरान्त एक हिन्दी कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका है।

इनके अतिरिक्त रामकृष्ण शास्त्री, निर्मल विनोदी, ओ० पी० शर्मा, गणेश भार्गव, जवाहर नाहर, ओम मानव, राधाकृष्ण अलंकार, डॉ० प्रियतमचन्द्र शास्त्री, ज्योतीश्वर पथिक, डॉ० किरण शर्मा, श्री केहरी सिंह मधुकर (पहले हिन्दी में कविता लिखते थे फिर डोगरी में लिखने लगे) आदि-आदि हैं। इनमें से कुछ कवि, कुछ क़हानीकार, कुछ एकांकीकार एवं नाटककार हैं। किन्तु इसी युवा लेखक पीढ़ी का साथ देने वाले कुछ प्रौढ़ लेखक भी इस समय हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अपनी साधना संजोकर अग्रसर हो रहे हैं। जिनमें शंकर शर्मा पिपासु, डॉ० गंगादत्त विनोद व दुर्गादत्त शास्त्री श्री मोहन लाल भौतियाल इत्यादि हैं।

इस समय जम्मू प्रदेश में एक तरफ डोगरी के नए दौर के साहित्य की बाढ़ आ गई है व दूसरी तरफ हिन्दी के भी इस वर्तमान दौर के अन्तर्गत पर्याप्त साहित्य लिखा जा रहा है। जिसका संक्षिप्त ब्यौरा ऊपर दे दिया गया है। इस समय सारे प्रदेश में ये दो साहित्य ही उन्नति के पथ पर निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। जिससे इनके उज्ज्वल भविष्य का सहज अनुमान ही होता है। ०००

जम्मू राज्य की प्राचीन हिन्दी सम्बन्धी गतिविधियां

जम्मू प्रदेश में हिन्दी साहित्यकारों की परम्परा अति प्राचीनकाल से चलती चली आ रही है। इस क्षेत्र में समय-समय पर अनेक हिन्दी की उदीयमान प्रतिभाएं उदित होकर हिन्दी भाषा व साहित्य में अपना स्थान बना गईं किन्तु यह बात अलग है कि वे प्रतिमाएं इतिहास के पृष्ठों पर कम ही आ पाईं अथवा समय की परतों ने उन्हें ऐसा दबाया कि वे इस क्षेत्र के आगामी युगों में विस्मृति के गर्त में पड़ी रहीं। फिर भी उनके नामों की गूंज कहीं न कहीं अब भी है। आज जम्मू की नई हिन्दी पीढ़ी उन्हें भले ही कम जानती हो किन्तु हिन्दी रंगमंच के गत दौर के साहित्यकार उनसे भली प्रकार परिचित हैं।

जम्मू का गत हिन्दी साहित्य व भाषा का युग अधिक समृद्ध ही नहीं रहा अपितु इसमें अच्छी-अच्छी प्रतिभाएं भी उभरीं, जिन्होंने समग्र भारत में ख्याति प्राप्त की। इस युग की हिन्दी भाषा व साहित्य का पर्यालोचन करने पर ऐसा मालूम पड़ता है यहां के दो प्रकार के हिन्दी उपासक पैदा हुए—एक वे जो इसी राज्य में रह कर साधना के रूप में हिन्दी प्रचार-प्रसार व लेखन कार्य करते रहे। दूसरे वे जो जम्मू प्रदेश में पैदा होकर भारत के किसी अन्य प्रांत में बैठकर हिन्दी साधना करते रहे। दोनों प्रकार की प्रतिभाओं ने हिन्दी भाषा व साहित्य को उस युग में प्रशंसनीय योग-दान दिया। प्रथम पंक्ति के हिन्दी सेवियों की परम्परा यद्यपि सुदूर अतीत से सम्बन्ध रखती है तथापि कुछ अगले दौर में आने वाले हिन्दी सेवियों का इतिहास विशेष महत्त्व रखने के कारण यहां उसी का परिचय दिया जाएगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व इस राज्य में अभी क्षेत्रीय भाषाओं का कोई आंदोलन नहीं चला था अत: डोगरी कश्मीरी के उत्थान की बात उन दिनों कभी सुनाई न पड़ी। यदि होगी तो कुछ ही लोगों के बीच में रही होगी।

भाषा की बात केवल हिन्दी के प्रश्न के साथ ही टकराती थी। ऐसा लगता था जैसे राज्य की भाषा जम्मू प्रांत में हिन्दी व कश्मीर प्रांत में उर्दू हो सकती है या होनी चाहिए। यह प्रश्न लोगों के मानस पटल पर था ही किन्तु अंग्रेजी के साम्राज्य-

वाद ने इन भाषा सम्बन्धी विचारों को उभरने नहीं दिया। फिर भी भारत में एकरूप से हिन्दी जन-जन में अपना स्थान पा रही थी और उसका प्रभाव सीधा जम्मू पर भी पड़ रहा था। जलवायु, रहन-सहन, चिन्तन व जीवन शैली के सन्दर्भ में जम्मू अन्य भारतीय प्रांतों के अधिक सन्निकट था ही किन्तु इसकी भौगोलिक सीमा भी साथ लगे पंजाब तथा हिमाचल के साथ टकराती है। इसी कारण यहां परम्परा से ही हिन्दी प्रतिभाओं का होना स्वाभाविक ही था।

जब हिन्दी क्षेत्र में भारतेन्दु युग चल रहा था उसी समय जम्मू में भी ब्रज कविता का युग उत्तेजित प्रवाह लेकर बह चला जिस का स्वर काशी में भारतेन्दु तक भी पहुंचा और इसी से प्रभावित होकर भारतेन्दु को जम्मू की यात्रा भी करनी पड़ी। हिन्दी का यह आदान-प्रदान सम्बन्ध कितना घनिष्ठ हो चला था इसे वही जान सकते हैं जिन्होंने इस दिशा में कुछ खोज की हो। उस युग के राज्य के हिन्दी ब्रज कवियों में नीलकंठ, छन्नू लाल, राजेन्द्रसिंह, मींहासिंह आदि प्रसिद्ध ही हैं किन्तु आगे चल कर जब हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग चला तो उसके समानांतर इस प्रदेश में भी हिन्दी की कुछ गण्य-मान्य प्रतिभाएं पैदा हुईं। द्विवेदी युग 1900 से 1921 तक चला। इस बीच यहां प्रधान रूप से जो हिन्दी महारथी पैदा हुए उन का विवरण इसी लेख में आगे दिया जाएगा। द्विवेदी युग के अनन्तर जम्मू शहर में हिन्दी का एक नया युग चला जिसके अन्तर्गत साहित्य कम लिखा गया और भाषा सम्बन्धी आंदोलन अधिक जोर पकड़ गया। इसमें कुछ परिस्थितियां भी कारण बनीं। इसीलिए हिन्दी प्रचारक रङ्गमञ्च पर उभरने लगे। इस शृंखला में सर्वप्रथम श्री स्वर्गीय हरमुकुन्द शास्त्री का नाम स्मरणीय है, जिन्होंने सरकारी नौकरी पर रह कर भी हिन्दी का प्रचार अपने जीवन का अंग बना लिया।

इन्होंने 'हिन्दी' पाठ नामक एक हिन्दी लघु लेख संग्रह भी निकाला। उन दिनों यह पुस्तक हिन्दी शिक्षार्थियों को मुफ्त बांटी जाती थी। जहां कहीं भी हिन्दी अध्ययन-शाला की स्थापना करते वहां इसे बांट देते। मुझे याद है कि सन् 1940 में पुराने डाकखाने के भवन में एक हिन्दी रात्रि पाठशाला पं० हरदत्त जी के नेतृत्व में सनातन धर्म सभा की ओर से खोली गई थी, जिसमें स्वर्गीय श्री बंसीलाल गुप्ता, पं० लेखराज शास्त्री और मैं तीनों वहां पढ़ते थे। छः सात महीने जीवित रह कर यह पाठशाला जम्मू में सैंकड़ों को हिन्दी पढ़ा गई। यहां भी उपर्युक्त पुस्तक शास्त्री जी के सुपुत्र स्व० श्री लोकनाथ जी ने वितरित की थी। शास्त्री जी का जन्म सन् 1857 के लगभग हुआ। सन् 1882 में इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा पास की। तदनंतर अंग्रेज़ी की अपेक्षित शिक्षा पाकर ये जम्मू के सरकारी स्कूल में अध्यापक और अनंतर इन्सपेक्टर भी बने। इन की जम्मू में रह कर हिन्दी सेवा सराहनीय

रही । इन्होंने उस समय 11000 हजार रुपए देकर एक हिन्दी ट्रस्ट की भी स्थापना की । जिसके द्वारा हिन्दी पाठ्य पुस्तकें छाप कर मुफ्त वितरित की जाती रहीं । इनका देहांत सन् 1934 ई० में हुआ । इसके पूर्व ये प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन की शाखा भी यहां खोल चुके थे । जो कई वर्षों तक इनके प्रयास से चली ।

सन् 1930 के लगभग जम्मू में हिंदी की एक और संस्था ने जन्म पाया । वह थी हिंदी प्रचारिणी सभा इसके संस्थापकों में मुख्य थे श्री बंसीलाल सूरी, पं० रमाकांत शास्त्री, पं० लब्धराम शास्त्री, श्री लोकनाथ शर्मा, लाला गुराँदित्ता, श्री दयाराम शास्त्री तथा श्री मोहनलाल मोतियाल । सभा की गोष्ठियां आर्य समाज पुरानी मण्डी में अधिकतर होती थीं । किंतु यह संस्था साहित्य को न लेकर प्रचार कार्य पर ही स्थायी रही । गोष्ठियों में हिन्दी प्रचार की रूप रेखाओं व प्रबन्धों पर ही विचार किया जाता था ।

जब कभी सरकार की ओर से हिन्दी के अधिकारों पर चोट पहुंचती तो यह सभा झट प्रस्ताव पास करके भेज देती । इस से काम न चलने पर जलसे जलूसों का आयोजन भी करती, जिनमें स्व० कविराज विष्णु गुप्त जी मुख्य रूप में भाग लेते थे । मुझे याद है कि दो तीन बार दीवानों के मन्दिर में हिन्दी-हित को लेकर इन महानुभावों की तुमुल गर्जनाएं भी सुनने को मिली थीं जहां दस पन्द्रह हजार की संख्या में जनता बैठी हुई थी । उन दिनों इन हिन्दी नेताओं ने हिन्दी का प्रश्न आम जनता के जीवन से ही जोड़ दिया था । इसी कारण इस संबंध में बड़े-बड़े अधिवेशन होते थे । आजकल की साहित्यिक गोष्ठियों जैसी बात न थी ।

इसी बीच स्व० श्री बंसीलाल सूरी ने हिन्दी प्रचारिणी से प्रेरणा पाकर अपने पैरों पर एक हिन्दी मासिक पत्रिका का सम्पादन शुरू किया । जिस का नाम था 'वसुधा' यह पुराने हास्पिटल के पास पुरातन प्रेस से छपती थी । मुझे याद है कि मैं एक बार बसुधा अंक को खरीदने के लिये इस स्थान पर पहुंचा, परन्तु बालक का हिन्दी प्रेम देख कर अधिकारियों ने मेरे से कीमत नहीं ली । इस अंक की सभी रचनाएं मैंने दो-दो बार पढ़ीं । लेखकों में से केवल सन्तराम विचित्र का नाम ही इस समय याद आ रहा है । इसके दूसरे अंक में स्व० श्री रमाकांत शास्त्री तथा स्व० श्री रघुनाथ शास्त्री के लेख भी पढ़ने को मिले । श्री रमाकांत शास्त्री के लेख का शीर्षक था 'रंगीला संसार' इन्हीं का दूसरा लेख 'लकीर की फकीरी' शीर्षक के अन्तर्गत छपा देखा गया । अपने चार अंक निकाल यह पत्रिका भी समाप्त हो गई । उन दिनों सूरी जी नवयुवक वकील थे और हिन्दी का पक्ष लेकर काफी आंदोलनों का साथ भी देते थे तथा सम्बन्धित स्टेजों पर जोशीले भाषण भी करते थे । एक छोटा विद्यार्थी बन कर मैं इन जलसे जलूसों व भाषणों को देखता-सुनता था । इसी समय हिन्दी की

समस्या लेकर एक और आंदोलन उठा। हिन्दी प्रचारिणी में उपर्युक्त कर्मठ लोग थे। उन दिनों यहां हिन्दी का प्रश्न उठाना सरकार का विरोध करने जैसा था। सरकार हिन्दी के बारे में जो कुछ त्रुटियां करती उस की प्रतिक्रिया जनता की ओर से होने लगती। जनता तक बात पहुंचाने वाले भी ये ही लोग थे, जिन का वर्णन ऊपर किया गया है। श्री सय्यदैन जी शिक्षा विभाग के निर्देशक थे। उन्होंने 'अलफ बे' पे की पद्धति का एक हिन्दी बालोपदेश बनाकर स्कूलों में चलाया था। हिन्दी जगत् यह यहीं चाहता था कि हिन्दी की वर्णमाला इस प्रकार से विकृत की जाए। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी प्रचारिणी की ओर से इसका विरोध होने लगा जो कि अधिक प्रबल हो उठा। श्री मोहनलाल मोतियाल, बंसीलाल सूरी, मा० हरिश्चन्द्र विद्यार्थी, शांता भारती आदि कार्यकर्ताओं ने एक जलूस की शकल में आकर शिक्षा निर्देशक के कार्यालय पर धरना दिया। इस जलूस में काफी लोग सम्मिलित हो गए थे। अन्त में बालोपदेश की सैंकड़ों कापियां वहां पकड़ी गईं व फाड़ी गईं और नारे लगाये गए। यही आंदोलन दिनोंदिन जोर पकड़ता गया और तब तक समाप्त नहीं हुआ जब तक शिक्षा निर्देशक की कार्यावधि पूरी नहीं हुई। इस आंदोलन में जो युवक कार्यकर्त्ता थे उपर्युक्त महाभाग ही याद आ रहे हैं। यह सब घटना चक्र सन् 1925 से 1939 तक का है। इस समय तक वसुधा तो समाप्त हो गई थी परन्तु हिन्दी प्रचारिणी सभा जोरों पर थी। हिन्दी में जितने भी प्रौढ़ विद्वान् तथा सुलझे हुए हिन्दी नेता थे वे सब इसी संस्था में एकत्रित होकर हिन्दी प्रचार की गतिविधियां सोचते थे। इसी बीच अर्थात् सन् 1933 ई० में पं० रमाकांत शास्त्री भारद्वाज के प्रयत्न से पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिकोत्सव जम्मू में मनाया गया। यद्यपि उक्त शास्त्री जी इसके संयोजक थे तथापि इस आयोजन के पीछे जम्मू के उपर्युक्त हिन्दी सेवियों की तथा आम जनता की शक्ति ही काम कर रही थी हिन्दी का यह सम्मेलन जम्मू के लिए या जम्मू के हिन्दी क्षेत्र के लिए एक ऐतिहासिक घटना बन गयी, जो आज तक फिर कभी नहीं घट सकी। विचित्र समय था वह भी। पहले दिन कन्या गुरुकुल जालन्धर की सब छात्राएं अध्यापक तथा प्राचार्य को मिला कर पूरा दल जम्मू पहुंचा। उनकी एक विशाल झांकी शहर में घूमी। "भारत को नई जिन्दगी हिन्दी दिलाएगी" गीत का गगनभेदी स्वर घण्टों गूंजता रहा। शहर की अत्यधिक जनता ने इस झांकी का लम्बा साथ दिया। जलूस शहर का चक्कर काट कर दीवानों के मन्दिर में पंडाल के रूप में परिणत हो गया। उस दिन हजारों की जनता में काफी भाषण हुए। जिन्हें सुनकर ऐसा लगता था जैसे इस राज्य में अब हिन्दी छा गई है। भाषणों में रमाकांत शास्त्री तथा पं० हरदत्त शास्त्री (डोगरी कवि) ने भी भाग लिया। दूसरे दिन हिन्दी विचार गोष्ठी तथा रात को वृहद् हिन्दी कवि सम्मेलन हुआ, सम्मेलन अपने आप में इतना सुचारू था कि जिस का स्मरण आते ही

आज भी सिहर उठता हूं। यह अधिवेशन सारे शहर की एक रौनक बन गई। तीन दिनों में कितने भाषण मौखिक व पठित रूप में किए गए, विचार गोष्ठियां अलग से हुई। भारत के विभिन्न प्रांतों से कवि, वक्ता तथा हिन्दी प्रचारकों का ऐसा जमघट जमा था, जोकि आज तक इस प्रकार नहीं जम पाया। जालन्धर का पूरा कन्या गुरुकुल चला आया था। कितनी मेधावती, वक्ता, कवि व होनहार बालिकाएं रङ्ग-मञ्च पर अपनी योग्यता का प्रमाण दिखा गईं, इस का जनता पर काफी प्रेरणा व प्रभाव रहा। इस घटना के छ:-सात वर्षों बाद इसी युग ने नया रूप अपनाया। सन् 1940 के लगभग जम्मू की दो बालिकाएं हिन्दी का सन्देश लेकर हिन्दी क्षेत्र में उतरीं एक ओर सुश्री शांता ने 'भारती' नामक हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया तो दूसरी ओर सन् 1943 ई० में सुश्री शकुन्तला सेठ ने 'उषा' नामक हिन्दी मासिक पत्र चला दिया। दोनों पत्र साहित्यिक थे किन्तु इनमें विशेषकर हिन्दी के प्रति किए गए अन्याय या पक्षपात सम्बन्धी विवेचनात्मक लेख भी छपते थे। इसके अतिरिक्त कविता, कहानी, लेख आदि सामग्री भी छपती थी। दोनों पत्रिकाएं आकार-प्रकार में 'सरस्वती' पत्रिका का स्तर छू रही थीं। जिनकी भारत के अन्य प्रांतों में जम्मू की अपेक्षा अधिक धूम थी। कुछ समय बाद मेरे भी कई लेख 'भारती' में छपे कुछ दो-चार कविताएं भी। भारती के लेखकों में श्री धर्मचन्द प्रशांत, मैं, पं० भागमल्ल, सुश्री विद्यादेवी, सुशीला तुली, अवनी सुकुमार, मा० हरिश्चन्द्र आदि जम्मू के तथा बाहर भी किशोर साहू, पृथ्वीराज कपूर, मधुप तुपकरी आदि अच्छे-अच्छे लेखक छपते थे। महामना मदनमोहन मालवीय जी का भी शुभाशीर्वाद आया व 'भारती' में छपा। इसी प्रकार डा० मुञ्जे, श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, गोस्वामी गणेशदत्त तथा बाबू सम्पूर्णानन्द आदि महापुरुषों के सन्देश भी 'भारती' में छपे हुए मैंने देखे। शांता जी 'भारती' का सम्पादन करने से ही शांता भारती के रूप में प्रख्यात हुईं। उन दिनों सम्पादन के साथ-साथ ही यह हिन्दी क्षेत्र का नेतृत्व भी करतीं थीं तथा हिन्दी के प्रश्न पर सरकार से टक्कर लेने में भी न हिचकती थीं। हिन्दी सम्पादन व जनता में प्रचार दोनों रचनात्मक कार्यों से इन्हें अवकाश ही नहीं मिलता था। 'भारती' के बन्द होने पर यहां का हिन्दी कार्यक्षेत्र भी सिकुड़ गया। यह बहुत बड़ी बात थी कि इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण हिन्दी पत्र को इन्होंने अपने पैरों पर सात वर्षों तक चलाया। 'उषा' भी इतने ही समय तक चली। इस की सम्पादिका सुश्री शकुन्तला सेठ हिन्दी नेतृत्व से दूर रह कर केवल सम्पादन कार्य ही करती रहीं तथा कविता लेख आदि लिखती रहीं। जहां शकुन्तला सेठ का क्षेत्र केवल बौद्धिक था वहां शांता बौद्धिकता के साथ-साथ हिन्दी के प्रसार प्रचार के सम्बन्ध में भी नेतृत्व करती रहीं। जहाँ एक मौन साधिका थी तो दूसरी ओर एक सक्रिय कार्यकर्ता किन्तु उस युग में हिन्दी के लिए दोनों का योगदान भारी था। जो एक इतिहास का रूप ले चला

है। उन दिनों हिन्दी प्रचार के कई आंदोलन होते रहते थे, लेकिन इनकी विशेषता यह थी कि ये केवल मुट्ठी भर हिन्दी समर्थकों के आंदोलन न होकर जन-आंदोलन बनते रहे। जिसमें स्व० श्री बंसी लाल सूरी, शांता भारती, स्व० विष्णु गुप्त वैद्य आदि लोगों को नेतृत्व मिलता रहा। इस नेतृत्व के फल थे—त्याग, समय-प्रदान, आर्थिक योगदान तथा सरकार की कोप भाजनता।

यह तो था हिन्दी का प्रचार रङ्गमञ्च इसके साथ ही साहित्यिक रङ्गमञ्च भी अपने रूप में अधिक प्रबल था। जिसमें श्री शंकर शर्मा पिपासु, रामनाथ शास्त्री, श्री जीवानन्द ज्योतिषी, सुशीला तुली, पातंजल देव, गोपीनाथ कौशिक, गङ्गादत्त 'विनोद', तेजराम खजूरिया, दीनू भाई पन्त, भगवत्प्रसाद साठे, राज भल्ला, शकुन्तला सेठ, श्याम लाल शर्मा आदि हिन्दी साहित्यकार गोष्ठियां आयोजित करके अपनी-अपनी रचनाएं सुनाते थे। गोष्ठियों के प्रधान ठिकाने तीन ही थे—ब्राह्मण सभा, दीवानों का मन्दिर तथा जंजघर के सामने का चौबारा। उन दिनों डोगरी किसी आंदोलन के साथ नहीं जुड़ी थी। अतः इन सब लेखकों का एकमात्र क्षेत्र हिन्दी ही था। केवल हरदत्त डोगरी भजनों में अकेले ही गुनगुना रहे थे। कुछ देर बाद न मालूम श्री भगवत् प्रसाद साठे को क्या सूझी कि उन्होंने जो पहली कहानी 'कुड़मों का उलाहना' हिन्दी में लिखकर पर्याप्त प्रशंसा और प्रसिद्धि पाई फिर भी अकेले डोगरी में कहानी लिखने लगे जबकि अभी डोगरी का कोई मंच ही तैयार नहीं हुआ था। जिन युवक हिन्दी लेखकों के बारे में ऊपर कहा गया है लगभग सन् 1940 में इन्होंने हिन्दी साहित्य मण्डल की स्थापना की। यह बना-बनाया हिन्दी साहित्यकारों का झुण्ड इस मंच पर एकत्रित होकर एक सूत्रता में साहित्य सम्बन्धी फुटकल रचनाओं का सृजन करने लगा। जिसमें कविता, कहानी, निबन्ध आदि पढ़े जाने लगे। मण्डल की साहित्यिक गोष्ठियों में जीवन की उमंग लहरा रही थी। लेखक सोत्साह आते व बैठकर नई-नई रचनाएं सुनाते, उन पर वाद-विवाद भी चलता किन्तु कभी इस विषय को लेकर व्यक्तिगत मन-मुटाव पैदा नहीं हुआ। इन गोष्ठियों में कई बार मुझे भी रचना पढ़ने के अवसर मिले। किन्तु मैं अधिक वयस्क विद्यार्थी नहीं था, जिससे मण्डल के इने-गिनों में स्थान पा जाता। दूसरी बात यह थी कि उन दिनों मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का छात्र था एवञ्च गर्मी के अवकाशों में ही जम्मू आकर तीन महीने काटता था। इस मण्डल के लोगों में मुझे विशेष नाम ही याद रह गए हैं। श्री रामनाथ शास्त्री, शंकर शर्मा 'पिपासु', नारायण मिश्र, प्रशांत, तेजराम खजूरिया, मा० हरिश्चन्द्र, श्री बंसीलाल सूरी, भगवत् प्रसाद साठे, दीनूभाई पन्त वेद पाल दीप, जगदीश साठे तथा अन्य कालेज के छात्र व छात्राएं इन गोष्ठियों में आते थे। श्री शांता भारती, शकुन्तला सेठ, पं० भागमल्ल, श्री लोकनाथ शर्मा 'एडवोकेट', श्री रमाकांत शास्त्री, श्री परशुराम शास्त्री, श्री लब्ध राम शास्त्री

श्री रघुनाथ शास्त्री आदि गण्यमान्य प्रौढ़ व्यक्तियों की शुभकामनाएं भी साथ थीं। विशेष अधिवेशनों पर इन्हें निमंत्रित भी किया जाता था। उन दिनों श्री मनसा राम चंचल अभी रघुनाथ पाठशाला में शास्त्री कक्षा में ही पढ़ रहे थे किन्तु लिखने की प्रवृत्ति के नए अंकुर इनमें फूट रहे थे। इसी बीच श्री सय्यदैन शिक्षा निर्देशक के विरुद्ध एक अभियान और चला। हिन्दी वालों की शिकायत थी कि हिन्दी बालोपदेश बदला जाए। इसलिए हिन्दी प्रचारिणी सभा और भारती पत्रिका का परिवार दोनों ही मिल गए। इस सम्बन्ध में बड़ी सभाएं हुईं। बड़े स्मरण पत्र भेजे तथा प्रतिनिधि-मण्डल शिक्षा अधिकारियों से मिले। आंदोलन ने जम्मू का जनमत हिन्दी के पक्ष में कर लिया। इस असन्तोष को जनता तक लिखित रूप में पहुंचाने के लिए ही भारती का विशेषांक निकाला गया।[1] इस आंदोलन ने यह मांग भी रखी कि कोर्ट का माध्यम हिन्दी होना चाहिए। इस प्रकार यदि देखा जाए तो 'भारती' पत्रिका आंदोलनों की आंधी साथ लेकर चली; जब समाप्त हुई तो परिस्थितियां बदल चुकी थीं। विभाजन व स्वतन्त्रता प्राप्ति का युग चल रहा था। इसी बीच 'भारती' अस्त हो गई।[2] कारण क्या रहा होगा, इसका कोई पता नहीं। किन्तु इसमें आर्थिक कठिनाई की समस्या भी एक कारण बनी होगी।

इधर स्वतन्त्रतापूर्व साहित्यमण्डल की गतिविधियां बड़ी उत्तेजनापूर्ण ढंग से चल रही थीं। जो इस आयोजन के बाहर रह कर साहित्य साधना कर रहे थे उनमें से एक विजय 'सुमन' का स्मरण ही मेरी स्मृतिपटल पर रह गया है। शेष चेहरे बाद की नई परिस्थितियों के तूफानों में ऐसे खो गए कि उन का नाम तक भी स्मरण नहीं रहा। विजय सुमन जी मौलिक रूप में उर्दू के लेखक व सम्पादक थे। किन्तु जम्मू में पुष्ट हिन्दी वातावरण तथा हिन्दी पत्रिका प्रकाशन प्रवाह देख कर इनके मन में भी हिन्दी क्षेत्र में उतरने की गुदगुदी हुई। युवक थे व महत्वाकांक्षी लेखक भी। इसके साथ कर्मठ व साहित्य के रसिक भी। अब तक हिन्दी नहीं जानते थे। बालोपदेश लेकर हिन्दी अध्ययन में जुट गए। और जल्दी ही भाषा पर अधिकार जमा गए। बाद में सुमन जी ने हिन्दी के गीत तथा कहानियां लिखीं जो दो संग्रहों में प्रकाशित हुईं। सुमन जी ने अपने ही रंग का साहित्यिक मित्र समाज जुटा रखा था। जैसे मोती बी० ए०, गुञ्जन, प्रवासी, ये लोग पंजाब, यू० पी० आदि स्थानों में बैठ कर लिख रहे थे और इस क्षेत्र में नाम भी कमा चुके थे। सुमन जी का इनके साथ हिन्दी साहित्यिक गठजोड़ था। सन् 1944 ई० में इन का कहानी संग्रह 'उर्मियां' नाम से प्रकाशित हुआ तथा 'नयन सिलौने' नाम से गीत संग्रह सन् 1945 ई० में छपा।

इन्होंने एक हिन्दी साप्ताहिक भी चलाया जो एक साथ जम्मू, लाहौर व बम्बई

---

1. सय्यदैन अंक,
2. साप्ताहिक व दैनिक होकर 'भारती' अन्त में समाप्त हो गई।

से निकलता रहा। इसकी छपाई आर्ट पेपर पर होती थी। यह हिन्दी साप्ताहिक सन् 1944 से 1947 तक सफलतापूर्वक चला। इस पत्र का नाम था "गुलाब"। इसमें हिन्दी कविताएं, कहानियां व लेख छपते रहे। निरन्तर हिन्दी साहित्य साधना द्वारा सुमन जी की हिन्दी कला परिपक्व हो गई थी। उसकी हिन्दी कविता के एक-दो उदाहरण देखिए—

मैं अपने जीवन का प्रेमी,
मैं अपने यौवन का गायक।
अपनी मैं पहचान स्वयं हूं
अपना हूं मैं ही उन्नायक।

... ...

प्रयाण पथ पर तड़पते दीप प्राणों के जले जाओ।
नियति के इन झकोरों से न बुझ जाना, न बुझ जाना॥

भारती पत्रिका के समानांतर ही यहां एक दूसरी हिन्दी मासिक पत्रिका ने जन्म पाया। इसका नाम था 'दीपक' सम्पादक थे पं० हरदत्त जी। यह पत्र भी साहित्यिक था और सन् 1940 के लगभग शुरू होकर 1946 तक रुक-रुक कर चलता रहा। इसी से इस की आयु की नाप नहीं होती। किसी का मत है कि यह पत्र केवल दस महीने चला। लेकिन इसके ही साथ-साथ इतना समझना चाहिए कि यह इतना धीमा चला कि इसके दस अंक ही सात वर्षों के अन्दर निकल पाए। किन्तु जिन लोगों का विचार है कि यह लगातार चलता रहा वे यह भी स्वीकार करते हैं कि इस समयावधि में इसके पच्चीसों अंक भी निकले थे।

ऊपर हिन्दी साहित्य मण्डल की बात चल रही थी। इसके महारथी साहित्यकारों के नाम भी दिए गए हैं। इस संस्था में जम्मू के छात्र तथा छात्राएं जो साहित्य में रुचि रखते थे साहित्य गोष्ठियों में आकर रचनाएं सुनाते थे। उनकी रचनाओं में अधिकतर स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा वैदेशिक सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित रहता था। भाषा खालस हिन्दी व साहित्यिक हिन्दी होती थी। किन्तु एक बात खेदजनक थी कि जम्मू के हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं का बाहर प्रकाशन की दृष्टि से इतना अधिक सम्मान नहीं हो पाता था। इससे स्थानीय लेखकों में या तो असन्तोष कहिए या फिर उत्साहहीनता का संचार होने लगता था। जब लेखक की रचना किसी प्रकाशन में स्थान ही न पा सके तो वह लिखे किस लिए। ऐसे थोड़े ही लोग होते हैं जो इन बातों पर विश्वास न रख कर केवल स्वांत: सुखाय लिखते हैं। नए लेखकों में प्रकाश में आने की भावना होती है। जो उनका दोष नहीं एक स्वाभाविक प्रवृत्ति ही माननी चाहिए। उन दिनों कुछ स्थानीय लेखक बाहर छपते थे। ऐसा मैंने नहीं

देखा। हां इस विषय में इनकी निराशा अवश्य देखी थी। बाद में साहित्य मण्डल की समाप्ति, डोगरी संस्था का बनना एवञ्च जम्मू में इस हिन्दी मञ्च का एकदम टूट जाना इन घटनाओं में बाहर के हिन्दी-पत्रों द्वारा स्थानीय लेखकों के सम्बन्ध में की गई उपेक्षा भी एक कारण हो सकती है। इसे दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि उस युग का ऐसा बना बनाया समृद्ध हिन्दी वातावरण डोगरी के परिपुष्ट क्षेत्र को जन्म देकर स्वयं लुप्त हो गया। आश्चर्य यह है कि एक साथ ही सब साधन समाप्त हो गए। उषा, भारती, दीपक, गुलाब इन की समाप्ति के साथ हिन्दी मण्डल भी चल बसा और हिन्दी साहित्यकार कुछ तो लिखने से निराश हो गये और कुछ डोगरी में चले गए। तभी से डोगरी का साहित्यिक मंच दिनोंदिन उभरता चला गया।

जिस युग की बात ऊपर कही गई है, उसमें अभी डोगरी किसी आंदोलन के साथ नहीं जुड़ी थी। हिन्दी के साथ आंदोलन प्रबलता से चल रहा था। इसमें ऐसी स्फूर्ति व उत्तपन थी कि नर, नारी, युवा, वृद्ध सभी हिन्दी प्रेमी बने। हिन्दी में लिखने के प्रेमी युवकों ने हिन्दी साहित्य मण्डल तो बनाया उसके साथ सुन्दर हिन्दी पुस्तकालय का भी निर्माण किया। पुस्तकालय अध्यक्ष बने श्री रामकृष्ण शास्त्री। पुस्तकालय का भवन 'चौगान फत्तु' में एक किराये की दुकान था। वहां सायंकाल बहुत से हिन्दी साहित्यकार तथा छात्र समाचार पत्र पढ़ने तथा नई-नई पुस्तकें लेने जाते थे। उनके नाम दो पुस्तकें वितरित करने का नियम था। अवधि पन्द्रह दिनों के भीतर पुस्तक लौटानी होती थी। उसके अनन्तर विलम्ब के लिए एक पैसा प्रतिदिन का दण्ड रखा गया था। इस आशय की एक चिट पुस्तक की जिल्द के साथ पिछले पृष्ठ पर चिपकाई हुई रहती थी। उसका आकार व प्रकार नीचे दिया जाता है।

हिन्दी साहित्य मंडल जम्मू द्वारा स्थापित
तुलसी जयन्ती वि० सं० 2000
राष्ट्रभाषा पुस्तकालय
क्रम सं०...............
श्रेणी सं० ....
ग्रथ सं०..............
नोट —

किसी भी प्रकार पुस्तक को विकृत करने पर उसे बदलना पड़ेगा। पुस्तक 15वें दिन लौटानी होगी। अन्यथा 1 पैसा प्रतिदिन प्रति पुस्तक हर्जाना पड़ेगा।

पुस्तकालयाध्यक्ष

यह हिन्दी पुस्तकालय जम्मू भर में अपनी विषय गतविशेषता के कारण अपना उदाहरण समाप्त ही था। हिन्दी का ऐसा साहित्यिक सर्वांगपूर्ण पुस्तकालय भी मण्डल के साथ ही अस्त हो गया। यह सोच कर अब भी हृदय को भारी ठेस पहुंचती है। फिर भी बिना किसी प्रकार के राजकीय प्रोत्साहन के अपने बल पर संस्था व पुस्तकालय वर्षों भर व्यवस्थित रूप से चलाते रहना उस युग की युवा शक्ति का त्याग, तपस्या और लगन ही थी। इन आयोजनों में भी गोपीनाथ कौशिक एक ऐसा व्यक्तित्व था जो हिन्दी की हर दिशा के साथ अपना तालमेल बिठा लेता था। ये हिन्दी कविता, कहानी तथा लेख तीनों लिखते थे। मुझे याद है कि इस पुस्तकालय का निरीक्षण इन्हीं को दिया गया था। पुस्तकालय अध्यक्ष को तीस रुपये अलाउंस दिया जाता था। सब कार्य नियमित व व्यवस्थित रूप से चलते थे। जब सन् 1947 ई० में ढील पड़ी तो एकदम ढील ही शेष रह गई। स्वतन्त्रता-प्राप्ति एक नया युग था। जो अपनी परिस्थितियां व अपना ही वातावरण ले कर आया, जिसने मनुष्य का जीवन व हृदय दोनों नई भूमि पर उतारे। पुराना निर्माण पुराना पड़ गया। तथा नवनिर्माण सर्वव्यापी होकर मनुष्य धारा को अपनी ओर बहा ले गया।

याद आता है वह हिन्दी का ठाठ, जिस का एक सांझा मंच था, जिस पर युवक, वृद्ध, प्रौढ़, नर, नारियां, छात्र व छात्राएं जुटते थे। विविध रचना पाठ होते थे। रत्न, भूषण, प्रभाकर परीक्षाओं के छात्रों की बाढ़ थी। और कई हिन्दी की छोटी बड़ी संस्थाएं भी कायम हो चुकी थीं। जिनमें सुश्री शकुन्तला सेठ का विद्यापीठ प्रधान था। श्री दयाराम शास्त्री बड़े हिन्दी प्रेमी, हिन्दी विद्वान् व कर्मठ व्यक्ति थे। उन का सारा जीवन ही सुधार व शिक्षा प्रसार में बीता। उनके प्रयास से प्रस्तुत विद्यापीठ की स्थापना हुई। उन दिनों शकुन्तला सेठ इस विद्यापीठ की छात्रा थी। इसमें संस्कृत की प्राज्ञ, विशारद, शास्त्री तथा हिन्दी की रत्न, भूषण, प्रभाकर की कक्षाएं प्रारम्भ की गई थीं। उन दिनों इन विषयों के छात्रों की कमी का कोई प्रश्न ही न था। इसी कारण विद्यापीठ खुलने पर संस्कृत व हिन्दी की छात्राए धड़ाधड़ आने लगीं। कई छात्राएं शास्त्री पास करके यहां से निकलीं। हिन्दी की प्रभाकर परीक्षा पास करने वाली छात्राओं की संख्या अधिक थी। श्री दयाराम शास्त्री ने अपनी कार्य कुशलता से विद्यापीठ को ऊंचा स्तर दिया। इससे हिन्दी का क्षेत्र और भी समृद्धि पर गया। आर्य समाज की ओर से संचालित दो-तीन स्कूलों में भी हिन्दी की कक्षाएं थीं। वहां भी छात्राओं की सन्तोषजनक संख्या रहती थी। छात्रों के लिये भी एक-आध हिन्दी अध्यापन केन्द्र थे। इसके अतिरिक्त यहां शास्त्रियों व प्रभाकरों की अधिक संख्या थी। उन्होंने व्यवसाय की दृष्टि से रात्रि पाठशालाएं तथा घरों पर ग्रुप खोले हुए थे। इससे हिन्दी के प्रचार के साथ-साथ हिन्दी अध्यापकों की आर्थिक दशा भी सुधरने लगी थी। श्री दयाराम शास्त्री ने इस संस्था को सन् 1940 के लगभग जन्म

दिया और सन् 1947 तक स्वयं इसके सर्वे-सर्वा बन कर इसे चलाते रहे। तत्पश्चात् श्री शकुन्तला सेठ, जो यहीं से शास्त्री व प्रभाकर कर चुकी थी, के हाथों में इस संस्था की बागडोर सौंप कर शास्त्री जी स्वतन्त्र हो गए। शिक्षा संस्था चलाने का अद्भुत कौशल था उनके हाथों में। सुश्री शकुन्तला सेठ तभी से इस संस्था की अध्यक्षा रहती चली आ रही हैं। यद्यपि समय के अनुसार अब तो संस्कृत कक्षाएं ही रह गई हैं। हां मैट्रिक तक की श्रेणियां अब इस विद्यापीठ को चला रही हैं। फिर भी स्व० शास्त्री जी की यह अमर कृति उन्हीं की शिष्या द्वारा संचालित होकर अब तक उस हिन्दी युग का अकेला प्रतिनिधित्व करती चली आ रही हैं। उस अतीत का चित्र मस्तिष्क में घूम कर केवल एकमात्र बची इस विद्यापीठ प्रतिमा से टकराकर उस युग की क्षणिक साकारता दे जाता है।

हिन्दी साहित्य मण्डल, साहित्यिक कार्यक्रम, सृजन और संगठन के साथ-याथ हिन्दी की जानी-मानी भारत की प्रतिभाओं का अभिनन्दन स्वागत इत्यादि करता था। मुझे याद है सन् 1943 के लगभग मण्डल की ओर से श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी बनारस से जम्मू पहुंचे। मण्डल के सदस्य जिन में श्री रामनाथ शास्त्री, श्री धर्मचन्द प्रशान्त, श्री श्याम लाल शर्मा, श्री जीवानन्द शास्त्री, शंकर शर्मा पिपासु आदि। इन पंक्तियों का लेखक तथा अन्य लोग थे, जोकि उन्हें लेने के लिये रेलवे स्टेशन पर पहुंचे थे। एक सप्ताह तक मुख्य अतिथि के कारण यहां के हिन्दी क्षेत्र में काफी चहल-पहल रही द्विवेदी जी के कई भाषण भिन्न-भिन्न स्थानों पर आयोजित किए गए। एक भाषण प्रिन्स ऑफ वेल्स कालेज में भी हुआ। उन दिनों माननीय डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा जो कालेज में संस्कृत प्रोफैसर थे, द्विवेदी जी के भाषण से अत्याधिक प्रभावित हुए। सायं तवी पुल पर घूमते हुए उन्होंने हमारे साथ इस सम्बन्ध की चर्चा भी की थी। एक दिन नहर पर जाने का कार्यक्रम बना वहां यात्री किश्तियां चलती थीं। एक स्थान पर खड़ी दो चार किश्तियों को साथ मिला कर हिन्दी लेखकों ने द्विवेदी जी की अध्यक्षता में गोष्ठी प्रारम्भ की अनेक कविताएं, लेख व कहानियां पढ़ी गईं। श्री जीवानन्द शास्त्री, रामनाथ शास्त्री पिपासु, मैं, मोतीलाल जी, नारायण मिश्र, तेजराम खजूरिया इन पंक्तियों का लेखक तथा अन्य भी साहित्यकार अन्त तक जमे रहे। उन दिनों अभी चाय का प्रचार नहीं था। शायद दूध तथा आम का प्रबन्ध था। एक दिन वेद मन्दिर में भी ऐसा ही साहित्यिक ठाठ जमा कर फिर कई अन्य स्थानों पर भी आयोजन किए गये। द्विवेदी जी इस रंग में ऐसे भूले कि तीन महीनों तक जम्मू में बैठे रहे। इसी बीच उन्होंने यहां एक रचना भी लिख डाली जो बाद में छपी। द्विवेदी जी के रहने का प्रबन्ध भी श्री मोहन लाल मोतिलाल के घर किया गया था। उनके खर्चे का बोझ मण्डल ने ही उठाया। ऐसा याद है। इसी बार एक बार पंजाब से श्री देवराज दिनेश

आए और वे केवल दो-चार दिन ठहर कर मण्डल द्वारा आयोजित गोष्ठियों में कविता पाठ कर चले गए।

इसी बीच दूसरी ओर शिक्षा निदेशक श्री सय्यदैन की हिन्दी नीति पर जन-विरोध उग्र होने लगा। यह कार्य हिन्दी प्रचारिणी सभा ने अपने कन्धों पर उठाया था। इसके कार्यकर्ताओं में मण्डल के सदस्य भी एक जुट होकर मिल जाते थे। एक दल लाहौर पहुंचा वहां गण्यमान्य लोगों से मिल कर यहां की परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया। वही दल उत्तर प्रदेश भी पहुंचा एवञ्च सम्पूर्णानन्द, सर राधाकृष्णन तथा मालवीय जी से मिल कर यहाँ हो रहे हिन्दी पर अन्याय के बारे में उन्हें भलीभांति परिचित कराया गया। जब उन महापुरुषों की ओर से जम्मू-कश्मीर सरकार को शिकायतें पहुंची तो उनका परिणाम यह निकला कि श्री सय्यदैन साहब को समय वृद्धि (Extension) नहीं मिल पाई। जब वे जम्मू से रवाना हुए तो हिन्दी के कुछ लोगों की ओर से स्टेशन तक उनका पीछा किया गया और उनके जाने की खुशी के संकेत उन तक पहुंचाए गए। इनमें श्री दीनूभाई पन्त तथा पं० भागमल्ल ये दो भी थे, ऐसा याद है।

मैं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का छात्र होते हुए भी साल में तीन महीने जम्मू आकर इन गतिविधियों के साथ घनिष्ठता के साथ जुड़ा रहता था। अब मैं कह सकता हूं कि उस सुदूर पूर्व के जम्मू कश्मीर हिन्दी आन्दोलन के साथ जितना मेरा घनिष्ठ और सक्रिय सम्बन्ध रहा था और जितना मैंने उसे वर्षों तक नजदीक से देखा था, ऐसा और इने गिने लोगों ने ही देखा होगा, जो अब जीवित हैं। ०००

प्रकृति सौन्दर्य तथा साहित्य सौन्दर्य की समन्वय स्थली कश्मीर

कश्मीर का गौरव भारत में ही नहीं अपितु समस्त संसार में प्रख्यात है। इस धरती का अद्भुत जादू है जिससे आकृष्ट होकर संसार के पर्यटक, विद्वान् अनुसन्धाता, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी तथा अन्य क्षेत्रों के लोग यहां पहुंचते हैं। कश्मीर विशाल भारत का मुकुट है एवञ्च संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में इसे शारदा देश कहा गया है तथा भूस्वर्ग आदि नामों से पुकारा गया है। इसका शारदा नाम इसलिये पड़ा कि आरम्भ से ही यह धरती विद्या का केन्द्र रहती चली आ रही है। प्रकृति की अनुपम छटा जहां संसार के किसी भी सुन्दर से सुन्दर देश को अपने अनुपम सौन्दर्य से तथा गुण गरिमा से मात करती है, वहां बौद्धिक क्षेत्र में भी संसार में इसका स्थान सर्वोच्च है। इसकी धूलि में ऐसे परमाणु पुञ्ज मिले हुए हैं जो यहां के निवासी को काव्य, कला, दर्शन, साहित्य, राजनीति आदि विविध विषयों की ओर न केवल आकृष्ट ही करते हैं अपितु अर्जित ज्ञान को लेखनी द्वारा प्रकट करने की प्रेरणा भी देते हैं। यहां रह कर पठन-पाठन लेखन भाषण आदि में सुतरां ही रुचि उत्पन्न हो जाती है। यहां रह कर मनुष्य को प्रकृति के वरदान स्वरूप एक अद्भुत शांतियुक्त अन्तर्लीनता प्राप्त हो जाती है। जिसके साथ मानसिक तरंग, कल्पना, आत्मबल तथा आत्म सन्तुष्टि भी मिलती है। इसी कारण इसके अतीत में यहां बड़े-बड़े विद्वान् लेखक व आचार्य हो गए हैं, जिनके रचित ग्रन्थ-रत्न आज संस्कृत साहित्य में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। मुसलमानों के शासनकाल में अरबी, फारसी, कश्मीरी व उर्दू के धुरन्धर लेखकों को भी यहीं रहकर अपूर्व साहित्यिक सर्जना की प्रेरणा मिली। वर्तमान काल में भी बौद्धिक एवं लेखन क्षेत्र में कश्मीर अपनी पुरानी विरासत अपन साथ ही संजोए हुए है। यद्यपि अब यहां संस्कृत भाषा का युग चला गया है तथापि हिन्दी, उर्दू, कश्मीरी व किसी अंश में संस्कृत के लेखक अब भी यहां बैठकर साधना कर रहे हैं। उन्हें इस मिट्टी तथा वातावरण से अब भी वैसी ही प्रेरणाप्रद शांति तथा अन्तर्मुखता मिलती रहती है। यहां बैठकर पढ़ने व लिखने में मन ही नहीं लगता अपितु लेखनी से मार्मिक व रोचक रचनाएं भी प्रस्फुटित होती हैं। इसे हम कोई अदृष्ट शक्ति मान

लें तो कोई आश्चर्य नहीं। कश्मीर की प्राकृतिक तथा मानवीय सुन्दरता तो जगत् प्रसिद्ध है ही, इसका बौद्धिक स्तर भी बहुत ऊंचा है। यहां का केसर व कविता विलास अन्यत्र कहां मिलेगा? इसी कारण कश्मीरी कवि कल्हण ने ठीक ही कहा है—

सहोदरा: कुंकुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासा:।
न शारदा देशमपास्य तेषामन्यत्र दृष्ट: क्वचन प्ररोह:॥

अर्थात् केसर व कुंकुम के सहोदर भाई कविता के विलास शारदा देश अर्थात् कश्मीर को छोड़ कर अन्यत्र इनका प्ररोह नहीं मिल पाता। आदिकाल से ही कश्मीर—"शारदा देश: सरस्वती देशो वा" इन विशेषणों से ही अलंकृत किया जाता रहा है। यहां हमारे देश में ऐसी प्रथा थी कि यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर कश्मीर यात्रा सब के लिए वैधानिक तथा अनिवार्य थी। ऐसा कहा जाता था—कश्मीरान् गच्छामि, वाराणस्यां गच्छामि।" उस समय यहां अनेक विषयों के विद्वान् आचार्य थे, जो उपवीत बटुक को शास्त्रीय दीक्षा देते थे।

कश्मीर के सम्बन्ध में हज़ारों प्रशंसा वाक्य भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में लिखे मिलते हैं। एक उदाहरण निम्न है—यहां विद्याभवन बहुत ऊंचे हैं, केसर है, बर्फ है तथा अंगूर हैं, ये तीन पदार्थ अत्यन्त दुर्लभ हैं।[1]

प्राकृतिक सौन्दर्य

कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य पर विचार करने पर ऐसा लगता है जैसे विधाता ने इस प्रदेश का निर्माण करते समय अपनी सम्पूर्ण कला और सौन्दर्य सामग्री का उपयोग कर दिया हो। इस क्षेत्र में समस्त जगत् का कोई भी देश इसकी तुलना में बराबर नहीं बैठ सकता। भारत को यह गौरव भगवान से ही मिला है। सच पूछा जाए तो इस देश को सोने की चिड़िया कहने का अभिप्राय कुछ अंशों में कश्मीर के साथ भी जुड़ा हुआ है। यह आनन्द और शांति की गुप्त सभा है। धरती का स्वर्ग व एशिया की सुरम्य क्रीड़ा स्थली है। इस की पर्वतमाला संसार के पर्वतों का अतिक्रमण कर जाती है। एवरेस्ट जैसे ऊंचे शिखर भारत का गौरव घोषित कर रहे हैं। कश्मीर को उपमा देते-देते सरस्वती का ज्ञान भण्डार भी शायद कम पड़ने लगे। सारांश में यों कह देना पर्याप्त होगा कि स्वर्ग-भूमि कश्मीर एक इन्द्र सभा है। जिस

---

1. विद्या वेश्मानि तुंगानि कुंकुम: सहिमं पय:।
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रीण्यत्र सुदुर्लभम्॥
"राजतरंगिणी (1—42)"

में सम्पूर्ण सौन्दर्य व कलाओं का एक साथ प्रदर्शन हो रहा है। यह झीलों की दुनिया है वूलर झील विश्व की बड़ी झीलों में से एक है। इस झीलों के संसार में स्वच्छ चांदी के घोल जैसा शीतल जल लेकर कलकल स्वर से असंख्य झरने बहते रहते हैं। अनेक प्रकार के सुन्दर पेड़, फूल व पर्वत चारों ओर उल्लसित हो रहे हैं।

काला रग भी बर्फीली हवाओं तथा शीत से निखर कर गौरवर्ण हो जाता है। उसमें आकर्षक सौन्दर्य फूट कर निकलता है। कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा के साथ ही मानवीय सौन्दर्य भी जगत् प्रसिद्ध है। पिचकी हुई गालें उभर आती हैं, चेहरा जगमगाने लगता है। और रग-रग में नया ताजा खून हिलोरे लेने लगता है। जिससे मनुष्य पर गुलाबी रंग खिल उठता है। एक बड़ी विशेषता यह है कि जड़मति भी चतुर, मूर्ख भी बुद्धि मान, अपठित भी पठित, भोला-भाला भी चालाक, अव्यावहारिक भी व्यावहारिक, अनाडी भी सूझबूझ वाला, अपण्डित भी पण्डित, अज्ञानी भी ज्ञानी, अलेखक सी लेखक, अदार्शनिक भी दार्शनिक, शुष्क व नीरस भी सरस, हृदयहीन भी कल्पनाशील और भावुक, अकवि भी कवि, आदि-आदि इस कश्मीर की मिट्टी में निवास कर मनुष्य सब कुछ बन सकता है।

यह इस मिट्टी की ही विशेषता है। केवल मनुष्य को इस सन्दर्भ में महत्वाकांक्षी, परिश्रमी व जिज्ञासु होना चाहिये। यहां रह कर बुद्धि पैनी, मस्तिष्क उर्वर तथा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की प्राप्ति होती है। इसी के साथ व्यक्तित्व की उठान, प्रशासन योग्यता ये सब वरदान कश्मीर में रह कर एक अध्ययनशील व जिज्ञासु व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। यहां रह कर मनुष्य में ये सब गुण स्वतः ही उभर आते हैं। विद्वत्ता की परख, मनुष्यता, सभ्यता व सद्व्यवहार के मानदण्ड को पहचानने की शक्ति भी यहां रह कर मनुष्य को प्राप्त हो जाती है। यही कारण है कि दूर-दराज पर्वतमाला में स्थित इस भू-भाग ने भारत को बहुत महान् पुरुष दिए व दे रहा है। यह इसकी धरती की मिट्टी का ही चमत्कार समझना चाहिए। प्राचीन काल में इस चमत्कार के कारण इसे शारदा देश, देवभूमि आदि नामों से पुकारा जाता था। यहां के लोगों में ये उपर्युक्त गुण होने के साथ विचित्र प्रत्युत्पन्न मति भी है। सयाने लोग अब भी कोई राय या दिशा-निर्देशन लेना हो तो इस धरती के मानव को ही महत्त्व देते हैं। भूतकाल की यह विरासत अब भी यहां देखी जाती है।

यह देवभूमि कश्मीर, हरीभरी घाटी, शस्यश्यामला, फूलों फलों व चश्मों से अलंकृत होती हुई नववधु के समान सौन्दर्य व सौभाग्य के सदा हासोन्मुख प्रफुल्लित तथा हाव-भाव विलास की आभा से आभासित है। यह सब प्रकृति सौन्दर्य का वरदान है। यह हरी-भरी घाटी है इसके सरोवरों में फूल खिले हैं। सब ओर हरे-भरे खेत व फलों से लदे पेड़ हैं। मैदानों में घास की नीली मलमल प्रकृति ने वरदान के रूप में

दी है। पेड़, लताएं, झुरमुट सब अपने सौन्दर्य से लहरा रहे हैं। उन की आभा ही कुछ अलग है। सरोवरों में कमल नाच रहे हैं, झीलों में बत्तखें घूम रही हैं, किनारों पर बगुले कतार बांध कर तपस्या की मुद्रा में विराजमान हैं। सुगन्धित पवन के ठण्डे झोंके जीवन में ताजगी जगा देते हैं। यह कश्मीर हरित-पत्तों, फूलों, वनों, पहाड़ों, जलप्रपातों व नदी नालों का एक सुन्दर कलाकार व सुन्दरता का जादू है। यह प्रकृति नटी की सुन्दरता की पिटारी है। वारूणी की लाल लीला भरी उमंग की मस्ती की एक तान जैसी है तथा भङ्ग की तरङ्ग जैसा आनन्दोत्सव का उन्माद है इसमें। पहाड़ों से झरते हुए झरनों में अनन्त का संगीत स्वर मुखरित हो रहा है। आकाश की नीलिमा का सरोवरों में प्रतिबिम्ब मानों स्वच्छ दर्पण में गोप घनश्याम का प्रतिबिम्ब प्रस्फुटित हो रहा हो। इसके हरे-भरे मैदानों में स्वर्ग की अनेक सुन्दरतम चित्र पट्टियां मिलकर झिलमिल कर रही हों। प्रात:काल की अरूणिमा सर्वत्र इन्द्रधनुषी छटा बिखेर देती है।

साहित्य वैभव :

अलंकार :—कश्मीर परम्परा से ही संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा है। इस धरती पर संस्कृत के धुरन्धर विद्वानों व लेखकों की लम्बी श्रृंखला सदियों तक चलती आई थी, जिसने अभिनव गुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट, कल्हण, विल्हण, शंकुक, मुक्ताकण, शिव स्वामी, आनन्दवर्धनाचार्य, महिम भट्ट, उव्वट, लल्लट, वामन आदि-आदि धुरन्धर संस्कृत बिद्वान् व लेखक हुए हैं। जिनका रचा हुआ संस्कृत का उच्चकोटि का साहित्य आज सुरभारती के कोष को समृद्ध कर रहा है। अलंकार के क्षेत्र को भी उपर्युक्त विद्वानों ने अपने ग्रन्थ रत्नों द्वारा भरपूर किया जैसे—काव्य प्रकाश, औचित्य विचार चर्चा, वक्रोक्ति जीवितम्, ध्वन्यालोक इत्यादि। इन आचार्यों ने अलंकार, दर्शन, व्याकरण, काव्य, कोष, आख्यान, आख्यायिका, वेद, वेदाङ्ग इत्यादि सब विषयों पर अपूर्व साहित्य सर्जना की। साहित्य (अलंकार) के क्षेत्र में कुछेक को छोड़कर सब ग्रन्थ कश्मीरी विद्वानों के द्वारा ही लिखे गए थे। इसी प्रकार काव्य (गद्य-पद्य) के क्षेत्र में भी इन्होंने पर्याप्त लिखा, हरविजय, स्तुतिकुसुमाञ्जलि आदि-आदि। इसी प्रकार भामह का अलंकारवाद, वामन का रीतिवाद, अभिनव गुप्त व मम्मट का अभिव्यक्तिवाद, क्षेमेन्द्र का औचित्यवाद, भट्टनायक का अभिव्यञ्जनावाद, शंकुक का भुक्तिवाद, आनन्दवर्धनाचार्य का ध्वनिवाद, महिम भट्ट का अनुमानवाद आदि कई साहित्यिक व अलंकारिकवादों पर इन आचार्यों ने मानक ग्रंथ लिखे। एक-एकवाद एक-एक स्कूल बन गया। इन आचार्यों ने साहित्य की अनेक शाखाओं में अपने-अपने वाद (सम्प्रदाय) स्थापित किए। ये सब साहित्यिकवाद संस्कृत साहित्य को कश्मीर की देन हैं। आज अधिकतर सस्कृत विद्वान् देश-विदेश में इन्हीं वादों का पठन-पाठन व अनुसन्धान कर रहे हैं।

शैव शास्त्र :

शैव-शास्त्र के उद्गम व विकास की भूमि भी कश्मीर ही है। यह दर्शन अपने आप में बड़ा गहन तथा गम्भीर दार्शनिक चिंतन का परिणाम है। नवमी शताब्दी में वसुगुप्त ने इस विषय का एक ग्रंथ स्पन्दकारिका रचा। उसके बाद इस क्षेत्र के अनेक आचार्य हुए जिन्होंने इस दार्शनिक गहन चिन्तन पर विपुल साहित्य का सृजन किया।

कल्लट ने स्पन्दवृत्ति, तत्त्वार्थ चिन्तामणि, शिव दृष्टि इत्यादि ग्रन्थ लिखे। सोमानन्द ने प्रत्यभिज्ञाकारिका, उत्पलाचार्य ने ईश्वर प्रत्यभिज्ञा, अभिनवगुप्त ने मालिनी विजय, प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी इत्यादि ग्रंथ लिखे। इनके लिखे हुए अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थों में शिव द्रष्ट्यालोचना, प्रत्यभिज्ञावृत्ति विमर्शिनी इत्यादि हैं। इसी प्रकार तन्त्रालोक, तन्त्रसार, परमार्थ सार, शिव सूत्रवृत्ति, प्रत्यभिज्ञाहृदय सूत्र शैव शास्त्र के मूलभूत ग्रन्थ हैं जो अत्यन्त गम्भीर भी हैं व क्लिष्ट भी। इसके अतिरिक्त शैव-शास्त्र का आगम पक्ष, दर्शन पक्ष व तन्त्रपक्ष इन तीनों पक्षों का साहित्य है, जिसका कुछ भाग ऊपर दिखा दिया गया है।

पुराण :

पुराण के क्षेत्र में भी कश्मीर में पर्याप्त कार्यकलाप हुआ है। नीलमत पुराण तथा भृङ्गीशसंहिता ये दो पौराणिक ग्रंथ हैं; जिनकी रचना कश्मीर में भृंगीश ऋषि ने की थी। इन दोनों पुराणों में कश्मीर का भौगोलिक, धार्मिक तथा सामाजिक चित्रण है। इन पुराणों में कश्मीर को उत्तम तीर्थ क्षेत्र घोषित किया गया है। तथा कई पुराण, महाभारत व रामायण सम्बन्धी घटनाओं का इसी स्थान पर संघटित होने का वर्णन है। दूसरी ओर इन दो पुराणों के वर्णनों द्वारा कश्मीर का देव भूमित्व भी सिद्ध हो जाता है।

इतिहास :

कश्मीर के संस्कृत क्षेत्र में इतिहास का कार्य भी अभूतपूर्व हुआ है जिससे संस्कृत क्षेत्र की न्यूनता भी पूर्ण हुई है। इस सम्बन्ध में कल्हण की लिखी हुई "राजतरंगिणी विश्व भर में प्रसिद्ध है। जोनराज (कश्मीरी) द्वारा लिखी गई दूसरी राजतरंगिणी भी संस्कृत के ऐतिहासिक पक्ष को पुष्ट करती है। राजतरंगिणी की एक विशेषता यह भी है कि यह ग्रंथ दशम शताब्दी से सोहलवीं शताब्दी तक का कशमीर का इतिहास प्रस्तुत करता है। तथा संस्कृत में भी ऐतिहासिक साहित्य है इसका प्रमाण भी उपस्थित करता है। आज के युग में इस ग्रंथ की और भी उपादेयता बढ़ गई है क्योंकि अधिकतर शोधार्थी अपने शोधकार्य के लिए इसकी ही सहायता लेते हैं।

काव्यग्रंथ :

काव्य के क्षेत्र में यहां अनेक काव्यों और महाकाव्यों की रचना हुई । अभिनन्द ने कादम्बरी कथासार का प्रणयन किया। कवि क्षेमेन्द्र ने रामायण मंजरी, महाभारत मंजरी आदि काव्य ग्रंथ लिखे। जगद्धर ने स्तुतिकुसुमान्जलि नामक भक्तिरस पूर्ण विशाल काव्य लिखा। कवि जयद्रथ ने हर चरित चिन्तामणि नामक महाकाव्य की रचना की, कवि भीमभट्ट ने "रावणार्जुनीयम्" महाकाव्य रचा, कवि भर्तृमेण्ठ ने हयग्रीववध काव्य की रचना की। मङ्खक ने श्री कण्ठचरित महाकाव्य का सृजन किया। इसी प्रकार कवि रत्नाकर ने हरविजय विशाल महाकाव्य रचा। कवि बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरित व श्री हर्ष ने नैषधीयचरित की रचना की। काव्य रचना के क्षेत्र में कश्मीर के संस्कृत कवियों का संस्कृत काव्य साहित्य को अत्यधिक योगदान है।

व्याकरण :

व्याकरण के क्षेत्र में भी पिछली शताब्दियों में पर्याप्त कार्य हुआ था, जिसमें कुछ ग्रंथ ही अब उपलब्ध होते हैं। जैसे कैयट का महाभाष्य प्रदीप, जगद्धर की बालबोधिनी नामक टीका "कातन्त्र" व्याकरण पर लिखी गई थी। जयादित्य ने व्याकरण सम्बन्धी काशिका नामक एक टीकात्मक ग्रंथ लिखा। भामह ने वररुचिकृत प्राकृतप्रकाश पर एक वृत्ति लिखी। इस प्रकार अनेक व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थ कश्मीर में लिखे गए।

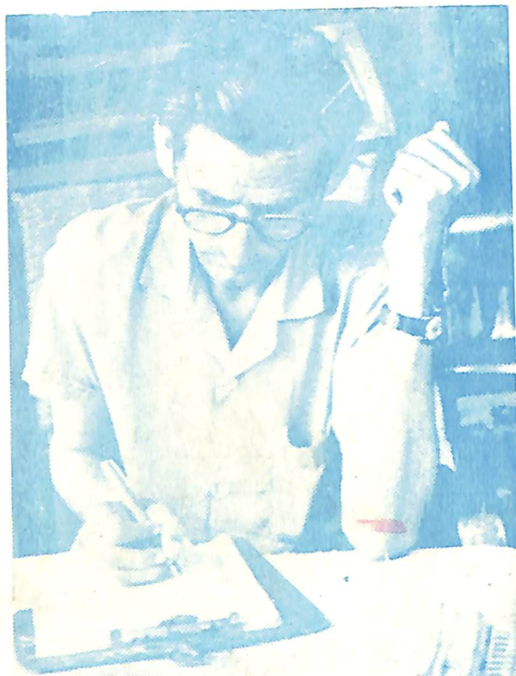
वेद :

वैदिक विषय पर यद्यपि कश्मीर में अन्य विषयों की तुलना में कम कार्य हुआ है तथापि उव्वट नामक कश्मीरी विद्वान ने यजुर्वेद पर प्रामाणिक भाष्य लिखा जो आज भी सायण भाष्य के समान प्रसिद्ध व मान्य समझा जाता है। इस प्रकार कश्मीर का विश्व भर में निराला ही स्थान है।

जिसमें सब शास्त्र, कला, साहित्य, दर्शन आदि विषयों के साथ दैवी मानव व प्राकृतिक सौन्दर्य अभूतपूर्व प्रकार से छलक रहा है। इसी प्रकार चातुर्य, मस्तिष्क शक्ति, प्रतिभा, लेखन, पाठन तथा राजनैतिक चातुर्य भी है। ०००



डॉ० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'



जन्म : 29 सितम्बर 1924 ई० ।
पिता का नाम : पं० हाकिम शर्मा ।
निवास : 23 मोहल्ला पहाड़ियां, केसरी कुटीर, जम्मू तवी ।

शिक्षा : शास्त्री : पंजाब विश्वविद्यालय, शास्त्री : (प्रथम श्रेणी), वेदाचार्य : (प्रथम श्रेणी), एम० ए० (संस्कृत प्रथम श्रेणी), एम० ए० : (हिन्दी में) हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, पीएच० डी० : (संस्कृत में) जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय ।

प्रशासन तथा अध्यापन कार्य—1) भू० पू० प्रोफेसर विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग) राजकीय एम० ए० एम० आर्टस कालिज जम्मू । 2) भू० पू० सम्मानित प्राध्यापक श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्मू । 3) भू० पू० प्रिंसीपल—श्री रघुनाथ संस्कृत कालिज वीरपुर । 4) भू० पू० प्रिंसीपल—हिमाचल सरस्वती संस्कृत कालिज जांगला-रोहड़ू (शिमला) । 5) भू० पू० डायरेक्टर—श्री रणवीर संस्कृत रिसर्च इन्स्टीटयूट जम्मू । 6) भू० पू० संस्कृत प्राध्यापक पोस्ट ग्रैज्युट संस्कृत विभाग जम्मू विश्वविद्यालय । 7) भू० पू० संस्कृत प्रोफेसर—राजकीय एम० पी० कालिज श्रीनगर (कश्मीर) । 8) भू० पू० हिन्दी प्रोफेसर राजकीय ए० एस० कालिज श्रीनगर (कश्मीर) ।

साहित्यिक गतिविधियां—भू० पू० प्रधान हिन्दी साहित्य मण्डल (रजि०) जम्मू-तवी । भू० पू० प्रधान-साहित्य सदन (रजि०) जम्मू तवी । सदस्य—अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद । भू० पू० संरक्षक-तरुण संगम जम्मू-कश्मीर शाखा ।

प्रकाशित ग्रन्थ—1) मतिमन्थन, 2) उल्लोल, 3) शोध-शिक्षा, 4) अनुराग विराग (हिन्दी उपन्यास) रघुनाथ गुणोदय एक समीक्षा, 5) मेघदूत टीका 2 सर्ग, 6) कुमारसंभव रघुनाथ टीका 2 सर्ग 7) तरल तरङ्ग 8) ब्रह्म निरुपण 9) रोहड़ू तहसील 10) चिन्तन के उन्मेष 11) भीमाष्टक 12) कहानी संग्रह 13) संस्कृत कविता संग्रह 14) व्यङ्ग्योक्तय: (संस्कृत पद्यों में) ।

सम्पादित ग्रन्थ (प्रकाशित)—1) जम्मू-कश्मीर शताब्दी ग्रन्थ (कश्मीर भाग), 2) चण्डीदास ग्रन्थावली, 3) रघुनाथ गुणोदय महाकाव्य ।

भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख—1) 55 निबन्धों का भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन । 2) 20 खोज पूर्ण शोध पत्रों का भिन्न-भिन्न बौद्धिक सभाओं में पठन । 3) लगभग 125 वार्ताओं (भिन्न-भिन्न विषयों पर) का आकाशवाणी में प्रसारण ।

भूतपूर्व चेयरमैन—हिमाचल केन्द्रीय आदर्श संस्कृत महाविद्यालय जांगला रोहड़ू (शिमला) ।

वर्तमान स्थिति—डायरेक्टर—श्री लालदेवी अन्नपूर्णा संस्कृत कालिज कुल्लू (हि० प्र०) ।

कवि, निबन्धकार, उपन्यासकार, कहानीकार तथा आलोचक ।